शार्दूलाल ग्रन्थमाला, नं० ३

पातञ्जलयोगसूत्रम्

भोजदेवकृत-राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

धारेश्वरभोज-तद्ग्रन्थ-तन्मतसमीक्षा-पातञ्जलसिद्धान्तादि-

विवरणात्मिकया भूमिकया

विस्तृतहिन्दीव्याख्यया च संवलितम्

सम्पादक

डॉ० रामशंकरभट्टाचार्यः

वाराणसी

हिन्दीव्याख्याकार

डॉ० अमलधारी सिंह

प्रधानाचार्य, वैशवाडा डिग्री कालेज

लालगंज ([illegible])

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली, वाराणसी

(भारत)

प्रकाशक
© भारतीय विद्याप्रकाशन
(१) पो० बा० १०८ कचौड़ीगली, वाराणसी
(२) १ यू० बी० जवाहर नगर, बंग्लो रोड, दिल्ली–७

द्वितीय संस्करण १९७९ मार्च



मूल्य १५ रुपया अजिल्द
२१ रुपया सजिल्द

मुद्रक :
वर्धमान मुद्रणालय,
जवाहर नगर, वाराणसी।

संस्कृत

भूमिका

ऋषये परमायार्कमरीचिसमतेजसे ।
धर्ममेघप्रतिष्ठाय शान्ताय गुरवे नमः ॥

पतञ्जलिप्रणीत योगसूत्र पर धारेश्वर भोजदेव ने एक वृत्ति लिखी है, जो राजमार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध है, (स श्रीभोजपतिः वृत्तिं व्यधात्—सर्वान्तिम मङ्गलाचरण श्लोक तथा ग्रन्थारम्भ-स्थित 'पातञ्जले कुर्वता वृत्तिम्' वाक्य द्र०)। वृत्तिरूप व्याख्या का जो लक्षण मिलता है (सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्तिः), वह इस व्याख्या में चरितार्थ होता है, अतः 'वृत्ति' पद का व्यवहार सार्थक ही है।[1]

सुगृहीतनामधेय डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त कहते हैं[2] कि भोजवृत्ति व्यासभाष्य की व्याख्या है। यह वस्तुतः अनवेक्षण है। भोजवृत्ति योगसूत्र की एक स्वतन्त्र व्याख्या है (व्यासभाष्य की नहीं), यद्यपि इसमें बहुत्र व्यासभाष्य की छाया उपलब्ध होती है। भोजराज ने व्यासभाष्य की कोई व्याख्या लिखी थी, इसका कोई प्रमाण ज्ञात नहीं है और दासगुप्त महोदय ने भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया है।

---

१ भोजवृत्ति के मत 'राजवार्तिक' के नाम से मणिप्रभाटीका में दो बार उद्धृत हुये हैं (१।५, ३।३३)। टीकोक्त राजवार्तिक निश्चय ही तत्त्व-कौमुदी (सा० का ७२) द्वारा स्मृत राजवार्तिक नहीं है। 'राजा' शब्द से टीकाकार को यह भ्रान्ति हुई है—यह स्पष्ट है।

2. Vyasa's bhasya commented on by Vacaspati Misra is called तत्त्ववैशारदी, by Vijnanabhiksu योगवार्तिक, by Bhoja in the tenth century भोजवृत्ति, and by Nagasa (seventeenth century) छाया व्याख्या (A History of Indian Philosophy vol I, p 212) यहाँ दासगुप्त महोदय नागेशकृत छाया-व्याख्या को व्यासभाष्यटीका के रूप में स्वीकार करते हैं, यह अनवेक्षण ही है। छाया योगसूत्र पर स्वतन्त्र टीका है।

यह वृत्ति लघु है और वृत्तिकार स्वयं कहते हैं कि उन्होंने व्याख्या को विस्तृत नहीं किया बल्कि विकल्पजाल का परित्याग ही किया है ('उत्सृज्य विस्तरमुदस्य विकल्पजालम्' इत्यादि ग्रन्थारम्भगत सप्तम मङ्गलाचरण-श्लोक द्रष्टव्य)। इस व्याख्या का प्रामाण्य पूर्वाचार्यों ने माना है। गोदावरमिश्र योगचिन्तामणि (लेखनकाल १५ वी शती का प्रथमांश) के आरम्भ में कहते हैं—

यद् व्यासवाचस्पतिभोजदेवैः पातञ्जलीयं निरणायि तत्त्वम्।
अन्यत्र सिद्धं यदपेक्षितं च तदत्र संक्षिप्य निरूपयामि ॥

(श्लोक ३)। श्री परशुराम कृष्ण गोडे महोदय ने इस ग्रन्थ पर विशद विचार किया है (द्र० Poona Orientalist, Vol IX, No 1–2)।

योग के अन्यान्य आचार्य भी भोजवृत्ति का स्मरण करते हैं। शिवानन्द सरस्वती ने योगचिन्तामणि में (पृ २०, १५२ और १७३ में) 'भोजदेवकृत इस वृत्ति का उद्धरण दिया है। योगसूत्र की नागोजीवृत्ति (लघुवृत्ति) में एकस्थल पर भोज का मत प्रमाणरूप से उद्धृत किया गया है—अनुलोम-प्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वयैः इति भोजराजः॥ (४।३)।

शाक्त भास्कर राय ने ललितासहस्रनाम के भाष्य में इस वृत्ति का उल्लेख किया है। ललिता के 'कैवल्यपददायिनी' नाम की व्याख्या में कैवल्य-स्वरूप के विषय में भास्कर कहते हैं—"कैवल्यशब्देन योगशास्त्रान्तिमसूत्रेण 'कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा चितिशक्ते' रित्यनेन प्रतिपादितस्वरूपो मोक्ष उच्यते। चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेणावस्थानं कैवल्यमुच्यते इति भोजराजवृत्तौ" (पृ १३२, मुद्रित योगसूत्रपाठ में ईषत् अशुद्धि है, जिसको ठीक कर यहाँ उद्धृत किया गया है)। यह पाठ मुद्रित भोजवृत्ति में (४।३३ सूत्र की व्याख्या में) यथावत् है[1] (आनन्दाश्रममुद्रित संस्करणगत पाठान्तर द्र०)।

---

१ तत्र आनन्त्येति भावप्रत्ययान्तपाठ इति भोजदेव" (पृ. १५२, यह २।४७ सूत्र पर है), "भोजराज-व्याख्यानं तु न विद्यते विप्लवो ·" (पृ २०, यह २।२६ सूत्र पर है), "तत्र आसनस्थैर्ये सति · प्राणायाम उच्यते" (पृ १७३, यह २।४९ सूत्र पर है)।

भोज का परिचय

वृत्तिकार भोज राजपूत जाति के अन्तर्गत परमारवंश में आविर्भूत हुए थे। प्रारम्भिक काल में परमारवंशीय नृपतिगण आबू पर्वत में रहते थे। बाद में इस वंश के राजाओं ने मालव देश में आकर अपना राज्य स्थापित किया। इन राजाओं की विद्यावत्ता एवं शौर्य के कारण उज्जयिनी एवं धारानगरी इतिहास प्रसिद्ध हो गयी। भोज ने उज्जयिनी के स्थान पर धारानगरी को अपनी राजधानी बनाया। यही कारण है कि अनेक ग्रन्थकारों ने 'धारेश्वर' 'धाराधिपति' आदि नामों का प्रयोग भोज को लक्ष्य कर किया है। भोज 'रणरङ्गमल्ल' उपाधि से प्रसिद्ध थे।

परमार-वंश के प्रसिद्ध राजा कृष्णराज थे (आनुमानिक ९१४-९३४ ई०)। इस वंश के द्वितीय प्रसिद्ध राजा का नाम वाक्पति (अपरनाम मुञ्ज) था, जिनका शासनकाल ९७३ ई०से ९९७ ई० तक माना जाता है। इनकी अमोघवर्ष आदि कई उपाधियाँ थी। मुञ्ज के बाद इनके भाई नवसाहसाङ्क उपाधिकारी सिन्धुराज (या सिन्धुल) राजा हुए (आनुमानिक ९९७-१०१० ई०); वर्तमान वृत्तिकार इनके पुत्र हैं। भोज का राज्यकाल लगभग ४० वर्ष का था (आनुमानिक १०१८-१०६० ई०)। भोज १०६२ ई० तक जीवित थे, इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है (कल्हणकृत राजतरंगिणी ७।२५९), यद्यपि ऐसा प्रमाण भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भोज १०५४ ई० के बाद जीवित न थे (P V. Kane : II S P, p. 250)। जीवन के अन्तिमांश में गुजरात-नृपति भीमसेन के साथ इनका विकट युद्ध हुआ और इस युद्धकाल में रुग्ण होकर वे दिवगत हुये। सोमनाथ पर मुहम्मद गजनी के आक्रमण को भोज ने प्रतिहृत किया था—यह ऐतिहासिक तथ्य है।

राजा होते हुये भी प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रणेता होने का उदाहरण विरल है। यही कारण है कि विद्वानों ने भोज के मतों का उल्लेख करने के समय सहृदय होकर श्रद्धा-प्रदर्शनार्थ 'राजा' शब्द का प्रयोग किया है (द्र० विद्याधरकृत एकावली की तरला टीका, पृ० ९८)

ऐसा प्रतीत होता है कि भोज शैव थे। उन्होंने एक बृहत् संस्कृत पाठशाला

का निर्माण कराया था, जिसमें सरस्वती की एक भव्य प्रतिमा भी थी। यह प्रतिमा इस समय इग्लैंड के 'ऐतिहासिकसंग्रहालय' में है। भोज ने अनेक मन्दिरों का भी निर्माण कराया था, जिनके अवशेष आज भी अज्ञात मिलते हैं।

भोज की दानशूरता प्रसिद्ध है। मेरुतुंग, बल्लालसेन आदि के ग्रन्थों से भोज के सर्वत्र प्रसारी यश की सत्ता अनुमित होती है। जैन विद्वानों के साथ भोज का प्रीतिपूर्ण सम्पर्क था। इस विषय में भक्तामरचरित ग्रन्थ द्रष्टव्य है।[1]

विद्या-प्रस्थानों में भोज का प्रामाण्य

योगविद्या के अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रों में भी भोज का प्रामाण्य माना जाता है, इस विषय में कुछ प्रसिद्ध स्थल उद्धृत किए जा रहे हैं—

१—अमरकोश की टीका में क्षीरस्वामी ने अनेकधा (श्री) भोज के मतों का उपन्यास किया है (पृ० १७, ४१, हरदत्त शर्मा सस्करण)।

२—क्षीरतरङ्गिणी (रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशित सस्करण) में भोज के शब्दसम्बन्धी मत उद्धृत हुए हैं (पृ० १४, ११२, ११४, १५४)।

३—सुभूतिचन्द्रकृत अमरकोश-टीका में भोज के मत उद्धृत है , ड० गोडे कृत Date of Subhuti Chandra's Commentary on the Amarakosa लेख (Kuppuswami Shastri commemoration Volume पृ० ४७–५१)।

४—अष्टाङ्गहृदय की केरली व्याख्या में (पृ० ४०३) भोज के वाक्य उद्धृत है।

५—डल्हण ने सुश्रुतटीका में भोज के मतों का उल्लेख किया है।

६—चिकित्सासंग्रह और उसकी टीका तत्त्वचन्द्रिका में भोज के मत उद्धृत है (पृ० ३७० वङ्गीय सस्करण)।

---

१ भोज के विषय में विशेष जिज्ञासु को निम्नोक्त दो ग्रन्थ पढने चाहिये · C V Vaidya · History of Mediaeval Hindu India, vol III, P. T Srinivasa Ayyangar Bhoja Raja, chap 4-8.

७—गन्धवाद-परक ग्रन्थों में धारेश्वर भोज के मत उल्लिखित हुए हैं। इस विषय में गोडे कृत A Rare Manuscript of Gandhasastra लेख द्रष्टव्य है (New Indian Antiquary Vol vii, pp 185–193)।

८—विराटपर्व की विमलबोधकृत टीका में भोज का वाक्य उद्धृत है (१७।११)—"भोजस्त्वाह सर्वगुणैव राजहंसीव महिषी महीपतेरा, यतो मानसरसो महीं प्राप्ता यत्ने वहति जाता"।

९—राघवभट्टकृत शकुन्तलाटीका (पृ० ५९) में भोज का वाक्य उद्धृत है।

१०—लक्ष्मणभट्ट कृत पद्यरचना (काव्यमाला में प्रकाशित सुभाषितसंग्रह) में भोज का पद्य उद्धृत है (पृ० १०१)।

११—शंकर कृत वास्तुशिरोमणि (अमुद्रित) ग्रन्थ में धारेश्वर भोज कृत राजमार्तण्ड-नामक ज्योतिष-ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हैं (पृ० १८, १३६)। इस विषय में गोडेकृत 'Vastusiromani, a Work on Architecture by Samkara लेख (A B O R I Vol XXXV pp. 35—41) द्रष्टव्य है।

१२—धनुर्विद्या में भोजराज की पटुता की प्रशंसा कोदण्डमण्डन ग्रन्थ में मिलती है (११९)।

१३—लक्ष्मण पण्डित कृत अद्वैतसुधा में भोज के मत बहुधा निर्दिष्ट हुए हैं—द्र० Exact Date of the Advaitasudha of Laksmana Pandit and His Possible Identity with Laksmanarya (Poona Orientalist Vol. iv, Nos. 1–2)।

१४—स्मृतिशास्त्र के विद्वानों ने भोज का सबहुमान उल्लेख किया है, यथा—शूलपाणि (प्रायश्चित्तविवेक में), रघुनन्दन (अष्टाविंशति-स्मृतितत्त्व में) आदि। इस विषय में History of the Dharmasastra (Vol I, section 64) द्रष्टव्य है।

भोज के ग्रन्थ

भोज ने योगसूत्रवृत्ति के आरम्भ में कहा है कि उन्होंने शब्दानुशासन, पातञ्जलवृत्ति और वैद्यक में राजमृगाङ्क नामक ग्रन्थों की रचना की है—

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृतः
तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ॥

यह शब्दानुशासन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ही है। इस व्याकरणग्रन्थ के विषय के विशद विचार 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' (भाग १) ग्रन्थ में द्रष्टव्य है (पृष्ठ ५५३–५६० द्वितीय संस्करण)। पातञ्जलवृत्ति योगसूत्र पर वृत्ति ही है, न कि पातञ्जलमहाभाष्य पर कोई वृत्ति, यह ज्ञातव्य है। योगसूत्र-वृत्ति का प्रकृत नाम 'राजमार्तण्डवृत्ति' है।

वैद्यक में 'राजमृगाङ्क' नामक ग्रन्थ भोज ने रचा था, यह यहाँ स्पष्टतया कहा गया है, पर यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। आफ्रेक्ट की बृहत्सूची में 'राज-मृगाङ्क' नाम के वाले ज्योतिष और वैद्यक—इन दो विषयों के नाम दिये हैं, यह ज्ञातव्य है। काणेमहोदय ने 'शब्दानामनुशासनम्...' श्लोक का उल्लेख करके भी राजमृगाङ्क ग्रन्थ के विषय में कुछ नहीं कहा (H Dh S Vol I pp 276)। राजमार्तण्डनामक ४१८ श्लोकमय वैद्यक ग्रन्थ भोजकृत है और यह प्रकाशित भी है। P T Srinivasa Ayyangar कृत Bhoj Raja ग्रन्थ (सप्तमाध्याय) में भोजग्रन्थों की चर्चा है, वहाँ वैद्यक-ग्रन्थों में 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ का नाम नहीं है, बल्कि ज्योतिषग्रन्थों में करणविषयक इस ग्रन्थ का नाम है। 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ की इस स्थिति को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि श्लोक के मूल पाठ 'व्यातन्वता वैद्यके' के स्थान पर 'ज्योतिषे' हो गया है ? पर ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि बाद में भोज 'वाक्चेतोवपुषां' कहते हैं।

भोज के निम्नोक्त ग्रन्थ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—सरस्वतीकण्ठाभरण (अलङ्कारशास्त्र), शृङ्गारप्रकाश (अलङ्कारशास्त्र), समराङ्गणसूत्रधार (शिल्प-रणादिपरक), युक्तिकल्पतरु (शिल्प-वास्तु-यन्त्रादिपरक), तत्त्व-प्रकाश (शैवमतसंबन्धी)। विश्वनाथ रेउकृत 'राजा भोज' ग्रन्थ में भोजकृत

ग्रन्थो की विशद चर्चा है (पृ० २३६–३१२)।[1]

महाराज भोज हमारे देश के आदर्श नरपति है। विद्या, विक्रम और वैभव के क्षेत्र में उनका कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। वे संस्कृत भाषा के पुनरुद्धारक के रूप में चिरकाल तक स्मृत होते रहेंगे।

भोज की दृष्टि में योगसूत्रकार

अहिपति (शेष या अनन्तनाग) के दूसरा रूप पतञ्जलि इस योगसूत्र के रचयिता है—ऐसा भोज कहते हैं (द्र० वृत्ति के प्रारम्भिक मङ्गलश्लोक तथा अन्तिम मङ्गलश्लोक)। वे यह भी कहना चाहते है कि एक पतञ्जलि ने ही योगसूत्र, व्याकरण महाभाष्य और आयुर्वेदीय ग्रन्थ (चरक का प्रतिसंस्कार, चरकवार्तिक या इस प्रकार का कोई ग्रन्थ)—इन तीनो की रचना की है। इस प्रकार के मत अन्यान्य अर्वाचीन आचार्यों ने भी कहा है।[2] इस विषय में "योगेन चित्तस्य पदेन वाचाम्…" इत्यादि एक श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है। (*व्यासभाष्यविवरण ग्रन्थान्त मङ्गलश्लोक ४*)।

इस छोटी सी भूमिका में हम इन मतो की अयुक्तता का विस्तृत प्रतिपादन नही कर सकते, अत: अपना मत संक्षेप से कह रहे है। पतञ्जलि शेषनाग के अवतार है और उन्होंने तीन विभिन्न कालो में योगसूत्र आदि तीन ग्रन्थो की रचना की है, यह अप्राचीन दृष्टि है। एक ही काल में इन तीन ग्रन्थों की रचना

---

१ सिंहासनद्वात्रिंशिका, रामायणचम्पू, कूर्मशतक आदि कुछ ग्रन्थो के रचयिता के रूप में भोज को माना जाता है, जो सर्वथा सांशयिक है।

२. "सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च वार्तिकानि तत:।
कृत्वा पतञ्जलिमुनि: प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम् ॥
(रामभद्रदीक्षितकृत पतञ्जलिचरित)।

"पातञ्जलमहाभाष्य-चरक-प्रतिसंस्कृतै:।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः ॥"
(चरकटीका चक्रपाणिकृत)।

हुई है यह भी न्यायत उपपन्न नहीं होता। पुराणों में भी इस मत की प्रतिध्वनि नहीं मिलती, यद्यपि इन पुराणों में योगी पतञ्जलि[१] का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद, योग या व्याकरण के किसी की प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रवाद का संकेत भी नहीं मिलता है। इन ग्रंथों में शब्दप्रयोग की दृष्टि में भी ऐसा कोई उदाहरण नहीं दृष्ट होता, जिससे पूर्वोक्त एकता की संभावना भी व्यक्त हो।

इस विषय में निम्नोक्त तथ्य पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। पातञ्जल महाभाष्य में 'अनेक' शब्द को एकवचनान्त ही स्वीकार किया गया है (नञ्सूत्रभाष्य द्र०), एकवचनान्तरूप से अनेक शब्द का प्रयोग भी महाभाष्य में मिलता है। योगसूत्र (४।५) में 'अनेकेषाम्' यह बहुवचनान्त प्रयोग है। चूर्णिकाकार (जो महाभाष्यकार है) के मत में अनेक शब्द का एकवचनान्त प्रयोग ही साधु है, यह मेधातिथि ने स्पष्टतः कहा है (मनु ५। १५९)। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभाष्यकार एवं योगसूत्रकार एक व्यक्ति नहीं हो सकते।

योगसूत्रकार पतञ्जलि को नागरूपी समझना एक भ्रान्त धारणा है। इसके लिये कोई हेतु होना चाहिए। हमारा कहना है कि कुछ सादृश्य से ऐसी भ्रान्ति हो गई है। वह सादृश्य इस प्रकार का है—

प्रसिद्ध नागनामों की सूची में 'पतञ्जलि' का नाम है (मत्स्यपुराण ६।३८-४१)[२] और हम समझते हैं कि इस नामसादृश्य के कारण शेषनागावतार पतञ्जलि के द्वारा योगसूत्र प्रणीत हुआ है—इत्यादि प्रवाद बाद में उत्पन्न हुआ है। हम यह भी समझते हैं कि पूर्वोक्त भ्रम के कारण ही योगसूत्र या योगसूत्र-

---

१ द्र० भागवत ६।१५।१४ (यहाँ सिद्धेशसूची में पतञ्जलि का नाम है)। सौरपुराण में पातञ्जलयोगशास्त्र को शैव कहा गया है—"पातञ्जलं योगशास्त्रं शैवं तच्छास्त्रमिष्यते" (४०।५५)। यह शैव सम्प्रदाय की दृष्टि में कहा गया है। इस मत पर बहुत कुछ वक्तव्य है, जो अन्यत्र विवृत होगा।

२ ये श्लोक लिङ्गपुराण (१।६३।३७-३९) तथा पद्मपुराण (५।६।७०-७३) में भी मिलते हैं (ईषत् पाठभेद सहित)।

कार का कोई सम्बन्ध 'अनन्त' से हो गया। इसका ही फल है कि हमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण में पातञ्जलशास्त्र की मूर्ति का निर्माण 'अनन्त' के रूप में बनाने का स्पष्ट निर्देश मिलता है (तृतीय खण्ड ७३।४८)। अनन्त भी एक नागनाम है, जिसको शेषनाग माना जाता है (विष्णुपुराण २।५।१३-१४, अग्निपुराण १२०।४)। इस नाग को कहीं-कहीं 'योगी', योगिवदासीन' आदि विशेषण भी दिये गये है और हम समझते है कि इस प्रकार के कुछ सादृश्यों से ही पूर्वोक्त प्रवाद बना होगा। 'नामसादृश्य से ऐतिहासिक-तथ्य-निर्धारण में भ्रम का होना' इस देश में एक साधारण-सी बात है, क्योकि स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि का बहुमान इस देश में कभी नही था। परम्परा में जो भी बात चल पडती थी, उसके विषय में पुन परीक्षण करना रूप कार्य पूर्वाचार्य प्राय करते नही थे, अत हमारा 'ऐतिह्यप्रमाण' कही-कही विपर्यस्त है। सहस्रो वर्षो के इतिहास में ऐसी भ्रान्तियो का हो जाना सुलभ भी है। इन भ्रान्तियो के उद्भव में अन्ध श्रद्धा का भी बहुत कुछ हाथ रहा है। विभिन्न सप्रदायो की गुरुपरम्परा की ऐतिहासिकता भी ऐसी ही विपर्यस्त है। Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ में शब्दसाम्य या अर्थैक्य के कारण व्यक्तियों की भ्रममूलक एकता (पौराणिकों के द्वारा दर्शित) के अनेक उदाहरण दिये गये है।

भोजकृत व्याख्यान के कुछ विशिष्ट स्थल[1]

(१) १।४१ सूत्रवृत्ति में भोज कहते हैं कि यद्यपि सूत्र में 'ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्य' रूप क्रम है, तथापि भूमिकाक्रम की दृष्टि में 'ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृ' ऐसा क्रम होना चाहिए। यह सगत दृष्टि है। समापत्ति के अभ्यास में भोजोक्त क्रम ही अपनाया जाता है।

---

१ यहाँ जो उदाहरण दिये जा रहे है, उनमें से कई अन्य व्याख्यानो में भी मिलते हैं, अत वे मत भोज द्वारा प्रथमत चिन्तित है—ऐसा सर्वत्र नही कहा जा सकता। भोज ने उन मतो को 'ये सगत हैं' ऐसा समझकर ही स्वीकार किया है, अत वे मत भोजसमत है—इतना ही हमारा तात्पर्य है।

(२) १।३३ वृत्ति में कहा गया है कि यद्यपि सूत्र में 'सुख-दु ख-पुण्य-अपुण्य' शब्द व्यवहृत हुए हैं, तथापि उन शब्दों का तात्पर्य 'सुखी, दु खी, पुण्यवान् और अपुण्यवान्' से ही है। यह दृष्टि उचित है, तथा सूत्रकार का हृदय भी ऐसा ही है, क्योंकि सूत्र में 'विषय' शब्द है, जिससे 'सुखविषय' 'दु खविषय' आदि शब्द लक्षित होते हैं। 'सुखविषय' से 'सुखी' रूप अर्थ लेना सर्वथा समीचीन है।

(३) २।२० सूत्र में 'द्रष्टा दृशिमात्र' कहा गया है। यहाँ मात्रग्रहण क्यों किया गया—इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—"मात्रग्रहण धर्मधर्मिनिरासार्थम्"। यह सर्वथा समीचीन दृष्टि है। क्योंकि साख्यसूत्र में कहा गया है—'निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा' (१।१४६)। पुरुष वस्तुत धर्मधर्मिदृष्टि का अतीत है, क्योंकि यह धर्मधर्मिभाव परिणामी वस्तु में ही सभव होता है और पुरुष अपरिणामी है—'सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभो पुरुषस्यापरिणामित्वात्' (४।१७)।

(४) २।४७ सूत्र में 'आनन्त्यसमापत्ति' को आसनसिद्धि के लिये सहायक माना गया है। (कोई कोई व्याख्याकार 'अनन्तसमापत्ति' पाठ करते हैं)। भोज ने 'आनन्त्यसमापत्ति' की जो व्याख्या की है, वह सर्वथा योगाभ्यासोपयोगी है। 'अनन्तसमापत्ति' का यही स्वरूप हो सकता है। पर जो अनन्त का अर्थ 'शेषनाग' करते हैं और 'उस नागपर समापत्ति के अभ्यास से आसनजय' करने की बात करते है, उनका मत स्पष्टतया असमीचीन है। स्वबाह्य किसी पदार्थ में मन को स्थिर करने से सामान्यतया स्थैर्य हो सकता है, पर वस्तुत उससे आसन की सिद्धि नही होती।

(५) योगसूत्र में 'सवेग' शब्द है (१ २१)। कोई इसका अर्थ 'वैराग्य' करते है, तो कोई 'उपायानुष्ठान में शीघ्रता' करते है। ये दो अर्थ सर्वथा समीचीन नही है। भोज ने इस शब्द का जो अर्थ दिया है (क्रिया का हेतुभूत दृढतर सस्कार), वही सगत प्रतीत होता है।

(६) वार्ता शब्द की व्युत्पत्ति बहुत ही विचित्र ज्ञात होती है। ३।३६ सूत्र पर भोज कहते है—"वार्ता गन्धसवित्। वृत्तिशब्देन तान्त्रिकया परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्तते गन्धविषय इति कृत्वा वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्ता

गन्धसंवित्" । भोज की यह व्याख्या कहाँ तक समीचीन है, इस पर विद्वान् विचार करें; गन्धसंवित् को वार्ता क्यों कहा जाता है, यह दुर्निरूपणीय ही है ।[1]

(७) १।३४ वृत्ति में 'प्रच्छर्दन-विधारण' की व्याख्या में भोज 'रेचक-पूरक-कुम्भकरूप प्राणायाम' का अभ्यास मानते है । (तदेव रेचकपूरककुम्भकस्त्रिविध प्राणायाम चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतया निबध्नाति) । यह असगत है, क्योंकि सूत्र में 'प्रच्छर्दनपूर्वक विधारण' (गत्यभाव) ही कहा गया है, यह पूर्ण प्राणायाम नही है । पूर्ण प्राणायाम का विवरण २।४९-५० सूत्र में है । विशेष विवरण के लिये कापिलाश्रमीय पातञ्जलयोगदर्शन द्रष्टव्य है ।

(८) ४।१३ वृत्ति में भोज कहते है कि सुख-दु ख-मोहरूप सत्त्व रज -तम के परिणाम से सभी भाव पदार्थ उत्पन्न हुए है, जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट उत्पन्न होता है । भोज का यह मत अशत अशास्त्रीय है । सभी बाह्य-आभ्यन्तर भाव-पदार्थ त्रिगुण के विकार है (सर्वमिद गुणाना सन्निवेशविशेषमात्रम्—व्यासभाष्य ३।१३), पर ये तीन गुण सुख-दु ख-मोह-रूप नही है । सुखादि गुण-विकार है, गुण का स्वरूप या स्वभाव नही है । तीनों गुणो के स्वभाव यथाक्रम प्रकाश-क्रिया-स्थिति ही है । सुख-दु ख-मोह को गुणलक्षण मानकर जिन विचारको ने साख्यपक्ष पर दोषारोपण किया है, वे साख्य में अज्ञ है । साख्यशास्त्र के मत में जगत् सुख-दुःख-मोह से अन्वित (निर्मित) नही, प्रत्युत जगत् प्रकाश-क्रिया-स्थिति-रूप मूल गुणत्रय का वैषम्यभूत है ।

(९) ४।२४ की वृत्ति में 'आत्मभावभावना' की जो व्याख्या की गई है (चित्त ही कर्ता-ज्ञाता-भोक्ता है, इस अभिमान की निवृत्ति), वह चिन्त्य ही है, क्योंकि इस दर्शन में कर्तृत्व तो त्रिगुण का ही है ('त्रिषु गुणेषु कर्तृषु' ...' इत्यादि पञ्चशिखवचन में यह मत स्पष्टतया कहा गया है, २।१८ योग-भाष्योद्धृत वचन द्रष्टव्य), अत चित्त कर्ता है—यह भ्रान्त ज्ञान नही है ।

---

१ वस्तुत यहाँ अकारान्त वार्त शब्द है (वर्ति + अण् = वार्त), अत वार्त का सबन्ध गन्ध से मानना सगत ही है । (वर्ति गन्धद्रव्यों से बनती है) । मेरे प्रकाशित होने वाले 'An Introduction to the Yogasutras' ग्रन्थ में यह विषय विशदीकृत हुआ है ।

(१०) ३।४९ सूत्रवृत्ति में भी 'गुणाना कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा विवेकख्याति' कहा गया है, यह भी चिन्त्य है, क्योंकि साख्याचार्यों के अनुसार तीन गुण ही मूलकर्ता हैं, चूँकि वे परिणामशील हैं।

(११) १।१७ सूत्रोक्त सास्मितसमाधि के व्याख्यान में भोज ने अस्मिता के स्वरूप के विषय में कहा है कि जिस अवस्था में अन्तर्मुखत्व-परिणाम के कारण चित्त के प्रकृतिलीन हो जाने से सत्तामात्र अवभासित होता है, वही अस्मिता है। यह दृष्टि सगत नही है क्योंकि प्रकृतिलीन चित्त का विषय नही रह सकता, व्यक्त चित्त का ही विषय रह सकता है। सास्मित समाधि चूँकि सालम्बन है, इसलिये अव्यक्तताप्राप्त चित्त का वह धर्म नही हो सकता (कापिलाश्रमीय पातञ्जलयोगदर्शन १।१७)।

(१२) १।२८ वृत्ति में भोज ने 'प्रणव' को 'सार्धत्रिमात्र' (पाठान्तर—त्रिमात्रिक) कहा है। यह दृष्टि स्मृति आदि अन्यान्य शास्त्रों में भी मिलती है—"अकारश्च तथेकारो मकारश्चार्धमात्रया " इत्यादि अग्निपुराणीय श्लोक इस प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है (३७२।२२-२५)।

(१३) साख्य को भोज 'शान्तब्रह्मवादी' कहते हैं—"शान्तब्रह्मवादिभि साख्यै" (४।२२,४।३३)। यह दृष्टि न्याय्य है, क्योंकि शान्तोपाधि चिद्रूप पुरुष ही साख्य का अन्तिम लक्ष्य है। कठ उप० में 'शान्त आत्मा' शब्द का प्रयोग भी इसी दृष्टि के अनुसार ही है—'तद यच्छेच्छान्त आत्मनि' (१।३।१३)। यह शान्त आत्मा ही चिद्रूप पुरुष है, वही 'परा गति' है—'सा काष्ठा सा परा गति (कठ० १।३।११)। यह चिद्रूप आत्मा सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नही, क्योंकि सार्वज्ञ्यादि चित्त के धर्म है और शान्त आत्मा अन्त करण-सपर्कशून्य है, अत निर्गुण आत्मा को सर्वज्ञ-सर्वशक्ति कहना अतत्त्वदर्शन है। हमारी दृष्टि में ऐसा समझने वालो को 'सकीर्ण ब्रह्मवादी' कहा जा सकता है। 'ब्रह्म' शब्द का व्यवहार भी साख्य-सप्रदाय में था (द्र० ४।२२ योगभाष्यधृत श्रुतिवाक्य, शान्तिपर्व २१८।१४ गत आसुरिमत)। षष्टितन्त्र के साख्यीय विषयो के विवरण में 'ब्रह्म' पद व्यवहृत हुआ है (अहिर्बुध्न्य सहिता १२।२०)। माठरवृत्ति में 'ब्रह्म उपदिदेश' वाक्य है (प्रथम कारिकावृत्ति)। 'ब्रह्म' शब्द से प्रकृति भी

कही जाती है, यह ज्ञातव्य है। सोपाधिक और निरुपाधिक पुरुष—ये दो सदैव ब्रह्मपदवाच्य होते हैं। अत विवक्षा को देखकर 'ब्रह्म' पद का अर्थ निश्चित करना चाहिए।

(१४) २।५० वृत्ति में भोज 'उद्घात' का लक्षण देते हैं—"उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायो शिरस्यभिहननम्"। उद्घात का इतना स्पष्ट विवरण विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यानो में नही मिलता। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि प्राचीन योगाचार्य देवल ने 'उद्घात' का यही लक्षण दिया था—"प्राणापानव्यानोदानसमानाना सकृदुद्गमन मूर्धानमाहत्य निवृत्तिश्चोद्घात" (कृत्यकल्पतरु का मोक्षकाण्ड, पृ० १७० में उद्धृत)। सभवत धर्मशास्त्रीय ग्रन्थो को लिखने के समय भोजराज ने इस लक्षण को देखा था।

(१५) भोज परमर्षि कपिल को जन्मसिद्धि के उदाहरण के रूप में मानते हैं (४।१)। साख्यकारिकोक्त भावो के वर्णन में गौडपाद कहते हैं—"भगवतः कपिलस्यापि आदिसर्गे उत्पद्यमानस्य चत्वारो भावा सहोत्पन्ना" (४३ कारिका)। युक्तिदीपिका में कहा गया है—"परमर्षि र्भगवान् सासिद्धिकधर्म-ज्ञानवैराग्यैश्वर्याविष्टपिण्डो विश्वाग्रज कपिलमुनि" (पृ० १७४)। वस्तुत मानुष गुरु के उपदेश के विना सहजात धर्मादि के बल से ही परमर्षि योगसिद्ध हुए थे—यह इतिहास-पुराण में प्रसिद्ध है, क्योकि उनके किसी मानुष गुरु का उल्लेख कही भी नही मिलता। साक्षात् हिरण्यगर्भ से उनकी ज्ञानप्राप्ति का उल्लेख भी योगसप्रदाय के आगम में है।

(१६) ३।२५ वृत्ति में 'विप्रकृष्टज्ञान' के उदाहरण में भोज ने 'मेरु के अपर-पार्श्ववर्ती रसायन'[1] आदि' का उल्लेख किया है। एक साधारण स्थल में इस प्रकार का एक असाधारण उदाहरण देने से यह ध्वनित होता है कि भोज को इस 'रसायन' के विषय में कोई सूचना ज्ञात थी। असुरो में रसायनसिद्धि थी,

---

१ इसका पाठान्तर 'रसातल' है, पर पातालरूप रसातल मेरुपर्वत के अपर-पार्श्ववर्ती नही है, वह पृथिव्यध स्थ ही है (लिङ्ग १।४५ अ०, विष्णु २।५ अ० आदि द्रष्टव्य)।

व्यासभाष्य (४।१) में स्पष्टत ऐसा कहा गया है। क्या भोज असुरों को मेरु के अपर पार्श्व में रहने वाले मनुष्यों की तरह ही समझकर ऐसा कह रहे हैं ?

(१७) वृत्ति में क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त भूमि के प्रसग में भोज कहते हैं कि 'क्षिप्त भूमि सर्दैव दैत्यदानवादि की है, मूढभूमि सर्दैव रक्ष पिशाचादि की है एव विक्षिप्त भूमि सदैव देवो की है'। इसमें सन्देह नहीं कि दैत्य-दानवादि के चित्त क्षिप्त आदि होते हैं, क्योंकि उनके ऐसे चित्तों का विवरण इतिहास-पुराण में प्रायेण मिलता है। पर भोज ने जो 'सर्दैव' पद का व्यवहार किया है, वह कहाँ तक सगत है, यह विचार्य है। शास्त्रों में उच्च साधनयुक्त देवो का भी उल्लेख है (३।२६ योगभाष्य द्र०)।

(१८) ४।३३ वृत्ति में भोज ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से अन्यवादियों के आत्म-विषयक मतों का अनुवादपूर्वक खण्डन किया है, यथा—वेदान्तवादियों के 'आत्मा का चिदानन्दमयत्व' मत का खण्डन। चिद्रूप आत्मा में आनन्द (बौद्धप्रत्ययविशेष) स्वत है, ऐसा प्रमाणित नहीं होता, महत्तत्त्वोपाधिक पुरुष को आनन्दमय या आनन्द (गौणरूप से) कहा जा सकता है। चिद्रूप पुरुष दुःखातीत है, इस दृष्टि से उनको यदि आनन्दस्वरूप कहा जाये तो कोई आपत्ति नहीं है। "चेतना के योग से आत्मा चेतन है'—इस न्यायमत का भी यहाँ खण्डन किया गया है। उसी प्रकार मीमासक आदि के मतो का भी खण्डन यहाँ किया गया है। काश्मीर शैवदर्शन की 'विमर्श'-परक दृष्टि का खण्डन साख्य-योगग्रन्थों में केवल यहीं मिलता है।

(१९) भोज न 'केचिद् हि चेतनामात्मनो धर्मम् इच्छन्ति' कहकर जिस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है, वह न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय है।

(२०) भोज ने 'शब्द स्फोटरूप है' इस मत का उल्लेख किया है (१।४२)। उन्होंने शब्द को स्फोटात्मा कहा है (३।१७)। यह वैयाकरणों की दृष्टि है।

(२१) ४।२२ की वृत्ति में 'दर्शनान्तरेष्वपि एवविध एव अविद्यास्वभाव-शास्त्रेऽधिक्रियते' कहा गया है। यह अद्वैतवेदान्तियों का प्रसिद्ध मत है।

(२२) विन्ध्यवासी का एक वाक्य (सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्) ४।२२ की वृत्ति में उद्धृत हुआ है, (यह मत २।१७ व्यासभाष्य में अत्यन्त स्पष्ट शब्द में

प्रतिपादित हुआ है)। विन्ध्यवासी का यह वाक्य अन्यत्र उद्धृत नही मिलता। क्या भोज के समय विन्ध्यवासी का ग्रन्थ प्रचलित था ?

योगसूत्रोक्त ईश्वर के विषय मे भोज की भ्रान्त दृष्टि

१।२४ वृत्ति में भोज कहते है—'प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेण अनुपपत्ते.'। यह एक अलीक आपत्ति है, सांख्य-योगज्ञान में अपरिपक्वमति ही ऐसी भ्रान्त धारणा रख सकते है। सांख्य-योगशास्त्रसम्मत दृष्टि यह है कि जहाँ भी द्रष्टृ-दृश्य-संयोग है, वह अनादि है ('अनादिरर्थकृत संयोग' यह पञ्चशिख-वाक्य द्र०), किसी पुरुष-विशेष के द्वारा कृत नहीं है।

व्यावहारिक आत्मभाव का चरम विश्लेषण करके योगी समझते है कि प्रत्येक जीव 'प्रकृति-पुरुष का समाहार' है, यह नही कि कभी द्रष्टा और दृश्य पृथक् थे और किसी काल में किसी हेतु से प्रकृति-पुरुष का संयोग होने के कारण महदात्मभाव (जीव) की उत्पत्ति हुई। यह समाहार अनादिमुक्तचित्तवान् ईश्वर द्वारा कृत नही हो सकता, क्योंकि ईश्वर भी 'पुरुष-प्रकृति-संयोग' का ही एक फल है। ईश्वरेच्छा यदि अन्य पुरुषों को बद्ध करेगी, तो ईश्वर को भी ईश्वर (ईश्वरता अन्त करण का धर्म है, अन्त करण त्रैगुणिक है, जो पुरुष-संयोग-युक्त प्रकृति का एक परिच्छिन्न परिणाम है) करने के लिये किसी अन्य ईश्वर की इच्छा चाहिये, और इस प्रकार अनवस्था होगी।

यह भी विचारना चाहिये कि केवल द्रष्टा जब प्रकृति-संयोग-हीन रहता है, तब उस द्रष्टा पर किसी की इच्छा (इच्छा प्राकृत अन्त करण का विकार है) कोई कार्य नहीं कर सकती, क्योंकि स्वरूपत. निर्गुण द्रष्टा देशकालातीत ही है और कालातीत द्रष्टा को कालव्यापिनी इच्छा किसी के साथ संयुक्त नहीं करा सकती।

सांख्ययोग का कहना है कि प्रजापति का सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कार-युक्त अन्तःकरण जब प्राकृतिक नियम से व्यक्त होता है, तब एक ब्रह्माण्ड व्यक्त होता है, जिस ब्रह्माण्ड को व्यवहार्य रूप में पाकर असिद्ध जीव अपने संस्कारानुसार पुरुषार्थाचरण करते रहते है। यह सांख्ययोगदृष्टि है। जीव के व्यक्तदेह-धारणरूप कर्म के साथ प्रजापति (पूर्वसिद्ध हिरण्यगर्भ नामक ईश्वर) द्वारा

अभिव्यक्त ब्रह्माण्ड के मूलतः योग रहने के कारण अज्ञ दार्शनिक, 'ईश्वर की इच्छा से प्रकृति-पुरुष-संयोग' की बात करते हैं, जो किसी भी अनुभव, परीक्षण या युक्ति से सिद्ध नहीं होता। 'संस्कारादि के अनुसार जीव का कर्म' तथा 'कर्मानुसार फल की प्राप्ति' इन दोनों पर भी साक्षात् रूप से प्रजापति ईश्वर का कोई हाथ नहीं है, यह भी सांख्य-योग का मत है। यह सृष्टिकर्ता ईश्वर योगसूत्रोक्त ईश्वर से निम्न कोटि का है।

मुक्त ईश्वर (योगदर्शनोक्त) या प्रजापति (=सगुण-ब्रह्म)-रूप ईश्वर के भक्तिपूर्वक प्रणिधान करने से चित्त में विवेकज्ञान की अभिव्यक्ति होती है, इस दृष्टि से ऐश्वर्यशाली पुरुष का प्रसंग योगशास्त्र में किया जाता है। ईश्वर चाहे किसी भी प्रकार का हो वह कोई 'तत्त्व' नहीं होता। सांख्य में 'तत्त्व' एक पारिभाषिक शब्द है। चरम हेतु (पुरुष, द्रष्टा) और चरम उपादान (प्रकृति) ये दो तत्त्व हैं। पुरुषसंयोगहेतुक प्रकृतिजन्य महत् आदि भी उपादान-दृष्टि से तत्त्व हैं। जगत्-सर्जक ईश्वर न विशुद्ध द्रष्टा है और न ही विशुद्ध दृश्य है, अतः वे कोई 'तत्त्व' नहीं हैं। ब्रह्माण्ड, जीव, भिन्न-भिन्न देव आदि भी कोई तत्त्व नहीं होते। अन्य अर्थ में तत्त्व शब्द का प्रयोग करके ईश्वर को भी एक तत्त्व माना जा सकता है, पर वह गौण दृष्टि होगी।

१।२५ वृत्ति में ईश्वर की 'कारुणिकता' के विषय पर भोज ने जो कहा है, वह भी उनकी अज्ञता का ज्ञापक है। वे कहते हैं कि यद्यपि ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि करुणा से ही वे प्रकृति-पुरुष का संयोग-वियोग-कार्य में रत होते हैं। पहले ही यह जानना चाहिये कि यह मत न सूत्र में है और न भाष्य में। पुरुष-प्रकृति के संयोग-वियोग में अनादिमुक्त या सृष्टिकर्ता ईश्वर का कोई हाथ नहीं हो सकता, यह पहले दिखाया गया है।

ईश्वर के कारुण्य की जो बात कही गयी है, वह भी भ्रान्त है, क्योंकि इस दुःखमय संसार की करुणा से इच्छापूर्वक सृष्टि करने की प्रवृत्ति किसी सर्वज्ञ पुरुष की नहीं हो सकती। सृष्टिकर्ता प्रजापति मुक्त पुरुष नहीं हैं, बल्कि अविद्यायुक्त ऐश्वर्यशाली पुरुष हैं और यही कारण है कि शास्त्रों में उनका 'परार्ध काल के अन्त में विवेकज्ञानपूर्वक मुक्तिलाभ' की बात कही गयी है।

उनका सृष्टिसंकल्प (सर्वभावाधिष्ठातृत्वादिगुणयुक्त) ऐश्वर्य-संस्कार से प्राकृतिक नियम के अनुसार ही व्यक्त होता है, जिस प्रकार हम लोगों के कर्म से संकल्प व्यक्त होते हैं। प्राणियों पर कृपा करके वे इस ब्रह्माण्ड को व्यक्त नहीं करते, गुण-स्वभाव से ही उनका अन्तःकरण व्यक्त होता है, जिससे ब्रह्माण्ड की ग्राह्यता व्यक्त होती है।

उनके ऐश्वर्य द्वारा व्यक्त इस ब्रह्माण्ड को पाकर जीव पुरुषार्थ की सिद्धि करते रहते हैं (अन्यथा जीव मोहवत् स्थिति में रुद्धकरण अवस्था में ही रहते हैं), और विवेकाभ्यास से कैवल्य प्राप्त करने का सुयोग पाते हैं—इस दृष्टि से ही प्रजापति 'कारुणिक' हैं, पर यह कहना भ्रान्त है कि प्रजापति इस इच्छा से ही सृष्टि करते हैं कि जीव मुक्त हो जायें। यदि प्रजापति की ऐसी इच्छा होती तो उस सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कारवती इच्छा से सब जीव प्रभावित होते और अवश होकर मोक्षसाधन ही करते रहते, पर अभिव्यक्त प्राणियों की पुरुषार्थाचरण-क्रिया को देखने से ज्ञात होता है कि प्रजापति की कोई ऐसी इच्छा जीवों पर नहीं है।

वस्तुतः जीव के किसी भी कर्म में प्रजापति का या मुक्त ईश्वर का कोई भी साक्षात् अभिध्यान नहीं है, यद्यपि ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति का चरममूल प्रजापति–ईश्वर ही है। इस प्रजापति के भूतादिनामक अहंकार से तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, यह सांख्यमत इस प्रसंग में आलोच्य है।

जगत् के सृष्टिकर्ता के रूप में प्रजापति को मानने के लिये जो युक्ति है वह यह है—बाह्य शब्दादि के मूल उपादान के रूप में कालव्यापिनी क्रिया से युक्त वस्तु को मानने के लिये हम न्यायतः बाध्य होते हैं। कालव्यापिनी क्रिया अन्तःकरण की ही हो सकती है, अतः जगत् के साक्षात् मूल में पुरुषविशेष का अन्तःकरण है, यह अनुमान से सिद्ध होता है। यह अन्तःकरण जिनका है, वे ही प्रजापति हिरण्यगर्भ हैं, जिनके नारायण आदि अन्य नाम सांख्य-योगशास्त्र में हैं—'सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः। विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः" (शान्तिपर्व ३०२।१९)। सृष्टिकर्ता हिरण्यगर्भ को लक्ष्य कर 'महान्' पद योगशास्त्र में प्रयुक्त होता है—"महानिति योगेषु पठ्यते" (देवी

पृ० ३७।४७)। महत्तत्त्वाधिष्ठित पुरुष ही सृष्टिकर्ता होते हैं, इस दृष्टि से हैं ऐसा कहा गया है।

योगसूत्रोक्त मुक्त ईश्वर ब्रह्माण्डसर्जक प्रजापति नहीं है, वे सर्वथा जगद्व्यापारशून्य है, यह इस प्रसग में ज्ञातव्य है। ३।४५ व्यासभाष्य में सृष्टिकर्ता 'पूर्वसिद्ध' प्रजापति का निर्देश है। कोई भी जीव सास्मित समाधि के बल पर सर्वभावाधिष्ठातृत्व आदि सस्कारों से युक्त हो कर जगत का सर्जक बन ही सकता है। यह सर्जन अविद्यायुक्त पुरुष का कार्य है, मुक्त पुरुष का नहीं, यह योगविद्या का मत है। ईश्वरता अन्त करणधर्म है, तथा योगाभ्यास से जगत्‌सर्जन का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

योगसूत्र एव भोजवृत्ति

योगसूत्रसख्या—भोजवृत्ति में जितने सूत्र स्वीकृत हुए हैं, वे सभी व्याख्याकारों के द्वारा अनुमोदित है। निम्नोक्त स्थलों में कुछ मतभेद हैं, यथा—

(१) 'न चैकचित्ततन्त्रम्' इत्यादि वाक्य (४।१६) भोज के अनुसार सूत्र नहीं है। वे इस वाक्य को भाष्य का अग समझते हैं। विज्ञानभिक्षु इस वचन को सूत्र ही समझते है।

(२) ३।२० सूत्र (न च तत्) भोजसमत हैं, पर भिक्षु के मत में यह भाष्य का ही अङ्ग है, पृथक् सूत्र नहीं। वाचस्पति आदि इसे सूत्र समझते हैं, यह ज्ञातव्य है।

(३) किसी-किसी सस्करण में ३।२१ सूत्र के बाद 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम्' रूप एक सूत्र भोजसमत माना गया है, पर यह सपादकीय प्रमाद है। भोज की व्याख्या (३।२१ सूत्र की) से यह कथमपि प्रतीत नहीं होता कि वे 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानम्' रूप एक पृथक् सूत्र की व्याख्या कर रहे हैं, क्योंकि यदि वे इस वचन को कोई सूत्र समझते तो पातनिका के रूप में कुछ लिखते

सूत्र-पदच्छेद में मतभेद—सूत्रपाठ के समान रहने पर भी सूत्रपदच्छेद एक स्थान पर मतभेद लक्षित होता है, यथा—

१।२९ सूत्र में 'प्रत्यक्चेतनाधिगम' में भोज 'चेतना-अधिगम' ऐसा

है, जब कि वाचस्पति आदि व्याख्याकार 'चेतन-अधिगम' ऐसा कहते हैं। चेतना=दृक्शक्ति. (पुरुष), यह भी भोज का मत है। चेतना शब्द कभी-कभी ज्ञानवृत्ति का भी वाचक होता है, अतः चेतना शब्द के अर्थनिर्धारण में विवक्षा पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। 'चित्तचेष्टा' अर्थ में भी चेतना का प्रयोग है।

१।३४ सूत्रगत 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम्' में 'विधारणा' भोजानुमत शब्द है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। व्यासभाष्य के अनुसार 'विधारण' पाठ है। अन्यान्य व्याख्यायें भी भाष्यानुसारी हैं।

सूत्रपाठभेद.—भोजव्याख्यात सूत्रों के पाठ कहीं-कहीं अन्य व्याख्यानों से भिन्न दृष्ट होते हैं। अधिकांश पाठभेद अर्थभेदकारक नहीं है। यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि कुछ पाठभेद लिपिकर-प्रमाद से उत्पन्न हो गये हैं तथा कुछ पाठभेद भोज-व्यवहृत शब्दों को देख कर भोजवृत्ति के विभिन्न सम्पादकों द्वारा कल्पित किये गये हैं। यहां कुछ पाठ भेदों पर विचार किया जा रहा है—

(१) १।५ सूत्र का पाठ (अनेक संस्करणों में) 'क्लिष्टाक्लिष्टा' ही है, जो मूल पाठ प्रतीत होता है, पर भोज-व्याख्यान को देखकर (वृत्तय कीदृश्य ? क्लिष्टा अक्लिष्टा) इस सूत्र में भी 'क्लिष्टा अक्लिष्टा'—ऐसे असमस्त पाठ की कल्पना की गई है। हमारी दृष्टि में सूत्रस्थ 'क्लिष्टाक्लिष्टा' पाठ को ही भोज ने विभक्त करके लिखा है, पाठभेद होने पर भी अर्थभेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता।

(२) १।८ सूत्र में 'प्रतिष्ठम्' के स्थान पर 'प्रतिष्ठितम्' पाठ कुछ संस्करणों में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्ति में भोजव्यवहृत 'प्रतिष्ठितत्वात्' शब्द को देखकर ही सूत्र में भी 'प्रतिष्ठित' पाठ की कल्पना की गई है। प्राचीनतर व्याख्यान के अनुसार 'प्रतिष्ठम्' पाठ ही सिद्ध होता है।

(३) १।१४ सूत्र में 'आदर' शब्द भी किसी-किसी संस्करण में मिलता है। *निश्चित ही सूत्रस्थ 'सत्कार' शब्द को लक्ष्यकर 'आदर' शब्द का प्रयोग भोज* ने किया था, पर बाद में भ्रम से वह एक पाठभेद के रूप में माना गया। वाच-

स्पति और विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यान से ज्ञात होता है कि सूत्र में 'आदर' शब्द नहीं है।

(४) १।१८ सूत्र में किसी-किसी संस्करण में 'संस्कारशेष' के स्थान पर 'संस्कारविशेष' मुद्रित हुआ है। यह सर्वथा भ्रष्ट पाठ ही है, क्योंकि असंप्रज्ञात समाधि का जो विवरण भिन्न-भिन्न स्थलों में मिलता है, उससे वह 'संस्कारशेष' है यही सिद्ध होता है। निर्बीज समाधि 'संस्कारविशेष' है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

(५) १।२५ सूत्र की वृत्ति के कुछ संस्करणों में 'सर्वज्ञबीज' और कुछों में 'सार्वज्ञ्यबीज' पाठ मिलता है। वृत्ति में 'सर्वज्ञत्वस्य यद् बीजम्' कहा है, इसमें 'सार्वज्ञ्य' पाठ ही भोजसम्मत है, यह ज्ञात होता है। वाचस्पति एवं भिक्षु आदि 'सर्वज्ञ' पाठ को मानते हैं। सर्वज्ञबीज=सर्वज्ञ का कारण या अनुमापक लिङ्ग। कोई-कोई व्याख्याकार 'सर्वज्ञ [=हिरण्यगर्भादि] का बीज' ऐसा अर्थ भी करते हैं (द्र० योगरहस्य टीका)।

(६) १।२६ सूत्र का 'कालेनानवच्छेदात्' ही भाष्यादिसम्मत पाठ है। इसके स्थान पर 'कालानवच्छेदात्' पाठ वृत्ति में क्वचित् मिलता है। यह लिपिकर या संपादक के द्वारा कल्पित पाठ है (असमस्त पद के स्थान पर समस्त पद की कल्पना यहाँ की गई है)।

(७) १।४२ सूत्र गत 'समापत्ति' शब्द किसी-किसी संस्करण में पठित नहीं हुआ है। *संभवतः इस मत के अनुयायी यह समझते हैं कि १।४१ सूत्र से समापत्ति* की अनुवृत्ति हो ही जायेगी, अतः १।४२ सूत्र में समापत्ति शब्द का ग्रहण व्यर्थ है। व्याख्याकारों की बहुसम्मति 'समापत्ति'—युक्त सूत्र को ही मानती है।

(८) १।४९ सूत्र गत 'श्रुत' के स्थान पर वृत्ति के एक-दो संस्करणों में 'श्रौत' पाठ मुद्रित हुआ है। 'श्रुति से जात या संबद्ध'=श्रौत—यह 'श्रौत' पाठ के अनुयायी समझते हैं। 'श्रुत'-पाठवादी समझते हैं कि श्रुत (=आगम) से जात प्रज्ञा=श्रुतप्रज्ञा। 'श्रुता' यह प्रज्ञा का विशेषण है, ऐसा भी कहा जा सकता है, तब सूत्र में अनुमान के स्थान पर अनुमेय शब्द का पाठ करना अधिक संगत होगा, जैसा कि किसी-किसी व्याख्याकार ने दिखाया भी है।

इसी सूत्र के 'अन्यविषया' के स्थान पर 'सामान्यविषया' पाठ कदाचित् मिलता है। वस्तुत मूल पाठ 'अन्यविषया' ही है, वृत्ति में प्रयुक्त 'सामान्यविषया' शब्द के कारण अनवधान से सूत्र में भी 'सामान्यविषया' शब्द पठित हो गया है।

(९) १।५० सूत्र में 'प्रतिबन्धी' के स्थान पर 'विरोधी' पाठ कदाचित् मिलता है। अर्थस्पष्टता के लिये यह पाठान्तर बाद में कल्पित हुआ होगा। सभी प्राचीन व्याख्याकार 'प्रतिबन्धी' पाठ को ही मानते हैं।

(१०) २।३ सूत्र का 'पञ्च' पाठ वृत्ति का अनुसारी नहीं है क्योंकि 'के क्लेशा' यह प्रश्न पातनिका में है। भाष्य में 'के क्लेशा कियन्तो वा' ऐसी पातनिका है, अत उसके अनुसार सूत्रपाठ में 'पञ्च' शब्द था, यह निश्चित है[1]।

(११) २।९ सूत्र में 'तन्वनुबन्धोऽभिनिवेश' पाठ भोजवृत्ति के एक दो सस्करणों में मिलता है, यद्यपि अन्य व्याख्यानो के अनुसार 'तथारूढोऽभिनिवेश.' पाठ ही सिद्ध होता है। अभिनिवेश क्लेश की व्याख्या में 'शरीर से मेरा वियोग न हो' ऐसा कहा जाता है, अत 'तन्वनुबन्ध' रूप पाठान्तर ('तथारूढ' के स्थान पर) उत्पन्न हो गया है—ऐसा प्रतीत होता है। 'तथारूढ' शब्द की अपेक्षा यह शब्द अधिक स्पष्ट है, यह भी इस पाठान्तर का एक कारण है। हम समझते हैं कि भोज ने 'तथारूढ' की व्याख्या ही की है (प्रतीक न देकर तथा 'अन्वहमनुबन्धरूप' ऐसा कहकर) जिसमें इस नूतन पाठ की कल्पना बाद में की गयी। मूल पाठ 'तथारूढ' ही है।

(१२) २।२५ सूत्र में 'तदभावे' पाठ सस्करणविशेष में मुद्रित मिलता है। 'अविद्या के अभाव होने के कारण सयोग का अभाव होना है' इस दृष्टि से 'तदभाव' शब्द से पञ्चमी (हेतु में पञ्चमी) विभक्ति स्वरसत. प्राप्त है। सभी प्राचीन व्याख्यान के अनुसार 'तदभावात्' पाठ ही संगत है। भोजवृत्ति में

---

१ सख्येयों को कहने के बाद सख्या का कथन क्यों किया जाता है, इस पर डल्हण कहते हैं—"अत्र संख्येयद्वारेणैव सख्यालाभे सति द्वात्रिंशत्-सख्योपादान नियमार्थं कृतम्" (सुश्रुत, उत्तर तन्त्र ६५।१)।

'तस्मिन् सति योऽयमभाव' ऐसा कहा गया है, इसके कारण ही 'तदभावे' पाठ बाद में कल्पित हुई है।

(१३) २।२७ सूत्र में 'प्रान्तभूमौ' पाठ भोजवृत्ति के अनुसार स्पष्टतया सिद्ध होता है। व्यासभाष्य के अनुसार 'प्रान्तभूमि' पाठ ही है। प्रज्ञा किसी भूमि पर आश्रित अवश्य रहेगी, स्वत स्थिर नही रह सकती—इस चिन्ता से सभवत यह नया पाठ कल्पित किया गया था। 'प्रान्तभूमि प्रज्ञा' पाठ भी सर्वथा निर्दोष है।

(१४) २।४१ सूत्र में भोजानुसार 'एकाग्रता' पाठ ही सगत ज्ञात होता है, क्योंकि वृत्ति में एकाग्रता शब्द ही व्याख्यात हुआ है (इसका पाठान्तर नही दृष्ट होता)। अन्यान्य व्याख्याकार 'ऐकाग्र्य' पाठ मानते हैं।

(१५) २।४७ सूत्र में 'आनन्त्य' शब्द भोजसमत है, जब कि भाष्य तथा अन्य व्याख्यानो में 'अनन्त' शब्द स्वीकृत हुआ है। सम्भवत 'अनन्तभाव' के प्रदर्शनार्थ 'आनन्त्य' पाठ बाद में कल्पित किया गया होगा।

(१६) ३।१२ सूत्र में 'तत पुन' शब्द वृत्ति के सभी सस्करणो में दृष्ट नही होता। हमारी दृष्टि में यदि सूत्र में 'तत पुन' पढा जाये तो अर्थ में अधिक पुष्कलता आती है, क्योंकि 'तत' का अर्थ होगा—'समाधि-परिणाम में', अत ३।१२ सूत्र समाधिपरिणामान्तर्गत एकाग्रतापरिणाम से ही सम्बद्ध होगा। यह इष्ट है। कोई-कोई व्याख्याकार 'तत पुन' अश को भाष्यवाक्य समझते हैं। भोज इस अश को सूत्रान्तर्गत नही समझते थे, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

(१७) ३।२१ सूत्र में भोजवृत्ति में 'असयोग' पद पठित हुआ है, जब कि अन्य व्याख्या में 'असप्रयोग' शब्द है। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज ने यहाँ वृत्ति में 'असप्रयोग' के अर्थ में ही 'असयोग' शब्द का प्रयोग किया है, 'असप्रयोग' को प्रतीक रूप से उन्होंने नही पढा। 'असप्रयोग' शब्द का प्रयोग सभी प्राचीनतर ग्रन्थो में स्वीकृत हुआ है, अत ऐसी कल्पना सगत जँचती है।

(१८) ३।३५ सूत्र में 'प्रत्ययाविशेषो भोग' और 'प्रत्ययाविशेषाद् भोग'—ऐसे दो पाठों की सम्भावना प्रतीत होती है। इसी प्रकार 'परार्थान् स्वार्थ-

सयमात्' और 'परार्थान्यस्वार्थसयमात्' पाठद्वय की सभावना है। अर्थ की दृष्टि से 'प्रत्ययाविशेषो भोग' अधिक सगत है, क्योकि प्रत्ययाविशेष से भोग उत्पन्न नही होता, बल्कि प्रत्ययाविशेष ही भोग है। (द्र० इष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणं भोग —व्यासभाष्य २।१९)। 'परार्थान्य ' पाठ व्याख्याकारो के व्याख्यान-शब्दो को देखकर कल्पित किया गया है, वस्तुत 'परार्थात्' पाठ ही सौत्र है।

(१९) ३।४० सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'प्रज्वलनम्' पाठ है—ऐसा वृत्तिव्याख्या से कथचित् ज्ञात होता है, यद्यपि अन्यान्य व्याख्याकार 'ज्वलनम्' पाठ के पक्षपाती है। सूत्र में 'ज्वलन' पाठ के रहने पर भी व्याख्यान में 'प्रज्वलन' शब्द का व्यवहार किया ही जा सकता है (यदि वह प्रतीक न हो), अत 'ज्वलनम्' पाठ भी भोज-समत हो सकता है।

(२०) ३।५१ सूत्र में भोज के अनुसार 'स्वाम्युपनिमन्त्रणे' पाठ सिद्ध होता है, जब कि भाष्यादि-व्याख्यानो में 'स्थान्युपनिमन्त्रणे' पाठ है। हमारी दृष्टि में सूत्र का प्राचीन पाठ 'स्थान्युपनिमन्त्रणे' है। टीकाकारो ने 'स्थान' शब्द की उचित व्याख्या भी की है। स्थान शब्द के योगसूत्रसम्मत अर्थ में पुराणादि में प्रयोग भी मिलता है। भोजवृत्तिगत 'स्वामिन' पाठ भ्रष्ट है, (वस्तुत वह 'स्थानिन' होना चाहिये)—ऐसा भी सोचा जा सकता है। भोज ने 'स्वामिन' पद की कोई व्याख्या भी नही की, अत यह सपादक या लिपिकर का प्रमाद है, ऐसा भी माना जा सकता है।

(२१) ३।५२ सूत्र में 'विवेकज्ञानम्' पाठ भोजवृत्ति के किसी-किसी सस्करण में है, पर यह अशुद्ध है, प्रकृत पाठ 'विवेकज' ही होगा।

(२२) ४।१५ में भोजवृत्ति के अनुसार 'विविक्त' पाठ है। भाष्यादि में 'विभक्त' पाठ है। अर्थदृष्टि में दोनो ही सगत है।

(२३) ४।२४ 'अपरिणामात्' यह पाठ मुद्रित मिलता है। यहाँ ग्रन्थ-स्वारस्य के अनुसार 'अपरिणामित्वात्' पाठ सगततर है और भोज भी इस पाठ के ही अनुयायी है, ऐसा माना जा सकता है।

(२४) ४।२४ भोजवृत्ति के अनुसार 'निवृत्ति' पाठ ही है, जब कि अन्य

व्याख्या में 'विनिवृत्ति' पाठ माना गया है। यह अकिञ्चित्कर पाठभेद है। सूत्र में 'विनिवृत्ति' रहने पर भी व्याख्या में 'निवृत्ति' शब्द प्रयुक्त हो सकता है, और इस प्रकार 'विनिवृत्ति' भी भोजसम्मत सूत्रपाठ हो सकता है।

(२५) ४।३३ सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'चितिशक्तेः' पाठ ही है, ऐसा स्पष्टतया ज्ञात होता है। इस सूत्र का जो पाठ भोज का नाम लेकर भास्करराय ने उद्धृत किया है, उसमें भी 'चितिशक्तेः' पाठ ही है (ललितासहस्रनामभाष्य, पृ० १३२)। पञ्चम्यन्त (चितिशक्तेः) पाठ में भी अर्थ की संगति रहती है। कुछ अन्य व्याख्याकार भी 'चितिशक्तेः' पाठ को मानते हैं। प्रथमान्त पाठ में (जो भाष्यादि-समर्थित है) 'स्वरूपप्रतिष्ठा' शब्द चितिशक्ति का विशेषण है, जिसमें योगशास्त्रीय दृष्टि ही समर्थित होती है।

भोजवृत्ति के अनेक संस्करण प्रचलित हैं। अंग्रेजी में इसका अनुवाद राजेन्द्रलाल मित्र ने किया था, जो Bib Indica में १८८३ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

योगसूत्र की कई टीकायें सुप्रचलित हैं, यथा—

(१) भावागणेशकृत प्रदीपिका,
(२-३) नागेशकृत दो वृत्तियाँ (बृहती और लघ्वी),
(४-५) नारायणतीर्थ-कृत चन्द्रिका या योगचन्द्रिका तथा अर्थबोधिनी
(६) रामानन्दयति-कृत मणिप्रभा,
(७) अनन्तदेव-कृत चन्द्रिका,
(८) सदाशिवेन्द्र-कृत योगसुधाकर,
(९) बलदेवमिश्र-कृत योगप्रदीपिका।

आधुनिक काल में भी कई टीकायें लिखी गई हैं, यथा (१०) हरिप्रसाद-कृत वैदिकवृत्ति, (११) ब्रह्मर्षि सत्यदेव कृत योगरहस्य, (१२) स्वामी हरिहरानन्द-आरण्यकृत श्लोकबद्ध टीका योगकारिका (१३) ज्ञानानन्दकृतभाष्य तथा (१४) कृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण-कृत भाष्य। इन सभी टीकाओं से भोजवृत्ति प्राचीन है। व्यासभाष्य की वाचस्पति-कृत टीका भोज से प्राचीन है

तथा अधुना प्रकाशित शंकराचार्य कृत व्यासभाष्यटीका (विवरण) भोजवृत्ति से प्राचीन हो सकती हैं। आजकल रामानन्दयति-कृत टीका तथा भोजवृत्ति ही पठन-पाठन में सर्वत्र प्रचलित है।

भोजवृत्ति का हिन्दी अनुवाद डा० अमलधारी सिंह जी ने किया है। वृत्तिगत पदों का जैसा स्पष्ट अनुवाद उन्होंने किया है, वह छात्रों के लिये सर्वथा उपयोगी है। इस अनुवाद के लिए आदरणीय सिंहजी धन्यवादार्ह हैं।

विजयादशमी
११-१०-१९७८

रामशंकर भट्टाचार्य

विषय-सूची

योगसूत्राणि

प्रथमः समाधिपादः

तृतीयो विभूतिपादः

सूत्रम् | पृष्ठम्

सूत्रम् पृष्ठम्

चतुर्थः कैवल्यपाद

■

पातञ्जलयोगसूत्रम्

धारेश्वरभोजदेवविरचितराजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

हिन्दीव्याख्यया समन्वितञ्च

देहार्द्धयोग शिवयो स श्रेयासि तनोतु व ।
दुष्प्रापमपि यत्स्मृत्या जन कैवल्यमश्नुते ॥१॥

त्रिविधान्यपि दु खानि यदनुस्मरणान्नृणाम् ।
प्रयान्ति सद्यो विलयं त स्तुम शिवमव्ययम् ॥२॥

पतञ्जलिमुनेरुक्ति काप्यपूर्वा जयत्यसौ ।
पु-प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया[1] ॥३॥

जयन्ति वाच फणिभर्तुरान्तर-
स्फुरत्तमस्तोमनिशाकरत्विष ।
विभाव्यमाना सतत मनासि या
सतां मदानन्दमयानि कुर्वते ॥४॥

शब्दानामनुशासन विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्ति राजमृगाङ्कसज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।
वाक्-चेतो-वपुषा मल फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वला[2] ॥५॥

दुर्बोध यदतीव तद्विजहति[3] स्पष्टार्थमित्युक्तिभि
स्पष्टार्थेष्वतिविस्तृ ति विदधति व्यर्थै समासादिकै ।
अस्थानेऽनुपयोगिभिश्च बहुभिर्जल्पैर्भ्रमं तन्वते
श्रोतृणामिति वस्तुविप्लवकृत सर्वेऽपि टीकाकृत ॥६॥

---

१ यया (पा०)। २. इत्येतेकग्रन्थाना स्वरूप भूमिकाया व्याख्यातम्।
३ तद्धि जहति ।

उत्सृज्य विस्तरमुदस्य विकल्पजाल
फल्गुप्रकाशमवधार्य्य च सम्यगर्थान् ।
सन्त पतञ्जलिमते विवृतिर्मयेय-
मातन्यते बुधजनप्रतिबोधहेतु ।।७।।

अथ योगानुशासनम् ।। १ ।।

अर्थ—योगानुशासनम् = (आचार्य—शिष्यपरम्परा से प्राप्त) योग नामक (अनादि) शास्त्र का व्याख्यान । अथ = अब (यहाँ से) प्रारम्भ होता है ।

विशेष—प्रस्तुत सूत्र में 'अथ' शब्द का प्रयोग 'अधिकार' अर्थ में किया गया है, जिससे शास्त्र के आरम्भ की सूचना मिलती है अर्थात् एक विशिष्ट प्रकार के शास्त्र की व्याख्या यहां से आरम्भ होती है ।

मीमासा में ६ प्रकार के सूत्रों को बतलाया गया है—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ।।

श्लोकवार्तिक १-२२-२४

अत प्रस्तुत प्रकरण में 'अथ' शब्द अधिकारार्थ, प्रस्तावार्थ या आरम्भार्थ को अभिव्यक्त करता है । यह शब्द मङ्गलवाचक भी है । क्योंकि—

"ओकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मण पुरा ।
कण्ठ भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ"
'अर्थान्तरप्रयुक्त एव ह्यथशब्द श्रुत्या मङ्गलप्रयोजनो भवति ।

शाङ्करभाष्य १।१।१

तथा शास्त्र का प्रारम्भ मङ्गल शब्द से होना भी चाहिये । क्योंकि

"मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषकाणि चाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथा स्युरिति"

व्याकरण महाभाष्य १।१।१ आह्निकम्

अत सूत्र में प्रयुक्त 'अथ' शब्द मङ्गलार्थक भी है। साथ ही यह शब्द पूर्णता का भी द्योतक है—

'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ'

अमरकोष ३।५ प० २-२९

अत विषय-प्रयोजन-सम्बन्ध-अधिकारी रूप अनुबन्धचतुष्टय निरूपणपूर्वक लक्षण-भेद-साधन-फल इत्यादि सहित समस्त अर्थों का सम्यक् बोध कराने वाले योगशास्त्र का प्रारम्भ यहाँ से होता है।

अनुशासन शब्द का अर्थ है पश्चात् शासन अर्थात् उपदिष्ट सिद्धान्तो का प्रतिपादन, पुनर्वचन। इससे योगविद्या की अनादिता सूचित होती है अर्थात् भगवान् पतञ्जलि से पूर्व भी योगशिक्षा विद्यमान थी।

साख्यस्य वक्ता कपिल परमर्षि. स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्य. पुरातन ॥

महाभारत शान्ति पर्व ३४९।६५

'योगशास्त्रं मत्प्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता'

याज्ञ० ३।४।११०

के अनुसार हिरण्यगर्भ योगशास्त्र के आदि वक्ता है। इस प्रकार गुरुशिष्य परम्परा से आते हुए योगसिद्धान्तों को भगवान् पतञ्जलि ने सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया तथा सूत्र रूप में उन्ही सिद्धान्तों को अनुबद्ध किया। सभी दर्शनो का परम प्रयोजन अपवर्ग-प्राप्ति है और इसकी सिद्धि आत्मबोध द्वारा होती है। इस दिशा में योगदर्शन का प्रशसनीय प्रयास है। विवेकख्याति के साधनो का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है।

अत अपवर्ग प्रदान करने वाले आचार्य-शिष्य परम्परा से प्राप्त अनादि योगशास्त्र का व्याख्यान यहाँ से प्रारम्भ होता है।

वृत्ति—अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते। अथशब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च। योगो युक्ति समाधानम्। युज समाधौ

(धा० पा० ४।६७)। अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्। योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्, तद् आ-शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः।

तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः। तद्व्युत्पादनञ्च फलम्। व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्। शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः[1]। अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य[2] साध्य-साधनभावः। एतदुक्तं भवति—व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते, तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति ॥१॥

अनेन = इस। सूत्रेण = सूत्र के द्वारा। शास्त्रस्य = प्रस्तुत योगशास्त्र के। सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि = सम्बन्ध, अभिधेय (वर्ण्यविषय), उद्देश्य (एवं अधिकारी) अर्थात् अनुबन्धचतुष्टय। आख्यायन्ते = कहे जाते हैं। योगशास्त्र के अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण इस सूत्र के द्वारा किया जाता है। अथशब्द = प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त अथ शब्द। अधिकारद्योतकः = अधिकार, प्रारम्भ को व्यक्त करने वाला। च=और। मङ्गलार्थकः=मङ्गल वाचक है। 'युज् समाधौ' (धा० पा० ४।६७)=√युज् धातु समाधि अर्थ में होने के कारण। योग =योग शब्द का अर्थ। युक्तिः = युक्ति। समाधानं=समाधि, ध्यान की एकाग्रता है। √युज् धातु से निष्पन्न होने के कारण योग शब्द का अर्थ समाधि है। (√युज् + घञ्= योग)। इसकी निष्पत्ति 'युजिर् योगे' (धा० पा० [illegible]।७) से नहीं है। तद् अनुशासन=उसे अनुशासन कहते हैं, वही अनुशासन है। येन = जिसके द्वारा। लक्षणभेदोपायफलैः =लक्षण (असाधारणधर्मवचनम्, सजातीयविजातीयाभ्यां व्यावर्तको लक्ष्यगतः कश्चिल्लोकप्रसिद्ध आकारो लक्षणम्) प्रकार, साधन एवं प्रयोजन सहित शास्त्र का। अनुशिष्यते व्याख्यायते = अनुशासन किया जाता है, व्याख्यान किया जाता है अर्थात् उपदिष्ट सिद्धान्तों का पुनः कथन, प्रतिपादन, वर्णन किया जाता है। योगानुशासनं = योगानुशासन पद का अर्थ। योगस्य = पूर्व उपदिष्ट, अनादि योग सिद्धान्तों का। अनुशासनम् = पुनः कथन, प्रतिपादन निरूपण है। तद्=वह

१ भाव सम्बन्ध (पा०)। २ कैवल्येन (पा०)।

योग। आशास्त्रपरिसमाप्ते = प्रस्तुत शास्त्र की समाप्ति तक। अधिकृतम्=अधिकार रूप में। वोद्धव्यम् = समझना चाहिये। इत्यर्थ = इसका यह अभिप्राय है अर्थात् प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य है कि यहाँ से प्रारम्भ कर शास्त्र की समाप्ति पर्यन्त योग के सिद्धान्तों का ही वर्णन है। तत्र = उसमें। शास्त्रस्य—इस योग शास्त्र का। व्युत्पाद्यतया = व्याख्यान के योग्य होने के कारण। ससाधन = साधन, उपाय सहित। सफल = फल, प्रयोजन सहित। योग = योग ही। अभिधेय = वर्ण्य विषय है अर्थात् साधन एव फल के साथ योग ही इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। च = और। तत् = उस योगशास्त्र का। व्युत्पादन= प्रतिपादन, व्याख्यान, वर्णन ही। फल=प्रयोजन, उद्देश्य है। व्युत्पादितस्य=वर्णन किये गये। योगस्य = योगशास्त्र का। कैवल्य = पुरुष का केवल रूप, त्रिगुणात्मक दृश्य से पृथक् हो जाना, अपवर्ग, मोक्ष ही। फल = प्रयोजन है। शास्त्राभिधेययो = इस योगशास्त्र एवं उसके वर्ण्य विषय में। प्रतिपादकप्रतिपाद्यभाव = प्रतिपादक एव प्रतिपाद्य, वर्णन करने वाला एव वर्णन किया जाने वाला। सम्बन्ध = सम्बन्ध है। अभिधेयस्य = वर्ण्यविषय। योगस्य = योग का। च = और तत्फलस्य = उसके फल। कैवल्यस्य = कैवल्य, अपवर्ग का परस्पर। साधनसाध्यभाव = साधन एव साध्य रूप सबन्ध है अर्थात् वर्ण्य विषय योग साधन है और कैवल्य साध्य। एतद् उक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है कि। शास्त्रेण = इस शास्त्र के द्वारा। व्युत्पाद्यस्य = वर्णनीय, वर्णन के योग्य। योगस्य = योग शास्त्र के। साधनानि = साधनो, उपायों को। प्रदर्श्यन्ते = दिखलाया जा रहा है। निरूपण किया जा रहा है। तत्साधनसिद्ध = उन्ही साधनो, उपायो से सिद्ध, प्राप्त। योग = योग। कैवल्याख्यं = कैवल्य, अपवर्ग नाम वाले। फल = फल को। उत्पादयति = उत्पन्न करता है, प्रदान करता है ॥ १ ॥

विशेष—अनादि काल से आचार्य-शिष्य परम्परा से आते हुये योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र का प्रारम्भ हो रहा है। अनुबन्ध सहित इसमें योग के लक्षण (स्वरूप), भेद, साधन एव फल की सम्यक् व्याख्या की गई है। योग समाधि को कहते हैं, क्योंकि यह योग शब्द 'युज् समाधौ' से निष्पन्न

होता है, 'युजिर् योगे' संयोग अर्थवाली √युजिर् धातु से नहीं। क्षिप्तमूढ विक्षिप्तैकाग्रनिरुद्ध रूप से चित्त की सभी पाँचों भूमियों में होने वाला यह योग चित्त का ही धर्म है। चित्त की एकाग्र भूमि में जो समाधि का लाभ होता है उसे सम्प्रज्ञातयोग कहते हैं। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत रूप से यह चार प्रकार का है। चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध हो जाने पर असम्प्रज्ञात योग होता है।

तत्र को योग इत्याह—

तत्र को योग = तो इस योग का क्या लक्षण, स्वरूप है। इति आह = इसी योग के लक्षण का निरूपण करते हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध. ॥ २ ॥

अर्थ—चित्तवृत्तिनिरोध = चित्त की प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप समस्त वृत्तियों का सभी प्रकार से रुक जाना ही। योग = योग है।

विशेष—सभी वृत्तियों का पूर्ण रूप से निरोध हो जाने पर (सम्यक् निरोध रूप) असम्प्रज्ञात समाधि ही मुख्य रूप से योग है। फिर भी सम्प्रज्ञात समाधि को भी योग कहते हैं। यद्यपि इस समाधि में रजस् एवं तमस् वृत्तियों का निरोध हो जाने पर सात्त्विक वृत्ति की स्थिति बनी ही रहती है।

वृत्ति—चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपा तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते। स च निरोधः सर्वासां चित्तभूमीनां सर्वप्राणिनां धर्मः कदाचित् कस्याञ्चिद् भूमौ आविर्भवति।

ताश्च क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धमिति चित्तस्य भूमयः, चित्तस्यावस्थाविशेषाः। तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकादस्थिरं बहिर्मुखतया सुखदुःखादिविषयेषु विकल्पितेषु व्यवहितेषु[१] वा रजसा प्रेरितम्, तच्च सदैव दैत्यदानवादीनाम्। मूढं तमस उद्रेकात् कृत्याकृत्यविभागमन्तरेण[२] क्रोधादिभि विरुद्ध-

---

१ सन्निहितेषु इत्यधिकं क्वचित् पठ्यते। २ विभागमगणयन् क्रोधात् (पा०)।

कृत्येष्वेव नियमितम्, तच्च सदैव रक्ष पिशाचादीनाम्। विक्षिप्त तु सत्त्वोद्रेकाद् वैशिष्ट्येन परिहृत्य दुःखसाधनं सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्तम्, तच्च सदैव देवानाम्।

एतदुक्तं भवति—रजसा प्रवृत्तिरूपम्, तमसा परापकारनियतम्,[1] सत्त्वेन सुखमयं चित्तं भवति। एतास्तिस्रश्चित्तावस्था समाधावनुपयोगिन्यः, एकाग्रनिरुद्धरूपे द्वे च सत्त्वोत्कर्षाद् यथोत्तरमवस्थितत्वात् समाधावुपयोगं भजेते।

सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे त्वयमभिप्रायः,—द्वयोरपि रजस्तमसोरत्यन्तहेयत्वेऽप्येनदर्थं रजस प्रथममुपादानम्, यावन्न प्रवृत्तिर्दर्शिता तावन्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितुमिति द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम्। सत्त्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात् प्रदर्शनं यत्, तस्योत्कर्षेणोत्तरे द्वे भूमी योगोपयोगिन्याविति। अनयोर्द्वयोरेकाग्रनिरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः, स योग इत्युक्तं भवति। एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोधः, निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य सम्भवः ॥२॥

निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य = सत्त्वगुण के विमल, स्वच्छ परिणाम को प्राप्त करने वाले। चित्तस्य = चित्त की। अङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपा = अङ्ग एवं अङ्गी स्वरूप को प्राप्त हुई अर्थात् वृत्तियाँ अङ्ग एवं चित्त अङ्गीरूप से। या = जो। वृत्तयः = वृत्तियाँ हैं (प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति) तासां = उन्हीं वृत्तियों का। निरोधः = रोकना अर्थात् बहिर्मुखतया = बाह्य विषयों की ओर से। परिणतिविच्छेदाद् = परिणाम के विच्छेद अर्थात् बाह्य विषयों के स्वरूप में परिवर्तित हुई वृत्तियों को उनसे हटाकर, बाह्य विषयों से सम्बन्ध समाप्त कर। अन्तर्मुखतया = अन्त, भीतर की ओर उन्मुख करने से। प्रतिलोमपरिणामेन = विलोम परिणाम द्वारा अर्थात् बाह्य विषयों की ओर से रोककर अन्तर्मुखी बनाकर। स्वकारणे = (वृत्तियों के) अपने ही कारण (चित्त) में।

---

१ परापकारनिरत (पा०)।

लय = विलीन हो जाना ही। योग इत्याख्यायते = योग इस रूप से कहा जाता है अर्थात् वृत्तियों का बाह्य विषयों को त्यागकर अपने कारण चित्त में विलीन हो जाना ही योग है। च = और। स = वह। निरोध = चित्तवृत्तियों का निरोध। सर्वप्राणिनां = सभी प्राणियों का। सर्वासु चित्तभूमीषु = चित्त की सभी भूमियों में होने वाला। धर्म = धर्म, गुण है। कदाचित् = कभी। कस्यांचित् = किसी। भूमौ = भूमि में। आविर्भवति = प्रकट होता है अर्थात् यदा कदा किसी की बुद्धि, चित्त में ही सभी वृत्तियों का निरोध हो पाता है। तास्च= और वे। क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धम् इति = क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त-एकाग्र-निरुद्ध नाम वाली। चित्तस्य = चित्त की। भूमय = भूमियाँ हैं। जो। चित्तस्य = चित्त की। अवस्थाविशेषाः = विशेष अवस्थायें हैं। तत्र = उन पाँचों भूमियों में। क्षिप्तं = क्षिप्त नाम की भूमि। रजस = रजो गुण की। उद्रेकात् = अधिकता के कारण। अस्थिर = चञ्चल होती है अर्थात् प्रवर्तक, चञ्चल स्वभाव वाले रजो गुण के सम्बन्ध के कारण क्षिप्त भूमि में चित्त भी चचल होता है। वा = अथवा। विकल्पितेषु = संशय, अनिश्चय इत्यादि विविध रूपों में कल्पना किये गये। व्यवहितेषु = व्यवधान युक्त, दूर स्थित। सुखदुःखादिविषयेषु = सुख दुःख इत्यादि प्रदान करने वाले विषयों में। बहिर्मुखतया = बहिर्मुखीरूप, बाह्य-विषयों की ओर। रजसा = रजोगुण के द्वारा। प्रेरित =(क्षिप्तभूमि में चित्तवृत्ति) प्रेरित की जाती है। तच्च = और वह चित्त की क्षिप्त भूमि। सदैव = सदा ही। दैत्यदानवादीनां = दैत्य, दानव इत्यादि रजो गुण बहुल प्राणियों की होती है। मूढं=मूढ नाम की भूमि। तमस = तमो गुण के। उद्रेकात् = आधिक्य प्रबलता के कारण। कृत्याकृत्यविभागमन्तरेण = कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य में विवेक (बुद्धि) के बिना ही अर्थात् कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य का ज्ञान न होने से। क्रोधादिभि = क्रोध-मोह-लोभ-राग-द्वेष इत्यादि भावनाओं के कारण। विरुद्धकृत्येषु एव = प्रतिकूल, अशुभ कार्यों में ही। नियमित = लगाई जाती है, प्रवृत्त की जाती है। तच्च = और वह मूढवृत्ति। सदैव = सदा ही। रक्षःपिशाचादीनां = राक्षस पिशाच इत्यादि की होती है। विक्षिप्तं तु = विक्षिप्त भूमि तो। सत्त्वोद्रेकात् = सत्त्वगुण की अधिकता के कारण। वैशिष्ट्येन = विशेष रूप से। दुःखसाधन =

दुःख के साधनों, कारणों का। परिहृत्य = परिहार कर, दूर करके। शब्दादिषु = शब्द स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि। सुखसाधनेषु एव = सुख प्रदान करने वाले साधनों, विषयों में ही। प्रवृत्त = प्रवृत्त होती है, लगती है अर्थात् सुखमय विषयों को ही ग्रहण करती हैं। तच्च = और वह विक्षिप्त भूमि। सदैव = सदा ही। देवाना = सत्त्वगुणबहुल देवों की होती है। एतद् उक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है कि। रजसा = रजो गुण की प्रबलता के कारण। चित्त = चित्त। प्रवृत्तिरूप = क्रियारूप, प्रवर्तक, चचल। तमसा = तमो गुण की प्रबलता के कारण। परापकारनियत = दूसरों का अपकार करने वाला। सत्त्वेन = सत्त्वगुण की प्रबलता के कारण। सुखमय = सुखरूप, सुखप्रदान करने वाला। भवति = होता है। एता = ये। तिस्र = तीनों क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त। चित्तावस्था = चित्त की अवस्थायें, भूमियाँ। समाधौ = (चित्तवृत्तिनिरोधरूप) समाधि में। अनुपयोगिन्य = उपयोगी, सहायक नहीं हैं। च = और। एकाग्रनिरुद्धरूपे द्वे = एकाग्र एवं निरुद्ध नाम वाली अन्तिम दो चित्त भूमियाँ। सत्त्वोत्कर्षाद् = सत्त्व- गुण की प्रबलता होने के कारण। यथोत्तर = क्रमश बाद में। अवस्थितत्वात् = विद्यमान, सिद्ध होने के कारण। समाधौ = समाधि में। उपयोग = उपयोगिता, अनुकूलता, साहाय्य को। भजेते = प्राप्त करती हैं। सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे= सत्त्व इत्यादि गुणों के क्रम का विपरीत क्रम में वर्णन करने में अर्थात् त्रिविध गुण सत्त्व-रजस्-तमस् के इस क्रम को रजस्-तमस्-सत्त्व रूप से भिन्न क्रम में उपस्थित करने का। तु = तो। अय = यह। अभिप्राय = प्रयोजन है। रजस्त- मसो = रजो गुण एवं तमो गुण। द्वयो = दोनों का। अपि = भी। अत्यन्तहे- यत्वे अपि = बहुत ही बिलकुल ही त्याज्य, छोडने के योग्य होने पर भी। एतद् अर्थं = यह उद्देश्य है, इस उद्देश्य के कारण। रजस = रजो गुण का। प्रथम = सर्व प्रथम, सबसे पहले। उपादान = ग्रहण किया गया है, वर्णन किया गया है। यावत् = जब तक। प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति, विषयों का ग्रहण करना। न = नहीं। दर्शिता = दिखलाया जाता है, वर्णन किया जाता है। तावत् = तब तक। निवृत्ति = निवृत्ति, विषयों से दूर होना। दर्शयितु = दिखलाना, निरूपण करना। न = नहीं। शक्यते = सम्भव है। इति = इसी विचार, प्रयोजन से।

द्वयो = सत्त्व-रजस् दोनो गुणों का। व्यत्ययेन = भिन्न क्रम से। प्रदर्शन = निरूपण किया गया है। तु = तो। एतद् अर्थं = इसी उद्देश्य से। सत्त्वस्य = सत्त्वगुण का। पश्चात् = सबसे बाद, अन्त में। प्रदर्शन = वर्णन किया गया। यत = कि, क्योंकि। तस्य = उस सत्त्वगुण के। उत्कर्षेण = अधिक, प्रबल होने के कारण। उत्तरे = बाद की। द्वे भूमी = एकाग्र तथा निरुद्ध दोनों अन्तिम भूमियाँ। योगोपयोगिन्यौ इति = योग, समाधि में उपयोगी हैं, इसी विचार से सत्त्वगुण का वर्णन अन्त में किया गया है। अनयो = इन्ही। द्वयो = दोनो। एकाग्रनिरुद्धयो = एकाग्र एव निरुद्ध। भूम्यो = भूमियो में। य = जो। चित्तस्य = चित्त का। एकाग्रतारूप = एकाग्रतारूपी। परिणाम = परिणाम है अर्थात् विषयो स वृत्तियों का निरोध हो जाने पर जो चित्त की एकाग्रता स्थिरता है। स = वही। योग इति = योग इस रूप का, नाम से। उक्त भवति = कहा जाता है, वही योग होता है। एकाग्रे = चित्त की एकाग्रता भूमि मे। बहिर्वृत्तिनिरोध = बाहरी वृत्तियों का निरोध होता है अर्थात् चित्त की वृत्तियाँ बाह्य विषयों से उपरत हो जाती है, दूर हो जाती है। च = और निरुद्धे = चित्त की निरुद्ध भूमि में। सर्वासा = सभी। वृत्तीना = वृत्तियाँ। च = और। सस्काराणा = सस्कारो का। प्रविलय = अच्छी प्रकार लय, लोप हो जाना है। इति = इस प्रकार से। अनयो = इन्ही दोनों। भूम्यो = एकाग्र तथा निरुद्ध भूमियो में। एव = ही। योगस्य = योग का। सभव = सभव है अर्थात् इन्ही दोनों अन्तिम भूमियों में योग की सिद्धि होती है॥ २ ॥

इदानी सूत्रकारश्चित्तवृत्तिनिरोधपदानि व्याख्यातुकाम प्रथम चित्तपदं व्याचष्टे—

इदानी = इस समय, अब। सूत्रकार = योगसूत्रकार भगवान् पतञ्जलि। चित्तवृत्तिनिरोधपदानि = चित्त की वृत्तियो के निरोध पदो के। व्याख्यातुकाम = स्वरूप की व्याख्या करने की इच्छा वाले या विचार से। प्रथम = सबसे पहले। चित्तपद = चित्तपद की। व्याचष्टे = व्याख्या करते है।

तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

अर्थ—तदा = तब, असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त की समस्त वृत्तियों का सम्यक् निरोध हो जाने पर। द्रष्टु = द्रष्टा चेतन पुरुष की। स्वरूपे = अपने ही वास्तविक चिन्मात्र, प्रकाशमय स्वरूप में। अवस्थान = स्थिति, प्रतिष्ठा हो जाती है।

विशेष—प्रकृति का परिणाम होने के कारण चित्तवृत्ति सुखदु खमोहात्मक है। इसी से तादात्म्य प्राप्त कर नि सङ्ग, सुखदु खमोहरहित त्रिगुणातीत, निर्विकारी पुरुष भी उसी स्वरूप का हो जाता है। यथा स्वच्छ स्फटिकमणि जपाकुसुम के सान्निध्य से अनुरंजित हो उठती है और उसके दूर होते ही अपनी विमल प्रकृति को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार सभी चित्तवृत्तियों के चित्त में विलीन हो जाने पर पुरुष अपने चैतन्यमात्र स्वरूप में स्थित हो जाता है, जैसा कैवल्य की दशा में पुरुष केवल, चिन्मात्र ही रहता है। इस दशा में पुरुष अपने अनारोपित शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

वृत्ति—द्रष्टु पुरुषस्य तस्मिन् काले स्वरूपे चिन्मात्रतायामवस्थान स्थितिर्भवति। अयमर्थ—उत्पन्नविवेकख्याते चित्सङ्क्रमाभावात् कर्तृत्वाभिमाननिवृत्तौ[2] प्रोन्छिन्नपरिणामाया बुद्धावात्मन स्वरूपेणावस्थान स्थितिर्भवति ॥३॥

तस्मिन् काले = चित्त की समस्त वृत्तियों की निरोध दशा में। द्रष्टु = द्रष्टा। पुरुषस्य = पुरुष की। चिन्मात्रताया = केवल चेतन मात्र। स्वरूपे = अपने ही वास्तविक रूप में। अवस्थान = प्रतिष्ठा। स्थिति = स्थिति। भवति= होती है अर्थात् सभी वृत्तियों के रुक जाने पर पुरुष अपने ही चेतनमात्र, द्रष्टामात्र स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। अयम् अर्थ = इसका यह अभिप्राय है। उत्पन्नविवेकख्याते = प्रकृति एव पुरुषका भेद ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर। चित्सङ्क्रमणाभावात् = चेतन पुरुष के सक्रमण का अभाव हो जाने से अर्थात् चेतन पुरुष की छाया से ही अचेतन चित्त, बुद्धि चेतन सी हो जाती है। कर्तृत्वा-

---

१ चिन्मात्ररूपतायाम् (पा०)।
२ प्रोन्मुक्त-परिणामायाम् (पा०)।

भिमाननिवृत्तौ = कर्तृत्व का अभिमान दूर हो जाने वाली। प्रोच्छन्नपरिणामाया = कटे हुए परिणाम वाली अर्थात् विषय के आकार का परिणाम न प्राप्त करने वाली, परिणाम रहित। बुद्धौ = बुद्धि, चित्त में। आत्मन = पुरुष की। स्वरूपेण = अपने ही चेतन रूप से। अवस्थान = अवस्थिति, स्थापना। स्थिति = स्थिति, विद्यमानता। भवति = होती है॥ ३॥

व्युत्थानदशायान्तु तस्य किं रूपम् इत्याह—

व्युत्थानदशाया = चित्तवृत्तियों की उत्थान दशा में, विषयों के साथ चित्त का सम्बन्ध होने पर। तु = तो। तस्य = उस पुरुष का। किं = किस प्रकार का। रूप = स्वरूप होता है। इति आह = इसी का निरूपण करते हैं।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र॥ ४॥

अर्थ—इतरत्र = (इतरस्मिन् काले) दूसरे समय में अर्थात् चित्तवृत्तियों के उत्थान, उदय, विक्षेप काल में। चेतन, निर्विकार, त्रिगुणातीत पुरुष। वृत्तिसारूप्य = वृत्तियों के स्वरूप के समान रूप वाला होता है अर्थात् पुरुष अपने विशुद्ध स्वरूप को नहीं देखता तथा विषयाकार हुई चित्तवृत्तियों के साथ ऐक्य को प्राप्त कर वह भी वृत्तियों के समान ही सुखदुःखमोह स्वरूप वाला हो जाता है।

विशेष—यद्यपि बुद्धि में ही सुखदुःखमोहात्मक प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप वृत्तियाँ हैं, फिर भी बुद्धि से तादात्म्य प्राप्त कर अपरिणामी असङ्ग पुरुष भी उन्हीं धर्मों से संयुक्त हो जाता है। जैसे अत्यन्त सन्निधि के कारण जपाकुसुम में रहने वाले रक्तत्व धर्म को ग्रहण करने से स्फटिक मणि भी रक्तगुण से युक्त हो जाती है, अनुरञ्जित हो जाती है, वैसे ही पुरुष भी बुद्धिगत समस्त धर्मों को ग्रहण कर लेता है।

वृत्ति—इतरत्र योगादन्यस्मिन् काले, वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणा, ताभि सारूप्य तद्रूपत्वम्। अयमर्थ—यादृश्यो वृत्तय सुखदुःखमोहात्मिका[1] प्रादुर्भवन्ति,

---

१ दुःखमोहसुखात्मिका (पा०)।

तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्त्तृभि पुरुष । तदेव यस्मिन् एकाग्रतया परिणते[1] चितिशक्ते स्वस्मिन् रूपे प्रतिष्ठान भवति, यस्मिश्च इन्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार इव परिभाव्यते, यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते, तच्चित्तम् ॥ ४ ॥

योगात् = असप्रज्ञात समाधि से । इतरत्र = भिन्न । अन्यस्मिन् काले = दूसरे समय में अर्थात् वृत्तियो के उदय काल में, शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध विषयों को ग्रहण किये हुये समय में। वृत्तय = चित्त की प्रमाण-विपर्यय-विकल्प आदि वृत्तियाँ । या = जो। वक्ष्यमाणलक्षणा = आगे स्वरूप का निरूपण की जाने वाली हैं । ताभि = उन्ही चित्तवृत्तियों के साथ । सारूप्य = पुरुष की समानरूपता होती है । तद् रूपत्व = पुरुष उन्ही चित्तवृत्तियों के स्वरूप का हो जाता है । अयमर्थ = इसका यह अभिप्राय हैं । सुखदु खमोहात्मिका = सुखदु खमोह स्वरूप वाली । यादृश्य = जिस प्रकार की । वृतय = चित्त की वृत्तियाँ होती हैं । तादृग् रूप = उन्ही चित्तवृत्तियो के सदृश स्वरूप का । एव = ही । व्यवहर्त्तृभि = व्यवहर्ता के द्वारा या व्यवहार काल में, व्यावहारिक रूप से । पुरुष =पुरुष । संवेद्यते = जाना जाता है अर्थात् वृत्तियों के स्वरूप का ही पुरुष भी समझा जाना है, हो जाता है । तद् एव = वही चित्त इस प्रकार से । यस्मिन् = जिस समय, समस्त वृत्तियो के निरोध काल में । एकाग्रतया = एकाग्रता रूप से । परिणते = परिणाम प्राप्त करने पर । चितिशक्ते = चैतन्यशक्ति, चेतन पुरुष की । स्वस्मिन् रूपे = अपने ही स्वरूप में, चिन्मात्र रूप में । प्रतिष्ठान=प्रतिष्ठा स्थिति । भवति = होती है । च = और । यस्मिन् = जिस समय, विक्षेप दशा में । इन्द्रियवृत्तिद्वारेण = इन्द्रियों के व्यापार के माध्यम से । (चित्ते = चित्त के) विषयाकारेण = शब्दादि विषयों के आकार के रूप से । परिणते = परिवर्तित होने पर, चित्त, बुद्धि के विषयाकार परिणाम प्राप्त करने पर । पुरुष = सुखदु-खमोहरहित चेतन पुरुष भी । तद् रूपाकार = उन्ही चित्तवृत्तियो के आकार

---

१ परिणते विविक्त स्वस्मिन् रूपे प्रतिष्ठितो भवति (पा०) ।

का । इव = समान, ही । परिभाव्यते = प्रतीत होता है, प्रतिभासित होता है । यथा = जैसे । चलत्सु = चलते हुए, चञ्चल, गतियुक्त । जलतरङ्गेषु = जल की तरङ्गों में । चन्द्र = न चलना हुआ भी चन्द्रमा । चलन् इव = चलता हुआ सा, चञ्चल सा । प्रतिभासते = दिखलाई पड़ता है, प्रतीत होता है । तत् चित्त=इसी प्रकार वह चित्त भी अर्थात् शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध इत्यादि विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के सम्बन्ध के कारण चित्त भी विषय के आकार का हो जाता है और चित्त में प्रतिबिम्बित चेतन निर्विकार पुरुष भी चित्त के समान ही रूप को धारण करता है । पुरुष का अपने विशुद्ध चिन्मात्र स्वरूप की प्रतीति नहीं होती ॥ ४ ॥

वृत्तिपद व्याख्यातुमाह—

वृत्तिपद = चित्त की वृत्तियों की । व्याख्यातु = व्याख्या, स्पष्ट बतलाने के विचार से । आह = कहते हैं ।

वृत्तय पञ्चतय्य क्लिष्टाक्लिष्टा ॥ ५ ॥

अर्थ—क्लिष्टा अक्लिष्टा = अङ्गीरूप चित्त की क्लिष्ट एव अक्लिष्टरूप से । वृत्तय पञ्चतय्य = अङ्ग, अवयव रूप वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं ।

विशेष—अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश पञ्चविध क्लेशों को पुष्ट करने वाली, आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक त्रिविध दु खो को प्रदान करने वाली एव सञ्चित-प्रारब्ध-क्रियमाण कर्मफलों को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ ही क्लिष्ट हैं, जो योगसाधना में बाधक रूप होकर स्वरूप प्राप्ति में बाधा उपस्थित करती है । सभी प्रकार के क्लेशों, बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाली सत्त्वगुण प्रधान वृत्तियाँ ही अक्लिष्ट है, जो योगसाधना में साधक होकर आत्मस्वरूप को प्रकाशित करती हैं, प्रकृतिपुरुषविवेकख्याति को उत्पन्न करती हैं ।

वृत्ति—वृत्तयश्चित्तपरिणामविशेषा । वृत्तिसमुदायलक्षणस्य अवयविनो या अवयवभूता वृत्तय , तदपेक्षया तय-प्रत्यय (अष्टा० ५।२।४२)। एतदुक्त भवति—

पञ्च वृत्तय कीदृश्य ? क्लिष्टा, अक्लिष्टा, क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ता क्लिष्टा, तद्विपरीता अक्लिष्टा ॥ ५ ॥

वृत्तय = वृत्तियाँ । चित्तपरिणामविशेषा = चित्त की ही विशेष परिणाम है । अवयवभूता = अवयव, अङ्गरूप मे विद्यमान । या = जो । वृत्तय =वृत्तियाँ हैं । वे । वृत्तिसमुदायलक्षणस्य = वृत्तियो का ही समूह रूप । अवयविन.=अवयवी अङ्गी चित्त की ही है । तद् अपेक्षया = उसी चित्त को अपेक्षा से अर्थात् अङ्गी-रूप चित्त की अङ्गरूप वृत्तियाँ है—इस अवयव-अवयवी भाव को व्यक्त करने के लिए ही सूत्र में पञ्च शब्द से 'तयप् प्रत्यय (अष्टा० ५।२।४२) का प्रयोग हुआ है । एतद् उक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है । पञ्चवृत्तय = पाँचो वृत्तियाँ । कीदृश्य = किस प्रकार की है, इनका स्वरूप क्या है ? क्लिष्टा = क्लिष्ट, क्लेश प्रदान करने वाली, बाधक । अक्लिष्टा = अक्लिष्ट, क्लेशो को दूर करने वाली, साधक । वृत्तियाँ हैं । वक्ष्यमाणलक्षणे = आगे बतलाये जाने लक्षणो वाली, वर्णनीय लक्षणो वाली । क्लेशै = पञ्चविध क्लेशों से । समाक्रान्ता = आक्रान्त, अभिभूत की गयी । वृत्तियाँ ही । क्लिष्टा = क्लिष्ट है । तद्विपरीता = उनसे भिन्न अर्थात् पञ्चक्लेशो से रहित योगसाधना पथ को प्रशस्त करने वाली वृत्तियाँ ही । अक्लिष्टा = अक्लिष्ट हैं ॥ ५ ॥

एता एव पञ्च वृत्तयः सङ्क्षिप्य उद्दिश्यन्ते—

एता एव = यही । पञ्च वृत्तय = पाँचो वृत्तियाँ । सक्षिप्य = सक्षेप करके, सक्षेप रूप मे । उद्दिश्यन्ते = दिखलाई जाती है, वर्णन की जाती है ।

प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा स्मृति भेद से चित्त की वृत्तियाँ पाँच प्रकार की है ।

वृत्ति —आसा क्रमेण लक्षणमाह—

आसा = इन्ही प्रमाणविपर्यय इत्यादि पाँचों वृत्तियो को । क्रमेण = क्रम से । लक्षण = लक्षण, स्वरूप को । आह = कहते हैं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

अथ —प्रत्यक्षानुमानागमाः = प्रत्यक्ष—अनुमान—आगम के भेद से प्रमाणानि = यह प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है।

वृत्ति —अत्रातिप्रसिद्धत्वात् प्रमाणानां शास्त्रकारेणभेदनिरूपणेनैव गतत्वाल् लक्षणस्य पृथक् लक्षणं न कृतम्। प्रमाणलक्षणन्तु—अविसंवादि ज्ञानं प्रमाणमिति। इन्द्रियद्वारेण बाह्यवस्तूपरागाच्चित्तस्य तद्विषय-सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षम्। गृहीतसम्बन्धाल् लिङ्गाल् लिङ्गिनि सामान्यात्मनाऽध्यवसायोऽनुमानम्। आप्तवचनम् आगमः[२] ॥ ७ ॥

अत्र = यहाँ पर, इस सूत्र में। अतिप्रसिद्धत्वात् = प्रमाणों का स्वरूप बहुत ही प्रसिद्ध, सुस्पष्ट होने के कारण। शास्त्रकारेण = योगशास्त्रकार भगवान् पतञ्जलि द्वारा। प्रमाणानां = प्रमाणों का। भेदनिरूपणेन = भेद, प्रकार कथन द्वारा। एव = ही। लक्षणस्य = प्रमाण के लक्षण, स्वरूप का। गतत्वात् = ज्ञान हो जाने के कारण। पृथक् = पृथक् रूप से। लक्षणं = प्रमाण का लक्षण। न = नहीं। कृतं = किया गया है अर्थात् प्रमाण का स्वरूप प्रसिद्ध होने के कारण शास्त्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में इसका लक्षण नहीं किया है। प्रमाणलक्षणं तु = प्रमाण का लक्षण तो इस प्रकार है। अविसंवादि ज्ञानं = संवाद रहित, विरोध रहित ज्ञान ही। प्रमाणमिति = प्रमाण है। इन्द्रियद्वारेण = इन्द्रिय की सहायता से। बाह्यवस्तूपरागात् = बाह्य विषयों के उपराग, सम्बन्ध से। चित्तस्य = चित्त की। तद् विषयसामान्यविशेषात्मनः = उसी विषय के सामान्य एवं विशेष स्वरूप का। अर्थस्य = पदार्थ का। विशेषावधारणप्रधाना = विशेष रूप, गुण क्रियारूपआकारपरिणामदशा आदि का निर्णय करने वाली मुख्य। वृत्तिः = वृत्ति ही। प्रत्यक्ष = प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात् इन्द्रियों की सहायता से चित्त, बुद्धि विषय को ग्रहणकर उसी के आकार की हो जाती है। अनन्तर उसी विषय

१ भेदलक्षणेनैव (पा०)। २. यतो हि अविसंवादिज्ञानं प्रमाणम् अतः आप्तवचनेतिशब्देन आप्तवचनजन्या धीरभिप्रेता—इति विज्ञेयम्।

की विशेषताओ को जो वृत्ति निश्चित रूप से ग्रहण करती है, वही बुद्धि की वृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। गृहीतसबन्धात् लिङ्गात् = हेतुमान् व्यापक से सबद्ध लिङ्ग हेतु के ग्रहण, ज्ञान के द्वारा। लिङ्गिनि = लिङ्गी, हेतुमान्, व्यापक में। सामान्याध्यवसाय = सामान्य का निश्चय ही। अनुमान = अनुमान प्रमाण है। व्याप्त, हेतु, लिङ्ग धूम द्वारा व्यापक, हेतुमान लिङ्गी अग्नि सामान्य का पक्ष में ज्ञान ही अनुमान प्रमाण है। आप्तवचन = आप्त पुरुष, यथार्थ वक्ता का वचन ही। *आगम = आगम प्रमाण है। यथार्थ वक्ता के आप्तवचन से उत्पन्न वाक्यार्थ* ज्ञान ही आगम प्रमाण है॥ ७ ॥

विशेष—'प्रमाया करण प्रमाणम्' 'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' इसी प्रकार प्रमा के मुख्य साधन को ही प्रमाण कहते हैं। सांख्य के समान यहाँ पर योग-शास्त्र में भी प्रमा का मुख्य साधन, कारण होने के कारण चित्तवृत्ति ही प्रमाण है—'असदिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिरेव प्रमाणम्' सदेहरहित, अबाधित एवं पूर्व से अज्ञात विषय वाली चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। प्रत्यक्षप्रमाण में इन्द्रियाँ सहायक ही है, प्रमाण नही। यथा घटस्थ दीप को बाह्य वस्तुओ को प्रकाशित करने के लिए घट के छिद्रों की अपेक्षा होती है। इसी तरह इन्द्रियों के माध्यम से बुद्धि विषय को ग्रहण कर उसी के आकार की हो जाती है। इन्द्रियों के सहयोग के बिना वह तमोगुण से आवृत्त होने से वस्तु को प्रकाशित करने में असमर्थ रहती है। यही बुद्धिनिष्ठ ज्ञान प्रमा का साधकतम होने के कारण प्रमाण है। यही ज्ञान उपचार सम्बन्ध से पुरुषनिष्ठ हो जाने पर प्रमा प्रमाण का फल बन जाता है। अत इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण, लिङ्गज्ञान की सहायता से उत्पन्न चित्तवृत्ति अनुमान प्रमाण, तथा वाक्यार्थज्ञान से उत्पन्न होने वाली चित्तवृत्ति आगम प्रमाण है। अत, चित्तवृत्ति ही सर्वत्र प्रमा का करण होने से प्रमाण है॥ ७ ॥

एव प्रमाणरूपा वृत्ति व्याख्याय विपर्ययरूपामाह—

एव = इस प्रकार। प्रमाणरूपा = प्रमाणरूप वाली। वृत्ति = वृत्ति को व्याख्याय = व्याख्यान, स्वरूप निरूपण करके। विपर्ययरूपा = विपर्यय रूप, नाम वाली वृत्ति को। आह = कहते है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अतद्रूपप्रतिष्ठ = वस्तु के अयथार्थ स्वरूप में स्थित होने वाला। मिथ्याज्ञान = मिथ्याज्ञान ही। विपर्यय = विपर्यय नाम की वृत्ति है अर्थात् किसी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को न ग्रहण करके उसके विपरीत रूप को यथार्थ रूप से मान लेना ही विपर्यय है। यथा शुक्ति में अविद्यमान रजत की प्रतीति अथवा सर्परहित रज्जुखण्ड में सर्प की प्रतीति होना ही विपर्यय है। अरजतरूप शुक्ति अयथार्थ में रजत यथार्थ रूप से चित्तवृत्ति का प्रतिष्ठित होना ही विपर्यय, विपरीत ज्ञान है। अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश अथवा तमस्-मोह-महामोह-तामिस्र-अन्धतामिस्र रूप में यही विपर्यय पाँच प्रकार की अविद्या है—'पञ्चपर्वाऽविद्या'—वार्षगण्य। यही विपर्ययवृत्ति संसार की बीजभूता कही जाती है।

वृत्ति—अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं विपर्ययः। यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानम्। अतद्रूपप्रतिष्ठमिति—तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन् रूपे न प्रतितिष्ठति, तस्यार्थस्य यत् पारमार्थिकं रूपं न तत् प्रतिभासयतीति यावत्। संशयोऽप्यतद्रूपप्रतिष्ठितत्वान्मिथ्याज्ञानं,[1] यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥ ८ ॥

अतथाभूते अर्थे = जो पदार्थ उस स्वरूप का नहीं है, जो वस्तु का अपना स्वरूप नहीं है, उससे भिन्न रूप में, विलोम अवास्तविक, अयथार्थ पदार्थ में। तथा = उस प्रकार का, वास्तविक, यथार्थ रूप का। उत्पद्यमान = उत्पन्न होने वाला। ज्ञान = ज्ञान। विपर्यय = विपर्यय है। यथा = जैसे। शुक्तिकायां = शुक्ति में। रजतज्ञान = रजत का ज्ञान होना है। अतद्रूपप्रतिष्ठम् इति = अतद्रूपप्रतिष्ठ शब्द का अर्थ है—तस्य = उस। अर्थस्य = पदार्थ का। यद् = जो। रूप = वास्तविक स्वरूप है। तस्मिन् = उस। रूपे = स्वरूप में। न = नहीं। प्रतिष्ठति = स्थित होना है अर्थात्। तस्य = उस। अर्थस्य = पदार्थ का। यत् = जो। पारमार्थिक = यथार्थ, वास्तविक, कभी भी उत्तर काल

---

[1] अतद्रूपप्रतिष्ठितमिति मिथ्याज्ञानम् (पा०)।

शब्दजनित = शब्द सुनने से उत्पन्न । ज्ञानं = ज्ञान ही । शब्दज्ञान = शब्द-ज्ञान है । तद् = उस शब्दश्रवणजन्य ज्ञान का । अनुपतितु = अनुगमन करने का । शील = स्वभाव है । यस्य = जिसका । स = वही । शब्दज्ञानानुपाती = शब्दज्ञान के बाद होने वाला ज्ञान है । वस्तुन = वस्तु, पदार्थ के । तथात्व = वास्तविक स्वरूप की । अनपेक्षमाण = अपेक्षा न करके होने वाला । अध्यव-साय = निश्चय ही । स विकल्प = वह विकल्प । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । यथा = जैसे । पुरुषस्य = पुरुष का । चैतन्य = चेतन ही । स्वरूप = स्वरूप है । इति = ऐसा । अत्र = यहाँ पर । देवदत्तस्य = देव-दत्त का । कम्बल = कम्बल है । इति = इस रूप से । शब्दजनिते = केवल शब्द के कारण ही उत्पन्न हुए । ज्ञाने = ज्ञान में । षष्ठ्या = षष्ठी विभक्ति द्वारा । य = जिस । भेद = भेद, अन्तर का । अध्यवसित = निर्णय हुआ है । त = उस भेद के । इह = इसमें, यहाँ पर । अविद्यमान = विद्यमान न होने पर । अपि=भी । समारोप्य = आरोप करके । अध्यवसाय = निर्णय । प्रवर्तते= प्रवृत्त होता है । वस्तुत = यथार्थ में । तु = तो । चैतन्य = चेतनता । एव = ही । पुरुष = पुरुष है, पुरुष का वास्तविक स्वरूप है, कम्बल, दण्ड इत्यादि नहीं ॥ ९ ॥

निद्रा व्याख्यातुमाह—

निद्रां = निद्रा नाम की वृत्ति का । व्याख्यातु = स्वरूप निरूपण करने के लिये । आह = कहते हैं ।

४) निद्रा अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अर्थ —अभावप्रत्ययालम्बना = अभाव के प्रत्यय का आलम्बन करनेवाली । वृत्ति = वृत्ति । निद्रा = निद्रा है । अभाव का ज्ञान ही इस वृत्ति का आश्रय है । इस वृत्ति में किसी भी विषय के न होने पर केवल ज्ञान के अभाव की ही प्रतीति होती है ।

वृत्ति —अभावप्रत्यय आलम्बनं यस्या सा तथोक्ता । एतदुक्त भवति—या सन्ततम् उद्रिक्तत्वात्तमस समस्तविषयपरित्यागेन प्रवर्तते वृत्ति सा निद्रा, तस्याश्च

'सुखमहमस्वाप्सम्' इति स्मृतिदर्शनात् स्मृतेश्चानुभवव्यतिरेकेणानुपपत्तेर्वृत्तित्वम् ॥ १० ॥

अभावप्रत्यय = अभाव का ज्ञान ही । आलम्बन = आश्रय है । यस्या = जिस वृत्ति का । सा = वह वृत्ति । तथा उक्ता = उस प्रकार की निद्रा रूप से कही गई है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । या = जो । वृत्ति = वृत्ति । सन्ततं = निरन्तर रूप से । तमस. = तमोगुण की । उद्रिक्तात् = अधिकता के कारण । समस्तविषयपरित्यागेन = सभी विषयों का त्याग कर देने पर । प्रवर्तते = प्रवृत्त होती है । सा = वह वृत्ति । निद्रा = निद्रा है । च = और । 'सुखम् अहम् अस्वाप्सम् = मैं सुखपूर्वक सोया ।' इति = इस रूप से । तस्या = उस वृत्ति की । स्मृतिदर्शनात् = स्मृति देखने, होने से । च = और । स्मृतेः = स्मृति का । अनुभवव्यतिरेकेण = अनुभव के बिना । अनुपपत्ते =उपपत्ति, सिद्धि न होने के कारण वृत्तित्वं = निद्रा वृत्ति रूप में सिद्ध होती है ॥ १० ॥

स्मृतिं व्याख्यातुमाह—

स्मृति = स्मृति वृत्ति की । व्याख्यातुं = व्याख्या करने के लिए । आह = कहते हैं ।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

अर्थ—अनुभूतविषयासंप्रमोष = पूर्व काल में अनुभव किये गये विषय का न छिपना, नष्ट न होना, तिरोहित न होना अर्थात् प्रकट हो जाना ही । स्मृतिः = स्मृति नाम की वृत्ति है अर्थात् प्रमाण-विपर्यय-विकल्प निद्रा इन चारों वृत्तियों द्वारा पहले अनुभव किये गये संस्कारों का कालान्तर में किसी निमित्त के कारण स्फुरित, उद्बुद्ध हो जाना ही स्मृति है ।

वृत्तिः—प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योऽयमसम्प्रमोषः संस्कारद्वारेण बुद्धावारोहः[1], सा स्मृतिः । तत्र प्रमाणविपर्ययविकल्पा [2]जाग्रदवस्थास्त एव

१ बुद्ध्यनुसारोहः (पा०) । २. जाग्रदवस्थास्त एव तदनुभवबलात् प्रत्यक्षायमाणाः (पा०) ।

तदनुभवबलात् प्रक्षीयमाणा स्वप्न । निद्रा तु असवेद्यमानविषया । स्मृतिश्च प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता ॥ ११ ॥

प्रमाणेन = प्रमाण (तथा विपर्यय-विकल्प-निद्रा) द्वारा । अनुभूतस्य = अनुभव किये गये । विपयस्य = विषय, पदार्थ का । य = जो । अय = यह । असम्प्रमोष =न नष्ट होना, न चुराया जाना, न छिपना अर्थात् । सस्कारद्वारेण = सस्कार के द्वारा । बुद्धौ = बुद्धि में । आरोह = प्रकट हो जाना, उद्बुद्ध हो जाना ही । सा=वह । स्मृति =स्मृति नाम की वृत्ति है । तत्र=उन पञ्च वृत्तियो में । प्रमाणविपर्य्ययविकल्पा =प्रमाण-विपर्यय-एव विकल्प वृत्तियां । जाग्रदवस्था = जाग्रद् अवस्था की वृत्तियाँ हैं अर्थात् जाग्रद् दशा में इन वृत्तियों के द्वारा विषयों का ज्ञान, अनुभव प्राप्त किया जाता है । ते एव = वही प्रमाण विपर्यय-विकल्प वृत्तियाँ । तद् अनुभवबलात् = जाग्रत् अवस्था में प्राप्त किये गये अनुभव के बल से । प्रक्षीयमाणा = बहुत ही क्षीण हुई सी । स्वप्न =स्वप्नदशा में विद्यमान रहती है । यहाँपर 'प्रत्यक्षायमाणा स्वप्ना' पाठभेद स्वीकार करने पर इसका अभिप्राय यह है—प्रत्यक्ष के सदृश ही अर्थात् जाग्रत् दशा के समान ही ज्ञान प्रदान कराने वाली ये स्वप्नावस्था में चित्त की वृत्तियाँ है । निद्रा = निद्रा नाम की वृत्ति । तु = तो । असवेद्यविषया = न जानने योग्य विषय वाली हैं अर्थात् विषय का कुछ भी ज्ञान नही होता । च = और । स्मृति = स्मृति नाम की वृत्ति । प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रानिमित्ता = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा वृत्तियों के निमित्त अर्थात् स्मृति का विषय चारों ही प्रमाणादि वृत्तियाँ ही हैं । इन्ही चारो वृत्तियों से अनुभूत विषयों के सस्कारो को धारण करना ही स्मृति है ॥११॥

एव वृत्तीर्व्याख्याय सोपाय निरोध व्याख्यातुमाह—

एव = इस प्रकार से । वृत्ती = वृत्तियों का । व्याख्याय = वर्णन करके । सोपाय = उपाय के सहित । निरोध = निरोध को, इन्ही वृत्तियों के रोकने को । व्याख्यातु = कहने के लिये । आह = कहते है ।

अभ्यास-वैराग्याभ्या तन्निरोध ॥ १२ ॥

अर्थ —तन् निरोध = उन चित्तवृत्तियों का निरोध, प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप चित्त की वृत्तियों का रोकना। अभ्यासवैराग्याभ्यां = अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा होता है अर्थात् वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों को बाह्य विषयों में गमन से रोककर, उनके बहिः प्रवाह को रोककर, अभ्यास द्वारा सदैव उन वृत्तियों के अन्तः प्रवाह को बनाये रखना ही उन वृत्तियों का निरोध है।

वृत्ति —अभ्यास-वैराग्ये वक्ष्यमाणलक्षणे, ताभ्यां प्रकाश-प्रवृत्ति[1] नियमरूपा या वृत्तयः, तासां निरोधो भवतीत्युक्तं भवति, तासां विनिवृत्तबाह्याभिनिवेशानाम् अन्तर्मुखतया स्वकारण एव चित्ते शक्तिरूपतयाऽवस्थानम्। तत्र विषयदोष-दर्शनजेन वैराग्येण तद्वैमुख्यमुत्पाद्यते, अभ्यासेन च सुखजनक शान्तप्रवाह-प्रदर्शनद्वारेण दृढस्थैर्यमुत्पद्यते, इत्थं ताभ्यां भवति चित्तवृत्तिनिरोध ॥ १२ ॥

अभ्यासवैराग्ये = अभ्यास एवं वैराग्य। वक्ष्यमाणलक्षणे = आगे लक्षण का निरूपण किये जाने वाले हैं। ताभ्यां = उन्हीं दोनों के द्वारा। प्रकाशप्रवृत्ति-नियमरूपा = प्रकाश करने वाली, कार्यों में प्रवृत्त करने वाली एवं नियमन करने वाली। या =जो। वृत्तय = चित्त की वृत्तियाँ है। तासां = उन वृत्तियों का। निरोध = अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा निरोध, रोकना। भवति = होता है। इति उक्तं भवति – ऐसा कहा गया, इसका यह अभिप्राय है। विनि-वृत्तबाह्याभिनिवेशानां = बाह्य विषयों की आसक्ति से लौटी हुई हैं अर्थात् बाह्य-विषयों के सम्बन्ध का त्याग करने वाली। तासां = उन वृत्तियों का। अन्तर्मुख-तया = अन्तर्मुखत्व से, विलोम परिणाम द्वारा। स्वकारणे एव = अपने ही कारण। चित्ते = चित्त में। शक्तिरूपतया = शक्तिरूप से। अवस्थान = स्थापित करना, स्थित करना ही निरोध है। तत्र = उन वृत्तियों में। विषयदोषदर्शन-जेन = विषयों में क्लेश, अनित्यत्व, दुःखरूपत्व इत्यादि दोषों को देखने से उत्पन्न होने वाले। वैराग्येण = वैराग्य के द्वारा। तद् = उन विषयों से। वैमुख्य = विमुखता, पराङ्मुखता, अनिच्छा। उत्पाद्यते = उत्पन्न की जाती है।

---

१ प्रकाशावृत्ति (पा०)।

च = और। अभ्यासेन = अभ्यास के द्वारा। शान्तप्रवाहप्रदर्शनद्वारेण = उद्वेग-रहित शान्त प्रवाह के प्रदर्शन द्वारा। सुखजनक = क्लेश रहित सुख को उत्पन्न करने वाली। दृढस्थैर्यं=चित्तवृत्तियों की दृढ स्थिरता। उत्पद्यते = उत्पन्न होती है। इत्थ = इस प्रकार से। ताभ्या = उन दोनों अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा। चित्तवृत्तिनिरोध = चित्त की वृत्तिया का निरोध, बाह्य विषयों को त्यागकर अपने कारण चित्त में विलीन होना। भवति = होता है॥ १२॥

अभ्यास व्याख्यातुमाह—

अभ्यास = अभ्यास को। व्याख्यातु = व्याख्या करने के लिये। आह = कहते हैं।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास ॥ १३ ॥

अर्थ—तत्र = उनमें, अभ्यास एव वैराग्य दोनों में, अथवा चित्त के निरोध के विषय में। स्थितौ = स्थिति में, चित्तवृत्तियों की स्थिरता के लिये। यत्न = किया गया प्रयत्न, उद्योग, उत्साह ही। अभ्यास = अभ्यास है, अभ्यास कहा जाता है अर्थात् चित्त की प्रशान्त वाहिता, एकाग्रता रूप स्थिति के लिये किये गये यम-नियम-आसन इत्यादि मानसिक उत्साह ही अभ्यास है।

वृत्ति—वृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठ परिणामः स्थिति, तस्या यत्न उत्साह, पुन पुन[२] स्तथात्वेन चेतसि निवेशनमभ्यास इति उच्यते ॥ १३ ॥

वृत्तिरहितस्य = वृत्तियों से रहित। चित्तस्य = चित्त की। स्वरूप-निष्ठ = अपने ही वास्तविक स्वरूप में रहने वाला। परिणाम = परिणाम ही, अवस्था ही। स्थिति = स्थिति है। तस्या = उसी स्थिति में, उसी स्थिति को प्राप्त करने के लिये। यत्न = प्रयत्न, प्रयास अर्थात्। उत्साह = उत्साह, मानसिक चेष्टा ही अर्थात्। पुन पुन = बार बार। तत्त्वेन = तत्त्वज्ञान के द्वारा, विचार पूर्वक। चेतसि = चित्त में। निवेशन = वृत्तियों का प्रवेश करना ही। अभ्यास = अभ्यास। इति उच्यते = इस रूप में कहा जाता है अर्थात् वृत्तियों के निरोध के

---

२ पुनस्तत्त्वेन (पा०)। ३ सत्कारसेवितो (पा०)।

के लिये वार बार प्रयास पूर्वक इन वृत्तियों का उनके कारण चित्त में प्रवेश करना ही अभ्यास है ॥१३॥

तस्यैव विशेषमाह—

तस्य = उस अभ्यास के । एव = ही । विशेष=विशेष स्वरूप को । आह = कहते हैं ।

स तु दीर्घकालादरनैरन्तर्य्यसत्कारासेवितो दृढभूमि ॥१४॥

अर्थ—स —वह अभ्यास । तु = तो । दीर्घकाल = बहुत समय तक । आदर=विश्वास पूर्वक । नैरन्तर्य = निरन्तर, अनवरत, अविच्छिन्न रूप से । सत्कार = श्रद्धा, भक्ति के साथ । आसेवित = सेवन किया जाने पर, अनुष्ठान किया जाने पर । दृढभूमि = सुदृढभूमि, स्थायी अवस्था वाला होता है अर्थात् विश्वास एवं श्रद्धा के साथ बहुत समय तक व्यवधान रहित रूप से यम नियम आदि का सेवन करने से यह अभ्यास दृढ अवस्था वाला होता है ।

वृत्ति—बहुकाल नैरन्तर्य्येण आदरातिशयेन च सेव्यमानो दृढभूमि स्थिरो भवति, दार्ढ्याय प्रभवतीत्यर्थ. ॥ १४ ॥

बहुकाल = बहुत समय तक । नैरन्तर्य्येण = निरन्तर, लगातार, व्यवधान रहित रूप से । च = और । आदरातिशयेन = अत्यधिक आदर के साथ, बहुत ही विश्वास श्रद्धा के साथ । सेव्यमान = सेवन किया जाता हुआ वह अभ्यास । दृढभूमि = सुदृढ अवस्था वाला अर्थात् । स्थिर = स्थिर, स्थायी । भवति = होता है । दार्ढ्याय = दृढता के लिए । प्रभवति = होता है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ १४ ॥

वैराग्यस्य लक्षणमाह—

वैराग्यस्य = वैराग्य के । लक्षण = लक्षण, स्वरूप को । आह = कहते हैं ।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥

अर्थ—दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य=दृष्ट एवं आनुश्रविक विषयो के सम्बन्ध में सर्वथा तृष्णा का अभाव हो जाने वाले चित्त की । वशीकारसंज्ञा=वशीकार नाम वाली अवस्था ही । वैराग्य = अपर वैराग्य है अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव में

आने वाले इस लोक के समस्त स्रक्-चन्दन-विलेपन-रमणी-अन्न-पान इत्यादि दृष्ट विषयों, भोगों में तथा वेद द्वारा ज्ञात होने वाले स्वर्ग स्थित अप्सरा-अमृतपान इत्यादि आनुश्रविक विषयों, भोगों में अनित्यत्व, दु:खरूपत्व, न्यूनाधिक्य इत्यादि दोषों को देखकर उनको प्राप्त करने की अभिलाषा न रखने वाले चित्त की जो वशीकार दशा होती है, वही अपर वैराग्य है।

वृत्ति—द्विविधो हि विषयो दृष्ट आनुश्रविकश्च। दृष्ट इहैवोपलभ्यमान शब्दादि, देवलोकादावानुश्रविक, अनुश्रूयते गुरुमुखादित्यनुश्रवो वेद, तत आगत आनुश्रविक। तयोर्द्वयोरपि विषययो परिणामविरसत्वदर्शनाद्विगतगर्द्धस्य या वशीकारसंज्ञा 'ममैते वश्या नाहमेतेषा वश्य' इति योऽय विमर्श,[2] तद्वैराग्यमुच्यते॥ १५॥

द्विविध हि = दो प्रकार के ही। विषय = विषय होते हैं। दृष्ट = दृष्ट। च = और। आनुश्रविक = आनुश्रविक। इह एव = इस ही, इसी ससार में। उपलभ्यमान = प्राप्त होने वाले, अन्त करण तथा इन्द्रियों द्वारा भोगे जाने वाले। शब्दादि = शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि। दृष्ट = दृष्ट, लौकिक विषय है। देवलोकादौ = देवलोक, स्वर्ग इत्यादि में भोगे जाने वाले। आनुश्रविक = आनुश्रविक विषय है। गुरुमुखात् = गुरु के मुख से उच्चरित होने पर। अनुश्रूयते = बाद में सुना जाता है। इति = इस रूप से, इसलिये। अनुश्रव = अनुश्रव ही। वेद = वेद है अर्थात् अनुश्रव को वेद कहते हैं। तत् = उसी वेद से। तत आगत = प्राप्त होने वाला, ज्ञात होने वाला विषय ही। आनुश्रविक = आनुश्रविक कहा जाता है। तयो द्वयो = उन्हीं दृष्ट एवं आनुश्रविक दोनों प्रकार के विषयों में। अपि = भी। परिणाम = परिणाम, अनित्यता, नश्वरता। विरसत्व = रस का अभाव, आनन्द का अभाव, दु:ख को। दर्शनात् = देखने से, ज्ञान होने से। विगतगर्द्धस्य = दूर हो गया है लोभ जिसका, लोभ रहित,

---

१ तद्गमधिगत (पा०)। २ द्र० "वशीकारसज्ञा ममैवैते वश्या नाहमेतेषा वश्य इति योऽय विमर्शस्तद् वैराग्यमुच्यते" (योगचिन्तामणि, पृ २७)।

ग्रहण की अभिलाषा से रहित चित्त की। या = जो। वशीकारसंज्ञा = वशीकार संज्ञा है अर्थात् यतमान-व्यतिरेक-एकेन्द्रिय के पश्चात् सभी प्रकार की तृष्णाओं का अभाव रूप जो चित्त की वशीकार नाम वाली चतुर्थ संज्ञा है अर्थात् "एते = ये सभी विषय। मम = मेरे ही। वश्या = वश में है। अहं = मैं। एतेषां = इन विषयों के। वश्य = वश में। न = नहीं हूँ।" इति = इस प्रकार का। यः = जो। अयं = यह। विमर्शः = ज्ञान है। तद् = वही। वैराग्य = अपर वैराग्य। *उच्यते = कहा जाता है* ॥ १५ ॥

तस्यैव विशेषमाह—

तस्य = उस वैराग्य का। एव = ही। विशेष = विशेष स्वरूप, भेद। आह = कहते हैं।

तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पुरुषख्याते = प्रकृति एवं पुरुष का विवेक ज्ञान हो जाने पर। गुणवैतृष्ण्य = प्रकृति के गुणों में भी सर्वथा तृष्णा का अभाव हो जाना ही। तत् = वह। परं = पर वैराग्य है अर्थात् प्रकृति एवं पुरुष का भेद ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, प्रकृति के गुणों में अथवा सत्त्वगुण बुद्धि के कार्य विवेक ज्ञान में भी तृष्णा का अभाव हो जाता है। यह निर्विषयक बुद्धि की केवल शुद्ध ज्ञान मात्र की प्रसन्नता है। चित्त की यही अवस्था पर वैराग्य है।

वृत्ति—तद्वैराग्यं परं प्रकृष्टम्, प्रथमं वैराग्यं विषयविषयम्, द्वितीयं गुणविषयम् उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेरेव भवति, निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात् ॥ १६ ॥

तद् = वह। वैराग्य = वैराग्य। परं = पर है अर्थात्। प्रकृष्ट = प्रकृष्ट, सर्वश्रेष्ठ, चरम पराकाष्ठा रूप है। प्रथमं = प्रथम। वैराग्य = अपर नामक वैराग्य। विषयविषय = दृष्ट तथा आनुश्रविक विषय वाला है अर्थात् दृष्ट एवं आनुश्रविक भोगों में तृष्णा का अभाव रूप है। द्वितीय = द्वितीय पर वैराग्य। गुणविषय = गुण विषय वाला है अर्थात् गुणों का भी परित्याग करने वाला निर्गुणातीत है। जो उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्याते = प्रकृति एवं पुरुष के भेद ज्ञान के उत्पन्न होने पर। एव = ही। भवति = होता है। निरोधसमाधेः = निरोध समाधि, असंप्रज्ञात समाधि के लिये। अत्यन्त = बहुत ही। अनुकूल-

त्वात् = अनुकूल होने के कारण, सहायक होने के कारण अर्थात् पर वैराग्य असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि में बहुत ही उपयोगी है ॥ १६ ॥

एवं योगस्य स्वरूपमुक्त्वा सम्प्रज्ञातस्वरूपभेदमाह[1]—

एवं = इस प्रकार। योगस्य = योग के। स्वरूप = स्वरूप, लक्षण को। उक्त्वा = कहकर, निरूपण करके। अब। सम्प्रज्ञातस्वरूपभेद = सम्प्रज्ञात समाधि के स्वरूप तथा भेद, प्रकार को। आह = कहते हैं।

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥ १७ ॥

अर्थ —वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् = वितर्क, विचार, आनन्द एवं अस्मिता के स्वरूप का अनुगमन करने वाली, सम्बन्ध रखने वाली चित्तवृत्ति का निरोध। सम्प्रज्ञात = सम्प्रज्ञात समाधि होती है अर्थात् वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगतरूप से चित्त की वृत्तियों का निरोध ही सम्प्रज्ञात योग है।

समाधिरिति शेषः। सम्यक् संशयविपर्ययरहितत्वेन प्रज्ञायते प्रकर्षेण ज्ञायते भाव्यस्य रूपं येन स सम्प्रज्ञातः, समाधिर्भावनाविशेषः। स वितर्कादिभेदाच्चतुर्विधः —सवितर्कः, सविचारः, सानन्दः, सास्मितश्च। भावना[2] भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्, भाव्यञ्च द्विविधम्—ईश्वरस्तत्त्वानि च। तान्यपि द्विविधानि जडाजडभेदात्, जडानि चतुर्विंशतिः, अजडः पुरुषः।

तत्र यदा[3] महाभूतानि इन्द्रियाणि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धा-

---

१ सम्प्रज्ञातरूपभेदमाह (पा०)।

२ अत्रत्या भोजवृत्ति शिवानन्देन योगचिन्तामणौ अनुसृता—"भावना च विषयान्तरपरिहारेण भाव्यस्य चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्। भाव्यन्तु द्विविधम् ईश्वरस्तत्त्वानि च। तत्त्व पूर्वं द्विविधानि-अजडो जडानि च। जडानि प्रकृतिमहदहङ्कारैकादशेन्द्रियपञ्चतन्मात्रपञ्चभूतभेदाच्चतुर्विंशति अजडः पुरुषः" (पृ० ८)।

३ सवितर्कादिभेदानामत्र यद् विवरणं दत्तं तत् सर्वं शिवानन्देन अनुसृतमेवेति दृश्यते। (तत्रैव, पृ० ८-९)।

नेन शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन च भावना क्रियते, तदा सवितर्क समाधि । अस्मिन्नेवावलम्बने पूर्वापरानुसन्धानशब्दोल्लेखशून्यत्वेन यदा भावना प्रवर्त्तते तदा निर्वितर्क । तन्मात्रान्त करणलक्षण सूक्ष्मविषयमालम्ब्य तस्य देशकाल-धर्मावच्छेदेन यदा भावना, तदा सविचार । तस्मिन्नेवावलम्बने देशकालधर्मा-वच्छेद विना धर्मिमात्रावभासित्वेन भावना क्रियमाणा निर्विचार इत्युच्यते । एवपर्य्यन्त समाधि ग्राह्यसमापत्तिरिति व्यपदिश्यते ।

यदा तु रजस्तमोलेशानुविद्धमन्त करणसत्त्व भाव्यते, तदा गुणभावाच्चितिशक्ते सुखप्रकाशमयस्य सत्त्वस्य भाव्यमानस्योद्रेकात् सानन्द समाधिर्भवति । तस्मिन्नेव समाधौ ये बद्धधृतयस्तत्त्वान्तर प्रधान-पुरुषरूप न पश्यन्ति, ते विगतदेहाहङ्कार-त्वाद्विदेहशब्दवाच्या । इय ग्रहणसमापत्ति ।

तत पर रजस्तमोलेशानभिभूतशुद्धसत्त्वमालम्बनीकृत्य या प्रवर्त्तते भावना, तस्या ग्राह्यस्य सत्त्वस्य न्यग्भावाच् चितिशक्ते रुद्रेकात् सत्तामात्रावशेषत्वेन समाधि सास्मित इत्युच्यते । न चाहङ्कारास्मितयोरभेद शङ्कनीय, यतो यत्रान्त करणम् 'अहमिति' उल्लेखेन विषयान् वेदयते, सोऽहङ्कार, यत्रान्तर्मुखतया प्रतिलोम-परिणामे प्रकृतिलीने चेतसि सत्तामात्रम् अवभाति, साऽस्मिता । अस्मिन्नेव समाधौ ये कृतपरितोषा पर परमात्मान[1] पुरुष न पश्यन्ति, तेषा चेतसि स्वकारणे लयमुपागते, प्रकृतिलया इत्युच्यन्ते ये पर पुरुष ज्ञात्वा भावनाया प्रवर्त्तन्ते, तेषामिय विवेकख्यातिर्ग्रहीतृसमापत्तिरित्युच्यते ।

वृत्ति —तत्र सम्प्रज्ञाते समाधौ चतस्रोऽवस्था. शक्तिरूपतयाऽवतिष्ठन्ते, तत्रैकैकस्यस्त्याग[2] उत्तरोत्तरेति चतुरवस्थोऽय सम्प्रज्ञात समाधि ।।१७।।

समाधिरिति शेष = समाधि इस रूप में शेष है अर्थात् प्रस्तुत सूत्र में समाधिपद शेष है, इसका सम्बन्ध सूत्र के साथ होना चाहिये । सम्यक् = अच्छी प्रकार से । सशयविपर्य्ययरहितत्वेन = सशय एव विपर्यय का अभाव हो जाने से । येन = जिसके द्वारा । भाव्य = ध्येय पदार्थ का । रूप = वास्तविक स्वरूप । प्रज्ञायते = भली भाँति जाना जाता है । प्रकर्षेण = प्रकृष्ट रूप से । ज्ञायते = जाना जाता है । स = वही । सप्रज्ञात = सप्रज्ञात समाधि है । भावनाविशेष =

---

१ परमात्मान (पा०) । २. उत्तरोत्तरत्वेति (पा०) ।

विशेष प्रकार की भावना, विचार ही । समाधि =समाधि है । स =वह समाधि वितर्कादिभेदात = वितर्क इत्यादि के भेद से । चतुर्विध = चार प्रकार की है । यथा । सवितर्क = वितर्क सहित । सविचार = विचार सहित । सानन्द = आनन्द सहित । च = और । सास्मित = अस्मिता सहित । भावना = यह विशेष भावना रूपी समाधि । विषयान्तरपरिहारेण = ध्येय से प्रतिकूल विषयो का परिहार करके, दूर करके । भाव्यस्य = ध्येय, भावना किये जाने वाले पदार्थ का । चेतसि = चित्त में । पुन पुन = बार बार । निवेशन = प्रवेश करना, चिन्तन करना है । च = और । भाव्य = यह ध्येय पदार्थ । द्विविध = दो प्रकार का है । ईश्वर = ईश्वर । च = और । तत्त्वानि = तत्त्व । जडाजडभेदात् = अचेतन एव चेतन भेद से । तानि = वे । अपि = भी । द्विविधानि = दो प्रकार के हैं । जडानि = जड तत्त्व । चतुर्विंशति = चौबीस हैं । अजड = चेतन । पुरुष = पुरुष है । तत्र = उस सप्रज्ञात समाधि में । तदा = तब । सवितर्क = सवितर्क । समाधि = समाधि होती है, उसे सवितर्क सप्रज्ञात समाधि कहते है । यदा = जब । स्थूलानि = स्थूल रूप से । महाभूतानि = पञ्चमहाभूत इन्द्रियाणि = और इन्द्रियों को । विषयत्वेन = विषय रूप से । आदाय = लेकर, ग्रहण करके । पूर्वापरानुसन्धानेन = पूर्व और अपर दशाओ के अनुसन्धान द्वारा अर्थात् पूर्वदशा उद्भव एव अपर दशा, तिरोभाव के विचार से । च = और । शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन = शब्द, अर्थ, उल्लेख (ज्ञान) के भेदो के साथ । भावना = भावना, ध्यान । क्रियते = किया जाता है अर्थात् जब स्थूल महाभूतों एव इन्द्रियों, को ध्येय आलम्बन बनाकर, उनमें विद्यमान शब्द, पदार्थ, ज्ञान इत्यादि विषय, गुण, धर्म, दशा इत्यादि सभी स्थूल विषयों का ध्यान किया जाता है, तब सवितर्क समाधि होती है । अस्मिन् एव अवलम्बने = इसी स्थूल महाभूत एव इन्द्रिय रूप आश्रय, ध्येय विषय में । पूर्वापरानुसन्धानशब्दोल्लेखशून्यत्वेन = उद्भव, तिरोभाव का विचार एव शब्द, अर्थ, ज्ञान इत्यादि के निर्देश से रहित रूप से । यदा = जब । भावना = भावना । प्रवर्तते = की जाती है । तदा = तब । निर्वितर्क = निर्वितर्क नाम की सप्रज्ञात समाधि होती है । तन्मात्रान्तःकरणलक्षण = शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध रूप सूक्ष्म तन्मात्राओ एव अन्तःकरण रूप सूक्ष्मविषय = सूक्ष्म

देखने हैं। ते = वे साधक। विगतदेहाहङ्कारत्वात् = देह से अहंकार के दूर हो जाने के कारण। विदेहशब्दवाच्या = विदेह नाम से कहे जाते हैं। इय = यह अवस्था। ग्रहणसमापत्ति = ग्रहणसमापत्ति, बुद्धिविषयक समाधि है। तत परः= इसके पश्चात्। रजस्तमोलेशानभिभूतशुद्धसत्त्व = रजो गुण तथा तमो गुण के सम्बन्ध से अभिभूत न की गई शुद्ध सत्त्व गुण वाली बुद्धि को। रजोगुण तथा तमोगुण के प्रभाव से रहित रजोगुण एव तमोगुण-से सर्वथा असबद्ध सत्त्वगुण-बहुला बुद्धि को। आलम्बनीकृत्य = आलम्बन बना करके, ध्येय रूप से। या = जो। भावना = विचार, ध्यान। प्रवर्तते = प्रवृत्त होता है, किया जाता है। तस्या = उस भावना, ध्यान में। ग्राह्यस्य = ग्राह्यबुद्धि के। न्यग्भावात् = अभिभूत, दबाई गई, न्यून स्वरूप होने के कारण। चितिशक्तेः = (साथ ही) चेतनशक्ति, चैतन्य पुरुष की। उद्रेकात् = अधिकता के कारण। सत्तामात्रावशेषत्वेन = केवल सत्तारूप से शेष रहने वाली, सत्तामात्र की प्रतीति कराने वाली, सभी विषयो का ज्ञान प्राप्त कराने वाली बुद्धि का भी विलय हो जाने से। समाधि = समाधि। सास्मित = सास्मित, अस्मितानुगत। इति उच्यते = इस रूप मे कही जाती है। अहङ्कारस्मितयो च = अहङ्कार और अस्मिता में। अभेद = अभेद, एकरूपता की। न शङ्कनीय = शङ्का नहीं करनी चाहिये। दोनो को एकरूप नहीं मानना चाहिये। यत = क्योंकि। यत्र = जहाँ पर, जिस समय। अन्त करण = अन्त करण। 'अहम् इति' = मैं हूँ इस रूप से 'अहमत्र अधिकृत' इस अह भाव से। उल्लेखेन = उल्लेखपूर्वक, ज्ञानरूप अह भावना के द्वारा। विषयान् = विषयों का। वेदयते = ज्ञान प्रदान करता है। स = वही। अहङ्कार = अहङ्कार है। यत्र = जब, जिस समय। अन्तर्मुखतया = अन्तर्मुखीरूप से, बाह्य विषयों का परित्याग कर भीतर की ओर। प्रतिलोमपरिणामे = विलोम परिणाम में, विषयों से विमुख प्रवृत्ति होने से। प्रकृतिलीने = बुद्धि का अपने कारण प्रकृति में विलीन हो जाने पर। चेतसि = चित्त, बुद्धि में। सत्तामात्र = केवल सत्ता की ही, पुरुष के स्वरूप की ही। अवभाति = प्रतीति होती है। सा = वह। अस्मिता = स्मिता है। विषयों से उपरत हुई बुद्धि जब अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाती है, तब पुरुष के सत्तामात्र की ही प्रतीति होती है, यही दशा अस्मिता है। इससे युक्त समाधि अस्मितानुगत है। अस्मिन् एव

समाजो = इसी अस्मितानुगत समाधि में। ये = जो साधक। कृतपरितोषा सतुष्ट हो गये है, सतोष प्राप्त कर चुके हैं। और। पर = सर्वश्रेष्ठ। परमात्मान = परमात्मा। पुरुप = पुरुष को। न = नही। पश्यन्ति = देखते हैं। तेषा = उन साधकों को। चेतसि = चित्त, बुद्धि। स्वकारणे = अपने कारण प्रकृति में। लयमुपगते = लय प्राप्त होने पर, विलीन हो जाने पर। प्रकृतिलया = प्रकृतिलय, प्रकृति में लय को प्राप्त करने वाले। इति = इस नाम से। उच्यन्ते = कहते हैं। ये = जो साधक। पर पुरुप = बुद्धि-प्रकृति से परे सर्वश्रेष्ठ पुरुप को। ज्ञात्वा = जानकर। भावनायाम्=उस पुरुष के स्वरूप ज्ञान में, विचार, ध्यान में। प्रवर्त्तन्ते= प्रवृत्त होते हैं, प्रयास करते हैं। तेषा = उन साधकों की। इय = यह। विवेकख्याति = प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान। ग्रहीतृसमापत्ति = ग्रहीतृ समापत्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। तत्र = उस। सप्रज्ञाते समाधौ = सप्रज्ञात समाधि मे। चतस्र = सवितर्क-सविचार-सानन्द-सास्मित रूप चारो। अवस्था = भावना की विशेष अवस्थायें। शक्तिरूपतया = शक्तिरूप से। अवतिष्ठन्ते = विद्यमान रहती हैं। तत्र = उनमें। एकैकस्या =एक-एक अवस्थाओं का त्याग। एव क्रमश। उत्तरोत्तरेनि=उत्तर-उत्तर, बाद-बाद की अवस्थाओं की प्राप्ति के रूप से। चतुरवस्थ =चार दशाओं वाली। अयम्=यह। संप्रज्ञात =सप्रज्ञात समाधि =समाधि है ॥ १७ ॥

असम्प्रज्ञातमाह—

असप्रज्ञात = असप्रज्ञात समाधि के स्वरूप को। आह = कहते हैं।

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्व. संस्कारशेषोऽन्य ॥१८॥

अर्थ—विरामप्रत्यय = सभी वृत्तियों के उपरत हो जाने की प्रतीति का। अभ्यासपूर्व =पर वैराग्य द्वारा सतत अभ्यास पूर्वक। सस्कारशेष =सभी वृत्तियों का अभाव हो जाने से, सस्कारमात्रशेष। अन्य = सप्रज्ञात से भिन्न दूसरी असप्रज्ञात समाधि होती है अर्थात् पर वैराग्य के सतत अभ्यास, अनुष्ठान द्वारा समस्त चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाने पर, जो केवल संस्कार शेष रूप अवस्था चित्त की है, वही असप्रज्ञात, निर्विषयक, निर्बीज निर्वृत्तिक समाधि है। यथा भर्जित बीज अकुर की उत्पत्ति में असमर्थ होता है, फिर भी स्वरूप से

स्थित होता है, उसी प्रकार निरुद्ध चित्त भी वृत्तिरूप अङ्कुर उत्पन्न करने में असमर्थ है। फिर भी स्वरूप में संस्कार मात्र शेष रहता है। अविद्या रूप बीज से रहित होने के कारण यह समाधि निर्बीज है।

वृत्ति— विरम्यतेऽनेनेति[१] विरामो वितर्कादिचिन्तात्याग, विरामश्चासौ प्रत्ययश्चेति विरामप्रत्यय, तस्याभ्यास पौन पुन्येन चेतसि निवेशनम्। तत्र या काचित् वृत्तिरुल्लसति, तस्या 'नेति नेती' ति नैरन्तर्येण पर्युदसन विरामप्रत्ययाभ्यास, तत्पूर्व सम्प्रज्ञातसमाधि । सस्कारशेषोऽस्य तद्विलक्षण, अयमसम्प्रज्ञात इत्यर्थ । न तत्र किञ्चिद्वेद्यम्। असम्प्रज्ञातो निर्बीज समाधि ।

इह चतुर्विध चित्तस्य परिणाम,—व्युत्थान, समाधिप्रारम्भ, एकाग्रता निरोधश्च। तत्र क्षिप्तमूढे चित्तभूमी व्युत्थानम्। विक्षिप्ता भूमि सत्त्वोद्रेकात् समाधिप्रारम्भ । निरुद्धैकाग्रते च पर्यन्तभूमी। प्रतिपरिणामञ्च सस्कारा, तत्र व्युत्थानजनिता सस्कारा समाधिप्रारम्भजै सस्कारै प्रत्याहन्यन्ते तज्जाश्च एकाग्रताजै। निरोधजनिर्नैरेकाग्रताजा निरोधजा सस्कारा स्वरूपञ्च हन्यन्ते, यथा सुवर्णसवलित ध्मायमान सीसकमात्मान सुवर्णमलञ्च निर्दहति, एवमेकाग्रताजनितान् सस्कारान् निरोधजा स्वात्मानञ्च निर्दहन्ति ॥१८॥

विरम्यते = उपरत हुआ जाता है, दूर हुआ जाता है। अनेन = इसके द्वारा। इति = इसलिए। विराम = इसे विराम कहते हैं। वितर्कादिचिन्तात्याग = वितर्क इत्यादि चिन्ताओं का त्याग है। विराम = चित्त की वृत्तियों का विषयों से उपरमण। च = और। असौ = वही। प्रत्ययश्च = ज्ञान, प्रतीति हो। इति विरामप्रत्यय = यही विरामप्रत्यय का अर्थ है। अर्थात् वृत्तियों के निरोध का ज्ञान ही विरामप्रत्यय का अर्थ है। तस्य = उसी प्रतीति का। अभ्यास = अभ्यास अर्थात्। पौन पुन्येन = बार बार। चेतसि = चित्त में। निवेशन = प्रवेश करना है अर्थात् वृत्तिनिरोध ज्ञान को बार बार चित्त में ध्यान करना ही अभ्यास है। तत्र = उसमें। या = जो। काचित् कोई। वृत्ति = चित्त की वृत्ति। उल्लसति = उद्भूत होती है। तस्या = उसी वृत्ति का। 'न इति

---

१ अनया भोजवृत्ति शिवानन्देन अनुसृता १।१८ सूत्रव्याख्याप्रसगे (योगचिन्ता पृ० ९)।

न इति' = 'अपना स्वरूप नही है, अपना स्वरूप नही है' इस रूप से। नैरन्त-र्येण = निरन्तररूप से, सदा। पर्युदसन = परित्याग करना ही। विराम-प्रत्याभ्यास = उपरत वृत्ति के ज्ञान का अभ्यास है। तत्पूर्व = उसी अभ्यास-पूर्वक। सप्रज्ञातसमाधि = सप्रज्ञात समाधि होती है। सस्कारशेष = केवल सस्कार मात्र शेष रहने वाली। अन्य = अन्य, दूसरी समाधि। तद्विलक्षण = उस सप्रज्ञात से भिन्न स्वरूप वाली। अय = यह। असप्रज्ञात = असप्रज्ञात समाधि है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। तत्र = उस असप्रज्ञात समाधि में। किञ्चित् = कोई भी पदार्थ, विषय। न वेद्य = वेद्य, जानने योग्य, ध्येय पदार्थ नही होता। असप्रज्ञात = असप्रज्ञात ही। निर्बीज समाधि = निर्बीज समाधि है, निरालम्ब समाधि है। इह = इस असप्रज्ञात समाधि में। चित्तस्य = चित्त की। चतुर्विध = चार प्रकार की। परिणाम = दशायें होती है। तथा। व्युत्था-न = १ व्युत्थान। समाधिप्रारम्भ = २ समाधिप्रारम्भ। एकाग्रता = ३ एका-ग्रता। च = और। निरोध = ४ निरोध। तत्र = उन चारो अवस्थाओ में। क्षिप्तमूढे = क्षिप्त और मूढ दोनों। चित्तभूमी = चित्त की भूमियाँ। व्युत्थान = व्युत्थान है अर्थात् क्षिप्त एव मूढ भूमियो में चित्त का व्युत्थान परिणाम होता है। सत्त्वोद्रेकात् = सत्त्वगुण की अधिकता के कारण। विक्षिप्ता भूमि = चित्त की विक्षिप्त भूमि। समाधिप्रारम्भ = समाधि की प्रारम्भ की अवस्था है अर्थात् चित्त के एकाग्रता की आरम्भ की दशा है। निरुद्धैकाग्रते च = निरुद्ध और एकाग्रता दोनो ही। पर्यन्तभूमी = पर्यन्त भूमियाँ है। च = और जो। प्रतिपरि-णाम = विलोम परिणाम, प्रसव रहित। सस्कारा = सस्कारो की दशा है अर्थात् निरुद्ध एवं एकाग्र दोनो ही भूमियाँ सस्कारो के विलोम परिणाम की अवस्थायें है, जिनमें सस्कारो का क्रमश लोप होता जाता है। तत्र = उनमें, उन चतुर्विध परिणामों में। व्युत्थानजनिता = व्युत्थानदशा में उत्पन्न हुये। सस्कारा = संस्कार। समाधिप्रारम्भजै = समाधि प्रारम्भ परिणाम से उत्पन्न। सस्कारै = सस्कारो के द्वारा। प्रत्याहन्यन्ते = नष्ट कर दिये जाते है। च = और। तत् जा = उस समाधिप्रारम्भ से उत्पन्न सस्कार। एकाग्रताजै = एकाग्रता परिणाम से उत्पन्न सस्कारों के द्वारा नष्ट कर दिये जाते है। एकाग्रताजा = एकाग्रता से उत्पन्न हुये सस्कार। निरोधजनितै = निरोध परिणाम से उत्पन्न सस्कारो के

द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। च = और। निरोधजा = निरोध से उत्पन्न संस्कार। स्वरूप = अपने स्वरूप को भी। हन्यन्ते = नष्ट कर देते हैं। यथा = जैसे। सुवर्णसंवलित = सुवर्ण में मिला हुआ, मिश्रित। ध्मायमान = तपाया जाता हुआ। सीसक = शीशा। आत्मान = स्वयं अपने को। च = और। सुवर्णमल = सुवर्ण के मल, कलुष को। निर्दहति = जलाता है, भस्म कर देता है। एवं = इसी प्रकार से। निरोधजा = निरोध से उत्पन्न संस्कार। एकाग्रताजनितान् = एकाग्रता से उत्पन्न। संस्कारान् = संस्कारों को। च = और। स्वात्मान=अपने स्वरूप को अपने से भी उत्पन्न संस्कारों को। निर्दहन्ति = अच्छी तरह जला देते हैं, दूर कर देते हैं। जैसे सुवर्ण में डाला हुआ शीशा अग्नि में तपाये जाने पर स्वर्ण की कलुषता तथा साथ ही स्वयं अपने को भी भस्म कर देता है। इसी प्रकार निरोध से उत्पन्न संस्कार, एकाग्रता से उत्पन्न संस्कारों को नष्ट कर देते हैं, साथ ही अपने से भी उत्पन्न संस्कारों को भस्म कर देते हैं॥ १८॥

तदेवं योगस्य स्वरूपं भेदञ्च सङ्क्षेपेणोपायाश्चाभिधाय विस्तररूपेणोपाय योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकमुपक्रमते—

एवं=इस प्रकार से। तद् = उस। योगस्य = योग के। स्वरूप = स्वरूप, लक्षण। च = और। भेद = भेद, प्रकार को। च=और। सङ्क्षेपेण = संक्षिप्त रूप से। उपायान् = उपायों को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। योगाभ्यासदर्शनपूर्वकम्=योग के अभ्यास के प्रदर्शन के द्वारा। उपाय = उपाय, योग-सिद्धि के साधन को। विस्तररूपेण = विस्तार के साथ। उपक्रमते = वर्णन करना प्रारम्भ करते हैं।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—विदेहप्रकृतिलयाना = विदेह एवं प्रकृतिलय साधकों को असम्प्रज्ञात समाधि। भवप्रत्यय = भवप्रत्यय होती है। प० वाचस्पति मिश्र के अनुसार विदेह एवं प्रकृतिलय उपासकों की सर्ववृत्तिनिरोधरूपसमाधि भवप्रत्यय = अविद्या जन्य होती है। 'भवन्ति जायन्तेऽस्यां जन्तव इति भवोऽविद्या स उल्लदय भव प्रत्यय कारण यस्य निरोधसमाधेः स भवप्रत्ययः' तत्ववैशारदी १।१९। यह निरोध समाधि दो प्रकार की है—१—उपाय प्रत्यय २—भवप्रत्यय। योगियों

की समाधि पर वैराग्य, श्रद्धा इत्यादि उपायो से उत्पन्न होने वाली है। भव-प्रत्यय समाधि तो ससार के कारण अविद्या से उत्पन्न होती है। अविद्याजन्य-वृत्तिनिरोध ही भवप्रत्यय है। क्योंकि अविद्या के कारण ही विदेह एव प्रकृति-लय साधको को अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि हो जाती है। अत इन साधको की सस्कारशेषरूप, वृत्तिनिरोध, भवप्रत्यय समाधि अविद्याजन्य ही है।

भवप्रत्यय का अर्थ जन्म, ससार भी लिया जाता है। विदेह प्रकृतिलीन साधकों का पुनरावर्तन अस्त हुये के पुनरुत्थान के समान होता है। विदेह एव प्रकृतिलय योगियो को भवप्रत्यय = जन्म से असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाती है। पूर्वजन्म के प्रभाव के कारण उत्तर जन्म में प्रारम्भ से ही पर वैराग्य से विरामप्रत्यय का अभ्यास करके असप्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती है। उनकी समाधि आयास, उपाय साध्य नही है। महाविदेह ३।४३ एव प्रकृतिलय १।४५,३।४८ की अवस्था प्राप्त करते ही जिन योगियों के पाञ्चभौतिक शरीर का विनाश हो जाता है। और कैवल्य में हेतुरूप प्रकृतिपुरुषविवेकख्याति को नहीं प्राप्त कर पाते। इस प्रकार के योगियो के लिये यह निर्बीज, असप्रज्ञात समाधि उपाय जन्य नही होती। उनकी समाधि की सिद्धि में भवप्रत्यय, मनुष्य-जन्म, पुनर्जन्म, ससार ही कारण है।

वृत्ति—विदेहा प्रकृतिलयाश्च वितर्कादिभूमिकासूत्रे (१।१७) व्याख्याता, तेषा समाधिर्भवप्रत्यय, भव ससार, स एव प्रत्यय कारण यस्य स भवप्रत्यय। अयमर्थ—आधिमात्रान्तर्भूता एव ते[1] ससारे तथाविधसमाधिभाजो भवन्ति, तेषा परतत्त्वादर्शनात् योगाभासोऽयम्, अत परतत्त्वज्ञाने तद्भावनायाञ्च मुक्तिकामैन महान् यत्नो विधेय इत्येतदर्थमुपदिष्टम् ॥१९॥

विदेहा = विदेह। च = और। प्रकृतिलया = प्रकृति में लीन होने वाले साधकों की। वितर्कादिभूमिकासूत्रे = १।१७ सवितर्क-सविचार, सानन्द, सास्मित समाधि की भूमिका, प्रस्तावना वाले सूत्र में। व्याख्याता = व्याख्या की गई है। तेषा = उनकी। समाधि = समाधि। भवप्रत्यय = भवप्रत्यय है।

---

१ आविर्भूत एव संसारे ते (पा०)।

भव = भव ही। संसार = संसार है अर्थात् भव का अर्थ है संसार। स एव = वही भव, संसार ही है। प्रत्यय = प्रत्यय अर्थात्। कारण = कारण, हेतु। यस्य = जिसका, जिस समाधि का। स = वही समाधि। भवप्रत्यय = भवप्रत्यय कही जाती है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। ते—वे लोग। संसारे = संसार में। आधिभावान्तर्भूता = सांसारिक ऐश्वर्यों, भोगों के अन्तर्गत रहने वाले, विषय भोगों से सम्बन्ध रखने वाले। तथाविध = उसी प्रकार, उन्ही सांसारिक विषयों, भोगों के अनुरूप। समाधिभाज = समाधि प्राप्त करने वाले। भवन्ति = होते हैं। परतत्त्वादर्शनात् = परम तत्त्व पुरुष का दर्शन, स्वरूप ज्ञान न होने से। तेषां = उन साधकों की। अयं = यह समाधि। योगाभास = योग का आभास मात्र ही है, यथार्थ योग नहीं। अत = इसलिये। मुक्तिकामेन = मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले के द्वारा। परतत्त्वज्ञाने = परमतत्त्व पुरुष के स्वरूप के ज्ञान में। च = और। तद्भावनाया = उसी तत्त्व के ध्यान, चिन्तन में। महान् = अत्यधिक। यत्न = प्रयत्न, प्रयास। विधेय = करना चाहिये। इति = इस रूप से। एतद् अर्थं = इसी अभिप्राय से। उपदिष्ट = यह उपदेश दिया गया॥ १९॥

तदन्येषान्तु—

तद् = वह योग, निरोध समाधि। अन्येषां = विदेह, प्रकृतिलय से भिन्न दूसरे साधकों को। तु = तो। किस प्रकार सिद्ध होती है, इसी का निरूपण करते हैं।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

अर्थ —इतरेषां = दूसरों की, विदेह-प्रकृतिलय साधकों से भिन्न योगियों की संस्कार शेष रूप निरोधसमाधि। श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक = श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, सम्प्रज्ञातसमाधि एवं प्रज्ञा पूर्वक होती है। अर्थात् योगियों को निरोधसमाधि की सिद्धि श्रद्धापूर्वक, वीर्यपूर्वक, स्मृतिपूर्वक, सम्प्रज्ञातसमाधिपूर्वक एवं प्रज्ञापूर्वक होती है। श्रद्धा इत्यादि उपायों के अनुष्ठान से ही योगियों को निरोध समाधि की प्राप्ति होती है।

वृत्ति—विदेह-प्रकृतिलयव्यतिरिक्ताना श्रद्धादिपूर्वक', श्रद्धादय पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादिपूर्वक, ते च श्रद्धादय क्रमादुपायोपेयभावेन प्रवर्त्तमाना' सम्प्रज्ञात-समाधेरुपायता प्रतिपद्यन्ते। तत्र श्रद्धा योगविषये चेतस प्रसाद । वीर्यमुत्साह । स्मृतिरनुभूतासम्प्रमोष । समाधिरेकाग्रता । प्रज्ञा प्रज्ञातव्यविवेक ।

तत्र श्रद्धावतो वीर्यं जायते, योगविषय उत्साहवान् भवति । सोत्साहस्य च पाश्चात्त्यासु भूमिषु[1] स्मृतिरुत्पद्यते । तत्स्मरणाच्च चेत समाधीयते । समाहित-चित्तश्च भाव्य सम्यक् विवेकेन जानाति । त एते सम्प्रज्ञातस्य समाधेरुपाया, तस्याभ्यासात् पराच्च वैराग्यात् भवत्यसम्प्रज्ञात ॥२०॥

विदेहप्रकृतिलयव्यतिरिक्ताना = विदेह एव प्रकृतिलय साधको से भिन्न योगियो का सस्कारशेषरूप निरोधयोग । श्रद्धादिपूर्वक =श्रद्धा इत्यादि उपायों के द्वारा सिद्ध होता है। श्रद्धादय =श्रद्धा इत्यादि हैं। पूर्वे=प्रारम्भ में। उपाया =उपाय, साधन । यस्य=जिनके । स =वह निरोधयोग । श्रद्धादिपूर्वक =श्रद्धा आदि पूर्वक हैं अर्थात् श्रद्धा इत्यादि उपायो के सेवन, अनुष्ठान से प्राप्त होने वाला है। च=और। ते=वे। श्रद्धादय =श्रद्धा इत्यादि उपाय, साधन। क्रमात=क्रमश । उपायोपेयभावेन=उपाय-उपेय भाव से, उपाय-प्राप्तव्य रूप से, साधनसाध्यरूप से। प्रवर्त्तमाना =प्रवृत्त होते हुए, प्राप्त करते हुए। सम्प्रज्ञात-समाधे =सम्प्रज्ञातसमाधि की । उपायता = साधन रूप को, उपयोगिता को। प्रतिपद्यन्ते = प्राप्त करते हैं । तत्र=उन साधनो में । योगविषये = योग सम्बन्धी विषय में। चेतस = चित्त की। प्रसाद =प्रसन्नता, निर्मलता, यथार्थवस्तुविषयक अभिरुचि ही। श्रद्धा = श्रद्धा है। वीर्य्य=वीर्य। उत्साह = उत्साह हैं। अनुभूतासम्प्रमोष =अनुभव किये गये विषय का लुप्त न होना, न छिपना ही। स्मृति=स्मृति है। समाधि = समाधि। एकाग्रता=ध्यान की एकाग्रता है। प्रज्ञा = प्रज्ञा। प्रज्ञातव्यविवेक = जानने योग्य पदार्थों, प्रकृति-पुरुष का भेद ज्ञान है। तत्र=उनमें। श्रद्धावत =श्रद्धायुक्त साधक में। वीर्य्यं=उत्साह। जायते= उत्पन्न होता है। योगविषये = योगसम्बन्धी विषय में। उत्साहवान्=वह श्रद्धायुक्तसाधक उत्साहयुक्त, उत्साही। भवति = होता है। च = और। सोत्साहस्य = उत्साही साधक की। पाश्चात्त्यासु भूमिषु = पिछली भूमियो

१ पाश्चात्त्यानुभूमिषु (पा०)।

में, पूर्व जन्म की भूमियों में। स्मृति =स्मृति। उत्पद्यते=उत्पन्न होती है। च=और। तत् = उसी। स्मरणात्=स्मरण, स्मृति से। चेत = चित्त। समाधीयते=एकाग्र किया जाता है। च=और। समाहितचित्त = एकाग्रचित्त वाला साधक। भाव्य=ध्येय पदार्थ को। सम्यक् = भली भाँति। विवेकेन = विवेकपूर्वक, यथार्थरूप से, तत्त्वत, पृथक रूप से। जानाति = जानता है, तत्त्व का दर्शन करता है। ते = वे श्रद्धावीर्यस्मृति आदि सभी। एते = ये सभी। सम्प्रज्ञातस्य=सम्प्रज्ञात। समाधे = समाधि के। उपाया =उपाय, साधन हैं। तस्य= उनके, उन साधनों के। अभ्यासात्=अभ्यास, सेवन से। च = और। परात्= पर। वैराग्यात्=वैराग्य के सेवन से। असम्प्रज्ञात = असम्प्रज्ञात समाधि। भवति =होती है, सिद्ध होती है ॥ २० ॥

उक्तोपायवता योगिनाम् उपायभेदाद्भेदानाह—

उक्त=कहे गये, बतलाये गये, निरूपण किये गये। उपायवता=उपाय वाले श्रद्धावीर्य इत्यादि साधनों से असम्प्रज्ञातसमाधि सिद्ध करने वाले। योगिना= योगियों का। उपायभेदात=साधनों के भेद से। भेदान्=भेदों को। आह = कहते है।

तीव्रसंवेगानामासन्न ॥२१॥

अर्थ—तीव्रसंवेगाना = तीव्र संवेग वाले योगियों को। आसन्न =समाधिलाभ अति निकट, शीघ्र ही प्राप्त होने वाला होता है अर्थात् जिन योगियों के संवेग, वैराग्य इत्यादि संस्कार तीव्र, अत्यधिक तेज होते हैं, उनको असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ बहुत ही शीघ्र होता है।

वृत्ति—समाधिलाभ इति शेष। संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतर संस्कार[1], स तीव्रो येषामधिमात्रोपायाना तेषामासन्न[2] समाधिलाभ समाधिफलञ्चासन्न भवति, शीघ्रमेव सम्पद्यत इत्यर्थ ॥२१॥

समाधिलाभ =समाधि का लाभ होता है, सिद्ध होती है। इति शेष = यह शेष है अर्थात् सूत्र के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिए। क्रियाहेतु =

१ द्र०—संवेग क्रियाहेतुर्दृढतर संस्कार (आयुर्वेदसूत्र ४।३)। २ आसन्न इति क्वचिन्न पठ्यते।

क्रिया का हेतु, कार्य के शीघ्र सम्पादन के कारण। दृढतर=और भी अधिक दृढ-बलवत्तर। संस्कार=संस्कार ही। संवेग=संवेग है। स=वही संवेग। येषां=जिन साधकों में। तीव्र=तीव्र, तेज है। अधिमात्रोपायानां=अत्यधिक, अतिशय उपाय, साधनों वाले, प्रकृष्ट संस्कारों वाले। तेषां=उन योगियों को। समाधिलाभ=समाधि की सिद्धि। आसन्न=समीप, शीघ्र होती है। च=और। समाधिफल=समाधि का फल, मोक्ष। आसन्न=अति निकट। भवति=होता है। शीघ्रमेव=शीघ्र ही। सपद्यते=प्राप्त होता है। इति अर्थ=यह अभिप्राय है॥ २१॥

के ते तीव्रसंवेगा इत्याह—

ते=वे। के=कौन। तीव्रसंवेगा=तीव्र संवेग है। इति=ऐसा। आह=कहते है, इनका वर्णन करते है।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेष ॥२२॥

अर्थ—मृदुमध्याधिमात्रत्वात्=मृदु-मध्य-अधिमात्र, मन्द-मध्यम-उच्चरूप होने के कारण। तत=तीव्रसंवेगसंपन्न योगियों में। अपि=भी। विशेष=विशेषता, भेद होता है।

वृत्ति—तेभ्य उपायेभ्यो मृद्वादिभेदभिन्नेभ्य उपायवता विशेषो भवति, मृदुर्मध्योऽधिमात्र इत्युपायभेदा। ते प्रत्येक मृदुसंवेग-मध्यसंवेग-तीव्रसंवेगभेदात् त्रिधा, तद्भेदेन च नव योगिनो भवन्ति, मृदूपायो मृदुसंवेगः मध्यसंवेग तीव्रसंवेगश्च। मध्योपायो मृदुसंवेग मध्यसंवेग तीव्रसंवेगश्च, अधिमात्रोपायो मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगश्च। अधिमात्रे उपाये तीव्रे च संवेगे च महान् यत्न कर्तव्य इति भेदोपदेश ॥२२॥

मृद्वादिभेदभिन्नेभ्य=मृदु इत्यादि भेदों के कारण भिन्न। तेभ्य=उन। उपायेभ्य=उपायों, साधनों से। उपायवता=उपाय वालों, साधनसंपन्न योगियों में। विशेष=विशेषता, भिन्नता। भवति=होती है। मृदु=मृदु, मन्द। मध्य=मध्य, मध्यम। अधिमात्र=अत्यधिक, उच्च, तीव्र इति=इस रूप से। उपायभेदा=उपायों, साधनों के भेद, प्रकार हैं। ते=वे तीनों ही प्रत्येक=प्रत्येक। मृदुसंवेगमध्यसंवेगतीव्रसंवेगभेदात्=मन्द संवेग, मध्य संवेग,

तीव्र संवेग भेद से । त्रिधा = तीन प्रकार के हैं । च = और । तद्भेदेन=उन भेदों के कारण । नव = नव प्रकार के । योगिनः = योगी । भवन्ति = होते हैं । मृदूपाय = मृदु उपाय वाला योगी । मृदुसंवेग = मृदु संवेग । मध्यसंवेग मध्यसंवेग । च=और । तीव्रसंवेग = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार हैं । मध्योपाय = मध्यम उपाय तो । मृदुसंवेग = मृदुसंवेग । मध्यसंवेग = मध्यम संवेग । च = और । तीव्रसंवेग = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार का है । इसी प्रकार । अधिमात्रोपाय = अधिमात्र उपाय, तीव्र उपाय । मृदुसंवेग = मृदु संवेग । मध्यसंवेग = मध्यमसंवेग । च = और । तीव्रसंवेग = तीव्र संवेग भेद से तीन प्रकार का है । इसलिये । अधिमात्रे = तीव्र । उपाये = उपाय, साधन में । च = और । तीव्रे = तीव्र । संवेगे = संवेग में । महान् = अत्यधिक । यत्न = प्रयत्न, प्रयास । कर्त्तव्य = करना चाहिये । इति = इसी विचार से । भेदोपदेश = भेदों के साथ संवेगों का उपदेश, निरूपण किया गया है ॥ २२ ॥

इदानीमेतदुपायविलक्षणं सुगममुपायान्तरं दर्शयितुमाह—

इदानीं = अब । एतद् उपायविलक्षण = इन श्रद्धा-वीर्य-स्मृति इत्यादि उपायों से विलक्षण, अनुपम । सुगम = अति सरल, सुकर । उपायान्तर = समाधि की सिद्धि के लिये दूसरे उपाय, साधन को । दर्शयितु = दिखलाने के लिये, प्रदर्शित करने के लिये । आह=कहते हैं ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥२३॥

अर्थ—वा = अथवा । ईश्वरप्रणिधानात् ईश्वर-प्रणिधान, विशिष्ट भक्ति, सम्यक् समर्पणबुद्धि, शरणागति द्वारा बहुत ही शीघ्र असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है । समाधिसिद्धि का यह अति सरल सुगम उपाय है ।

वृत्ति—ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षण, तत्र प्रणिधानं भक्तिविशेष, विशिष्टमुपासनं, सर्वक्रियाणां तत्रार्पणम्, विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन् परमगुरावर्पयति, तत्प्रणिधानं समाधेस्तत्फललाभस्य च प्रकृष्ट उपायः ॥२३॥

ईश्वर = ईश्वर । वक्ष्यमाणलक्षण = आगे वर्णनीय लक्षण वाला है, ईश्वर का लक्षण आगे निरूपण किया जायेगा । तत्र = उसी ईश्वर में । प्रणिधान = प्रणिधान अर्थात् । भक्तिविशेष = विशिष्ट भक्ति अर्थात् । विशिष्टम्

उपासन = विशेषरूप से उपासना करना । सर्वक्रियाणा=सभी क्रियाओ, अनुष्ठानो का । तत्र–उस ईश्वर में । अर्पण = समर्पित करना । विषयसुखादिक = तरह-तरह के विषय, भोग एवं उनके सुख इत्यादि । फल=फल को । अनिच्छन् = न चाहता हुआ, कामना न करता हुआ । सर्वा = सभी । क्रिया = क्रियाओं को । तस्मिन् = उसी ईश्वर रूप । परमगुरौ = परम गुरु में । अर्पयति = अर्पित करता है । तत् = वही । प्रणिधान = प्रणिधान है । समाधे = असप्रज्ञात, निर्बीज समाधि । च = और । तत्फललाभस्य = उस समाधि के फल लाभ का, कैवल्य-प्राप्ति का । प्रकृष्ट =सर्वश्रेष्ठ । उपाय = साधन है ॥ २३ ॥

ईश्वरस्य प्रणिधानात् समाधिलाभ इत्युक्तम्, तत्रेश्वरस्य स्वरूप प्रमाण प्रभाव वाचकम् उपासनाक्रम तत्फलञ्च क्रमेण वक्तुमाह—

ईश्वरस्य = ईश्वर के । प्रणिधानात् = प्रणिधान, विशिष्ट भक्ति से । समाधिलाभ=असप्रज्ञात समाधि का लाभ, निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है । इति = ऐसा । उक्त = कहा गया । तत्र = उसमें, उस प्रसङ्ग में । ईश्वरस्य = ईश्वर के । स्वरूप = स्वरूप, लक्षण । प्रमाण=सिद्धि में प्रमाण । प्रभाव = प्रभाव, ईश्वर का ऐश्वर्य । वाचक = वाचक शब्द, ईश्वर के स्वरूप को बतलाने वाले नाम, शब्द । उपासनाक्रम = ईश्वर की भक्ति के क्रम को । च=और । तत्=उसके । फल=फल को । क्रमेण = क्रम = से, क्रमश । वक्तु = कहने के लिये, बतलाने के लिये, सुस्पष्ट करने के लिये । आह = कहते हैं ।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर ॥२४॥

अर्थ —क्लेशकर्मविपाकाशयै = क्लेश-कर्म-विपाक एवं आशय से । अपरामृष्ट = असम्बद्ध । पुरुषविशेष = विशिष्ट पुरुष ही । ईश्वर = ईश्वर है अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश-रूप पञ्चविध क्लेशो, पुण्य-पाप-पुण्यपापमिश्रित त्रिविध कर्मों, जाति-आयु-सुखदु खादि भोगरूप त्रिविध विपाको, कर्मों के फलों तथा कर्म सस्कारो के समुदाय रूप कर्माशय, वासनाओ से, जो फलोन्मुख न होकर चित्त में सस्कार रूप से विद्यमान है—इन चतुर्विध दोषो से तीनो काल में विनिर्मुक्त विशिष्ट पुरुष ही ईश्वर है । क्योकि इन दोषो का सभी पुरुषो के साथ अनादि सबन्ध होता ही है । मुक्त पुरुषो का भी प्रारम्भ में सबन्ध था

हों। पर ईश्वर का कभी भी इन दोषों से न तो लेशमात्र भी सम्बन्ध था, न तो वर्तमान समय में है और न भविष्य में होने वाला हो है। अतः इन पुरुषों में जो सर्वथा उत्कृष्टतम, सर्वोत्तम है, वही ईश्वर है।

वृत्ति—क्लिश्नन्तीति क्लेशा अविद्यादयो वक्ष्यमाणाः, विहितनिषिद्धव्यामिश्ररूपाणि कर्माणि, विपच्यन्ते इति विपाका कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः, आफलविपाकाच्चित्तभूमौ शेरत इत्याशयो वासनाख्यसंस्काराः, तैरपरामृष्टः त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृष्टः पुरुषविशेषः, अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यते इति विशेषः, ईश्वर ईशनशीलः, इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः।

यद्यपि सर्वेषामात्मना क्लेशादिस्पर्शो नास्ति, तथापि चित्तगतास्तेषामुपदिश्यन्ते, यथा योद्धृगतौ जय-पराजयौ स्वामिनः। अस्य तु त्रिष्वपि कालेषु तथाविधोऽपि क्लेशादिपरामर्शो नास्ति, अतः सविलक्षण एव भगवानीश्वरः। तस्य च तथाविधमैश्वर्यमनादेः सत्त्वोत्कर्षात्, तस्य सत्त्वोत्कर्षस्य प्रकृष्टाज्ज्ञानादेव, न चानयोर्ज्ञानैश्वर्ययोरितरेतराश्रयत्वं परस्परानपेक्षत्वात्।

ते द्वे ज्ञानैश्वर्ये ईश्वरसत्त्वे वर्त्तमाने अनादिभूते, तेन तथाविधेन सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः, प्रकृति-पुरुषसंयोग-वियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेणानुपपत्तेः यथेतरेषां प्राणिनां सुख-दुःख-मोहात्मकतया परिणतं चित्तं निर्मले सात्त्विके धर्मात्मख्ये[1] प्रतिसङ्क्रान्तं चिच्छायासङ्क्रान्तेः संवेद्यं भवति, नैवमीश्वरस्य, तस्य केवल एव सात्त्विकः परिणाम उत्कर्षवान् अनादिसम्बन्धेन भोग्यतया व्यवस्थितः, अतः पुरुषान्तरविलक्षणतया स एव ईश्वरः।

मुक्तात्मनान्तु पुनः पुनः क्लेशादियोगस्तैस्तैः शास्त्रोक्तैरुपायैर्निवर्तितः, अस्य पुनः सर्वदैव तथाविधत्वान्न मुक्तात्मतुल्यत्वं, न चेश्वराणामनेकत्वं, तेषां तुल्यत्वे भिन्नाभिप्रायत्वात् कार्यस्यैवानुपपत्तेः, उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे य एवोत्कृष्टः, स एवेश्वरः, तत्रैव काष्ठाप्राप्तत्वादैश्वर्यस्य ॥२४॥

क्लिश्नन्ति = दुःख देते हैं, पीडित करते हैं। इति = इसलिये। क्लेशाः = वे क्लेश हैं, क्लेश कहे जाते हैं। वक्ष्यमाणाः = आगे कहे जाने वाले,

---

१ धर्मात्मख्ये योगिशरीरे प्रतिसङ्क्रान्तम् (पा०)।

लक्षण बतलाये जाने वाले अविद्यादय =अविद्या इत्यादि क्लेश हैं। विहितनि-षिद्धव्यामिश्ररूपाणि = शास्त्र द्वारा विधान किये गये, कर्त्तव्य रूप से बतलाये गये—पुण्य कर्म, शास्त्र द्वारा निषेधरूप, अकर्त्तव्यरुप बतलाये गये—पाप कर्म एवं पुण्यपापमिश्रितरूप वाले। कर्माणि = कर्म हैं। विपच्यन्ते = पकते हैं, फल प्रदान करते हैं। इति = इसलिये। विपाका = विपाक हैं। कर्मफलानि = पूर्व-कृत कर्मों के फल। जात्यायुर्भोगा =जाति, विशिष्ट योनि शरीर की प्राप्ति, आयु एवं सुखदु ख इत्यादि भोग प्रदान करने वाले हैं। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। आफलविपाकात्=फल के पकने तक, फल प्रदान पर्यन्त। शेरते=शयन करते हैं, विद्यमान रहते हैं। इति=इसलिये। आशय =आशय है, आशय कहे जाते हैं। वासनाख्यसंस्कार =वासना नाम वाले संस्कार हैं। तै =उन्ही चारो क्लेश-कर्म-विपाक एवं वासनाओ से। अपरामृष्ट =न स्पर्श किया गया, सम्बन्ध-रहित। त्रिषु कालेषु अपि = अतीत-वर्तमान अनागत तीनो कालो में भी। न = नहीं। संस्पृष्ट = सम्बद्ध हुआ, तीनो कालो में सम्बन्ध न रखने वाला। पुरुष-विशेष = जो विशिष्ट पुरुष है। अन्येभ्य = अन्य। पुरुषेभ्य = पुरुषो से। विशिष्यते = अतिशय वाला, पृथक् हो जाता है। इति = इसलिए। विशेष = विशेष कहते हैं। ईश्वर = ईश्वर। ईशनशील = ईशन स्वभाव वाला, शासन करने वाला, व्याप्त करने वाला है अर्थात्। इच्छामात्रेण = इच्छा मात्र से ही, मानसिक व्यापार द्वारा ही। सकलजगदुद्धरणक्षम = समस्त ससार का उद्धार करने में समर्थ है अर्थात् जगत् के उद्भव एवं तिरोभाव में सक्षम है। यद्यपि = यद्यपि। सर्वेषा = सभी। आत्मना = आत्माओ, जीवो, पुरुषों का। क्लेशादि-स्पर्श = क्लेश इत्यादि से स्पर्श, क्लेश-कर्म-विपाक कर्माशय से सम्बन्ध। न = नही। अस्ति = है। तथापि = फिर भी। चित्तगता = चित्तयुक्त होने से, चित्त के साथ सम्बन्ध होने से। तेषा = उनका, उन पुरुषो के लिये। उपदिश्यन्ते = उपदेश दिया जाता है, कहा जाता है अर्थात् क्लेश कर्म-विपाक-आशय चित्त में रहने वाले धर्म हैं और इसी चित्त से सम्बद्ध पुरुष में ये सभी धर्म उपचार सम्बन्ध से कहे जाते हैं। यथा = जैसे। योद्धृगतौ = योद्धागत, सैनिक में रहने वाले, सम्बन्ध रखने वाले। जयपराजयौ = जय और पराजय दोनों ही धर्म। स्वामिन = स्वामी के ही जाते हैं। अस्य = इस ईश्वर रूप विशिष्ट पुरुष का।

तु = तो। त्रिषु कालेषु अपि = तीनों कालों में भी। तथाविध = उस प्रकार का अन्य पुरुषों के समान। अपि = भी। क्लेशादिपरामर्श = क्लेशकर्म इत्यादि का सम्बन्ध। न = नहीं। अस्ति = है। अत = इसलिये। भगवान् = वह ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों से युक्त। ईश्वर = ईश्वर। सविलक्षण = विशिष्ट लक्षणों से युक्त विशेष विशेषताओं से समन्वित। एव = ही। च = और। अनादे = अनादि काल से ही। सत्त्वोत्कर्षात् = सत्वगुण की प्रबलता के कारण। तस्य = उस ईश्वर का। तथाविध = उस प्रकार का, ईशन शील, निर्विकार रूप। ऐश्वर्यं = ऐश्वर्य है। प्रकृष्टात् = अत्यन्त अधिक, अतिशय। ज्ञानात् = ज्ञान से। एव = ही। तस्य = उस ईश्वर के। सत्त्वोत्कर्षस्य = सत्वगुण के उत्कर्ष की स्थिति है, सत्त्व की उत्कृष्टता है। च = और। अनयो = इन दोनों। ज्ञानैश्वर्ययो = ज्ञान एव ऐश्वर्य में। इतरेतराश्रयत्व = एक दूसरे का आश्रय-आश्रयी होना, परस्पर आश्रयत्व। न = नहीं है। परस्परानपेक्षत्वात् = एक दूसरे की अपेक्षा न रखने के कारण अर्थात् लोक में ज्ञान से ऐश्वर्य एव ऐश्वर्य से ज्ञान की प्राप्ति होती है। किन्तु ईश्वर में ज्ञान तथा ऐश्वर्य के परस्पर आश्रयत्व का नितान्त अभाव है। ज्ञानैश्वर्ये = ज्ञान और ऐश्वर्य। ते = वे। द्वे = दोनों। ईश्वरसत्त्वे = सत्त्वगुणविशिष्ट ईश्वर में। अनादिभूते = अनादि रूपसे। वर्त्तमाने = विद्यमान है। तेन = उससे, इसलिये। प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयो = प्रकृति एव पुरुष में संयोग तथा वियोग दोनों की। ईश्वरेच्छाव्यतिरेकेण = ईश्वर की इच्छा के बिना। अनुपपत्ते = उपपत्ति, सिद्धि न होने के कारण। तथाविधेन = उस प्रकार के। सत्त्वेन = सत्त्व से। तस्य = उस ईश्वर का। अनादि = अनादि। एव = ही। सबन्ध = सबन्ध है। यथा = जैसे। इतरेषा = अन्य। प्राणिना = प्राणियों, पुरुषों का। सुखदु खमोहात्मकतया = सुखदु खमोहरूप से। परिणत = परिणाम को प्राप्त हुआ। चित्त = चित्त। निर्मले = विमल, रजोगुण तथा तमोगुण से विरहित। सात्त्विकगुण विशिष्ट, बहुल। धर्मानुप्रख्ये = धर्म एव अनुप्रख्या, प्रकाश, ज्ञान में। प्रतिसङ्क्रान्त = प्रतिसङ्क्रान्त, प्रतिबिम्बित हुआ। चिच्छायासङ्क्रान्ते = चेतनशक्ति पुरुष के प्रतिबिम्बित होने पर, छाया पड़ने पर। सवेद्य = सवेदनीय, जानने योग्य। भवति = होता है, जाना जाता है। एव = इस प्रकार का। ईश्वरस्य = ईश्वर का स्वरूप। न = नहीं है अर्थात्

सुखदुःखमोहरूप सभी भोग बुद्धि के ही हैं। अविवेक के कारण पुरुष इन धर्मों को अपना ही समझ कर सुखदुःखमोह का अनुभव करता है। यथा जपाकुसुमगत रक्तिमा स्वच्छ स्फटिक में आ जाती है। यथा योद्धृगत जयपराजय को राजा अपना मान लेता है। उसी प्रकार अपरिणामी, शुद्ध निर्गुण चेतन पुरुष भी बुद्धिगत सुखदुःखादि भोगों, क्लेशों को अपने में उपचरित कर लेता है। अविवेक के कारण वह सुखी दुःखी होता है। किन्तु विशिष्ट पुरुष, ईश्वर इन सब दोषों से असम्पृक्त है। तस्य = उस ईश्वर का। केवल = केवल। सात्त्विक = सात्त्विक, सत्त्वगुण विशिष्ट। एव = ही। परिणाम = परिणाम है। उत्कर्षवान् = उत्कृष्ट सत्त्वगुण समन्वित वह ईश्वर। अनादिसम्बन्धेन = अनादि सम्बन्ध से, अनादि काल से। भोग्यतया = भोक्तृरूप से। व्यवस्थित = स्थित है। (किन्तु यथार्थतः ईश्वर न तो सत्त्व इत्यादि के परिणाम को प्राप्त करता है और न भोक्ता ही है, क्योंकि वह अपरिणामी, त्रिगुणातीत, असङ्ग है)। अतः = इसलिये। पुरुषान्तर-विलक्षणतया = अन्य पुरुषों से विलक्षण, विशिष्ट स्वरूप वाला होने के कारण। सः एव = वह विशिष्ट पुरुष ही। ईश्वरः = ईश्वर है। मुक्तात्मना = मुक्त आत्माओं, पुरुषों का। तु = तो। पुनः पुनः = बारम्बार। क्लेशादियोग = क्लेश-कर्म-विपाक-कर्माशय से सम्बन्ध होता है। तैः तैः = उन उन। शास्त्रोक्तै = शास्त्रों द्वारा बतलाये गये। उपायैः = उपायों साधनों द्वारा। निवर्तित = क्लेश-कर्म इत्यादि को दूर किया जाता है। अस्य पुनः = फिर इस ईश्वर को तो। सर्वदैव = सदा ही। तथाविधत्वात् = उसी प्रकार का, क्लेश-कर्म-विपाक-कर्माशय से रहित होने के कारण, ज्ञान-ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण। मुक्तात्म-तुल्यत्व = मुक्त आत्माओं, पुरुषों के साथ समानता, सादृश्य। न = नहीं है। च = और। ईश्वराणां = ईश्वरों का। अनेकत्व = अनेकत्व, बहुत्व। न = नहीं है। क्योंकि। तेषां = अनेकत्व मानने पर उन ईश्वरों की। तुल्यत्वे = समानता होने पर। भिन्नाभिप्रायत्वात् = अभिप्राय के भिन्न-भिन्न, विविध होने से, ईश्वर की भिन्नता के कारण। कार्यस्य = कार्य, प्रयोजन की। एव = ही। अनुपपत्ते = असिद्धि हो जाने के कारण, अर्थात् कार्य की सिद्धि न होने के कारण एक ही ईश्वर मानना पड़ेगा। उत्कर्षनिकर्षयुक्तत्वे = उत्कर्ष एवं अपकर्ष

से युक्त मानने पर, कुछ ईश्वर उत्कृष्ट गुण वाले तथा दूसरे अपकृष्ट गुण वाले हैं, ऐसी दशा में। य = जो। एव = ही ईश्वर। उत्कृष्ट = उत्कृष्ट गुणों से युक्त है। स = वह। एव = ही। ईश्वर = ईश्वर है। तत्र एव = उसी ईश्वर में। ऐश्वर्य्यस्य = ऐश्वर्य की। काष्ठाप्राप्तत्वात् = पराकाष्ठा, चरम अवस्था, परिणति प्राप्त होने के कारण वही ईश्वर है ॥ २४ ॥

एवमीश्वरस्य स्वरूपमभिधाय प्रमाणमाह—

एव = इस प्रकार से। ईश्वरस्य = ईश्वर के। स्वरूप = स्वरूप को अभिधाय = कहकर, निरूपण करके। प्रमाण=प्रमाण, उस ईश्वर के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति के साधन को। आह = कहते हैं।

तत्र निरतिशय सार्वज्ञ्यबीजम् ॥२५॥

अर्थ—तत्र = उस ईश्वर में सर्वज्ञबीज = सर्वज्ञता का बीज, हेतु, कारण अर्थात् ज्ञान। निरतिशय = अतिशयरहित पराकाष्ठा, चरम अवस्था रूप में विद्यमान है। ईश्वर ही ज्ञान की अवधि, सीमा, मर्यादा है। उससे अधिक ज्ञान किसी में भी नहीं है। अत ज्ञान की पराकाष्ठा होने से वह निरतिशय, सर्वोत्कृष्ट है।

वृत्ति—तस्मिन् भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजम् अतीतानागतादिग्रहणस्याल्पत्व महत्त्वञ्च मूलत्वाद् बीजमिव बीजम्, तत् तत्र निरतिशय काष्ठा प्राप्तम्, दृष्टा ह्यल्पत्वमहत्त्वादीना धर्माणा सातिशयाना काष्ठाप्राप्ति, यथा परमाणावल्पत्वस्य, आकाशे परममहत्त्वस्य, एव ज्ञानादयोऽपि चित्तधर्मास्तारतम्येन परिदृश्यमाना क्वचिन्निरतिशयतामासादयन्ति, यत्र चैते निरतिशया, स ईश्वर।

यद्यपि सामान्यमात्रेऽनुमानस्य[1] *पर्य्यवसितत्वात् न विशेषावगति सम्भवति, तथापि शास्त्रादस्य सर्वज्ञत्वादयो विशेषा अवगन्तव्या। तस्य स्वप्रयोजनाभावे कथ प्रकृतिपुरुषयो सयोग-वियोगौ आपादयतीति नाशङ्कनीयम्, तस्य कारुणिकत्वाद् भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्, कल्पप्रलय-महाप्रलयेषु निःशेषान् ससारिण उद्धरिष्यामीति तस्याध्यवसाय, यत् यस्येष्ट तत्तस्य प्रयोजनमिति ॥२५॥*

---

१ अनुमानमात्रस्य (पा०)।

तस्मिन् = उस । भगवति = ऐश्वर्य सम्पन्न ईश्वर में । सर्वज्ञत्वस्य = सर्वज्ञता का । यद् बीज = जो बीज, हेतु, कारण अर्थात् ज्ञान है । अतीतानागतादिग्रहणस्य = वह भूत एव भविष्य इत्यादि पदार्थों के ग्रहण करने की, ज्ञान प्राप्त करने की । अल्पत्व = अल्पता, न्यूनता, सूक्ष्मता का । च=और । महत्त्वं= महान् विशदता का । मूलत्वात् = मूल, कारण होने से । बीजम् इव = बीज के समान । बीज = बीज है । तत् = वह सर्वज्ञत्व का बीज, ज्ञान । तत्र=उस ईश्वर में । निरतिशय = अतिशयरहित अर्थात् । काष्ठा=पराकाष्ठा, चरम अवस्था को । प्राप्त = प्राप्त किये हुये है, विद्यमान है । हि=निश्चय । अल्पत्वमहत्त्वादीना = अति अल्प, न्यून, सूक्ष्म एव अति, महान्, अत्यधिक । सातिशयाना = अतिशयसहित पदार्थों के । धर्माणा = धर्मों की, गुणो की । काष्ठाप्राप्ति = पराकाष्ठा की प्राप्ति, विकास की परम, प्रकृष्ट अवस्था । दृष्टा = देखी जाती है अर्थात् लोक में जो जो पदार्थ न्यूनाधिक्य धर्म से युक्त होने से, सातिशय होते है, वह धर्म अवश्य ही किसी पदार्थ में पराकाष्ठा को प्राप्त कर, निरतिशय हो जाता है । यथा—परमाणु में अणुपरिणाम तथा आकाश में महत्परिणाम पराकाष्ठा को प्राप्त कर निरतिशय हो जाता है । सर्वज्ञता का बीज ज्ञान भी न्यूनाधिक्यरूप धर्म वाला होने से सातिशय है । यही ज्ञान ईश्वर में पराकाष्ठा रूप प्राप्त कर निरतिशय हो जाता है । यथा = जैसे । परमाणौ = परमाणु में । अल्पत्वस्य=अल्पत्व की । आकाशे = आकाश में । परमहत्त्वस्य=परम महत्त्व की प्राप्ति होती है । एव = इसी प्रकार । ज्ञानादय = ज्ञान इत्यादि । अपि = भी । चित्तधर्मा = चित्त के धर्म । तारतम्येन = तारतम्य रूपमे, क्रमश । परिदृश्यमाना = दिखलाई पडते हुये, न्यूनाधिक्य रूप से देखे जाते हुये । क्वचित् = कही पर किसी पदार्थ में । निरतिशयता = निरतिशयरूप को, पराकाष्ठा रूप को । आसादयन्ति=प्राप्त करते है । च = और । यत्र = जहाँ पर जिस पदार्थ में । एते = ये ज्ञान इत्यादि धर्म । निरतिशयाः = निरतिशय रूप, परम प्रकृष्ट रूप को प्राप्त करते हैं । स = वही । ईश्वर = ईश्वर हैं । यद्यपि = यद्यपि । सामान्यमात्रे=सामान्य मात्रमे, साधारण रूप से । अनुमानस्य=अनुमान का । पर्य्यवसितत्वात्=पर्यवसान होने के कारण, निश्चय हो जाने के कारण । विशेषावगति = विशेष ज्ञान । न=नही । सभवति=सभव होता है । तथापि=फिर भी ।

शास्त्रात्=शास्त्रों, आगमों से। अस्य=इस ईश्वर के। सर्वज्ञत्वादय=सर्वज्ञत्व इत्यादि विशेष=विशेष धर्मों को। अवगन्तव्या=जानना चाहिये अर्थात् शब्द प्रमाण के आधार पर उस ईश्वर में सर्वज्ञत्व इत्यादि धर्मों की सिद्धि होती है। तस्य=उस ईश्वर का स्वप्रयोजनाभावे=अपने उद्देश्य के अभाव में, सृष्टि की रचना में अपना कोई भी प्रयोजन न होने से। कथ=किस उद्देश्य, किस कारण से। प्रकृतिपुरुषयो=प्रकृति एव पुरुष दोनों में। सयोगवियोगौ=सयोग और वियोग दोनों को। आपादयति=सपन्न करता है। इति=इस सबन्ध में। न=नहीं। आशङ्कनीय=आशङ्का, सदेह करना चाहिये। तस्य=उस ईश्वर का कारुणिकत्वात्=करुणा, अनुकम्पा से युक्त होने के कारण। भूतानुग्रह=प्राणियों पर, अनुग्रह, दया। एव=ही। प्रयोजन=प्रकृतिपुरुष के सयोग-वियोग में उद्देश्य है। ईश्वर की भूतों के प्रति अनुग्रह भावना ही सृष्टि में हेतु है। कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु=कल्प के बाद होने वाले प्रलय एव महाप्रलय में, सृष्टि के तिरोभाव के समय। नि शेषाम्=सपूर्ण, समस्त। ससारिण=ससारी जीवों का। उद्धरिष्यामि=उद्धार करूँगा, बन्धन से मुक्त करूँगा। इति=इस रूप से। तस्य=उस ईश्वर का। अध्यवसाय=निर्णय, सकल्प है। यद्=जो। यस्य=जिसका। ईष्ट=अभिमत, सकल्प है। तत्=वही। तस्य=उसका। प्रयोजन=क्रियाकलापों, समस्त चेष्टाओं का उद्देश्य हेतु है। इति=यह अभिप्राय है॥ २५॥

एवमीश्वरस्य प्रमाणमभिधाय प्रभावमाह—

एव=इस प्रकार से। ईश्वरस्य=ईश्वर की सिद्धि के सम्बन्ध में। प्रमाण=प्रमाण को। अभिधाय=कह कर। प्रभाव=उस ईश्वर के प्रभाव, ऐश्वर्य, महिमा को। आह=कहते हैं।

स पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्[1] ॥२६॥

अर्थ—स=वह ईश्वर। पूर्वेषा=पूर्वजों, सृष्टि के आदि में उत्पन्न ब्रह्मा इत्यादि देवों तथा अङ्गिरा इत्यादि ऋषियों का। अपि=भी। कालेन=समय से। अनवच्छेदात्=अवच्छिन्न, परिमित, घिरा हुआ न होने के कारण। गुरु=गुरु, श्रेष्ठ है। अर्थात् यह ईश्वर समय की सीमा, परिधि में परिच्छिन्न नहीं है।

---

१. कालानवच्छेदादिति क्वचित् पठ्यते।

वह समय की सीमा से सर्वथा अतीत, परे है। अत शाश्वत रूप से सभी समयो में रहने के कारण वह ईश्वर पूर्व काल में सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न देवो तथा ऋषियो का भी गुरु है। क्योकि ये सभी देव, ऋषि समय की परिधि मे अवच्छिन्न है। और ईश्वर तो देश-काल-धर्म इत्यादि की सीमा मे बाहर, अतीत है।

वृत्ति —आद्याना स्रष्टृणा ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा, यत स कालेन नावच्छिद्यते, अनादित्वात्। तेषा ब्रह्मादीना पुनरादिमत्त्वादस्ति कालेनावच्छेद ॥२६॥

आद्याना=आदि काल, सृष्टि के प्रारम्भ के। स्रष्टृणा=सृष्टि की रचना करने वाले। ब्रह्मादीना=ब्रह्मा इत्यादि देवो का। अपि=भी। (सृष्टि के प्रारम्भ के ऋषियो का भी)। स =वह ईश्वर। गुरु =गुरु अर्थात्। उपदेष्टा = उपदेश देनेवाला है। यत =क्योकि। अनादित्वात् = अनादि, शाश्वत होने से। स =वह ईश्वर। कालेन=समय से। न=नही। अवच्छिद्यते=अवच्छिन्न, परिमित, परिवेष्टित होता है। तेषा = उन। ब्रह्मादीना=ब्रह्मा इत्यादि देवो तथा ऋषियों का। पुन =फिर, तो। आदिमत्वात् = आदिमान्, आदि, प्रारम्भ, उत्पत्ति होने के कारण। कालेन=समय से। अवच्छेद =बाधित, परिमित, सीमित होना है ॥ २६ ॥

एव प्रभावमुक्त्वा उपासनोपयोगाय वाचकमाह—

एव–इस प्रकार से। प्रभाव–ईश्वर के ऐश्वर्य को। उक्त्वा=कह करके। उपासनोपयोगाय=उपासना के लिए उपयोगी, सहायक। वाचक=उस ईश्वर के वाचक, बतलाने वाले नाम को। आह = कहते है।

तस्य वाचक प्रणव ॥२७॥

अर्थ —तस्य=उस ईश्वर का। वाचक =वाचक, बोधक, बतलाने वाला नाम। प्रणव =ओउम् है। सर्वज्ञत्व इत्यादि धर्मो से समन्वित ईश्वर रूप विशिष्ट पुरुष का वाचक प्रणव, ओउम् है। 'प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति प्रणव' इस शब्द के द्वारा ईश्वर की विशेष रूप से स्तुति की जाती है। इसलिये प्रणव शब्द ईश्वर का वाचक है। ईश्वर समस्त प्राणियो की रक्षा करता है। अत 'अवतीति ओउम्' यह ओउम् शब्द ईश्वर का वाचक है।

वृत्ति —इत्थमुक्तस्वरूपस्येश्वरस्य वाचकोऽभिधायक, प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौतीति वा प्रणव ओङ्कार, तयोश्च वाच्य-वाचकलक्षण सम्बन्धो नित्य सङ्केतेन प्रकाश्यते, न तु केनचित् क्रियते, यथा पितापुत्रयोर्विद्यमान एव सम्बन्धोऽस्याय पिता, अस्याय पुत्र इति केनचित् प्रकाश्यते ॥२७॥

इत्थ = इस प्रकार से। उक्तस्वरूपस्य = कहे गये स्वरूप वाले, वर्णित स्वरूप वाले। ईश्वरस्य=ईश्वर, पुरुषविशेष का। प्रणव शब्द। वाचक = वाचक अर्थात्। अभिधायक =अभिधायक, अभिधान, नाम बतलाने वाला है। प्रकर्षेण=प्रकृष्ट रूप से, अच्छी प्रकार से। नूयते स्तूयते=प्रार्थना, स्तुति की जाती है। अनेन = इस शब्द के द्वारा। इति=इसलिये ईश्वर की सम्यक् रूप से स्तुति का साधन होने से यह शब्द प्रणव है। वा=अथवा। नौति स्तौति = ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति करता है। इति = इसलिए ईश्वर की स्तुति करने वाले शब्द को प्रणव कहते हैं। प्रणव = प्रणव। ओंकार —ओंकार, ओउम् को कहते हैं। च=और। तयो =उन दोनो ईश्वर-प्रणव का। वाच्य-वाचकलक्षण =वाच्यवाचकरूप, प्रकाश्यप्रकाशरूप, अभिधेय-अभिधानरूप। नित्य =नित्य, शाश्वत, अविभाज्य। सबन्ध =सबन्ध। सङ्केतेन=सकेत द्वारा। प्रकाश्यते = प्रकट, व्यक्त किया जाता है। यह ईश्वर-प्रणव का सम्बन्ध। केनचित्=किसी के द्वारा। न तु=न तो। क्रियते=किया जाता है, नवीन रूप से बनाया जाता है। यथा=जैसे। पितापुत्रयो =पिता और पुत्र में। विद्यमान =विद्यमान रहने वाला। एव=ही। सम्बन्ध =सम्बन्ध। 'अस्य = इस पुत्र का। अय = यह। पिता=पिता है। अस्य= इस पिता का। अय=यह। पुत्र =पुत्र है। इति=इस रूप से। केनचित्=किसी के द्वारा। प्रकाश्यते=प्रकाशित, प्रकट किया जाता है। जिस प्रकार पिता-पुत्र में विद्यमान नित्य सम्बन्ध सकेत द्वारा व्यक्त किया जाता है। उसी प्रकार ईश्वर-प्रणव में नित्य सम्बन्ध है, कृतक नहीं ॥ २७ ॥

उपासनमाह—

उपासन = उपासना के स्वरूप को। आह=कहते है।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

अर्थ—तत् = उस प्रणव का। जप =जप, पाठ करना। तथा। तत् = उस प्रणव के। अर्थ=वाच्य, अभिधेय ईश्वर की। भावन=भावना, निरन्तर, अनवरत रूप से चिन्तन करना ही। असप्रज्ञात समाधि के लिये उपयोगी है। प्रणव के जप एव ईश्वर स्वरूप के सतत चिन्तन ध्यान से शीघ्र ही निर्वीज समाधि की सिद्धि होती है तथा यह सरल उपाय है।

वृत्ति—तस्य सार्द्धत्रिमात्रिकस्य[1] प्रणवस्य, जपो यथावदुच्चारणम्, तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावन पुन पुनश्चेतसि निवेशनमेकाग्रताया उपाय, अत समाधिसिद्धये योगिना प्रणवो जप्य, तदर्थ ईश्वरश्च भावनीय इत्युक्त भवति ॥२८॥

तस्य=उस। सार्द्धत्रिमात्रिकस्य = अर्धसहित तीन मात्रा वाले। प्रणवस्य= प्रणव का। जप =जप अर्थात्। यथावत्=अच्छी प्रकार, यथार्थ रूप से। उच्चारण=उच्चारण करना। च=और। तद्वाच्यस्य=उस प्रणव के वाच्य, अभिधेय। ईश्वरस्य=ईश्वर का। भावन=भावना करना अर्थात्। पुन पुन = बार बार। चेतसि=चित्त में। निवेशन=प्रवेश करना, ईश्वर के स्वरूप का चित्त में प्रवेश करना सदा चिन्तन, ध्यान करना ही। एकाग्रताया =चित्त की एकाग्रता, निरोधसमाधि का। उपाय =सरल उपाय, साधन है। अत =इसलिये। समाधिसिद्धये=समाधि की सिद्धि के लिये। योगिना=योगी के द्वारा। प्रणव = प्रणव। जप्य =जपा जाना चाहिए। च=और। तद् अर्थ =उस प्रणव का अर्थ, वाच्य, अभिधेय। ईश्वर =ईश्वर का। भावनीय =ध्यान किया जाना चाहिए। इति उक्तं भवति=यह अभिप्राय है अर्थात् योगी की असप्रज्ञात समाधि की सिद्धि के लिए प्रणव का जप तथा ईश्वर का सदैव ध्यान करना चाहिये ॥ २८ ॥

उपासनाया फलमाह—

उपासनाया =उपासना के। फलं=फल को। आह=बतलाते हैं।

---

१ त्रिमात्रिकस्य (पा०)। ओंकारस्य सार्धत्रिमात्रिकत्वं वहुत्रोक्तम्—'अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्धमात्रया "(अग्निपु० ३७२।२२)।

ततः प्रत्यक्चेतना¹ऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

अर्थ —ततः=उस प्रणव के जप तथा ईश्वर स्वरूप चिन्तन से। प्रत्यक्-चेतनाऽधिगम =अन्तः स्थित आन्तरिक चित् पुरुष का ज्ञान, प्राप्ति, साक्षात्कार होता है। च = और। अन्तरायाभाव अपि=अन्तराय, समाधि की बाधाओं का अभाव, निवारण भी होता है। इस साधन से अपने वास्तविक चिन्मात्र स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन, साक्षात्कार तथा सभी प्रकार के विघ्नों का अभाव हो जाता है।

वृत्ति —तस्माज्जपात्तदर्थभावनायाश्च योगिनः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमो भवति, विषयप्रातिकूल्येन स्वान्तःकरणाभिमुखमञ्चति या चेतना दृक्शक्तिः सा प्रत्यक्चेतना, तदधिगमो ज्ञानं भवतीत्यर्थः। अन्तराया वक्ष्यमाणाः, तेषामभावः शक्तिप्रतिबन्धोऽपि भवति ॥२९॥

तस्मात् = उस प्रणव के। जपात् = जप से। च=और। तदर्थ-भावनाया =उसके वाच्य अर्थ ईश्वर के ध्यान से। योगिनः =योगी को। प्रत्यक् चेतना=अन्तः चेतन, अन्तरात्मा, चित् रूप अपने ही स्वरूप की। अधिगम = प्राप्ति। भवति = होती है। अपने चेतन स्वरूप का साक्षात्कार होता है। *विषयप्रातिकूल्येन*=विषयों से प्रतिकूल, उपरति होने से। *स्वान्तःकरणाभिमुख*= अपने अन्तःकरण की ओर। या=जो। चेतना=चेतना अर्थात्। दृक्शक्ति =दर्शन शक्ति। अञ्चति=जाती है। सा=वही। प्रत्यक् चेतना = प्रत्यक् चेतना है अर्थात् बाह्य विषयों का परित्याग कर *अन्तःकरण की ओर* गमन करने वाली दर्शन-शक्ति ही प्रत्यक् चेतना है। तद् = उसी का। अधिगम =अर्थात्। ज्ञान=ज्ञान, साक्षात्कार। भवति=होता है। इति=यह। अर्थ =अभिप्राय है। अन्तराया = बाधायें, विघ्न। वक्ष्यमाणा =आगे कहे जाने वाले है। तेषां=उन विघ्नों का। अभाव = अभाव होना है अर्थात्। शक्तिप्रतिबन्ध =शक्ति का रोकना। अपि= भी। भवति=होता है अर्थात् प्रत्यक् चेतना का साक्षात्कार हो जाने पर अन्तराय समाधि में बाधा नहीं उपस्थित करते ॥ २९ ॥

---

१ चेतनाधिगम इत्यत्र चेतना-अधिगम इत्येवरूपेण पदच्छेदो भोजेन कृतः। अन्यैस्तु चेतन-अधिगम इत्येवरूपेण क्रियते।

अथ के अन्तराया इत्याशङ्कायामाह—

अथ=अब । के=कौन । अन्तराया=विघ्न, बाधायें समाधि की सिद्धि में हैं । इति=ऐसी । आशङ्कायां=आशङ्का, संशय होने पर । आह=उन विघ्नों को कहते हैं ।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥३०॥

अर्थ—व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध— भूमिकत्वा-नवस्थितत्वानि = व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, अलब्धभूमिकत्व एवं अनवस्थितत्व रूप से । चित्तविक्षेपाः = चित्त के विक्षेप, चञ्चल बनाने वाले, बाह्य विषयों में लगाने वाले हैं । ते = वे ही व्याधि इत्यादि विक्षेप । अन्तरायाः = अन्तराय, समाधि की सिद्धि में विघ्न है ।

वृत्ति—नवैते रजस्तमोबलात् प्रवर्तमानाश्चित्तस्य विक्षेपा भवन्ति, तैरेकाग्र-ताविरोधिभिश्चित्तं विक्षिप्यत इत्यर्थः । तत्र व्याधिर्धातुवैषम्यनिमित्तो ज्वरादिः । स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य । उभयकोटयालम्बनं ज्ञानं संशयः, योगः साध्यो न वेति । प्रमादोऽनवधानता, समाधिसाधनेष्वौदासीन्यम् । आलस्यं काय-चित्तयो-र्गुरुत्वं, योगविषये प्रवृत्त्यभावहेतु । अविरतिश्चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्द्धः । भ्रान्तिदर्शनं शुक्तिकायां रजतवद्विपर्ययज्ञानम् । अलब्धभूमिकत्वं कुतश्चिन्नि-मित्तात् समाधिभूमेरलाभोऽसम्प्राप्तिः । अनवस्थितत्वं लब्धायामपि भूमौ चित्तस्य तत्राप्रतिष्ठा । त एते समाधेरेकाग्रताया यथायोगं प्रतिपक्षत्वादन्तराया इत्युच्यन्ते ॥३०॥

रजस्तमोबलात्=रजोगुण एवं तमो गुण के बल से । प्रवर्तमाना = प्रवृत्त होने वाले । एते = ये व्याधि, स्त्यान इत्यादि । नव = नव । चित्-स्य = चित्त के । विक्षेपा = विक्षेप । भवन्ति = होते हैं । एकाग्रताविरो-धिभिः = चित्त की एकाग्रता का विरोध करने वाले, बाधा पहुँचाने वाले । तैः = इन व्याधि, स्त्यान, संशय आदि के द्वारा । चित्तं = चित्त । विक्षिप्यते = विक्षिप्त किया जाता है, बाह्य विषयों में लगाया जाता है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है । तत्र = उन अन्तरायों में । धातुवैषम्यनिमित्तः = वात-पित्त-

कफ-रूप त्रिधातुओं को विषमता, न्यूनाधिक्य से उत्पन्न। ज्वरादि = ज्वर, शीत, अतिसार इत्यादि ही। व्याधि = व्याधि नामक अन्तराय, विघ्न है। चित्तस्य = चित्त की। अकर्मण्यता = कार्य करने की असमर्थता, अक्षमता ही। स्त्यान = स्त्यान नामक अन्तराय है। उभयकोटयालम्बन = उभय, दोनों कोटियों का आलम्बन, स्पर्श करने वाला। ज्ञान = ज्ञान। संशय =संशय है। यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वा। अनवधानता = असावधानी, योग सिद्धि के लिए बतलाये गये साधनों का अच्छी प्रकार से पालन न करना ही। प्रमाद = प्रमाद है अर्थात्। समाधिसाधनेषु = समाधिसिद्धि के साधनों में। औदासीन्य = उदासीनता दिखलाना ही प्रमाद है। कायचित्तयो = शरीर तथा चित्त दोनों का। गुरुत्व = गुरु होना, चेष्टा में मन्थर होना ही। आलस्य = आलस्य है। जो। योगविषये = योग साधना के सम्बन्ध में। प्रवृत्त्यभावहेतु = चेष्टाओं के अभाव का कारण है। चित्तस्य = चित्त का। विषयसम्प्रयोगात्मा = विषय के साथ सप्रयोग, सयोग, सम्बन्ध रूप। गर्द्ध = तृष्णा, अभिकांक्षा ही। अविरति = वैराग्य का अभाव रूप अविरति है। शुक्तिकायां = शुक्ति में। रजतवत् = रजत की प्रतीति के समान। विपर्य्ययज्ञान = विपरीत, विलोम, मिथ्या ज्ञान ही। भ्रान्तिदर्शन भ्रान्तिदर्शन है। कुतश्चित् = किसी। निमित्त, हेतु, कारण से। समाधिभूमे समाधि की भूमि का। अलाभ = लाभ न होना। असम्प्राप्ति = प्राप्ति न होना ही। अलब्धभूमिकत्व = अलब्धभूमिकत्व नाम वाला विघ्न है। भूमौ = समाधिभूमि के। लब्धायां = प्राप्त हो जाने पर। अपि = भी। चित्तस्य = चित्त की। तत्र = उस समाधि भूमि में। अप्रतिष्ठा= प्रतिष्ठित, स्थित न होना ही। अनवस्थितत्व = अनवस्थितत्व नामक समाधि का अन्तराय है। ते = वे। एते = ये। व्याधि-स्त्यान इत्यादि सभी। समाधे = समाधि की। एकाग्रतायाः = एकाग्रता के। यथायोग = योग के अनुकूल, योगानुसार। प्रतिपक्षत्वात् = प्रतिकूल, विपक्ष, बाधक होने के कारण। अन्तराया = अन्तराय, विघ्न। इति = इस रूप से। उच्यन्ते = कहे जाते हैं ॥ ३० ॥

चित्तविक्षेपकारकानन्यानप्यन्तरायान् प्रतिपादयितुमाह—

चित्तविक्षेपकारकान् = चित्त को विक्षिप्त, विविध प्रकार से बाह्य विषयों

में लगाने वाले। अन्यान् = अन्य, दूसरे। अन्तरायान् = विघ्नों का। अपि = भी। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन करने के लिये, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

दु:खदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव ॥३१॥

अर्थ—दु:खदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा = दु:ख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास एव प्रश्वास ये पाँचों ही। विक्षेपसहभुव = विक्षेप के साथ होने वाले हैं अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय इत्यादि नव विक्षेपों के साथ आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक रूप त्रिविध दु:ख, अभिलाषा पूरी न होने पर मन में उत्पन्न क्षोभरूप दौर्मनस्य, समाधि में सहायक आसन के समय शरीर के अङ्गों में उत्पन्न कम्परूप श्वास तथा प्रश्वास ये पाँचों ही समाधि में विघ्न उपस्थित करने वाले हैं। अत व्याधिस्त्यान इत्यादि विक्षेपों के सहायक हैं।

वृत्ति—कुतश्चिन्निमित्तादुत्पन्नेषु विक्षेपेषु एते दु:खादय प्रवर्त्तन्ते। तत्र दु:ख चित्तस्य रजस परिणामो बाधनालक्षण, यद्बाधात् प्राणिन तदुपघाताय प्रवर्त्तन्ते। दौर्मनस्य बाह्याभ्यन्तरै कारणैर्मनसो दौ स्थ्यम्। अङ्गमेजयत्व सर्वाङ्गीणो वेपथु, आसनमन स्थैर्यस्य बाधक। प्राणो यद् बाह्य वायुमाचामति स श्वास, यत् कौष्ठ्यं वायु नि श्वसिति स प्रश्वास। एते विक्षेपै सह प्रवर्त्तमाना यथोदिताभ्यास-वैराग्याभ्या निरोद्धव्या इत्येषामुपदेश ॥३१॥

कुतश्चिद् = किसी। निमित्तात् = निमित्त, कारण से। उत्पन्नेषु = उत्पन्न हुये। विक्षेपेषु = व्याधि आदि नव विक्षेपों में। एते = ये। पाँचों। दु:खादय = दु:ख, दौर्मनस्य इत्यादि। प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्त होते हैं, विक्षेपों के सहायक बन जाते हैं। तत्र = उन पाँचों में। बाधनालक्षण = बाधा उपस्थित करने वाला। चित्तस्य = चित्त का। रजस = रजो गुण का। परिणाम = परिणाम। दु:ख = दु:ख हैं। यत् = जिसकी। बाधात् = बाधा से, जिससे बाधित, पीडित होने से। प्राणिन = सभी प्राणी। तद् उपघाताय = उनके विनाश, निवृत्ति के लिये। प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्त होते हैं, प्रयास करते हैं। बाह्याभ्यन्तरै = बाह्य एव अन्त। कारणै = कारणों से। मनस = मन का। दौ स्थ्य = विषाद-युक्त, उदासीन होना ही। दौर्मनस्य = दौर्मनस्य हैं। सर्वाङ्गीण = सभी अङ्गों

में। वेपथु = कम्पन होना। अङ्गमेजयत्व=अङ्गमेजयत्व है। जो। आसनमन-स्थैर्यस्य = आसन एवं मन की स्थिरता का। बाधक =बाधक, बाधा पहुँचाने वाला है। प्राण = प्राण। यद् = जब। बाह्य = बाहरी। वायु =वायु को। आचामति = पीता है, नासिका के भीतर ग्रहण करता है। स = वही। श्वास = श्वास है। यत = जब। कौष्ठ्य = कोष्ठसम्बन्धी, भीतर उदर की। वायु = वायु को। निश्वसिति = बाहर निकलता है। स =वह। प्रश्वास = प्रश्वास है अर्थात् प्राणक्रिया द्वारा जो बाहरी वायु नासिकारन्ध्र से भीतर प्रवेश करती है, वह श्वास है और जो हृदयस्थ वायु नासिकारन्ध्र से बाहर जाती है, वह प्रश्वास है। एते = ये दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि। विक्षेपैः सह = व्याधि-स्त्यान इत्यादि विक्षेपों के साथ। प्रवर्तमाना =प्रवृत्त होने हुये, सहकारी होते हुये समाधि में विघ्न पहुँचाते हुये दुःख आदि का। यथा=जैसा पूर्व में। उक्ताभ्यासवैराग्याभ्या = कहे गये, वर्णन किये गये अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा। निरोद्धव्या = निरोध किया जाना चाहिये, समाधि में बाधक दुःख इत्यादि को अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा रोकना चाहिये। इति = इसलिए। एषा = इन दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि का। उपदेश = उपदेश, निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थमुपायान्तरमाह—

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थं=उपद्रव सहित अर्थात् दुःख-दौर्मनस्य-अङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासरूप पञ्च विघ्नो सहित व्याधि-स्त्यान-संशय इत्यादि नव विक्षेपों के प्रतिषेध, निवारण के लिये। उपायान्तर = दूसरे उपाय को। आह = कहते हैं।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यास ॥३२॥

अर्थ —तत् प्रतिषेधार्थं = दुःख-दौर्मनस्य आदि पञ्च विघ्नो सहित व्याधि-स्त्यान आदि नव विक्षेपो के प्रतिषेध, निवृत्ति, निरोध, दूर करने के लिये। एकतत्त्वाभ्यास = ईश्वर रूप एक तत्त्व का अभ्यास, सतत चिन्तन करना चाहिये। ईश्वर रूप एक ही आलम्बन में चित्त को एकाग्रता का अभ्यास करना

चाहिये। राजा भोज देव के अनुसार विक्षेपो की निवृत्ति के लिए किसी भी अभिमत एक तत्त्व, पदार्थ में चित्त के निवेश का अभ्यास करना चाहिये।

वृत्ति—तेषा विक्षेपाणा प्रतिषेधार्थमेकस्मिन् कस्मिंश्चिदभिमते तत्त्वेऽभ्यास-श्चेतस पुन पुनर्निवेशन कार्य, यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रताया ते विक्षेपा प्रणाशमुपयान्ति ॥३२॥

तेषा = उन। विक्षेपाणा = विक्षेपो के। प्रतिषेधार्थ = प्रतिषेध, निरोध के लिये। कस्मिंश्चिन=किसी। एकस्मिन् = एक। अभिमते = अभीष्ट, अनुकूल। तत्त्वे=तत्त्व, पदार्थ में। अभ्यास = अभ्यास करना चाहिये अर्थात्। चेतस =चित्त का। पुन पुन = बार-बार। निवेशन = उसी तत्त्व में प्रवेश। कार्य्य = करना चाहिये। यद् = जिसके। बलात् = बल से। एकाग्रताया = एकाग्रता के। प्रति उदिताया = उदित, प्राप्त, सिद्ध होने पर। ते = वे। विक्षेपा = व्याधि-स्त्यान इत्यादि विक्षेप, विघ्न। प्रणाश = विनाश, लय को। उपयान्ति = प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

इदानीं चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनमुपायान्तरमाह—

इदानी = अब। चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथन = चित्त के संस्कारो का प्रतिपादन करने वाले परिकर्म, चित्त को निर्मल बनाने वाले कर्मों का कथन करने के लिये बतलाने के लिये। उपायान्तर = दूसरे उपाय को। आह = कहते हैं। चित्त की एकाग्रता हेतु रागद्वेषक्रोधमोहलोभ से रहित प्रसन्न, प्रसादयुक्त चित्त को विमल, स्वच्छ बनाने वाले दूसरे उपाय को बतलाते हैं।

मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणा सुख-दु ख-पुण्या-पुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥३३॥

अर्थ—सुखदु खपुण्यापुण्यविषयाणा = सुख, दु ख, पुण्य, पाप विषय वालो का अर्थात् सुखी, दु खी, पुण्यात्मा तथा पापात्मा पुरुषो में। मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणा=क्रमश मित्रता, दया, मुदिता (हर्ष, प्रसन्नता) एव उपेक्षा (उदासीनता) की। भावनात = भावना करने से, विचार रखने से। चित्तप्रसादन = चित्त प्रसन्न होता है, रागद्वेष आदि से विनिर्मुक्त होता है अर्थात् सुखी प्राणियो में

मित्रता की भावना, दु:खियों में दया की भावना, पुण्यात्माओं में प्रसन्नता की भावना तथा पापियों में उदासीनता की भावना रखने से चित्त प्रसन्न हो जाता है, राग-द्वेष-क्रोध-मोह-लोभ इत्यादि कलुषित भावों से मुक्त हो जाता है।

वृत्ति—मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षा औदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि—सुखितेषु साधुषु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यात्, न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यात् इति कृपामेव कुर्यात्, न ताटस्थ्यम्। पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यात्, न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्। अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेत् नानुमोदनं न वा द्वेषम्। सूत्रे सुख-दुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति।

परिकर्म चैतत् बाह्यं कर्म, यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति, एवं द्वेष-रागादिप्रतिपक्ष-भूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं सम्प्रज्ञातादिसमाधियोग्यं सम्पद्यते। राग-द्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः, तौ चेत् समूलमुन्मूलितौ स्याताम्, तदा प्रसन्नत्वात् मनसो भवत्येकाग्रता॥३३॥

सौहार्द = सुहृद् भाव ही। मैत्री = मैत्री, मित्रता है। कृपा = प्राणियों पर कृपा, दया करना ही। करुणा = करुणा है। हर्ष = प्रसन्नता, प्रसन्न होना ही। मुदिता = मुदिता है। औदासीन्य = उदासीनता ही। उपेक्षा = उपेक्षा है। एता = ये मैत्री-करुणा—मुदिता—उपेक्षा की भावनायें। यथाक्रम = क्रमशः। सुखितेषु=सुखी प्राणियों में। दुःखितेषु = दुःखी प्राणियों में। पुण्यवत्सु=पुण्यवान् पुरुषों में। च = और। अपुण्यवत्सु = पुण्यरहित, पापी पुरुषों में। विभावयेत् = भावना करनी चाहिये, विचार रखने चाहिये। तथाहि=जैसे कि। सुखितेषु = सुखी। साधुषु = साधु, सज्जन पुरुषों में एषां =

---

१ "गणितनिष्पत्तये जिज्ञासितास्तिमिकलीभूतमस्यासिद्धयर्थं मिश्रकादिव्यवहारः, खण्डशोऽङ्कानां मिश्रणं विरुद्धमानाङ्कानां छेदनम्, अनुगुणाङ्कानां गुणनविभाजनम् इत्यादिरूपो व्यवहार" (भोजवृत्तिकिरणम्)।

इन पुरुषों में सुखित्व = सुख है। इति = ऐसा विचार कर। मैत्री = मित्रता की भावना। कुर्यात् = करनी चाहिये। ईर्ष्या = ईर्ष्या की भावना को। तु = तो। न = नहीं करनी चाहिये। दुःखितेषु = दुःखी प्राणियों में। कथ नु नाम = किसी प्रकार से। एषा = इन दुःखी प्राणियों के। दुःखनिवृत्ति = दुःख का निराकरण, निवारण। स्यात् = होवे। इति = इस रूप से। कृपा = दया की भावना को। एव = ही कुर्यात् = करनी चाहिये। ताटस्थ्य = तटस्थता। न = नहीं। पुण्यवत्सु = पुण्यवान् पुरुषों में। पुण्यानुमोदनेन = पुण्य के अनुमोदन, प्रशसा द्वारा। हर्ष = हर्ष, प्रसन्नता। एव = ही। कुर्यात् = करनी चाहिये। तु = किन्तु। एते = ये। पुण्यवन्त = पुण्यात्मा पुरुष। किं = क्या है। इति=इस रूप से। विद्वेष = द्वेष। न = नहीं करना चाहिये। सूत्रे = इस सूत्र में। सुखदुःखादिशब्दै = सुख-दुःख इत्यादि शब्दों के द्वारा। तद्वन्त = उनसे युक्त अर्थात् सुख से युक्त सुखी, दुःख से युक्त दुःखी, पुण्य से युक्त पुण्यात्मा, पाप से युक्त पापी पुरुषों का। प्रतिपादिता = प्रतिपादन, कथन किया गया है। तदेव = इसी प्रकार से। मैत्र्यादिपरिकर्मणा = मित्रता इत्यादि परिकर्मों के द्वारा। चित्ते = चित्त के। प्रसीदति = प्रसन्न हो जाने से, रागद्वेष से रहित हो जाने पर। सुखेन-सुखपूर्वक, सुकर रूप से। समाधे = समाधि का। आविर्भाव = उद्भूति, प्राप्ति। भवति = होती है। च = और। एतत् = यह मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा रूप। परिकर्म = परिकर्म। बाह्य = बाहरी। कर्म = कर्म है, चित्तशुद्धि के बाह्य साधन है। यथा = जैसे। गणिते = गणितविद्या में। मिश्रकादिव्यवहार = अङ्कों का मिश्र, योग, जोड इत्यादि व्यवहार। गणितनिष्पत्तये = गणित की निष्पत्ति, सिद्धि, निर्णय के लिये होता है। सङ्कलितादिकर्मोपकारकत्वेन = सकलन, योग, अङ्को का जोड इत्यादि, कर्म क्रियाओं के उपकारक, सहायक होने के कारण। प्रधानकर्मनिष्पत्तये = मुख्य फल की सिद्धि के लिये। भवति = होता है। एव = इसी प्रकार से। द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया = द्वेष, राग आदि के प्रतिपक्ष, विलोम में विद्यमान अर्थात् द्वेष, राग इत्यादि का विनाश, निराकरण करने वाली मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा की भावनाओं के द्वारा। समुत्पादितप्रसाद = उत्पन्न हुई प्रसन्नता। निर्मलता वाला। चित्त = चित्त। सप्रज्ञातादिसमाधियोग्य = सप्रज्ञात इत्यादि समाधि के

योग्य, अनुकूल। सम्पद्यते—हो जाता है। रागद्वेषौ = राग और द्वेष। एव = ही। मुख्यतया = मुख्यरूप से। विक्षेपं = चित्त के विक्षेप, विषय की उन्मुखता को। उत्पादयतः = उत्पन्न करते हैं। चेत् = यदि। तौ = वे रागद्वेष दोनो। समूलं = मूल, कारण सहित। उन्मूलितौ = उन्मूलित, विनष्ट। स्याताम् = हो जावें। तदा = तब। प्रसन्नत्वात् = रागद्वेष से रहित प्रसन्नता, विमलता होने से। मनसः = मन की। एकाग्रता = एकाग्रता। भवति = होती है। रागद्वेष से रहित, स्वच्छ विमल चित्त एकाग्र हो जाता है॥ ३३॥

उपायान्तरमाह—

उपायान्तर = चित्तकी एकाग्रता के दूसरे उपाय को। आह = कहते हैं।

प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥३४॥

अर्थ—वा = अथवा। प्राणस्य = प्राणवायु के। प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां = बाहर निकालने, रेचक द्वारा तथा भीतर रोकने, धारण करने कुम्भक द्वारा चित्त की एकाग्रता होती है। प्राणवायु के रेचक एवं कुम्भक व्यापार द्वारा चित्त एकाग्र होता है।

वृत्ति—प्रच्छर्दनं कोष्ठ्यस्य वायोः प्रयत्नविशेषान्मात्राप्रमाणेन बहिर्निःसारणम्। मात्राप्रमाणेनैव प्राणस्य वायोर्बहिर्गतिविच्छेदो विधारणा[1], सा च द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां, बाह्यस्याभ्यन्तरापूरणेन पूरितस्य वा तत्रैव निरोधेन। तदेव रेचकपूरक-कुम्भकस्त्रिविधः प्राणायामः चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतायां निबध्नाति, सर्वासामिन्द्रियवृत्तीनां प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात्, मनःप्राणयोश्च स्वव्यापारे परस्परमेकयोगक्षेमत्वात्[2], जीयमाण[3] प्राणः समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण चित्तस्यैकाग्रतायां प्रभवति। समस्तदोषक्षयकारित्वञ्चास्यागमे[4] श्रूयते, दोषकृताश्च सर्वा विक्षेपवृत्तयः, अतो दोषनिर्हरणद्वारेणाप्यस्यैकाग्रतायां सामर्थ्यम्॥ ३४॥

---

१ विधारणेति आकारान्तोऽयं शब्दोऽत्र पठ्यते। अन्ये तु अकारान्तो नपुंसकलिङ्गोऽयमिति मन्यन्ते। केषुचित्संस्करणेषु विधारणमित्येव पठ्यते।

२ स्वव्यापारे परस्परमेक (पा०)

३ क्षीयमाण (पा०)।

४ द्र० प्राणायामैर्दहेद् दोषान् (मनु० ६।७२)।

कोष्ठस्य = कोष्ठस्थित, उदरस्य, हृदयस्थ। वायो = वायु का। प्रयत्नविशेषात् = विशेष प्रयत्न से, प्रयामपूर्वक। मात्राप्रमाणेन = कुछ निश्चित मात्रा में। बहि॰ = बाहर। नि मारण = निकालना ही। प्रच्छर्दन = प्रच्छर्दन है। अन्त वायु को नासिकारन्ध्र से कुछ मात्रा में प्रयत्नपूर्वक बाहर निकालना ही प्रच्छर्दन है। मात्राप्रमाणन = मात्राप्रमाण से, निश्चित मात्रा में। एव = ही। प्राणस्य = प्राण अर्थात् वायो = वायु का। बहि = बाहर की। गतिविच्छेद = गति का रोकना ही। विधारणा = विधारणा है अर्थात् प्रयत्नपूर्वक प्राणवायु की बहिर्गति में विच्छेद कर अन्त में ही धारण करना विधारणा है। च = और। सा = वह विधारणा। द्वाभ्या प्रकाराभ्या = दो प्रकार से होती है अर्थात्। बाह्यस्य = बाहरी प्रणवायु का। आभ्यन्तरापूरणेन = भीतर ही पूरक द्वारा पूरण करना। वा = अथवा। पूरितस्य = पूरण की गई वायु का। तत्रैव = उसी तरह। निरोधेन = निरोध, रोकने से। तद् एव = इस प्रकार से। रेचकपूरक-कुम्भक = रेचक, पूरक एवं कुम्भक रूप से। त्रिविध = तीन प्रकार का। प्राणायाम॰ = प्राणायाम। चित्तस्य = चित्त की। स्थिति = स्थित को। एकाग्रताया = एकाग्रता में। निबध्नाति = बाँधता है अर्थात् त्रिविध रूप प्राणायाम चित्त को स्थिर, एकाग्र बनाता है। सर्वासा = सभी। इन्द्रियवृत्तीना=इन्द्रियों की वृत्ति का। प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात् = प्राण के व्यापार पूर्वक होने से अर्थात् प्राण के व्यापार युक्त होने पर ही सभी इन्द्रियाँ व्यापार युक्त होती है। मन प्राणयो च = मन और प्राण का। स्वव्यापारपरस्पर = अपने अपने व्यापार में परस्पर एक दूसरे का। एकयोगक्षेमत्वात् = एक ही योग और क्षेम वाला होने के कारण। क्षीयमाण = प्राणायाम द्वारा क्षीण होता हुआ। प्राण = प्राण। समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण = सभी इन्द्रियों के व्यापार के निरोध, रुक जाने से। चित्तस्य = चित्त की। एकाग्रताया = एकाग्रता में। प्रभवति = समर्थ होता है अर्थात् प्राणव्यापार के कारण इन्द्रियाँ सक्रिय होकर चित्त का विक्षेप करती है। प्राणायाम से प्राणवायु में क्षीणता होने से इन्द्रियाँ अपने व्यापार से उपरत हो जाती है। अतः चित्त एकाग्र हो जाता है। च = और। आगमे = आगम, वेदशास्त्रों में। समस्तदोषक्षयकारित्वं = सभी प्रकार के दोषों का क्षय किया

जाना। अस्य = इस प्राणायाम का। श्रूयते = सुना जाता है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से सभी दोष दूर हो जाते है ऐसा शास्त्रो का वचन है। च = और। सर्वा = सभी। विक्षेपवृत्तय = विक्षेप की वृत्तियाँ। दोषकृता = राग-द्वेष आदि दोषो के द्वारा की गई, उत्पन्न की गई है। अत = इसलिये। दोषनिर्हरणद्वारेण = दोषो के हरण, विनाश, निवारण के द्वारा। अपि = भी। अस्य = इस प्राणायाम की। एकाग्रताया = चित्त की एकाग्रता में। सामर्थ्य = सामर्थ्य, शक्ति सम्पन्नता है ॥ ३४ ॥

इदानीमुपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण सम्प्रज्ञातस्य समाधे पूर्वाङ्ग कथयति—

इदानी = अब। उपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण = दूसरे उपाय के प्रदर्शन, वर्णन के उपक्षेप, अनुपयोगिता होने के कारण। सम्प्रज्ञातस्य = सम्प्रज्ञात। समाधे = समाधि के। पूर्वाङ्ग = पूर्वाङ्ग को। कथयति = कहते है।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थितिनिबन्धिनी ॥३५॥

अर्थ—वा = अथवा। विषयवती = शब्दस्पर्शरूपरसगन्धरूप दिव्यविषयों को ग्रहण करने वाली। प्रवृत्ति = उत्कृष्ट वृत्ति, योगी की चित्तवृत्ति। उत्पन्ना= उत्पन्न होकर। स्थितिनिबन्धिनी = स्थिति को बाँधने वाली होती है, चित्त को एकाग्र करने वाली होती है अर्थात् शब्दस्पर्श आदि दिव्य विषयो का अनुभव, साक्षात्कार करने वाली चित्तवृत्ति भी चित्त की एकाग्रता में सहायक होती है।

वृत्ति—मनस इति वाक्यशेष[1]। विषया गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दा, ते विद्यन्ते फलत्वेन यस्या सा विषयवती प्रवृत्तिर्मनस: स्थैर्यं करोति। तथा हि, नासाग्रे चित्त धारयतो दिव्यगन्धसंविदुपजायते। तादृशस्येव जिह्वाग्रे रससंवित्, ताल्वग्रे रूपसंवित्, जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्, जिह्वामूले शब्दसंवित्। तदेव तत्तदिन्द्रिय-द्वारेण तस्मिंस्तस्मिन् विषये दिव्ये जायमाना संवित् चित्तस्यैकाग्रताया हेतुर्भवति, अस्ति योगस्य फलमिति योगिन समाश्वासोत्पादनात् ॥ ३५ ॥

मनस इति वाक्यशेष = मनस यह वाक्य का शेष है अर्थात्

---

[1] एतेन गम्यते यद् भोजमते सूत्रे मनस इति पद न पठ्यते।

'मानस' का सबन्ध सूत्र के साथ होना चाहिये था। गन्धरसरूपस्पर्शशब्दा = गन्ध रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द रूप से। विषया. = विषय हैं। ते = वे ही पञ्च। विद्यन्ते = विद्यमान हैं। फलत्वेन = फलरूप से। यस्या = जिसके, जिस चित्त-वृत्ति के। सा = वह। विषयवती = गन्ध-रस आदि विषयों वाली। प्रवृत्तिः = चित्त की वृत्ति। मनस = मन को। स्थैर्यं = स्थिरता, एकाग्रता को। करोति = करती है, मन को स्थिर बनाती है। तथाहि = जैसे कि। नासाग्रे = नासिका के अग्र भाग पर। चित्त = चित्तवृत्ति को। धारयत = धारण करने पर। दिव्यगन्धसंवित् = दिव्य, सूक्ष्म गन्ध का ज्ञान। उपजायते = उत्पन्न होता है। तादृगस्य = उस प्रकार का। इव = समान, ही। जिह्वाग्रे = जिह्वा के अग्रभाग पर चित्तवृत्ति को धारण करने पर। रससंवित् = दिव्य रस का ज्ञान। ताल्वग्रे = तालु के अग्रभाग में। रूपसंवित् = दिव्य रूप का ज्ञान। जिह्वा-मध्ये = जिह्वा के मध्य में। स्पर्शसंवित् = दिव्य स्पर्श का ज्ञान। जिह्वामूले = जिह्वा के मूल भाग में चित्तवृत्ति धारण करने पर। शब्दसंवित् = दिव्य शब्द का ज्ञान होता है। तद् एवं = इस प्रकार से। तत् तत् इन्द्रियद्वारेण = उन उन इन्द्रियों के द्वारा। तस्मिन् = उस। दिव्ये = दिव्य, सूक्ष्म गन्ध-रस इत्यादि। विषये = विषय में। जायमाना = उत्पन्न हुआ। संवित् = ज्ञान चित्तस्य = चित्त की। एकाग्रताया = एकाग्रता, स्थिरता का, में। हेतु = कारण, सहायक। भवति = होना है। समाश्वासोत्पादनात् = आश्वासन, विश्वास उत्पन्न होने से। योगिन = योगी को। योगस्य = योग का। फल = फल। अस्ति = होता है, प्राप्त होता है। इति = ऐसा अर्थात् दिव्य विषयों को ग्रहण करने से विश्वास उत्पन्न होता है और इस विश्वास से योग के फल की प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥

एवंविधमेवोपायान्तरमाह—

एव विधं = इस प्रकार के। एव = ही। उपायान्तर = दूसरे उपाय को चित्त की एकाग्रता के दूसरे साधन को। आह = कहते हैं।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अर्थ—वा = अथवा। विशोका = शोक रहित। ज्योतिष्मती = ज्योति-

मय, प्रकाशरूप उत्पन्न हुई चित्तवृत्ति मन की एकाग्रता में सहायक होती है।

वृत्तिः—प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनीति वाक्यशेष । ज्योति-शब्देन सात्त्विक प्रकाश उच्यते, स प्रशस्तो भूयानतिशयवांश्च विद्यते यस्या सा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति । विशोका विगत सु[1]खमयसत्त्वाभ्यासवशाच्छोको रज-परिणामो यस्या सा विशोका चेतस स्थितिनिबन्धिनी । अयमर्थ —हृत्पद्म-सम्पुटमध्ये प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्य चित्तस्य सत्त्व भावयत प्रज्ञालोकात् सर्ववृत्तिक्षये चेतस स्थैर्यमुत्पद्यते ॥ ३६ ॥

प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनी = उत्पन्न हुई चित्तवृत्ति चित्त की स्थिति को बांधने वाली होती है। इति = यह। वाक्यशेष = वाक्य का शेष है अर्थात् शोक रहित एव प्रकाशमय उत्पन्न हुई वृत्ति चित्त को एकाग्र करने वाली होती है। ज्योति शब्देन = ज्योति शब्द के द्वारा। सात्त्विक = सात्त्विक, सत्त्वगुण वाला। प्रकाश = प्रकाश। उच्यते = कहा जाता है। स = वही सत्त्वगुण विशिष्ट प्रकाश। प्रशस्त = प्रशस्त। भूयान् = और भी अधिक। च = और। अतिशयवान् = अतिशय, अत्यधिक रूपसे। विद्यते = विद्यमान है। यस्या = जिस वृत्ति का अर्थात् जिस वृत्ति में अतिशय रूप से सात्त्विक प्रकाश विद्यमान है। सा = वह। ज्योतिष्मती = ज्योतिष्मती। प्रवृत्ति = चित्त की वृत्ति है। सुखमयसत्त्वाभ्यासवशात् = सुखमय अभ्यास के बल से। विगत = दूर हो गया है। शोक = शोक, दु ख। रज परिणाम = रजो-गुण का परिणाम, कार्य। यस्या = जिस वृत्ति का। वह। विशोका = विशोका चित्तवृत्ति है। सा = वह। विशोका = विशोका, दु खरहित चित्तवृत्ति। चेतस = चित्त की। स्थितिनिबन्धिनी = स्थिरता को बांधने वाली, एकाग्र करने वाली होती है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। हृत्पद्मसम्पुटमध्ये = हृदय रूप कमल सम्पुट के मध्य में। प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्य = शान्त हुई तरङ्गों वाले दुग्धसागर के प्रशान्त प्रकाश, ज्ञान के समान। चित्तस्य = चित्तके। सत्त्व = प्रख्या, प्रकाशरूप चित्तका। भावयत = भावना करते हुये। प्रज्ञा आलोकात् =

1 सुखमयसत्त्वाभ्यास (पा०)

प्रकृष्ट ज्ञान के प्रकाश से । सर्ववृत्तिक्षये = सभी वृत्तियों के क्षय, लय हो जाने पर । चेतस = चित्त की । स्थैर्य्यं = स्थिरता, एकाग्रता । उत्पद्यते = उत्पन्न होती है ॥ ३६ ॥

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण सम्प्रज्ञातसमाधेर्विषयं दर्शयति—

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण = अन्य उपाय के प्रदर्शन, वर्णन, के द्वारा । सम्प्रज्ञातसमाधे = सम्प्रज्ञात समाधि के । विषय = विषय को । दर्शयति = दिखलाते हैं ।

वीतरागविषय वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—वा = अथवा । वीतरागविषय = रागरहित सनक, दत्तात्रेय, कृष्ण, व्यास, शुकदेव इत्यादि योगियों के चित्त को विषय बनाने वाला । चित्त = चित्त भी एकाग्रता प्राप्त करता है ।

वृत्ति—मनस स्थितिनिबन्धन भवतीति शेष । वीतराग परित्यक्तविषयाभिलाष , तस्य यत् चित्त परिहृतक्लेश तद् आलम्बनीकृतं चेतस स्थितिहेतुर्भवति ॥३७॥

मनस = मन को । स्थितिनिबन्धन = स्थिति, एकाग्रता को बांधने वाला । भवति = होता है । इति शेष = यह शेष है अर्थात्-इसका सूत्र के साथ सबन्ध होना चाहिये । वीतराग = वीतराग अर्थात् । परित्यक्तविषयाभिलाष = जिसने विषयों की अभिलाषा, तृष्णा त्याग दी है। तस्य = उस पुरुष का । यत् = जो । परिहृतक्लेश = अविद्या, अस्मिता आदि सभी प्रकार के क्लेशों का परिहार, निवारण करने वाला । चित्त = चित है । तद् = वही । आलम्बनीकृत = आलम्बन, आश्रय, विषय बनाया गया चित्त । चेतस = चित्त की । स्थिति = स्थिरता, एकाग्रता का । हेतु = कारण । भवति = होता है । अर्थात् क्लेश, रागरहित योगी के चित्तका आलम्बन बनाने वाला साधक का अपना चित्त एकाग्र हो जाता है ॥ ३७ ॥

एवंविधमुपायान्तरमाह—

एवं विध = इसी प्रकार के । उपायान्तर = चित्त की एकाग्रता के दूसरे उपाय को । आह = कहते हैं ।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वा = अथवा। स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बन = स्वप्न एवं निद्रावस्था के ज्ञानालम्बन से भी चित्त एकाग्र होता है अर्थात् स्वप्नावस्था में सात्विक ज्ञान के विषय भगवत्प्रतिमा इत्यादि पदार्थ तथा निद्रावस्था में सात्विक ज्ञान का विषय अपना ही स्वरूपभूत पदार्थ का आलम्बन, आश्रय ग्रहण करने से, विषय बनाने से चित्त स्थिर होता है।

वृत्ति—प्रत्यस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेर्मनोमात्रेणैव यत्र भोक्तृत्वमात्मनः स स्वप्नः, निद्रा पूर्वोक्तलक्षणा, तदालम्बनं स्वप्नालम्बनं निद्रालम्बनं वा ज्ञानमालम्ब्यमानं चेतसः स्थितिं करोति ॥ ३८ ॥

प्रति अस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्ते—इन्द्रियों की बाह्यवृति, व्यापार, विषयों में गमन करना, वे अस्तमित, अस्त विलीन हो जाने पर। मनोमात्रेण= केवल मन के द्वारा, मानसिक व्यापार से। एव = ही। यत्र = जहाँ पर, जिस समय। आत्मनः = आत्मा का। भोक्तृत्व = भोक्ता रूप होता है। स = वही। स्वप्नः = स्वप्न है। निद्रा = निद्रा। पूर्वोक्तलक्षणा = पहले १।१० में कही गई लक्षण वाली है, जिसके स्वरूप का निरूपण पहले किया जा चुका है। तद् आलम्बन = वही आलम्बन, आश्रय अर्थात्। स्वप्नालम्बन = स्वप्नावस्था के पदार्थों का आलम्बन। वा = अथवा। निद्रालम्बन = निद्रावस्था के पदार्थों का आलम्बन। इस प्रकार। आलम्ब्यमान = अवलम्बन, विषय बनाया जाने वाला। ज्ञान = स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था का ज्ञान। चेतसः = चित्त की। स्थिति = स्थिरता को। करोति = करता है, चित्त को एकाग्र बनाता है ॥ ३८ ॥

नानारुचित्वात् प्राणिनां यस्मिन् कस्मिंश्चिद्वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवति, तस्य ध्यानेनापीष्टसिद्धिरिति प्रतिपादयितुमाह—

प्राणिनां = प्राणियों की। नानारुचित्वात् = विविध प्रकार की रुचि होने के कारण। यस्मिन् = जिस। कस्मिंश्चित् = किसी। वस्तुनि = वस्तु में। योगिनः = योगी की। श्रद्धा = श्रद्धा, विश्वास होता है। तस्य = उस वस्तु के। ध्यानेन = ध्यान के द्वारा। अपि = भी। सिद्धि = फल की प्राप्ति होती है।

इसि = इसी का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

अर्थ—वा = अथवा। यथाभिमतध्यानात् = अपने अभीष्ट के ध्यान से अर्थात् योगी को जो स्वरूप अभिमत, अभीष्ट, इष्ट हो, उसी अनुकूल, अभिलषित पदार्थ के ध्यान से चित्त एकाग्र होता है।

वृत्ति—यथाऽभिप्रेते वस्तुनि बाह्ये चन्द्रादावभ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा भाव्यमाने चेतः स्थिरीभवति ॥ ३९ ॥

यथा अभिप्रेते = यथा अभिलषित, रुचि के अनुसार। वस्तुनि = वस्तु में। बाह्ये = बाह्य वस्तु। चन्द्रादौ = चन्द्रमा इत्यादि में। वा = अथवा अभ्यन्तरे = अन्त, आन्तरिक। नाडीचक्रादौ = नाडी, चक्र इत्यादि में भाव्यमाने = भावना करने पर, ध्यान लगाने पर। चेत = चित्त। स्थिरीभवति = स्थिर, एकाग्र होता है ॥ ३९ ॥

एवमुपायान् प्रदर्श्य फलदर्शनायाह—

एवं = इस प्रकार से। उपायान् = उपायों को। प्रदर्श्य = दिखलाकर, वर्णन करके। फलदर्शनाय = फल दिखलाने, वर्णन करने के लिए। आह = कहते हैं।

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

अर्थ—अस्य=इस योगी के चित्त का। परमाणुपरममहत्त्वान्त = परमाणु तक तथा परम् महान् तक। वशीकार. = वशीकार, वशीकरण होता है, अर्थात् एकाग्रता के उपायों के अभ्यास से इस योगी का चित्त अणु, सूक्ष्म पदार्थों में परम अणु तक तथा महान् पदार्थों में आकाश रूप परम महान् तक अर्थात् सभी सूक्ष्म एव स्थूल विषयों में वशीकार होता है, बिना किसी प्रतिघात, बाधा के चित्त का वशीकार होता है। स्थितिप्राप्त, एकाग्रचित्त को किसी भी विषय पर धारण करने की अवस्था ही वशीकार है।

वृत्ति—एभिरुपायैश्चित्तस्य स्थैर्यं भावयतो योगिनः सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण परमाण्वन्तो वशीकारोऽप्रतिघातरूपो जायते, न क्वचित् परमाणुपर्यन्ते[1] सूक्ष्मे विषयेऽस्य मनः प्रतिहन्यते इत्यर्थः । एवं स्थूलमाकाशादिपरममहत्त्वपर्यन्तं भावयतो न क्वचिच्चेतसः प्रतिघात उत्पद्यते, सर्वत्र स्वातन्त्र्यं भवतीत्यर्थः ॥४०॥

एभिः=इन । उपायैः=उपायों, साधनों से । चित्तस्य=चित्त की । स्थैर्यं=स्थिरता, एकाग्रता । भावयतः=भावना, ध्यान करते हुए । योगिनः = योगी का । सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण=सूक्ष्मविषय की भावना, विचार द्वारा । परमाण्वन्तः=परम अणु तक । वशीकारः=वशीकार अर्थात् । अप्रतिघातरूप = बाधा, रुकावट का अभाव । जायते=उत्पन्न होता है अर्थात् । अस्य=इस योगी का । मनः=मन, चित्त । परमाणुपर्यन्ते=परम अणु तक । सूक्ष्मे=सूक्ष्म । विषये= विषय में क्वचित्=कहीं पर भी । न=नहीं । प्रतिहन्यते=विघ्नित, बाधित होता है । इति अर्थः=यह अभिप्राय है । एवं=इसी प्रकार । स्थूलं = स्थूल । आकाशादिपरममहत्त्वपर्यन्तं = आकाश इत्यादि परम महान् पदार्थों तक । भावयतः = भावना, ध्यान, विचार करते हुए । चेतसः = चित्त की । क्वचित् = कहीं पर भी । प्रतिघातः = बाधा । न = नहीं । उत्पद्यते = उत्पन्न होती है । सर्वत्र = सभी जगह, सभी विषयों में । स्वातन्त्र्यं = स्वतन्त्रता, निर्बाधगति । भवति = होती है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ४० ॥

एवमेभिरुपायैः संस्कृतस्य चेतसः कीदृग्रूपं भवतीत्याह—

एवं = इस प्रकार । एभिः = इन । उपायैः = उपायों के द्वारा । संस्कृतस्य = संस्कृत, शुद्ध, एकाग्र । चित्तस्य = चित्त का । कीदृक् = किस प्रकार का । रूपं = स्वरूप । भवति = होता है । इति = इसी को । आह = कहते हैं ।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-
तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

अर्थ—क्षीणवृत्तेः = क्षीण वृत्ति वाले, बाह्य विषयों से उपरत चित्त की । अभिजातस्य = स्वच्छ स्फटिक । मणेः = मणि के । इव = समान । ग्रहीतृ= ग्रहीता, ग्रहण करने वाला, चेतन पुरुष । ग्रहण = बुद्धि एवं इन्द्रियाँ । ग्राह्येषु = ग्रहण किये जाने वाले, सूक्ष्म एवं स्थूल विषयों में । तत् स्थ = उनमें

---

१. परमाण्वन्ते (पा०) ।

स्थिति, एकाग्रता। तथा। तदञ्जनता = तद्रूपता उन विषयों को आकारिता, तदाकाराकारिता का होना ही। समापत्ति = समापत्ति, सम्प्रज्ञात समाधि है। यथा शुभ्र, विमल स्फटिक मणि के समक्ष जो भी वस्तु जाती है, मणि उसी के आकार की हो जाती है। इसी प्रकार वृत्तियों से रहित स्वच्छ निरुद्ध चित्त की ग्रहीता, ग्रहण एव ग्राह्य के साथ एकाग्रता तथा एकरूपता होती है, यही सम्प्रज्ञात समाधि है।

वृत्ति.—क्षीणा वृत्तयो यस्य स क्षीणवृत्ति तस्य ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु आत्मेन्द्रियविषयेषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिर्भवति। तत्स्थत्व तत्र एकाग्रता, तदञ्जनता तन्मयत्व, क्षीणभूते चित्ते विषयस्य भाव्यमानस्यैवोत्कर्ष, तथाविधा समापत्ति तद्रूप परिणामो भवतीत्यर्थ। दृष्टान्तमाह, अभिजातस्येव मणे — यथा अभिजातस्य निर्मलस्फटिकमणेस्तत्तदुपाधिवशात् तत्तद्रूपापत्ति, एवं निर्मलस्य चित्तस्य तत्तद्भावनीयवस्तूपरागात्तत्तद्रूपापत्ति

यद्यपि ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु इत्युक्त, तथापि भूमिकाक्रमवशात् ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृषु इति बोध्यम्, यत प्रथम ग्राह्यनिष्ठ एव समाधि, ततो ग्रहणनिष्ठ, ततोऽस्मिता[1] मात्ररूपो ग्रहीतृनिष्ठः, केवलस्य पुरुषस्य ग्रहीतुर्भाव्यत्वासम्भवात्। ततश्च स्थूल-सूक्ष्मग्राह्योपरक्त चित्त तत्र समापन्न भवति, एव ग्रहणे ग्रहीतरि च समापन्न बोद्धव्यम् ॥ ४१ ॥

क्षीणाः = क्षीण, नष्ट हो गई है। वृत्तय = वृत्तियाँ। यस्य = जिसकी। स = वह। क्षीणवृत्ति = क्षीण हो गई वृत्तियों वाला, विषयों से उपरत हुआ चित्त है। तस्य = उस चित्त की। ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु = ग्रहीता, ग्रहण करने वाला, विषय ग्रहण करने के साधन अन्त करण एव इन्द्रियाँ, तथा ग्रहण के योग्य, ग्रहण किये जाने वाले स्थूल और सूक्ष्म विषय अर्थात् ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्यरूप। आत्मेन्द्रियविषयेषु = आत्मा, चेतन पुरुष, बुद्धि सहित इन्द्रियों, कारणों एव स्थूल सूक्ष्म विषयों में। तत् स्थ = उनमें स्थित होना अर्थात् स्थिरता, एकाग्रता प्राप्त करना। तथा। तदञ्जनता = तद्रूपता, तादा-

---

१ अस्मितारूप (पा०)।

की प्राप्ति ही। समापत्ति = सम्प्रज्ञात समाधि है। तन्स्थत्व = तत्स्थत्व का अर्थ है। तत्र = उन विषयों में। एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता, स्थिरता होना। और तदञ्जनता = तदञ्जनता का अभिप्राय है। तन्मयत्व = तन्मय, तद्रूपता, विषयों के ही रूप का होना। क्षीणभूते = वृत्तियों के क्षीण हुये, वृत्तिरहित। चित्ते = चित्त में। भाव्यमानस्य = ध्यान किये जाने वाले। विषयस्य = विषय को। एव = ही। उत्कर्ष = प्रबलता होती है। तथाविधा= उसी प्रकार की, ध्येय विषय के अनुरूप। समापत्ति =समापत्ति अर्थात्। तद्रूप = उसी रूप का। परिणाम = परिणाम। भवति = होता है। इति अर्थ = यह तात्पर्य है। दृष्टान्त = दृष्टान्त, उदाहरण। आह = कहते है। अभिजातस्य = स्वच्छ स्फटिक। मणे = मणि के। इव = समान। यथा = जैसे। अभिजातस्य = अभिजात का अर्थात्। निर्मलस्फटिकमणे = निर्मल, स्वच्छ, मलिनता रहित स्फटिकमणि को। तत्तत् = जपाकुसुम, पीतकुसुम, नीलपुष्प इत्यादि उन, उन। उपाधिवशात् = उपाधि के कारण। तत्तत् = जपाकुसुम, पीतकुसुम, नीलपुष्प, इत्यादि उन, उन। रूपापत्ति = रूपों की प्राप्ति, तादात्म्यप्राप्ति होती है। एव = इसी प्रकार। निर्मलस्य = विषयों से उपरत, वृत्तिरहित, स्वच्छ, निर्मल। चित्तस्य को। तत्तत् = ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य उन, उन। भावनीय = भावना ध्यान की जाने वाली। वस्तूपरागात = वस्तुओं के उपराग से। तत्तत् = ग्रहीता, ग्रहण, ग्राह्य उन, उन। रूपापत्ति = स्वरूपों की प्राप्ति होती है। यद्यपि = यद्यपि। ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु = ग्रहीता-ग्रहण-ग्राह्यरूप विषयों में चित्त की एकाग्रता एव तादात्म्यप्राप्ति होती है। इति उक्तं = ऐसा सूत्र में कहा गया है। तथापि = फिर भी। भूमिकाक्रमवशात् = भूमिका के क्रम के अनुसार। ग्राह्यग्रहणग्रहीतृषु = ध्येय स्थूल-सूक्ष्मविषय, विषय ग्रहण करने के साधन अन्त करण तथा इन्द्रिय एव ग्रहीता चेतन पुरुष में चित्त की एकाग्रता तथा तद्रूपता होती है। इति = ऐसा। बोद्ध्य = समझना चाहिए। यत = क्योंकि। प्रथम = पहले। ग्राह्यनिष्ठ = ग्राह्यनिष्ठ, स्थूल-सूक्ष्म विषयों में होने वाली। एव = ही। समाधि = समाधि होती है। तत = उसके बाद। ग्रहणनिष्ठ = ग्रहणनिष्ठ, अन्त करण इन्द्रियों में होने वाली समाधि होती है

शब्द का कण्ठतालु से उच्चारण तथा श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है। गो अर्थ गोशाला में रहने वाला शृङ्गसास्नायुक्त एक पदार्थ है। गो ज्ञान भी गो व्यक्ति विषयक तदाकाराकारित चित्त का परिणाम है। इस प्रकार शब्द-अर्थ-ज्ञान तीनों ही परस्पर नितान्त भिन्न हैं। इन विद्यमान विकल्पों, भेदों की मिश्रित, अभिन्न एक ही रूप में प्रतीति होना सविकल्प सम्प्रज्ञात समाधि है। इसी को सविकल्प सम्प्रज्ञात समापत्ति कहते हैं।

वृत्ति—श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य स्फोटरूपो वा शब्द, अर्थो जात्यादि, ज्ञान सत्त्वप्रधाना बुद्धिवृत्ति, विकल्प उक्तलक्षण, तैः सङ्कीर्णा, यस्याम् एते शब्दादयस्त्रय परस्पराध्यासेन[1] विकल्परूपेण प्रतिभासन्ते गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानम् इत्यनेनाकारेण सा सवितर्का समापत्तिरुच्यते ॥ ४० ॥

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य = श्रोत्रेन्द्रिय कर्ण के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला। वा = अथवा। स्फोटरूप = स्फोट, ध्वनिरूप। शब्द = शब्द है। जात्यादि = सास्नादिमत् गोत्व जाति वाला। अर्थ = पदार्थ है। सत्त्वप्रधाना = सत्त्वगुण विशिष्ट, बहुल। बुद्धिवृत्ति = बुद्धि, चित्त की वृत्ति, विषयाकाराकारित चित्त-वृत्ति। ज्ञान = ज्ञान है। विकल्प = विकल्प। उक्तलक्षण = १।९ में कहे गये लक्षण वाला है। तैः = शब्द-अर्थ-ज्ञान उन सबसे। सङ्कीर्णा = सङ्कीर्ण सम्मिश्रित, मिली हुई, एक रूप सी। यस्या = जिसमें। एते = ये। शब्दादय = शब्द इत्यादि अर्थात् शब्द-अर्थ-ज्ञान। त्रय = तीनों ही। परस्पराध्यासेन = परस्पर अध्यास रूप से, मिले हुये से। विकल्परूपेण = विकल्प रूप से। प्रतिभासन्ते = प्रतीत होते हैं। गौ इति = गौ यह। शब्द = श्रोत्रगृहीत शब्द है। गौ इति = गौ यह। अर्थ = सास्नादियुक्त पदार्थ है। गौ इति = गौ यह। ज्ञान = विषयाकाराकारित चित्तवृत्ति ज्ञान है। इति = इस रूप से। अनेन = इस विकल्प, मिश्रित रूप से। आकारेण = आकार से जहाँ पर प्रतीति होती है। सा = वह। समापत्तिः = समाधि। सवितर्का = सवितर्क, वितर्कानुगत। उच्यते = कही जाती है ॥ ४२ ॥

---

१ परस्पराध्यासेन प्रतिभासन्ते (पा०)।

उक्तलक्षणविपरीता निर्वितर्कामाह—

उक्तलक्षणविपरीता = कहे गये सवितर्क समापत्ति के लक्षण से भिन्न स्वरूप वाली। निर्वितर्का = निर्वितर्क समापत्ति को। आह = कहते हैं।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

अर्थ —स्मृतिपरिशुद्धौ = स्मृति की परिशुद्धि, निवृत्ति, लोप हो जाने पर। स्वरूपशून्या = अपने स्वरूप से शून्य ज्ञान से भी रहित चित्तवृत्ति। एव = ही। अर्थमात्रनिर्भासा = केवल ध्येय पदार्थ को ही प्रकाशित करने वाली। निर्वितर्का = निर्वितर्क समापत्ति होती है अर्थात् स्मृति का अभाव हो जाने से तथा अपने स्वरूप का भी ज्ञान न रखने वाली चित्तवृत्ति जब वितर्कों से रहित केवल ध्येय पदार्थ का ही ज्ञान प्रदान करती है, तब उसे निर्वितर्क सप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

वृत्ति —शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासि[1]तया न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन स्वरूपशून्येव निर्वितर्का समापत्ति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति = शब्द एवं उसके अर्थ की स्मृति का लोप, अभाव हो जाने पर। न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन = ज्ञान अंश के न्यून हो जाने से। स्वरूपशून्या इव = अपने स्वरूप की भी प्रतीति न कराने वाली चित्तवृत्ति। प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासितया = उत्पन्न हुई ग्राह्य, ध्येय विषय के स्वरूप को सुस्पष्टरूप से प्रकाशित करने वाली चित्तवृत्ति। निर्वितर्का = निर्वितर्क। समापत्ति = समाधि है। बुद्धि में केवल ध्येय विषय का ही शेष रहना निर्वितर्क सप्रज्ञात समाधि है ॥ ४३ ॥

भेदान्तर प्रतिपादयितुमाह—

भेदान्तर = समापत्ति के दूसरे भेद का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन, वर्णन के लिये। आह = कहते हैं।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥४४॥

---

१ प्रतिभासितया (पा०)।

अर्थ—एतया एव = इसी सवितर्क एवं निर्वितर्क समापत्ति के वर्णन से। सूक्ष्मविषया = सूक्ष्म विषय सम्बन्धी, सूक्ष्म तन्मात्राओं एवं अन्त करण संबन्धी। सविचारा = सविचार, विचारानुगत समापत्ति। च = और। निर्विचारा = निर्विचार समापत्ति का। व्याख्याता = व्याख्यात, वर्णन किया गया अर्थात् जैसे स्थूल महाभूतों एवं इन्द्रियों के विषय में शब्द-अर्थ-ज्ञान रूप विकल्पों को ग्रहण करने वाली समापत्ति सवितर्क तथा इन वितर्कों से रहित केवल ध्येय पदार्थ को ही ग्रहण करने वाली समापत्ति निर्वितर्क है। उसी प्रकार सूक्ष्म तन्मात्राओं एवं अन्त करण के सबन्ध में देश-काल-धर्म सहित की गई समापत्ति सविचार एवं इन धर्मों से रहित केवल तन्मात्रा तथा अन्त करणरूप सूक्ष्मविषयक समापत्ति निर्विचार है।

वृत्ति—एतयैव सवितर्कया निर्वितर्कया च समापत्त्या सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता, कीदृशी ? सूक्ष्मविषया—सूक्ष्म तन्मात्रेन्द्रियादिविषयो यस्या सा तथोक्ता।

एतेन पूर्वस्या स्थूलविषयत्व प्रतिपादित भवति। सा हि महाभूतेन्द्रियालम्बना[1], शब्दार्थविषयत्वेन शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन देशकालधर्माद्यवच्छिन्न सूक्ष्मोऽर्थ प्रतिभाति यस्यां सा सविचारा। देशकालधर्मादिरहितो धर्मिमात्रतया[2] सूक्ष्मार्थस्तन्मात्रेन्द्रियरूप प्रतिभाति यस्या सा निर्विचारा॥ ४४॥

एतया = इस। एव = ही। सवितर्कया = सवितर्क। च = और। निर्वितर्कया = निर्वितर्क। समापत्त्या = समापत्ति के द्वारा। सविचारा = सविचार। च = और। निर्विचारा = निर्विचार समापत्ति की। व्याख्याता = व्याख्या की गई। कीदृशी = किस प्रकार की। सूक्ष्मविषया = सूक्ष्मविषय वाली अर्थात्। सूक्ष्म = सूक्ष्म। तन्मात्रेन्द्रियादि = तन्मात्रा एवं इन्द्रिय इत्यादि हैं। विषय = विषय। यस्या = जिस समापत्ति के। सा=वह समापत्ति। तथा = उस प्रकार से। उक्ता = कही गई है। एतेन = इसके द्वारा। पूर्वस्या = पहले की, सवितर्क तथा निर्वितर्क। स्थूलविषयत्व = स्थूल विषय वाली का। प्रतिपादित =

---

१ महाभूतालम्बना (पा०)।
२ धर्ममात्रतया (पा०)।

प्रतिपादन, वर्णन। भवति = होता है। सा हि = वह तो। महाभूतेन्द्रियालम्बना = महाभूतों तथा इन्द्रियों का आलम्बन ग्रहण करने वाली, विषय बनाने वाली। शब्दार्थविषयत्वेन = शब्द एवं उसके अर्थ रूप विषय से। शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन = शब्द, अर्थ इत्यादि विकल्पों, विचारों सहित। देशकालधर्माद्यवच्छिन्न = देश, काल, धर्म इत्यादि से अवच्छिन्न, युक्त, सबद्ध, सहित। सूक्ष्म = सूक्ष्म। अर्थः = अर्थ, पदार्थ। यस्या = जिस समापत्ति में। प्रतिभाति= प्रकाशित, ज्ञात होता है। सा = वह। सविचारा = सविचार समापत्ति, विचारानुगत समाधि है। देशकालधर्मादिरहित = देश, काल, धर्म इत्यादि से रहित। धर्मिमात्रतया = केवल धर्मी रूप से। तन्मात्रेन्द्रियरूप = तन्मात्रा तथा इन्द्रिय रूप। सूक्ष्मार्थ = सूक्ष्म अर्थ, पदार्थ। यस्या = जिस समापत्ति में। प्रतिभाति = प्रकाशित होता है। सा = वह। निर्विचार = निर्विचार समापत्ति है। तन्मात्रा, इन्द्रिय इत्यादि सूक्ष्म विषयों में देश, काल, धर्म आदि का ज्ञान *कराने वाली समापत्ति सविचार एवं इन धर्मों, विकल्पों से रहित शुद्ध*, केवल धर्मी का ही ज्ञान प्रदान कराने वाली समापत्ति निर्विचार है ॥ ४४ ॥

अस्या एव सूक्ष्मविषयाया किम्पर्यन्त सूक्ष्मविषय इत्याह—

अस्या = इस। सूक्ष्मविषयाया = सूक्ष्म विषयों वाली सविचार एवं निर्विचार समापत्ति के। एव = ही। सूक्ष्मविषयः = सूक्ष्म विषय। किं पर्य्यन्त = कहाँ तक, किस सीमा तक है। इति = इसीको। आह = कहते है।

सूक्ष्मविषयत्वञ्चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

अर्थ —च = और। सूक्ष्मविषयत्व = सूक्ष्म विषयता, विषय की सूक्ष्मता। अलिङ्गपर्य्यवसान = अलिङ्ग पर्यन्त, प्रकृति तक है अर्थात् सविचार एवं निर्विचार समापत्तियों के विषय की परम सूक्ष्मता अलिङ्ग, विलय को न प्राप्त होने वाली प्रकृति ही है। प्रकृति से सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नही है। उसका लय भी किसी में नही होता। सभी कार्यों की वही मूल है। पृथिवी-जल-तेज-वायु-*आकाश रूप पञ्च स्थूल महाभूतों का लय क्रमशः गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द रूप* पञ्च तन्मात्राओं में, इन्द्रिय सहित पञ्च तन्मात्राओ का लय अहंकार में, अहकार का लय महत्तत्त्व बुद्धि में और बुद्धि का लय प्रकृति में होता है। प्रकृति का

विलय किसी में भी नहीं होता। अत वह अलिङ्ग, सबका मूल एव सूक्ष्मतम है। प्रकृति की सूक्ष्मता के सम्बन्ध में श्रुति कहती है—

इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च पर मन ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् पर ॥

महत परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुष पर ।

पुरुषान्न पर किंचित्सा काष्ठा सा परा गति ॥ कठ १।३।१०-११। अत प्रकृति पर्यन्त किसी भी सूक्ष्म पदार्थ को विषय बनाकर की गई समापत्ति को सविचार तथा निर्विचार समझना चाहिये।

वृत्ति—सविचार-निर्विचारयो समापत्त्योर्यत् सूक्ष्मविषयत्वमुक्त तदलिङ्ग-पर्य्यवसान न क्वचिल्लीयते न वा किञ्चिन् लिङ्गति गमयतीत्यलिङ्ग प्रधान, तत्पर्य्यन्त सूक्ष्मविषयत्वम्। तथा हि—गुणाना परिणामे चत्वारि पर्वाणि—विशिष्टलिङ्गम्, अविशिष्टलिङ्ग, लिङ्गमात्रम्, अलिङ्ग चेति। विशिष्टलिङ्ग भूतेन्द्रियाणि[1], अविशिष्टलिङ्ग तन्मात्रान्त करणानि, लिङ्गमात्र बुद्धि, अलिङ्ग प्रधानमिति नात पर सूक्ष्ममस्तीत्युक्त भवति ॥ ४५ ॥

सविचारनिर्विचारयो = सविचार एव निर्विचार। *समापत्त्यो* = समापत्तियों के। यत् = जो। सूक्ष्मविषयत्व = सूक्ष्म विषय। उक्त = कहे गये है। तद् = वह विषय की सूक्ष्मता। अलिङ्गपर्य्यवसान = अलिङ्ग, प्रकृति तक अन्त होने वाला है अर्थात् सूक्ष्म विषयों की चरम काष्ठा प्रकृति ही है। न = नही। क्वचित्=किसी में। लीयते = लीन होती है। वा = अथवा। न = नही। किञ्चित् = किसी छिपे हुये, अन्तर्हित पदार्थ का। लिङ्गति = ज्ञान कराती है, हेतु बनती है अर्थात्। गमयति = ज्ञान प्रदान करती है। इति = इसीलिये। अलिङ्ग = प्रकृति का नाम अलिङ्ग है (न लीनमर्थं गमयतीति) अर्थात्। प्रधान= इसी प्रकृति को प्रधान कहते है। तत्पर्य्यन्त = उसी प्रकृति पर्यन्त ही। सूक्ष्म-विषयत्व = विषयो की सूक्ष्मता है। तथाहि = जैसे कि। गुणाना = गुणों के। परिणामे=परिणाम में। चत्वारि=चार। पर्वाणि=भाग होते है। विशिष्टलिङ्ग= १-विशिष्टलिङ्ग। अविशिष्टलिङ्ग=२-अविशिष्टलिङ्ग। लिङ्गमात्र=३-लिङ्गमात्र।

---

१ भूतानि, अविशिष्टलिङ्ग तन्मात्रेन्द्रियाणि (पा०)।

च=और । अलिङ्ग= ४-अलिङ्ग । इति = इस रूप से चार भेद होते हैं । विशिष्ट-लिङ्ग = विशिष्टलिङ्ग । भूतेन्द्रियाणि = पञ्च स्थूल महाभूत तथा इन्द्रियाँ है । अविशिष्टलिङ्ग = अविशिष्ट लिङ्ग । तन्मात्रान्त करणानि = पञ्च सूक्ष्म तन्मात्रायें एव अन्त करण हैं । लिङ्गमात्र = लिङ्गमात्र, केवल लिङ्गरूप । बुद्धि = बुद्धि हैं । अलिङ्ग = अलिङ्ग । प्रधान = प्रधान, प्रकृति है । इति = इस रूप से चार भेद हैं । अत = इस प्रकृति से । पर = बढकर, अधिक । सूक्ष्म = सूक्ष्म । कोई भी पदार्थ । न = नही । अस्ति = है । इति उक्त भवति = यही अभिप्राय है । प्रकृति ही सूक्ष्मतम है ॥ ४५ ॥

एतासा समापत्तीना प्रकृते प्रयोजनमाह—

प्रकृते = प्रकृत विषय में, समाधि के सम्बन्ध में । एतासा = इन चारो । समापत्तोना = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियो का । प्रयोजन= प्रयोजन, उद्देश्य, उपयोगिता को । आह = कहते हैं ।

ता एव सबीज समाधि ॥ ४६ ॥

अर्थ—ता = वही सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियाँ । एव = ही । सबीज. = सबीज, सप्रज्ञात । समाधि = समाधि है । चित्त में किसी न किसी ध्येय पदार्थ के विद्यमान होने के कारण ये चारो ही समापत्तियाँ सबीज समाधि हैं ।

वृत्ति—ता एव उक्तलक्षणा समापत्तय:, सबीज सह बीजेनालम्बनेन वर्त्तत इति सबीज सम्प्रज्ञात समाधिरित्युच्यते, सर्वासा सालम्बनत्वात् ॥ ४६ ॥

ता: एव = वही । उक्तलक्षणा = लक्षण कही गई, वर्णन की गई । समापत्तय = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार-निर्विचार समापत्तियाँ । सबीज = सबीज अर्थात् । बीजेन सह = बीज, ध्येय पदार्थ के साथ । आलम्बनेन = आलम्बन, आश्रय के साथ । वर्त्तते = विद्यमान है । इति = इसलिये । सबीज = सबीज, बीज, ध्येय सहित । सप्रज्ञात = सप्रज्ञात । समाधि = समाधि । इति = इस नाम, रूप से । उच्यते = कही जाती है । सर्वासा = सभी चारो समापत्तियो का । सालम्बनत्वात् = आलम्बन, आश्रय, ध्येय सहित होने के कारण अर्थात् इन

चारों समापत्तियों में ध्यातव्य विषय विद्यमान रहता है। अत इन सभी को सबीज अथवा सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं ॥ ४६ ॥

अथेतरासां समापत्तीनां निर्विचारफलत्वाद् निर्विचारायाः फलमाह—

अथ = अब। इतरासां = अन्य तीन। समापत्तीनां = सवितर्क-निर्वितर्क-सविचार समापत्तियों का। निर्विचारफलत्वात् = निर्विचार समापत्ति फल होने के कारण अर्थात् सवितर्क इत्यादि की क्रमशः परिणति निर्विचार समापत्ति में होने के कारण। निर्विचारायाः = निर्विचार समापत्ति के। फलं = फल को। आह = कहते हैं।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

अर्थ—निर्विचारवैशारद्ये = निर्विचार समापत्ति के वैशारद्य अर्थात् रजोगुण एवं तमोगुण रूप कलुष के दूर हो जाने पर, उद्भूत सत्त्व गुण के उत्कर्ष के कारण बुद्धि के विमल, स्वच्छ हो जाने पर। अध्यात्मप्रसादः = अध्यात्म, आत्मा की प्रसन्नता होती है। निर्विचार समाधि के अभ्यास से चित्त से समस्त दोष दूर होकर केवल सत्त्वगुण, प्रकाश की स्थिति हो जाती है। आत्मा प्रसन्न हो जाती है तथा सभी विषयों का यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

वृत्ति—निर्विचारत्वं व्याख्यातम् (१।४४), वैशारद्यं नैर्मल्यं, सवितर्कां स्थूलविषयामपेक्ष्य निर्वितर्कायाः प्राधान्यं, ततोऽपि सूक्ष्मविषयायाः सविचारायाः, ततोऽपि निर्विचारायाः, तस्यास्तु निर्विकल्परूपायाः प्रकृष्टाभ्यासवशाद्वैशारद्ये नैर्मल्ये सत्यध्यात्मप्रसादः समुपजायते। चित्तं क्लेशवासनारहितं स्थितिप्रवाहयोग्यं भवति। एतदेव चित्तस्य वैशारद्यं यत् स्थितौ दार्ढ्यम् ॥ ४७ ॥

निर्विचारत्वं = निर्विचार समापत्ति का। व्याख्यातम् = १।४४ में व्याख्यान, वर्णन किया गया। वैशारद्यं = वैशारद्य का अभिप्राय है। नैर्मल्यं = निर्मलता, बुद्धि की स्वच्छता। स्थूलविषयां = पञ्च महाभूत एवं इन्द्रिय रूप स्थूल विषय वाली। सवितर्कां = सवितर्क समाधि की। अपेक्ष्य = अपेक्षा, तुलना में। निर्वितर्कायाः = निर्वितर्क समाधि की। प्राधान्यं = प्रधानता, महत्त्व है। ततः अपि = उस निर्वितर्क समाधि की अपेक्षा से भी। सूक्ष्मविषयायाः = पञ्च तन्मात्रा अन्तःकरण रूप सूक्ष्म विषयों वाली। सविचारायाः = सविचार समापत्ति की

विशेषता, प्रधानता है। ततः अपि = उस सविचार समापत्ति की अपेक्षा से भी। निर्विचारायाः = निर्विचार समापत्ति को प्रधानता, श्रेष्ठता है। तस्याः तु = और उस। निर्विकल्परूपायाः = निर्विकल्प रूप निर्विचार समापत्ति के। प्रकृष्टाभ्यासवशात् = अतिशय, अत्यधिक अभ्यास के द्वारा। वैशारद्ये = वैशारद्य अर्थात्। नैर्मल्ये सति = अत्यन्त निर्मल, समस्त दोषों के दूर हो जाने पर, सत्त्वगुण की प्रबलता से विमलता की प्राप्ति होने पर। अध्यात्मप्रसाद = अध्यात्म का प्रसाद, आत्मा की प्रसन्नता। समुपजायते = उत्पन्न होती है। क्लेशवासनाओं का लोप हो जाने पर। चित्त = चित्त। स्थितिप्रवाहयोग्य = स्थिर प्रवाह के योग्य, एकाग्र। भवति = होता है। एतत् = यह। एव = ही। चित्तस्य = चित्त, बुद्धि की। वैशारद्य = विशदता, विमलता है। यत् = जो, कि। स्थितौ = स्थिरता, एकाग्रता में। दार्ढ्यं = चित्त की दृढ़ता होती है॥ ४७॥

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

तस्मिन् सति = उस चित्त को वैशारद्य की सिद्धि हो जाने पर। किं = पश्चात् क्या। भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

अर्थ—तत्र = उस समय, निर्विचार समापत्ति के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर। प्रज्ञा = साधक, योगी की प्रज्ञा, बुद्धि। ऋतम्भरा = ऋत, सत्य, यथार्थ को धारण करने वाली होती है अर्थात् संशय, विपर्यय इत्यादि समस्त दोषों से रहित बुद्धि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाली होती है। अतीत-वर्तमान-अनागत, दूरस्थ, निकटस्थ, अन्तर्हित, व्यवहित, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली प्रज्ञा ही ऋतम्भरा है।

वृत्ति—ऋतं सत्यं बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सा ऋतम्भरा प्रज्ञा तस्मिन् भवतीत्यर्थः। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत् पश्यन् योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति॥ ४८॥

जो प्रज्ञा। ऋत = ऋत अर्थात्। सत्य = सत्य को। बिभर्ति = धारण करती है। कदाचित् = कभी। अपि = भी। विपर्ययेण = विपर्यय, मिथ्या ज्ञान द्वारा। न = नहीं। आच्छाद्यते = आवृत्त, ढकी जाती है। सा = वह। ऋतम्भरा प्रज्ञा = ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा, वस्तु के यथार्थ, सत्यभूत स्वरूप को प्रकाशित करने वाली बुद्धि। तस्मिन् = उस चित्त के, निर्विचार समापत्ति के निर्मल हो जाने पर। भवति = उद्भूत, उत्पन्न होती है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। च = और। तस्मात् = उस। प्रज्ञालोकात् = ऋतम्भरा प्रज्ञा के आलोक, प्रकाश मे। सर्व = अतीत-वर्तमान-अनागत, दूरस्थ, निकटस्थ, अन्तर्हित, व्यवहित, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों को। यथावत् = यथार्थरूप से, भली भाँति, स्वरूपत। पश्यन् = देखता हुआ। योगी = योगी। प्रकृष्ट = अत्यन्त उत्कृष्ट, श्रेष्ठ। योग = योग को। प्राप्नोति=प्राप्त करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा मे योगी सभी वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करता है और इस प्रकार उसे योग की सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥

अस्या प्रज्ञान्तराद्वैलक्षण्यमाह—

अस्या = इस ऋतम्भरा प्रज्ञा की। प्रज्ञा अन्तरात्=अन्य प्रज्ञा, बुद्धि से। वैलक्षण्य = विलक्षणता, भेद को। आह = कहते है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की उद्भूति निर्विचार समापत्ति की अत्यन्त निर्मलता के पश्चात् होती है। अत सकल दोष से विनिर्मुक्त होने के कारण यह प्रज्ञा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाली होती है। इसके द्वारा अतीत वर्तमान-अनागत, परोक्ष-अपरोक्ष, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अनभिव्यक्त सभी पदार्थों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। किंतु सामान्य प्रज्ञा का स्वरूप भिन्न होता है। अत उसका वर्णन करते है।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया[1] विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

अर्थ —श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्या=आप्तश्रुति, वेदशास्त्रो के वाक्यो से तथा अनुमान, हेतु के ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण दोनो ही प्रज्ञायें अर्थात् श्रुतिजन्य तथा अनुमानजन्य दोनों ही प्रज्ञायें, बुद्धियाँ। सामान्य-विषया=सामान्य विषय वाली है, वस्तु के सामान्य स्वरूप का ज्ञान प्रदान

---

१ केषुचिद् वृत्तिसस्करणेषु 'प्रज्ञाभ्या सामान्यविषया' इति सूत्रपाठो दृश्यते, पाठोऽयमसमीचीन ।

कराने वाली है। आगम एव अनुमान प्रमाण से पदार्थ के सामान्य, साधारण स्वरूप का ही ज्ञान होता है, विशिष्ट का नही। किंतु। विशेषार्थत्वात् = ऋतम्भरा प्रज्ञा विशेष अर्थ वाली होने के कारण सामान्य प्रज्ञा से भिन्न है अर्थात् इस प्रज्ञा के द्वारा भूत-वर्तमान-भविष्य, विप्रकृष्ट, समीपस्थ, परोक्ष, अपरोक्ष, स्थूल, सूक्ष्म सभी पदार्थों का विशिष्ट, यथार्थ ज्ञान होता है। विशेष का ज्ञान कराने के कारण ही यह ऋतम्भरा प्रज्ञा अन्य श्रुतिजन्य तथा अनुमानजन्य प्रज्ञाओं से भिन्न एव श्रेष्ठ है।

वृत्ति—श्रुतमागमज्ञानम्, अनुमानमुक्तलक्षण (१।७), ताभ्या या जायते प्रज्ञा सा सामान्यविषया। न हि शब्दलिङ्गयोरिन्द्रियवद्विशेषप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम्, इय पुनर्निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा प्रज्ञा ताभ्या विलक्षणा, विशेषविषयत्वात्, अस्या हि प्रज्ञाया सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टानामपि विशेष स्फुटेनैव रूपेण भासते, अतस्तस्यामेव योगिना पर प्रयत्न कर्त्तव्य इत्युपदिष्ट भवति ॥४९॥

आगमज्ञान = आगम ज्ञान, वेदशास्त्रों से उत्पन्न ज्ञान को। श्रुत = श्रुत कहते हैं। उक्तलक्षण = १।७ में कहे गये लक्षण वाला। अनुमान = अनुमान है। ताभ्या = आगम तथा अनुमान उन दोनो से। या = जो। प्रज्ञा = बुद्धि। जायते = उत्पन्न होती है। सा = वह। सामान्यविषया = सामान्य विषय वाली होती है वस्तु के सामान्य स्वरूप का ज्ञान कराने वाली होती है। हि = क्योंकि। शब्दलिङ्गयोः = शब्द एव हेतु की अर्थात् आगम एव अनुमान प्रमाण की। इन्द्रियवत् = इन्द्रियो के समान अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण की तरह। विशेषप्रतिपत्तौ = विशेष ज्ञान में, वस्तु के विशिष्ट स्वरूप को ग्रहण करने में। न = नही। सामर्थ्य = सामर्थ्य, शक्ति है। निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा = निर्विचार समापत्ति की निर्मलता से उत्पन्न होने वाली। इयं पुन प्रज्ञा = यह ऋतम्भरा प्रज्ञा तो। ताभ्या = आगमजन्य तथा अनुमानजन्य उन दोनो बुद्धियो से। विलक्षणा = विलक्षण, भिन्न स्वरूप वाली है। विशेषविषयत्वात् = विशेष विषय वाली होने के कारण अर्थात् वस्तु के विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान कराने के कारण। हि = क्योंकि। अस्या = इसी। प्रज्ञाया = ऋतम्भरा प्रज्ञा में। सूक्ष्म-व्यवहितविप्रकृष्टाना = सूक्ष्म, व्यवधानयुक्त, छिपे हुये तथा दूरस्थ वस्तुओं का। अपि = भी।

विशेष = विशेष स्वरूप । स्फुटेन रूपेण = अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से । एव = ही । भासते = प्रकाशित होता है, ज्ञात होता है । अत = इसलिये । तस्या = उस ऋतम्भरा प्रज्ञा में । एव = ही । योगिना = योगी के द्वारा । पर = परम, अत्यधिक । प्रयत्न = प्रयास । कर्त्तव्य = करना चाहिए । इति = इसलिये । उपदिष्ट भवति = यह उपदेश दिया गया । सर्व साधिका, असप्रज्ञात समाधि को सिद्ध करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति के लिये योगी को प्रयत्न करना चाहिये, यही उपदेश का अभिप्राय है ॥ ४९ ॥

अस्या प्रज्ञाया फलमाह—

अस्या = इस । प्रज्ञाया = ऋतम्भरा प्रज्ञा के । फल = फल को । आह = कहते हैं ।

तज्ज संस्कारोऽन्यसस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

अर्थ—तत् = उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से । ज = उत्पन्न होने वाले । संस्कार = सस्कार । अन्यसस्कारप्रतिबन्धी = अन्य सस्कारो के बाधक, दूर करने वाले, विनाश करने वाले होते हैं अर्थात् निर्विचार समापत्ति से उद्भूत ऋतम्भरा प्रज्ञा के सस्कार अति प्रबल होने के कारण चित्त में विद्यमान अन्य सभी सस्कारो का विनाश कर देते हैं ।

वृत्ति—तया प्रज्ञया जनितो य सस्कार सोऽन्यान् सस्कारान् व्युत्थानजान् समाधिजांश्च सस्कारान् प्रतिबध्नाति स्वकार्यकरणाक्षमान् करोतीत्यर्थ , यतस्तत्त्वरूपतयाऽनया जनिता सस्कारा बलवत्त्वादतत्त्वरूपप्रज्ञाजनितान् सस्कारान् बाधितु शक्नुवन्ति, अतस्तामेव प्रज्ञामभ्यसेदित्युक्त भवति ॥ ५० ॥

तया = उस । प्रज्ञया = ऋतम्भरा प्रज्ञा से । जनित = उत्पन्न हुआ । य = जो । सकार = सस्कार है । स = वह । अन्यान् = चित्त में विद्यमान अन्य, दूसरे । सस्कारान् = सस्कारों को । व्युत्थानजान् = चित्त के व्युत्थान, विक्षेप मे उत्पन्न हुये । च = और । समाधिजान् = सम्प्रज्ञात समाधि से उत्पन्न हुये । सस्कारान् = सस्कारो को । प्रतिबध्नाति = रोकता है, बाधित कर देता है अर्थात् । स्वकार्यकरणाक्षमान् = उनको अपना कार्य करने में असमर्थ, शक्तिहीन । करोति = कर देता है, बना देता है अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञाजन्य सस्कार

अन्य सस्कारों को फल की उत्पत्ति में निर्बल बना देता है। इति अर्थ = यही अभिप्राय है। यत = क्योंकि। तत्त्वरूपतया = तत्त्वस्वरूप, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण करने वाली। अनया = इस ऋतम्भरा प्रज्ञा से। जनिता = उत्पन्न हुये। सस्कारा = सस्कार। बलवत्त्वात् = अत्यन्त प्रबल होने के कारण। अतत्त्वरूपप्रज्ञाजनितान् = अतत्त्वस्वरूपप्रज्ञा, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न ग्रहण करने वाली, विपर्यय, सशययुक्त प्रज्ञा से उत्पन्न हुये। सकारान् = सस्कारो को। बाधितु = बाधित, विनष्ट करने में। शक्नुवन्ति = समर्थ होते है। अत = इसलिए। ता = उस। प्रज्ञा = ऋतम्भरा प्रज्ञा का। एव = ही। अभ्यसेत् = अभ्यास करना चाहिये। इति उक्त भवति = यह अभिप्राय है ॥ ५० ॥

एव सम्प्रज्ञातसमाधिमभिधायासम्प्रज्ञात वक्तुमाह—

एव = इस प्रकार। संप्रज्ञातसमाधि = सप्रज्ञात समाधि को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। असप्रज्ञात = असंप्रज्ञात समाधि को। वक्तु = कहने के लिये, वर्णन करने के विचार से। आह = कहते है।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज. समाधि ॥ ५१ ॥

अर्थ —तस्य = उस संप्रज्ञात समाधि का। अपि = भी। निरोधे = निरोध हो जाने पर अर्थात् कारण में लय को प्राप्त हो जाने पर। सर्वनिरोधात् = सभी प्रकार के सस्कारो का सम्यक् निरोध, पूर्ण रूप से अभाव हो जाने पर। निर्बीज = निर्बीज, असंप्रज्ञात। समाधि = समाधि होती है। सभी सस्कारों का पूर्ण रूप से अभाव हो जाने पर, बीजविहीन, सस्काररहित निर्बीज समाधि होती है, यही असप्रज्ञातसमाधि है। इसी से कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

वृत्ति —तस्यापि सम्प्रज्ञातस्य निरोधे विलये सति सर्वासा चित्तवृत्तीना कारणे प्रविलयाद् या या सस्कारमात्राद्वृत्तिरुदेति, तस्या 'नेति नेति' केवल पर्युदसनान्निर्बीज. समाधिर्भवति[1] यस्मिन् सति पुरुष स्वरूपनिष्ठ शुद्धो भवति ॥ ५१ ॥

---

१ समाधिराविर्भवति (पा०)।

तस्य = उस । संप्रज्ञातस्य = सम्प्रज्ञात के । अपि = भी अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि के सस्कारों का भी । निरोधे = निरोध अर्थात् । विलये सति = अपने कारण में लीन हो जाने पर । सर्वासा = सभी । चित्तवृत्तीनां = चित्त की वृत्तियों का । कारणे = अपने कारण में । प्रविलयात् = विलय हो जाने से अर्थात् । या या = जो जो । वृत्ति = वृत्ति । सस्कारमात्रात् = सस्कार मात्र से । उदेति = उत्पन्न होती है । तस्या = उसमें, उस वृत्ति के सबन्ध में । न इति न इति = यह वृत्ति अपना स्वरूप नही है, अपना स्वरूप नही है, इस रूप मे । केवल = केवल । पर्युदसनात् = त्याग करने से, दूर करने से । निर्बीज = सस्कार रहित । समाधि = समाधि । भवति = होती है । यस्मिन् सति = जिसकी सिद्धि हो जाने पर अर्थात् समस्त सस्कार निरोध रूप निर्बीज समाधि में । पुरुष = पुरुष योगी । स्वरूपनिष्ठ = अपने ही स्वरूप में स्थित होने वाला । शुद्ध = शुद्ध, केवल, चिन्मात्र । भवति = होता है अर्थात् पुरुष अपने ही स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है । यही कैवल्यदशा है ॥ ५१ ॥

तदत्राधिकृतस्य योगस्य लक्षण चित्तवृत्तिनिरोधपदाना व्याख्यानम्, अभ्यास-वैराग्यलक्षणस्योपायद्वयस्य स्वरूप भेदञ्चाभिधाय, सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन योगस्य मुख्यामुख्यभेदमुक्त्वा, योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वक विस्तारेणोपायान् प्रदर्श्य सुगमो-पायप्रदर्शनपरतया ईश्वरस्य स्वरूप-प्रमाण-प्रभाववाचकोपासनानि तत्फलानि च निर्णीय, चित्तविक्षेपान् तत्सहभुवश्च दु खादीन् विस्तरेण च तत्प्रतिषेधो-पायानेकतत्त्वाभ्यास-मैत्र्यादिप्राणायामादीन् सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती प्रवृत्तिरित्यादीनाख्यायोपसहारद्वारेण च समापत्ति[1] लक्षणफलसहिता स्वस्वविषय-सहिता[2] चोक्त्वा सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातयोरुपसहारमभिधाय सबीजपूर्वकनिर्बीजसमा-धिरभिहित इति व्याकृतो योगपाद ।

तत् = इस प्रकार । अत्र = इस समाधि पाद में । अधिकृतस्य = प्रारम्भ किये गये । योगस्य = योग का । लक्षण = लक्षण, स्वरूप । चित्तवृत्तिनिरोध-

१ समापत्ती सलक्षणा सफला (पा०) ।

२ सहिताश्चोक्त्वा (पा०) ।

पदाना = चित्त की वृत्तियों का निरोध एवं उनके भेदों का। व्याख्यान = व्याख्यान, वर्णन। अभ्यासवैराग्यलक्षणस्य = अभ्यास तथा वैराग्य रूप वाले। उपायद्वयस्य = दो उपायों का अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध के दो उपाय अभ्यास और वैराग्य का। स्वरूप = स्वरूप, लक्षण। च = और। भेद = भेद, प्रकार को। अभिधाय = कहकर, बतला कर। सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन = सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेद से। योगस्य = योग के। मुख्यामुख्यभेद = प्रधान एवं गौण भेद को। उक्त्वा = कहकर। योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं = योग के अभ्यास प्रदर्शन पूर्वक, योग के अभ्यास के लिये। विस्तारेण = विस्तार के साथ। उपायान् = उपायों, साधनों को। प्रदर्श्य = दिखलाकर, वर्णन करके। सुगमोपायप्रदर्शनपर-तया = सुगम, सरल उपाय को बतलाने के विचार से। ईश्वरस्य = ईश्वर के। स्वरूपप्रमाणप्रभाववाचकोपासनानि = स्वरूप, लक्षण, प्रमाण, सिद्धि के हेतु, ऐश्वर्य, महिमा, वाचक, अभिधान, नाम तथा उपासना, उपासना के स्वरूप को। च = और। तत्फलानि = उनके फलों का। निर्णीय = निर्णय, वर्णन करके। चित्तविक्षेपान् = चित्त के व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद इत्यादि नव विक्षेपों को: च = और। तत्सहभुव = उन्हीं उन्हीं विक्षेपों के साथ होने वाले। दुःखा-दीन् = दुःख, दौर्मनस्य इत्यादि विघ्नों की। विस्तरेण = विस्तार पूर्वक। च = और। तत्प्रतिषेधोपायान् = उन विक्षेपों एवं विघ्नों के निषेध, दूर करने वाले उपायों को। एकतत्त्वाभ्यासमैत्र्यादिप्राणायामादीन् = एक ही तत्त्व का अभ्यास करना, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि तथा प्राणायाम इत्यादि उपायों को। सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातपूर्वाङ्गभूतविषयवती = सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात के पूर्व अङ्ग के रूप में विद्यमान। प्रवृत्ति = प्रवृत्ति। इत्यादीन् = इत्यादि को। आख्याय = कहकर वर्णन करके। च = और। उपसंहारद्वारेण = उपसंहार के रूप में। लक्षणफलसहिता = लक्षण एवं फल के साथ। समापत्ति = समापत्ति को। च = और। स्वस्वविषयसहिता = अपने अपने विषय के साथ। उक्त्वा = कहकर अर्थात् समापत्तियों के लक्षण, फल एवं विषय का निरूपण करके। सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातयो = सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात दोनों समाधियों के। उपसंहारं = उपसंहार को। अभिधाय = कह करके। सबीजपूर्वकनिर्बीज-समाधि = सबीज समाधि पूर्वक निर्बीज समाधि, सबीज समाधि की सिद्धि के

पश्चात् ही निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है। अभिहित = कही गई, निर्बीज समाधि का वर्णन किया गया। इति = इस प्रकार मे। योगपाद = योगपाद, समाधिपाद का। व्याकृत = व्याख्यान, वर्णन किया गया ॥ ९ ॥

इति धारेश्वर[1]-भोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ समाधिपाद[2] ॥ १ ॥

* इति समाधिपादः *

---

१. महाराजाधिराजभोजदेव (पा०)।

२ योगाख्य प्रथम पाद (पा०)।

अथ साधनपादः

ते ते दुष्प्रापयोगर्द्धि-सिद्धयो येन दर्शिता ।
उपाया स जगन्नाथस्त्र्यक्षोऽस्तु प्रार्थिताप्तये ॥

तदेव प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपाय योगम् अभिधाय व्युत्थितचित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योग स्वास्थ्य[1]मुपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय क्रियायोगमाह—

तदेव = इस प्रकार से । प्रथमे = प्रथम । पादे = समाधि पाद में । समाहितचित्तस्य = एकाग्र चित्त का अर्थात् एकाग्र चित्त वाले पुरुष के लिये । सोपाय = उपाय साधन सहित । योग = योग को । अभिधाय = कह करके, वर्णन करके । व्युत्थितचित्तस्य = व्युत्थान्, विक्षप युक्त चित्त वाले पुरुष के लिये । अपि = भी । कथं = किम प्रकार । उपायाभ्यासपूर्वक = उपायों के अभ्यास से, साधनों के सेवन से । योग. = योग । स्वास्थ्य = स्वस्थता, सिद्धि को । उपयाति = प्राप्त होता है । इति = इस विचार से । तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनाय = उस योग की सिद्धि के उपाय एवं अभ्यास का वर्णन करने के लिये । क्रियायोग = क्रियायोग को । आह = कहते हैं अर्थात् प्रथम समाधि पाद में एकाग्र चित्त वाले पुरुष के लिये योगसिद्धि के उपायों का वर्णन किया गया । इस द्वितीय साधन पाद में सामान्य, विक्षिप्त चित्त वाले पुरुष के लिये योगप्राप्ति के उपायों का वर्णन किया जाता है ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

अर्थ—तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि = तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान भक्तिविशेष, शरणागति, सभी कर्मफलों की समर्पण बुद्धि ही । क्रियायोग = क्रियायोग है । ये क्रियायें योग की सिद्धि में साधन हैं, अतएव इनको क्रियायोग अथवा कर्मयोग कहते हैं ।

---

१ सात्म्यम् (पा०) ।

वृत्ति —तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि,[1] स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मन्त्राणां जपः ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन् परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम्। एतानि क्रियायोग इत्युच्यते ॥ १ ॥

शास्त्रान्तरोपदिष्टं = दूसरे शास्त्रों में वर्णन किये गये। चान्द्रायणादि = चान्द्रायण इत्यादि। तपः = तप है। प्रणवपूर्वाणां = प्रणवपूर्वक, ओंकार के साथ। मन्त्राणां = मन्त्रों का। जपः = जप, पाठ करना। स्वाध्यायः = स्वाध्याय है। सर्वक्रियाणां = सभी कर्मों का। फलनिरपेक्षतया = फल की अभिलाषा, कामना न करते हुए। तस्मिन् = उस। परमगुरौ = सर्वश्रेष्ठ गुरु, ईश्वर में। समर्पणं= समर्पित करना। ईश्वरप्रणिधानं = ईश्वरप्रणिधान है। एतानि = इन्हीं तप, स्वाध्याय, ईश्वरसमर्पणबुद्धि को। क्रियायोगः = क्रियायोग, कर्मयोग। इति = इस रूप से। उच्यते = कहते हैं ॥ १ ॥

स किमर्थमित्याह—

सः = वह क्रियायोग। किम् अर्थं = किस प्रयोजन, उद्देश्य की सिद्धि के लिये है। इति = इस प्रयोजन को। आह = कहते हैं।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

अर्थ.—वह क्रियायोग। समाधिभावनार्थः = समाधि की सिद्धि के लिये। च = तथा। क्लेशतनूकरणार्थः = क्लेशों को तनु, क्षीण, दुर्बल करने के लिए होता है अर्थात् तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानरूप क्रियायोग के अभ्यास से समाधि की सिद्धि तथा अविद्या-अस्मिता इत्यादि क्लेशों का अभाव होता है।

वृत्ति —क्लेशा वक्ष्यमाणाः, तेषां तनूकरणं स्वकार्यकरणप्रतिबन्धः, समाधिरुक्तलक्षणः (१।१९), तस्य भावना चेतसि पुनःपुनर्निवेशनं, सा अर्थः प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः। एतदुक्तं भवति—एते तपःप्रभृतयोऽभ्यस्यमानाश्चित्तगतान् अविद्यादीन् क्लेशान् शिथिलीकुर्वन्ति समाधेरुपकारकतां भजन्ते, तस्मात् प्रथमं क्रियायोगविधानपरेण[2] योगिना भवितव्यमित्युपदिष्टम् ॥ २ ॥

---

१ चान्द्रायणादि (पा०)।

२ प्रथमतः क्रियायोगविधानपरेण (पा०)।

वक्ष्यमाणा = आगे वर्णन किये जाने वाले। क्लेशा = क्लेश हैं। तेषा = उन्ही क्लेशो का। तनूकरण = तनु क्षीण करना अर्थात्। स्वकार्यकरणप्रतिबन्ध = उन क्लेशों के अपने कार्यकरण का अवरोध अर्थात् फल उत्पादकत्व को नष्ट कर देना ही तनूकरण है। समाधि = समाधि। उक्तलक्षण = १।१७ में कहे गये लक्षण वाली है। तस्य = उसी समाधि की। भावना = ध्यान, चिन्तन अर्थात्। चेतसि = चित्त में। पुन पुन = बार-बार। निवेशन = प्रवेश करना। सा = वही भावना। अर्थ = अर्थ अर्थात्। प्रयोजन = प्रयोजन, उद्देश्य है। यस्य = जिसका। स = वह। तथोक्त = उस प्रकार से कहा गया है अर्थात् समाधि की भावना क्रियायोग का उद्देश्य है। इसीलिये सूत्र में 'समाधिभावनार्थ' कहा गया है। एतद् उक्त भवति = यह अभिप्राय है। अभ्यस्यमाना = अभ्यास किये गये। एते = ये। तप प्रभृतय = तप इत्यादि, तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान। चित्तगतान् = चित्त में विद्यमान रहने वाले। अविद्यादीन् = अविद्या इत्यादि अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश। क्लेशान् = क्लेशो को। शिथिलीकुर्वन्त = शिथिल, क्षीण करते हुए। समाधे = समाधि की। उपकारकता = उपकारिता, उपयोगिता को। भजन्ते = प्राप्त होते हैं। तस्मात् = इसलिये। प्रथम = सबसे पहले। क्रियायोगविधानपरेण = क्रियायोग के विधानपूर्वक, क्रियायोग के अभ्यास द्वारा। योगिना = योगी के द्वारा। भवितव्य = होना चाहिये अर्थात् योगी को क्रियायोग का अभ्यास करना चाहिये। इति = इस विचार से। उपदिष्ट = क्रियायोग का उपदेश, वर्णन किया गया है॥ २॥

क्लेशतनूकरणार्थ इत्युक्त, तत्र के क्लेशा इत्याह—

क्लेशतनूकरणार्थ = क्लेशों को क्षीण करने के लिये। इति उक्त = क्रियायोग को कहा गया। तत्र = उस सम्बन्ध में। के = कौन। क्लेशा = क्लेश है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा. क्लेशा[1]॥ ३॥

अर्थ—अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा = अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एव अभिनिवेश (पञ्चविध)। क्लेशा = क्लेश होते हैं।

---

१ पञ्च क्लेशा (पा०)।

वृत्ति—अविद्यादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः पञ्च, ते बाधनालक्षणं परितापमुपजनयन्त क्लेशशब्दवाच्या भवन्ति, ते हि चेतसि प्रवर्तमाना संस्कारलक्षणं[1] गुणपरिणामं द्रढयन्ति ॥ ३ ॥

वक्ष्यमाणलक्षणाः = आगे लक्षण कहे जाने वाले, वर्णन किये जाने वाले। अविद्यादय = अविद्या इत्यादि। पञ्च = पाँच हैं। ते = वे अविद्या आदि पाँचों। बाधनालक्षण = बाधा पहुँचाने वाले, पीडा स्वरूप। परितापं=परिताप, दुःख को। उपजनयन्त = उत्पन्न करते हुये। क्लेशशब्दवाच्या = क्लेश शब्द से वाच्य। भवन्ति = होते हैं अर्थात् क्लेश नाम से कहे जाते हैं। हि=क्योंकि। ते = वे पञ्च क्लेश। चेतसि = चित्त में। प्रवर्तमाना = विद्यमान रहते हुये। संस्कारलक्षण = संस्कार, वासना रूप। गुणपरिणाम = गुणों के परिणाम को। द्रढयन्ति=दृढ करते हैं, स्थिर बनाते हैं ॥ ३ ॥

सत्यपि सर्वेषां तुल्यक्लेशत्वे मूलभूतत्वादविद्याया प्राधान्यं प्रतिपादयितुमाह—

सर्वेषां = सभी में। तुल्यक्लेशत्वे = क्लेशों के समान। सति = होने पर। अपि = भी। मूलभूतत्वात् = मूल, प्रमुख कारण होने से। अविद्याया = अविद्या की। प्राधान्य = प्रधानता, मुख्यता का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणां = प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न एव उदार नामक चार अवस्थाओं में रहने वाले। उत्तरेषां = उत्तर, बाद की अर्थात् बाद में निरूपण, वर्णन की जाने वाली अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश नाम वाले उत्तर के चार क्लेशों का। अविद्या = अविद्या नामक प्रथम क्लेश। क्षेत्र= क्षेत्र, प्रसवभूमि, मूल कारण है अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का मूल कारण है। इन चारों ही की प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार चार अवस्थायें हैं। यह चतुर्विध अवस्था अविद्या की नहीं है। अविद्या तो सभी का मूल है और उसके अभाव होने पर सभी का अभाव हो जाता है।

[1] संसारलक्षण (पा०)।

वृत्ति—अविद्या मोह, अनात्मन्यात्माभिमान इति यावत्, सा क्षेत्र प्रसव-भूमि उत्तरेषाम् अस्मितादीना प्रत्येक प्रसुप्त-तन्वादिभेदेन चतुर्विधानाम्, अतो यत्राविद्या विपर्ययज्ञानरूपा शिथिली भवति, तत्र क्लेशानाम् अस्मितादीना नोद्भवो दृश्यते, विपर्य्ययज्ञानसद्भावे च तेषामुद्भवदर्शनात् स्थितमेव मूलत्वम-विद्याया ।

प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्नोदाराणामिति । तत्र ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिता प्रबोधकाभावे स्वकार्य्यं नारभन्ते, ते प्रसुप्ता इत्युच्यन्ते । यथा बालावस्थाया बालस्य हि वासनारूपा स्थिता अपि क्लेशा प्रबोधकसहकार्य्यभावे नाभि-व्यज्यन्ते ।

तनवो ये स्वस्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्य्यसम्पादनशक्तयो वासनाऽव-शेषतया चेतस्यवस्थिता प्रभूता सामग्रीमन्तरेण स्वकार्य्यमारब्धुमक्षमा, यथा-भ्यासवतो योगिन ।

ते विच्छिन्ना ये न केनचिद् बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठन्ति । यथा द्वेषावस्थाया राग, रागावस्थाया वा द्वेष:, न ह्यनयो परस्परविरुद्धयोर्युगपत् सम्भवोऽस्ति ।

उदारा ये प्राप्तसहकारिसन्निधय स्व स्व कार्य्यमभिनिर्वर्त्तयन्ति, यथा सदैव योगपरिपन्थिन ।

व्युत्थानदशायाम् एषा प्रत्येक चतुर्विधानामपि मूलभूतत्वेन स्थिताऽप्यविद्या अन्वयित्वेन प्रतीयते; न हि क्वचिदपि क्लेशाना विपर्य्ययान्वयनिरपेक्षाणा स्वरूपमुपलभ्यते, तस्मात्[1] मिथ्याज्ञानरूपायाम्[2] अविद्याया सम्यग्ज्ञानेन निवर्त्तिताया दग्धबीजकल्पानाम् एषा न क्वचित् प्ररोहोऽस्ति, अतोऽविद्यानिमित्तत्व-मविद्यान्वयश्चैतेषा निश्चीयते, अत सर्वेऽपि अविद्याव्यपदेश्यभाज । सर्वेषा च क्लेशाना चित्तविक्षेपकारित्वाद् योगिना प्रथममेव ते उच्छेदे यत्न कार्य्य इति ॥ ४ ॥

अविद्या = अविद्या । मोह = मोह, अज्ञान है । अनात्मनि = अनात्म वस्तु

---

१ तस्या च (पा०) ।

२ मिथ्यारूपायाम् (पा०) ।

में। आत्माभिमान = आत्मा का अभिमान होना, आत्मभिन्न वस्तु को ही आत्मा मान लेना। इति यावत् = यही रूप अविद्या का है। सा = वही अविद्या। क्षेत्र = क्षेत्र अर्थात्। प्रसवभूमि = उत्पत्ति स्थान, मूल कारण है। उत्तरेषा = सूत्र में बाद में निरूपण किये जाने वाले। अस्मितादीना = अस्मिता इत्यादि का अर्थात् अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश का मूल कारण है। प्रत्येक = अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश प्रत्येक। प्रसुप्ततन्वादि-भेदेन = प्रसुप्त, तनु आदि (विच्छिन्न, उदार) भेद से। चतुर्विधाना = चार प्रकारो, अवस्था वालों का (अविद्या ही मूल कारण है)। अत = इसलिये। यत्र = जिस समय, जिस पुरुष में। विपर्य्ययरूपा = मिथ्या ज्ञान वाली। अविद्या = अविद्या। शिथिली भवति = शिथिल हो जाती है। तत्र = उस समय, उस पुरुष में। अस्मितादीना = अस्मिता इत्यादि। क्लेशाना = क्लेशो को। उद्भव = उत्पत्ति। न = नही। दृश्यते = देखी जाती है। च = और। प्रसुप्त-तनुविच्छिन्नोदाराणामिति = प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न उदार रूप अवस्थाओ वाले। तेषा = उन अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश चारो क्लेशो को। उद्भव-दर्शनात् = उत्पत्ति दिखलाई पडने के कारण। अविद्याया = अविद्या का। मूलत्व = सभी का मूल कारण होना। स्थितमेव = सुदृढ, सिद्ध होता ही है। तत्र = उन चारो अवस्थाओ में। ये = जो। क्लेशा = क्लेश। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। स्थिता = विद्यमान है। प्रबोधकाभावे = प्रबोधक, उद्दीप्त, उद्बुद्ध करने वाले कारणों के अभाव में। स्वकार्य्यं = अपने कार्य को। न = नही। आरभन्ते = प्रारम्भ करते है। ते = वे क्लेश। प्रसुप्ता = प्रसुप्त अवस्था वाले है। इति = इस रूप से। उच्यन्ते = कहे जाते है। यथा = जैसे। बाला-वस्थाया = बाल्यावस्था, शैशव काल में। बालस्य हि = बालक के ही। वासना-रूपा = वासना, सस्काररूप से। स्थिता = विद्यमान रहते हुये। अपि = भी। क्लेशा = क्लेश—अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। प्रबोधकसहकार्य्यभावे = प्रबुद्ध, जगाने वाले सहकारी कारण के अभाव में। न = नही। अभिव्यज्यन्ते = अभिव्यक्त होते है अर्थात् शैशव अवस्था में शिशु में अस्मिता आदि क्लेश विद्यमान रहते है। परन्तु सहकारी कारण के बिना वे व्यक्त नही होते है। इन्ही क्लेशों को प्रसुप्त कहते है। तनव = वे क्लेश तनु है। ये = जो।

स्वस्वप्रतिपक्षभावनया = अपनी-अपनी प्रतिकूल भावना के द्वारा, प्रतिकूल भावनाओं के चिन्तन द्वारा। शिथिलीकृतकार्य्यसंपादनशक्तय = कार्य को उत्पन्न करने वाली शक्ति के शिथिल, क्षीण हो जाने वाले। वासनाऽवशेषतया = केवल वासना रूप से शेष बचे हुये। चेतसि = चित्त में। अवस्थिता = विद्यमान रहने वाले। प्रभूता = अत्यधिक, पर्याप्त। सामग्री = सामग्री, सहकारी कारण के। अन्तरेण = बिना। स्वकार्य्यं = अपने कार्य को। आरब्धु = आरम्भ करने में। अक्षमा = असमर्थ रहते हैं। यथा = जैसे। अभ्यासवत = अभ्यास, प्रतिकूल भावना का चिन्तन करने वाले। योगिन = योगी का अर्थात् प्रतिकूल भावना के सदैव चिन्तन से जो क्लेश केवल वासना रूप ही शेष रह जाते हैं और अपना कार्य उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं उनको तनु क्लेश कहते हैं। ते = वे क्लेश। विच्छिन्ना. = विच्छन्न दशा वाले हैं। ये = जो। केनचिद् = किसी। बलवता = बलवान्, शक्तिशाली। क्लेशेन = दूसरे क्लेश से। अभिभूतशक्तय = अभिभूत की गई शक्ति वाले होकर, अन्य बलवान् क्लेश से दबाये जाकर। तिष्ठन्ति = चित्त में विद्यमान रहते हैं। यथा = जैसे। द्वेषावस्थाया = द्वेष की अवस्था में। राग = (द्वेष से अभिभूत) राग चित्त में रहता है। वा = अथवा। रागावस्थायां = राग की दशा में। द्वेष = (राग से अभिभूत) द्वेष चित्त में विद्यमान रहता है। हि = क्योंकि। अनयो = इन दोनों परस्परविरुद्धयो = परस्पर विलोम धर्म वाले क्लेशों की। युगपत् = एक साथ, एक ही समय में। सम्भव = उत्पत्ति, स्थिति। न = नहीं। अस्ति = है। एक ही काल में विपरीत धर्मवाले क्लेशो की स्थिति नहीं हो सकती। उदारा = वे क्लेश उदार कहे जाते हैं। ये = जो। प्राप्तसहकारिसन्निधय. = (उद्बुद्ध करने वाले) सहकारी कारण के संसर्ग, सम्बन्ध को प्राप्त करने वाले, सहायक कारण के सम्पर्क को प्राप्त करके। स्व स्व = अपने अपने। कार्य्ये = कार्य में। अभिनिर्वर्त्तयन्ति = प्रवृत्त होते हैं। यथा = जैसे। सदैव = सदा ही। योगपरिपन्थिन = योग सिद्धि के विघ्न, बाधायें हैं। व्युत्थानदशायां = व्युत्थान की दशा में। एषा = इन। चतुर्विधाना = चारों ही प्रकार की प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्न-उदार अवस्था वाले। प्रत्येक = अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश प्रत्येक क्लेशों का। अपि = भी। मूलभूतत्वेन = मूलरूप, कारण रूप से। स्थिता = स्थित,

विद्यमान होने पर। अपि = भी। अविद्या = अविद्या। अन्वयित्वेन = अन्वय रूप से। प्रतीयते = प्रतीत होती है। अर्थात् अविद्या ही सभी क्लेशों का मूल है एवं सभी अवस्थाओं में उनका शेष चारों क्लेशों के साथ सम्बन्ध रहता ही है। हि = क्योंकि। क्वचित् = कहीं पर। अपि = भी। विपर्य्ययान्वयनिरपेक्षाणा = विपर्यय, अविद्या के सम्बन्ध की अपेक्षा न रखने वाले, अविद्या के सम्बन्ध के बिना। क्लेशाना = अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश क्लेशों का। स्वरूप = स्वरूप, स्थिति। न = नहीं। उपलभ्यते = प्राप्त होती है। तस्मात्= इसलिये। मिथ्याज्ञानरूपाया = मिथ्या ज्ञान स्वरूप। अविद्याया = अविद्या का। सम्यग्ज्ञानेन = सम्यक् ज्ञान, तत्त्व ज्ञान द्वारा। निर्वर्त्तिताया = निराकरण, अभाव हो जाने पर। दग्धबीजकल्पाना = भस्म हुए बीज के समान। एषा = इन अस्मिता आदि क्लेशों का। क्वचित् = कही पर। प्ररोह = अकुर। न = नही। अस्ति = है अर्थात् कारण बीज के भस्म हो जाने पर उसका कार्य अकुर नहीं उत्पन्न होता, वैसे ही कारणरूपा अविद्या के नष्ट हो जाने पर उसके कार्य अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप चारो क्लेशों का स्वत ही पूर्ण अभाव हो जाता है। अत = इस लिये। एतेषा = इन अस्मिता आदि क्लेशों का। अविद्यानिमित्तत्व = अविद्या के निमित, अविद्या से उत्पन्न होना। च = और। अविद्यान्वयत्व = अविद्या के साथ अन्वय। निश्चीयते = निश्चित होता है अर्थात् क्लेशो का निमित्त, मूल कारण अविद्या है तथा क्लेशों का अविद्या के साथ अन्वय सम्बन्ध है—तत्सत्वे तत्सत्त्वम्। अत = इसलिये। सर्वेऽपि = सभी अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेशचतुर्विध क्लेश। अविद्याव्यपदेशभाज = अविद्या नाम के भागी है अर्थात् सभी क्लेशों को अविद्या नाम से ही कहा जाता है। च = और। सर्वेषा = सभी। क्लेशाना = अविद्या आदि पञ्च क्लेशों का चित्तविक्षेपकारित्वाद् = चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने के कारण। योगिना = योगी के के द्वारा। प्रथममेव = सबसे पहले। तद्=उन्हीं क्लेशों के। उच्छेदे = विनाश में, विनाश के लिये। यत्न = प्रयास। कार्य्य = करना चाहिये। इति = यह अभिप्राय है। क्लेश ही चित्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाले होते हैं। अत सर्वप्रथम साधना, अभ्यास द्वारा इन्हीं क्लेशों का समूल विनाश करना चाहिये ॥ ४ ॥

अविद्यालक्षणमाह—
अविद्यालक्षण = अविद्या के स्वरूप को । आह=कहते हैं ।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि-
सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अर्थ—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु = अनित्य, नश्वर, विनाशशील, अपवित्र, दुःखमय एवं अनात्म वस्तुओं में। नित्यशुचिसुखात्मख्याति = नित्य, पवित्र सुखस्वरूप एवं आत्मरूप ज्ञान, बुद्धि होना ही। अविद्या = अविद्या है अर्थात् प्रपञ्चात्मक, विनाशशील जगत् को नित्य मानना, अस्थिस्नायुमज्जा इत्यादि से निर्मित अपवित्र शरीर को पवित्र मानना, दुःखमद भोगों को सुखस्वरूप समझना तथा आत्मा से भिन्न, अचेतन नश्वर शरीर, इन्द्रिय इत्यादि को आत्मा मान लेना ही अविद्या है।

वृत्ति—अतस्मिंस्तत्प्रतिभासोऽविद्येत्यविद्याया सामान्यलक्षणम्, तस्या एव भेदप्रतिपादनम्—अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानोऽविद्येत्युच्यते। एवमशुचिषु कायादिषु शुचित्वाभिमान, दुःखेषु विषयेषु सुखाभिमान[1], अनात्मशरीरे आत्माभिमान।[2] एतेनापुण्ये पुण्यभ्रमोऽनर्थेऽर्थभ्रमो व्याख्यात ॥ ५ ॥

अतस्मिन् = अयथार्थ में, वस्तु का जो अपना स्वरूप ही नहीं है, जो धर्म उसमें विद्यमान नहीं है। तत्प्रतिभास = उसी के समान, यथार्थ रूप में उन्हीं धर्मों को प्रतीति, ज्ञान होना ही। अविद्या = अविद्या है। इति = इस रूप से, यह। अविद्याया = अविद्या का। सामान्यलक्षण = सामान्य लक्षण, स्वरूप है। तस्या = उसी अविद्या का। एव=ही। भेदप्रतिपादन = प्रस्तुत सूत्र में भेद का प्रतिपादन, वर्णन किया गया है। अनित्येषु = अनित्य, विनाशशील। घटादिषु= घट इत्यादि पदार्थों में। नित्यत्वाभिमान = नित्यत्व का अभिमान, नित्य का ज्ञान हो। अविद्या = अविद्या। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है। एव=इसी प्रकार से। अशुचिषु = अपवित्र। कायादिषु = शरीर इत्यादि में। शुचित्वाभिमान = पवित्रता का अभिमान ही अविद्या है। दुःखेषु = दुःख प्रदान

---

1 सुखत्वाभिमान (पा०)।
2 आत्मत्वाभिमान (पा०)।

करने वाले। विषयेषु = विषयों में। सुखाभिमान = सुख का अभिमान, सुख की प्रतीति करना ही अविद्या है। अनात्मशरीरे = आत्मा से भिन्न अचेतन पाञ्चभौतिक शरीर में, जो शरीर आत्मा नहीं है, उसमें। आत्माभिमान = आत्मा का अभिमान, मान लेना ही अविद्या है। एतेन = इस उदाहरण के द्वारा। अपुण्ये = अपुण्य, पापरूप कर्मों में। पुण्यभ्रम = पुण्य का भ्रम पुण्य रूप समझना। अनर्थे = अनर्थ, अयथार्थ में। अर्थभ्रम = अर्थ का भ्रम, यथार्थ का ज्ञान होना ही अविद्या है। व्याख्यात = व्याख्यान, कथन किया गया, अर्थात् इनको भी अविद्या समझना चाहिये ॥ ५ ॥

अस्मिता लक्षयितुमाह—

अस्मिता = अस्मिता का। लक्षयितु = लक्षण बतलाने के लिये। आह = कहते हैं।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

अर्थ—दृग्दर्शनशक्त्यो = दृक् शक्ति एव दर्शन शक्ति का। एकात्मता = एक स्वरूप, अभिन्न होना। इव = सा, समान, ही। अस्मिता = अस्मिता नामक क्लेश है अर्थात् दृक् शक्ति पुरुष शुद्ध, चेतन, अपरिणामी, त्रिगुणातीत, निष्क्रिय एव भोक्तृत्व की योग्यता से युक्त है तथा दर्शन शक्ति बुद्धि अचेतन, परिणामी, त्रिगुणात्मिका सक्रिय एव भोग्य है। इस प्रकार पुरुष एव बुद्धि परस्पर अत्यन्त विलक्षण, भिन्न हैं। फिर भी इनमें जो एकरूपता, अभिन्नता की प्रतीति होती है, इसी को अस्मिता नामक क्लेश कहते हैं। विवेकख्याति से दोनों के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है।

वृत्ति—दृक्शक्तिः पुरुष, दर्शनशक्ति रजस्तमोभ्यामनभिभूत सात्त्विक परिणामोऽन्त करणरूप, अनयोर्भोक्तृ-भोग्यत्वेन[1] अजड-जडत्वेनात्यन्तभिन्नरूपयोरेकताभिमानोऽस्मितेत्युच्यते। यथा प्रकृतिर्वस्तुत कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितापि कर्त्र्यहमित्यभिमन्यते,[2] सोऽयमस्मिताख्यो विपर्यास क्लेश ॥ ६ ॥

१ भोक्तृभोग्यत्वम् (पा०)।

२ यथा प्रकृतिवता कर्तृत्वरहितेनापि कर्ताहमित्यभिमन्यते (पा०)।

दृक्शक्ति = दृक् शक्ति। पुरुष = पुरुष हैं अर्थात् पुरुष द्रष्टा है। दर्शन-शक्ति = दर्शन शक्ति। रजस्तमोभ्या = रजोगुण एव तमो गुण से। अनभिभूत = अभिभूत न किया गया, न दबाया गया। अन्त करणरूप = अन्त करणस्वरूप, बुद्धिरूपी। सात्त्विक = सत्त्वगुण बहुल। परिणाम = परिणाम हैं अर्थात् सत्त्वगुण विशिष्ट बुद्धि ही दर्शन शक्ति है। भोक्तृभोग्यत्वेन = भोक्ता एव भोग्य रूप मे। अजडजडत्वेन = चेतन एव अचेतन रूप मे। अत्यन्तभिन्नरूपयो सर्वथा विलक्षण स्वरूप वाले। अनयो = इन्ही पुरुष तथा बुद्धि में। एकतामिमान = एकरूपता, अभिन्नता का अभिमान, प्रतीति ही। अस्मिता = अस्मिता। इति = इस नाम वाला क्लेश। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। प्रकृति[1] = प्रकृति, स्वभाव रूप। वस्तुत = वास्तविक रूप में पुरुष। कर्तृत्वभोक्तृत्वरहितापि = कर्ता एव भोक्ता न रहने पर भी। भोक्ता = भोक्ता। अह = मैं हूँ। इति=इस रूप मे। अभिमन्यते = अभिमान करता है, समझता है अर्थात् स्वभावत पुरुष शुद्ध, उदासीन, असङ्ग होने से कर्ता, भोक्ता नही है, फिर भी अविद्यावशात् प्रकृति से सम्बन्ध को प्राप्त कर वह कर्ता, भोक्ता होने का अभिमान करता है। स = वही। अय = यह। अस्मिताख्य = अस्मिता नाम का। विपर्यास = विपर्यय, अविद्या रूप। क्लेश = क्लेश है। अविद्या निमित्त होने से यही अस्मिता नामक क्लेश है ॥६॥

रागस्य लक्षणमाह—(3) राग

रागस्य = राग नामक क्लेश के। लक्षण = लक्षण को। आह = कहते हैं।

सुखानुशयी राग ॥ ७ ॥

अर्थ - सुखानुशयी = सुख अनुभव के पश्चात् होने वाली अभिलाषा ही। राग = राग है अर्थात् किसी पदार्थ के सुखभोग के बाद उसे ही प्राप्त करने को

---

१ प्रकृतिवशा कर्तृत्वरहितेनापि (पाठभेद) = कर्ता न होने पर भी पुरुष अविद्या के कारण प्रकृति से सम्बन्ध प्राप्त करके अपने को कर्ता तथा कर्मों के फलों का भोक्ता मानने लगता है।

जो चित्त में अभिलाषा, अनुरक्ति, आसक्ति होती है, उसे ही राग नामक क्लेश कहते हैं।

वृत्ति—सुखमनुशेत इति सुखानुशयी, सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वक सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धो रागसञ्ज्ञक क्लेश. ॥ ७ ॥

सुख = सुखपूर्वक। अनुशेते = पश्चात् शयन करती है। अर्थात् सुख अनुभव के पश्चात् जो वासना पुरुष, भोक्ता, अनुभवकर्ता के चित्त में शयन करती है, विद्यमान रहती है, उसी वासना को। सुखानुशयी = सुखानुशयी कहते हैं अर्थात् सुखभोग के बाद चित्त में रहने वाली वासना। सुखज्ञस्य = सुख को जानने, अनुभव, भोग करने वाले पुरुष का। सुखानुस्मृतिपूर्वक = सुख के स्मरण अनुभव के द्वारा। सुखसाधनेषु = सुख प्रदान करने वाले साधनो, विषयों में। तृष्णारूप = तृष्णा, अभिलाषा रूपी। गर्द्ध = लोभ, इच्छा, प्राप्त करने की आकाक्षा ही। रागसञ्ज्ञक = राग नामक। क्लेश = क्लेश है। ॥७॥

द्वेषलक्षणमाह—

द्वेषलक्षण = द्वेष नामक क्लेश के लक्षण को। आह = बतलाते हैं।

दु खानुशयी द्वेष ॥ ८ ॥

अर्थ—दु खानुशयी = दु ख अनुभव के पश्चात् होने वाला क्रोध ही। द्वेष = द्वेष नामक क्लेश है अर्थात् किसी पदार्थ के सम्बन्ध में दु ख भोग के बाद चित्त में उसके प्रतिकूल, निन्दात्मक क्रोध रूप भावना ही द्वेष है।

वृत्ति—दु खमुक्तलक्षण, तदभिज्ञस्य तदनुस्मृतिपूर्वक तत्साधनेषु अनभिलषतो[१] योऽय निन्दात्मक क्रोध स द्वेषलक्षण क्लेश ॥ ८ ॥

दु ख = दु ख। उक्तलक्षण = पूर्व बतलाये गये स्वरूप वाला है। तद् = उस दु'ख को। अभिज्ञस्य = जानने वाला, अनुभव करने वाले का। तत् = उसी दु ख की। अनुस्मृतिपूर्वक = स्मरण के द्वारा। तत्साधनेषु = उस दु ख को प्रदान करने वाले साधनों, विषयों में। अनभिलषत = अभिलाषा, प्राप्ति की इच्छा न करने

---

१ अनभिलष्यतः योऽयं निरासो (पा०)।

वाले पुण्य का। य = जो। अय = यह। निन्दात्मक = निन्दा स्वरूप वाला। क्रोध = क्रोध है। स = वही। द्वेषलक्षण = द्वेषलक्षण, स्वरूप, नाम वाला। क्लेश = क्लेश है ॥८॥

अभिनिवेशस्य लक्षणमाह—

अभिनिवेशस्य = अभिनिवेश नामक क्लेश के। लक्षण = लक्षण को। आह = कहते हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेश[1] ॥ ९ ॥

अर्थ—स्वरसवाही = स्वभाव से ही सिद्ध, सहज रूप से प्राप्त। विदुष = विद्वान् पुरुष के चित्त में। अपि = भी। तथा = उसी प्रकार, अज्ञानियों, मूर्खों की ही भाँति। रूढ = रूढ, विद्यमान रहने वाला, व्याप्त करने वाला, मृत्यु का भय ही। अभिनिवेश अभिनिवेश नामक क्लेश है अर्थात् जो परम्परा से स्वाभाविक रूप से ही सभी प्राणियों को समान रूप से होने वाला मृत्यु का भय है, वही अभिनिवेश है। यह मरण भय सभी जीवों में, विद्वान् मनुष्यों में भी पाया जाता है। इसीलिए यह स्वरसवाही, स्वभावसिद्ध है। पूर्वजन्म के अनुभवजन्य सस्कार से वहनशील, जन्य होने के कारण यह स्वरसवाही है।

वृत्ति—पूर्वजन्मानुभूतमरणदु खानुभववासनाबलाद्भयरूप समुपजायमान शरीरविषयादिभिर्मम वियोगो मा भूदिति अन्वहमनुबन्धरूप सर्वस्यैव आकृमेर्ब्रह्मपर्यन्तं निमित्तमन्तरेण प्रवर्तमानोऽभिनिवेशाख्य क्लेश ॥ ९ ॥

पूर्वजन्मानुभूतमरणदु खानुभववासनाबलात् = पूर्व जन्म में अनुभव किये गये मृत्यु के दु ख के अनुभव, स्मरण की गई वासना के बल से अर्थात् पूर्व जन्म में मृत्यु के अवसर उसको असह्य दु ख का अनुभव होने से पुन इस जन्म मे उसी दु ख की अनुभूति, स्मृति होने से। भयरूप = भय स्वरूप। समुपजायमान = उत्पन्न होने वाला। शरीरविषयादिभि = शरीर तथा सुख प्रदान करने वाले विषयों से। मम = मेरा। वियोग = वियोग। मा = मत। भूत् = होवे। इति = इस रूप से। अन्वहम् = प्रतिदिन, सदैव। अनुबन्धरूप अनुबन्धस्वरूप। सर्वस्य =

[1] 'तन्वनुबन्धोऽभिनिवेश' इति सूत्रपाठ केषुचित् मस्करणेषु दृश्यते। असमीचीनोऽयं पाठ।

सभी प्राणियों के लिए। एव = ही। आकृमे = कीट से लेकर। ब्रह्मपर्यन्त = ब्रह्मा तक। अन्तरेण = बिना किसी अन्य। निमित्त=कारण के ही। प्रवर्तमान = प्रवृत्त होने वाला, सभी में व्याप्त रहने वाला। अभिनिवेशाख्य = अभिनिवेश नाम का। क्लेश = क्लेश है ॥९॥

तदेव व्युत्थानस्य क्लेशात्मकत्वादेकाग्रताऽभ्यासकामेन प्रथम क्लेशा परिहर्त्तव्या, न चाज्ञातानां तेषां परिहार कर्तुं शक्य इति तज्ज्ञानाय तेषाम् उद्देश लक्षण क्षेत्र विभागम्चाभिधाय स्थूल-सूक्ष्मभेदभिन्नानां तेषां प्रहाणोपाय-विभागमाह—

तदेव = इसी प्रकार। व्युत्थानस्य = व्युत्थान का। क्लेशात्मकत्वाद् = क्लेशरूप होने के कारण। एकाग्रताऽभ्यासकामेन = चित्त की एकाग्रता के अभ्यास की कामना, इच्छा करने वाले योगी के द्वारा। प्रथम = सबसे पहले। क्लेशा = क्लेशों का। परिहर्त्तव्या = परिहार, विनाश करना चाहिये। च = और। अज्ञातानां = न जाने हुये, स्वरूप का ज्ञान न होने वाले। तेषां = उन क्लेशों का। परिहार = निवारण, विनाश। कर्तुं = करना। न=नहीं। शक्य = सम्भव है। इति = इसीलिये। तत् = उन क्लेशों के। ज्ञानाय = ज्ञान के लिये। तेषां = उन क्लेशों का। उद्देश = उल्लेख, नाम कथन, वर्णन। लक्षण = लक्षण, स्वरूप। क्षेत्र = क्षेत्र। व्यापकता, विषय। च = और। विभाग = भेद, प्रकार को। अभिधाय = कहकर। स्थूलसूक्ष्मभेदभिन्नानां = स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से पृथक्। तेषां = उन क्लेशों के। प्रहाणोपायविभाग = प्रहाण, त्याग, विनाश के उपाय, साधनों के भेद अर्थात् क्लेशों के परित्याग विनाश के विविध उपायों को। आह = कहते हैं।

ते प्रतिप्रसवहेया सूक्ष्मा ॥ १० ॥

अर्थ—ते = वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश। सूक्ष्मा = सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हुए। प्रतिप्रसवहेया = प्रतिप्रसव, प्रतिकूल परिणाम द्वारा त्यागने योग्य हैं, परित्याग करना चाहिये अर्थात् तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान रूप क्रियायोग के अभ्यास से क्षीण, सूक्ष्म किये गये,

दग्धबीजम्प पाँचो ही क्लेश असम्प्रज्ञातसमाधि के द्वारा विनष्ट किये जाने चाहिये। जिसमें क्लेशों के आधार चित्त का विलय अपने कारण में हो जाता है। द्रष्टा एव दृश्य का सयोग समाप्त हो जाता है। बुद्धि के प्रकृति में विलीन हो जाने से केवल शुद्ध पुरुष तथा प्रकृति की स्थिति रह जाती है।

वृत्ति—ते सूक्ष्मा क्लेशा, ये वासनारूपेणैव स्थिता स्ववृत्तिरूप परिणाम-मारभन्ते, ते प्रतिप्रसवेन प्रतिलोमपरिणामेन हेयास्त्यक्तव्या, स्वकारणेऽस्मि-तायां कृतार्थं सवासन चित्त यदा प्रविष्ट भवति, तदा कुतस्तेषा निर्मूलाना सम्भव ?॥ १०॥

ते = वे। सूक्ष्मा = सूक्ष्म, क्रियायोग द्वारा क्षीण किये गये। क्लेशा = क्लेश करते हैं। ये = जो। वासनारूपेण = वासना, सस्कार रूप से। एव = ही। स्थिता = चित्त में विद्यमान रहते है। स्ववृत्तिरूप = अपने-अपने व्यापार रूप। परिणाम = परिणाम को। न = नहीं। आरभन्ते = आरम्भ करते हैं। ते = वे सूक्ष्म क्लेश। प्रतिप्रसवेन = प्रतिप्रसव द्वारा अर्थात्। प्रतिलोमपरिणामेन = उत्पत्ति प्रसव से विलोम, प्रतिकूल परिणाम द्वारा, चित्त को कारण प्रकृति में लीन करने से, निर्बीज, असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा। हेया = हेय है अर्थात्। त्यक्तव्या = त्यागने योग्य है, विनष्ट किये जाने चाहिये। कृतार्थ = कृतार्थ हुआ, प्रयोजन को सम्पन्न कर देने वाला। सवासन = वासना, सस्कारो सहित। चित्त = चित्त, बुद्धि। यदा = जब। स्वकारणे = अपने कारण। अस्मितायां = अस्मिता में। प्रविष्ट = प्रविष्ट। भवति = हो जाता है अर्थात् लय को प्राप्त कर लेता है। तदा = तब, चित्त के कारण में विलीन हो जाने पर। निर्मूलाना = निर्मूल आधार रहित हुये। तेषा उन पञ्चविध क्लेशो की। कुत = किस प्रकार। सम्भव = उत्पत्ति हो सकती है अर्थात् आधार चित्त के बिना क्लेशो की स्थिति कैसे रह सकती है॥ १०॥

स्थूलाना हानोपायमाह—

स्थूलाना = स्थूल क्लेशों के। हानोपायं = परित्याग के उपाय को। आह = बतलाते है।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तय.॥ ११॥

अर्थ —तद् = उन क्लेशों की। वृत्तय = वृत्तियाँ, स्थूल वृत्तियाँ, उदार अवस्था वाली वृत्तियाँ। ध्यानहेया = ध्यान के द्वारा त्यागने योग्य है। जो क्लेश उदारावस्था में। विद्यमान है, उनको तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानरूप क्रियायोग द्वारा एव उनके प्रतिकूल भावना से उनको सूक्ष्म तथा दग्धबीज वाला बनाना चाहिये। क्लेशों के इन्हीं सूक्ष्म सस्कारों को प्रतिप्रसव परिणाम द्वारा, असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा समूल निर्मूल करना चाहिये। क्लेशों की स्थूल वृत्तियों को ध्यान द्वारा तथा सूक्ष्म सस्कारों को निर्वीज सामाधि द्वारा विनष्ट करना चाहिये। क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ अल्प प्रयास से सूक्ष्म हो जाती है।

वृत्ति.—तेषा क्लेशानामारब्धकार्य्याणा या सुख-दुःख-मोहात्मिका वृत्तय, ता ध्यानहेया, ध्यानेनैव चित्तैकाग्रतालक्षणेन हातव्या इत्यर्थ। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेणैव स्थूलत्वात्तासा निवृत्तिर्भवति, यथा वस्त्रादौ स्थूलो मल प्रक्षालनमात्रेणैव निवर्त्तते, [1]यस्तत्र सूक्ष्मांश स तैस्तैरुपायैरुत्तापनप्रभृतिभिरेव निवर्त्तयितु शक्यते ॥ ११ ॥

आरब्धकार्य्याणा = अपने-अपने कार्यों को प्रारम्भ करने वाले अर्थात् उदार अवस्था वाले। तेषा = उन। क्लेशाना = क्लेशों की। या = जो। सुखदुःख-मोहात्मिका = सुखदुःखमोहस्वरूप वाली। वृत्तय = वृत्तियाँ है। ता = वे उदारावस्था वाली स्थूल वृत्तियाँ। ध्यानहेया = ध्यान द्वारा त्यागने योग्य हैं अर्थात्। चित्तैकाग्रतालक्षणेन = चित्त की एकाग्रता स्वरूप। ध्यानेन = ध्यान द्वारा। एव = ही। हातव्या = क्लेशों की स्थूल वृत्तियों का परित्याग करना चाहिये। स्थूलत्वात् = स्थूल होने के कारण, उदारावस्था में विद्यमान होने से। तासा = उन क्लेशों की। निवृत्ति = निरावरण, परिहार, सूक्ष्मत्व की प्राप्ति। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेण = चित्त के परिकर्म के अभ्यास मात्र से। एव = हि। भवति = होती है अर्थात् अल्प प्रयास से ही स्थूल क्लेशों को सूक्ष्म बनाना सम्भव, सुकर है। यथा = जैसे। वस्त्रादि = वस्त्र इत्यादि पदार्थों में रहने वाला। स्थूल = स्थूल। मल = मल, अशुद्धि, कलुष। प्रक्षालनमात्रेण = प्रक्षालन मात्र से, केवल जल द्वारा धोने से। एव = ही। निवर्तते = दूर हो जाता है। य =

---

[1] यस्तु तत्र सूक्ष्म (पा०)।

जो मल। तत्र = उन वस्त्र इत्यादि में। सूक्ष्माश = सूक्ष्म अश रूप मे है। म = वह सूक्ष्म मल। उत्तापनप्रभृतिभि = तपाना इत्यादि, तपाना तथा साबुन, सोडा इत्यादि क्षार द्रव्यों के प्रयोग से। तै तै = उन उन। उपायै = साधनों द्वारा। निवर्त्तयितु = दूर करने में। शक्यते = सम्भव है। इसी प्रकार स्थूल क्लेश तो सामान्य साधन, अनुष्ठानो, अल्प प्रयासो से दूर हो जाते हैं, किन्तु सूक्ष्म क्लेश अधिक प्रयास साध्य होते हैं। निर्बीज समाधि द्वारा ही उनका निर्मूल होता है ॥ ११ ॥

एव क्लेशाना तत्वमभिधाय कर्माशयस्य तदभिधातुमाह—

एव = इस प्रकार। क्लेशाना = क्लेशो के। तत्व = तत्व, स्वरूप प्रभाव, निवृत्ति इत्यादि के उपाय को। अभिधाय = कहकर। कर्माशयस्य = कर्माशय का। तद् = वहो, स्वरूप, प्रभाव, निवृत्ति इत्यादि तत्व को। अभिधातु = कहने के लिये। आह = कहते है।

क्लेशमूल. कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय. ॥ १२ ॥

अर्थ—दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय = दृष्ट, वर्तमान जन्म में तथा अदृष्ट, अनागत, भावी जन्म में अनुभव किये जाने वाले। कर्माशय् = कर्माशय, धर्म एव अधर्म रूपी कर्मों के सस्कार, वासनायें। क्लेशमूल = क्लेशमूल वाला है अर्थात् इस जीवन में तथा भविष्य में भोगे जाने वाले धर्म तथा अधर्म रूपी कर्म वासनाओं के मूल कारण क्लेश ही हैं। पञ्चविध क्लेशों के कारण ही चित्त के साथ इन कर्म सस्कारो का सम्बन्ध होता है।

वृत्तिः—कर्माशय इत्यनेन स्वरूप तस्याभिहितम्, अतो वासनारूपाण्येव कर्माणि। क्लेशमूल इत्यनेन कारणमभिहित, यत कर्मणा शुभाशुभाना क्लेशा एव निमित्तम्। दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय इत्यनेन फलमुक्तम्। अस्मिन्नेव जन्मनि अनुभवनीयो दृष्टजन्मवेदनीय , जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीय ।

तथा हि—कानिचित् पुण्यानि देवताराधनादीनि तीव्रसवेगेन कृतानि इहैव जन्मनि जात्यायुर्भोगलक्षण फलं प्रयच्छन्ति। यथा—नन्दीश्वरस्य भगवन्महेश्वराराधनबलादिहैव जन्मनि जात्यादयो विशिष्टा प्रादुर्भूता।[1] एवमन्येषा

---

1. शिलादपुत्रस्य नन्दीश्वरस्य चरित बहुश वर्णितम्—द्र० बृहद्धर्मपु०-२१४ अ०; लिङ्गपु० १।४२ अ०।

विश्वामित्रादीनां[1] तपःप्रभावाज् जात्यायुषी। देवानाञ्चिज्जातिरेव, तथा तीव्रसंवेगेन दुष्टकर्मकृता नहुषादीनां[2] जात्यन्तरादिपरिणामः, उर्वश्याश्च कार्त्तिकेयवने लतारूपतया, एवं व्यस्तसमस्तत्वेन यथायोग्यं योज्यमिति ॥ १२ ॥

कर्माशय = कर्म आशय। इति अनेन = सूत्र में प्रयुक्त इस शब्द के द्वारा। तस्य = उस कर्म के। स्वरूप = स्वरूप को। अभिहित = कहा गया। अत = इसलिए। वासनारूपाणि = वासनारूप, संस्कार रूप। एव = ही। कर्माणि = कर्म हैं। क्लेशमूल = क्लेश मूल। इति अनेन = सूत्र में आये हुए इस शब्द के द्वारा। कारण = उन कर्मों के कारण, मूल को। अभिहित = कहा गया है। यत = क्योंकि। शुभाशुभाना = शुभ एवं अशुभ, पुण्य एवं पाप। कर्मणा = कर्मों के। क्लेशा = अविद्या इत्यादि पञ्चविध क्लेश। एव = ही। निमित्त = निमित्त, मूलकारण हैं। दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय = दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय। इति अनेन = सूत्र में प्रयुक्त इस शब्द के द्वारा। फल = फल, कर्मों का फल। उक्तं = कहा गया है अर्थात् शुभ एवं अशुभ कर्मों का फल इस वर्तमान जीवन तथा भविष्य के जीवन में भोगा जाने वाला होता है। अस्मिन् एव = इस ही, वर्तमान। जन्मनि = जन्म में। अनुभवनीय = अनुभव, भोगे जाने वाले कर्मसंस्कार। दृष्टजन्मवेदनीय = दृष्टजन्मवेदनीय कहे जाते हैं। जन्मान्तरानुभवनीय = दूसरे, भावी, जन्म में भोगे जाने वाले कर्माशय। अदृष्टजन्मवेदनीय = अदृष्टजन्मवेदनीय कहे जाते हैं। तथाहि = जैसे कि। देवताराधनादीनि = देवताओं की उपासना आदि। कृतानि = किये गये। कानिचित् = कुछ, कोई-कोई। पुण्यानि = पुण्य, शुभकर्म। तीव्रसंवेगेन = संवेगों की तीव्रता के कारण। इह एव = इस ही वर्तमान। जन्मनि = जीवन में। जात्यायुर्भोगलक्षण = जाति, आयु एवं भोगरूप। फल = फल को। प्रयच्छन्ति = प्रदान करते हैं। यथा =

---

१ महाभारते विश्वामित्रस्य ब्राह्मणत्वलाभो बहुत्र वर्णितः (आदिपर्व ७४।४८, शान्तिपर्व ४०।१२-३०)।

२ नहुषस्य जात्यन्तरपरिणामः उद्योगपर्वणि (१७।१४-१८), वनपर्वणि (अ० १७८-१८१) च वर्णितः।

जैसे। नन्दीश्वरस्य = नन्दीश्वर के लिये को। इह एव = इस ही, वर्तमान। जन्मनि = जन्म में। भगवन्महेश्वराराधनबलात् = ऐश्वर्य सम्पन्न महेश्वर की उपासना के बल, सामर्थ्य, प्रभाव से। जात्यादय = जाति इत्यादि, जाति, आयु, भोग। विशिष्टा = विशिष्ट, श्रेष्ठ, महत्त्वपूर्ण फलो की। प्रादुर्भूता = प्राप्ति हुई थी। एव = इसी प्रकार। विश्वामित्रादिना = विश्वामित्र इत्यादि। अन्येपा = अन्य श्रेष्ठ ऋषियों को। तप प्रभावात् = तप के प्रभाव से। जात्यायुपी = उत्कृष्ट जाति एव आयु की प्राप्ति हुई थी। केपाञ्चित् = कुछ पुरुषो को। जाति' एव = केवल जाति की ही प्राप्ति होनी है। तथा उस प्रकार से। तीव्रसंवेगेन = सवेगो, सस्कारो की प्रबलता के वशीभूत होकर। दुष्टकर्मकृता = अशुभ कर्म करने वाले। नहुषादीना = नहुप आदि को। जात्यन्तरादि-परिणाम = दूसरी जाति में परिवर्तन आदि की प्राप्ति हुई थी। च = और। कार्तिकेयवने = कुमार कार्तिकेय के कुमारवन में। उर्वश्या = उर्वशी को। लतारूपतया = लता रूप में जाति परिवर्तन की प्राप्ति हुई थी। कुमार वन का प्रभाव था कि यदि कोई स्त्री इसमें प्रवेश करेगी तो वह लता रूप में परिवर्तित हो जायेगी। पुरूरवा से रूठकर इस वन में प्रवेश करने वाली उर्वशी लतारूप में परिवर्तित हो गई थी। एव = इस प्रकार। व्यस्तसमस्तत्वेन = व्यस्त एवं समस्त रूप से, व्यष्टि तथा समष्टि रूप से। यथायोग्य = योग्यता के अनुसार। योज्य = सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। इति = यह अभिप्राय है अर्थात् अपने कर्मो के अनुसार किसी को व्यस्त रूप, जाति-आयु-भोग की प्राप्ति होती है ॥१२॥

इदानी कर्माशयस्य स्वभेदभिन्न फलमाह—

इदानीं = अब। कर्माशयस्य = कर्माशय का। स्वभेदभिन्न = अपने ही स्वरूप के कारण भिन्न, विविध प्रकार के। फल = फल को। आह = कहते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

अर्थ —मूले सति = मूल कारण क्लेश के विद्यमान रहने पर। तद् विपाक = उस कर्माशय का फल, परिणाम। जात्यायुर्भोगा = देवत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व इत्यादि जाति, आयु-जीवन की अवधि, विशिष्ट शरीर के साथ आत्मा,

पुरुष के सम्बन्ध की समयसीमा, एवं भोग-सुख-दुःख इत्यादि की प्राप्ति होती है अर्थात् क्लेशों के विद्यमान रहने पर शुभाशुभकर्माशय उत्तम-मध्यम-अधम रूप विशेष प्रकार का शरीर, अल्पदीर्घरूप जीवन काल तथा विविध प्रकार के सुख को प्रदान करते हैं।

वृत्तिः—मूलमुक्तलक्षणः क्लेशाः, तेष्वनभिभूतेषु सत्सु कर्मणां कुशलाकुशलरूपाणां विपाकः फलं जात्यायुर्भोगा भवन्ति। जातिर्मनुष्यादिः, आयुश्चिरकालम् एकशरीरसम्बन्धः, भोगा विषया इन्द्रियाणि सुखसंविद् दुःखसंविच्च सुखदुःखादीनि कर्मकरणभावबोधनव्युत्पत्त्या भोगशब्दस्य। इदमत्र तात्पर्यम्—चित्तभूमौ अनादिकालसञ्चिताः कर्मवासना यथा यथा पाकमुपयान्ति तथा तथा गुणप्रधानभावेन स्थिता जात्यायुर्भोगलक्षणं स्वकार्य्यमारभन्ते॥ १३॥

मूल = कर्माशयों के मूल के कारण। उक्तलक्षण = कहे गये लक्षण वाले। क्लेशा = अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश हैं। तेषु = उन्हीं पञ्चविध क्लेशों के। अनभिभूतेषु सत्सु = अभिभव रहित रहने पर अर्थात् क्लेशों के विद्यमान रहने पर। कुशलाकुशलरूपाणां = शुभ एवं अशुभ, पुण्य एवं पाप रूप। कर्मणां = कर्मों के। विपाक = विपाक, परिणाम अर्थात्। फल = फल। जात्यायुर्भोगा = जाति, आयु तथा भोग। भवन्ति = होते हैं। मनुष्यादि = मनुष्यत्व इत्यादि। जाति = जाति है। चिरकाल = अधिक समय तक। एकशरीरसम्बन्ध = एक विशिष्ट शरीर के साथ सम्बन्ध ही। आयु = आयु है। विषया = स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि विषय ही। भोगा = भोग हैं। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ-श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राण आदि इन्द्रियाँ। सुखसंविद् = सुख का ज्ञान, अनुभव करने वाली। च = और। दुःखसंविद् = दुःख का ज्ञान, अनुभव करने वाली है। अतः इन्द्रियों के विषय शब्दस्पर्श इत्यादि ही भोग हैं। सुखदुःखादीनि = सुख, दुःख इत्यादि का अनुभव करने वाली कर्मकरणभावबोधव्युत्पत्त्या = कर्मों के कारण, साधन इन्द्रियों से हो ज्ञान, अनुभव की उत्पत्ति होने के कारण। भोगशब्दस्य = भोग शब्द का। इदं = यह। अत्र = यहाँ पर। तात्पर्यम् = अभिप्राय है कि। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। अनादिकालसंचिता = अनादि काल से संचित, एकत्रित। कर्मवासना = शुभ-अशुभ कर्मों

के सस्कार । यथा यथा = जैसे जैसे । पाक = परिपक्वता, विपाक, परिणाम को । उपयान्ति = प्राप्त होते हैं, फल प्रदान करते है । तथा तथा = वैसे वैसे, उसी प्रकार से । गुणप्रधानभावेन = गौण एव प्रधान भाव से अथवा प्रकृति के सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों के रूप से । स्थिता = विद्यमान रहते हुए कर्मों के सस्कार । जात्यायुर्भोगलक्षण = जाति, आयु एव भोग रूप वाले । स्वकार्य्यं = अपने कार्य, फल को । आरभन्ते = प्रारम्भ करते हैं, प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

उक्ताना कर्मफलत्वेन जात्यादीना स्वकारणकर्मानुसारिणा[१] कार्य्यकर्तृत्वमाह—

कर्मफलत्वेन = कर्मसस्कारो के फल रूप से । उक्ताना = पहले बतलाये गये । जात्यादीना = जाति-आयु-भोग आदि का । स्वकारणकर्मानुसारिणा = अपने कारण रूप कर्माशयो के अनुसार । कार्य्यकर्तृत्व = कार्यों के करने के प्रकार को । आह = कहते हैं ।

ते ह्लाद-परितापफला. पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

अर्थ—पुण्यापुण्यहेतुत्वात् = पुण्य एव अपुण्य, शुभ एव अशुभ हेतु होने के कारण । ते = वे जाति-आयु-भोग । ह्लादपरितापफला = आनन्द एव दु ख रूप फल वाले होते हैं अर्थात् पुण्य तथा पाप कर्माशयो से उत्पन्न होने के कारण उनके विपाक जाति-आयु-भोग भी उन्ही के अनुसार हर्ष एव शोक परिणाम वाले होते हैं । शुभ कर्मो के परिणाम स्वरूप जो जाति-आयु-भोग होते हैं, वे सुखमय तथा अशुभ कर्मो के परिणाम जाति-आयु-भोग दु ख प्रदान करने वाले होते हैं ।

वृत्ति—ह्लाद सुख, परितापो दु ख, तौ फल येषा ते तथोक्ता, पुण्य कुशल कर्म, तद्विपरीतमपुण्य, ते कर्मणी कारण येषा भावस्तस्मात् । एतदुक्त भवति—पुण्यकर्मारब्धा जात्यायुर्भोगा ह्लादफला, अपुण्यकर्मारब्धास्तु परितापफला, एतच्च प्राणिमात्रापेक्षया[२] द्वैविध्यम् ॥ १४ ॥

ह्लाद = ह्लाद । सुख = सुख को कहते हैं । परिताप = परिताप ।

---

१ कर्मानुसारेण (पा०) ।

२. प्राणिमात्रापेक्षतया (पा०) ।

दु ख = दु ख को कहते है । तौ = वही ह्लाद एव परिताप दोनों हैं । फल = फल, परिणाम । येषा = जिनके । ते = वे, जाति-आयु-भोग । तथोक्त = उस प्रकार के कहे गये हैं अर्थात् सूत्र में 'ह्लादपरितापफला' ह्लाद तथा परिताप फल को देने वाले कहे गये है । पुण्य = पुण्य । कुशल कर्म = कुशल, शुभ कर्म को कहते हैं । तद् विपरीत = उस कुशल कर्म से विपरीत, भिन्न कर्म को । अपुण्य = अपुण्य, पापरूप कहते हैं । तै = वही पुण्य तथा अपुण्य दोनो । कर्मणी = कर्म । कारण = मूल कारण हैं । येषा = जिन जाति-आयु भोगों के । तेषा = उन्हो का । भाव = भाव है । तस्मात् = उससे अर्थात् पुण्य तथा अपुण्य कर्मो से उत्पन्न होने के कारण । एतदुक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है कि । पुण्यकर्मारब्धा = शुभ कर्मो से प्रारम्भ किये गये । जात्यायुर्भोगा = जाति-आयु-भोग रूप त्रिविध विपाक । ह्लादफला = आनन्द, सुखफल वाले है । अपुण्यकर्मारब्धा = अशुभ कर्मो से प्रारम्भ किये गये जाति-आयु-भोग । तु=तो । परितापफला = दु ख रूप फल प्रदान करने वाले होते हैं । च = और । एतत् = यह । प्राणिमात्रापेक्षया = सभी प्राणियों के विचार से । द्वैविध्य = दो प्रकार का है अर्थात् कर्माशयों के कारण सभी प्राणियों को प्राप्त होने वाले जाति-आयु-भोग-रूप विपाक सुख तथा दु ख रूप से दो प्रकार के होते है ॥ १४ ॥

योगिनस्तत् सर्वं दु खमित्याह—

योगिन = योगी के लिये । तत्सर्वं = वह सभी विपाक । दु ख = दु ख रूप ही होते हैं । इति = इसी को । आह = कहते हैं ।

परिणामतापसंस्कारदु खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च
दु खमेव सर्वं विवेकिन ॥ १५ ॥

अर्थः—परिणामतापसंस्कारदु खै = परिणाम दु ख, तापदु ख तथा संस्कार दु ख से । च = और । गुणवृत्तिविरोधात् = सत्त्व रजस्-तमस् तीनों गुणों की वृत्तियों, व्यापारों में परस्पर विरोध होने के कारण । विवेकिन = विवेकसम्पन्न पुरुष के लिये । सर्वं = सभी कर्मों के फल, विपाक । दु खमेव = दुख रूप ही है अर्थात् जितने भी कर्मजन्य, स्वकृत कर्मो से प्राप्त होने वाले सुख है वे सभी परिणामजन्य, तापजन्य एव संस्कारजन्य दु खों से मिश्रित है । जगत् के सभी

पदार्थ त्रिगुणात्मक है और ये गुण परस्पर विरुद्ध धर्म वाले हैं। यथा सत्त्व गुण सुखमय, लघु प्रकाशक, ज्ञानयुक्त, रजोगुण दु खमय, चञ्चल, उत्तेजक तथा तमोगुण मोहमय, गुरु, निरोधकारी, अज्ञानयुक्त है। अत निष्केवल सुख की प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं है। सभी भोगों का पर्यवसान दु ख में होता है। सभी भोग विनाशशील होने के कारण सुख के उपभोग काल में भी होने वाले वियोग के कारण तापदु ख वाले होते है। पूर्वअनुभूत भोगो के सस्कारो के कारण भोग्य पदार्थ के अभाव में सस्कारजन्य दु ख होता ही है। अत सभी भोग परिणाम-ताप-सस्काररूप त्रिविध दु खो से मिश्रित होने से तथा सत्त्व-रजस्-तमस् तीनों गुणो के कार्यो में परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी ज्ञानी योगी के लिए सभी भोग दु ख प्रदान करने वाले ही होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है—

ते हि संस्पर्शजा भोगा दु खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्त कौन्तेय न तेषु रमते बुध ॥ ५।२२

वृत्ति —विवेकिन परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य दृश्यमात्र सकलमेव भोगसाधनं सविष स्वाद्वन्नमिव दु खमेव प्रतिकूलवेदनीयमेवेत्यर्थ । यस्मादत्यन्ताभिजातो योगी दु खलेशेनाप्युद्विजते, यथा—अक्षिपात्रमूर्णातन्तुस्पर्शमात्रेणैव महतीं पीडा-मनुभवति, नेतरदङ्ग, तथा विवेकी स्वल्पदु खानुबन्धेनापि उद्विजते।

कथमित्याह—परिणाम-ताप-सस्कारदु खैविषयाणामुपभुज्यमानाना यथायथ गर्द्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य सुख-दु खस्य अपरिहार्यतया दु खान्तरसाधनत्वाद् नास्त्येव सुखरूपतेति परिणामदु खत्वम्। उपगृह्यमाणेषु सुखसाधनेषु तत्प्रतिपन्थिन प्रति द्वेषस्य सर्वदैवावस्थितत्वात् सुखानुभवकालेऽपि तापदु ख दुष्परिहरमिति तापदु खता।

सस्कारदु खन्तु स्वाभिमतानभिमतविषयसंनिधाने सुखसंविद् दु खसंविच्चोप-जायमाना तथाविधमेव स्वक्षेत्रे सस्कारमारभते, सस्काराच्च पुनस्तथाविधसंविदनु-भव इत्यपरिमितसस्कारोत्पत्तिद्वारेण [1]सर्वस्यैव दु खानुवेधाद् दु खत्वम्। [2]एवमुक्त

---

१ द्वारेण संसारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दु खत्वम् (पा०)।

२ इद वाक्य क्वचिन्न पठ्यते।

भवति—क्लेशकर्माशयविपाकसंस्कारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दुःखत्वम्।

गुणवृत्तिविरोधाच्चेति—गुणानां सत्त्वरजस्तमसां या वृत्तयः सुख-दुःख-मोह-रूपाः परस्परमभिभाव्याभिभावकत्वेन विरुद्धा जायन्ते, तासां सर्वत्रैव दुःखानुवेधाद् दुःखत्वम्।

एतदुक्तं भवति—ऐकान्तिकीमात्यन्तिकीञ्च दुःखनिवृत्तिमिच्छतो विवेकिन उक्तरूपकारणचतुष्ट्या सर्वे विषयाः दुःखरूपतया प्रतिभान्ति, तस्माच्च सर्वकर्म-विपाको दुःखरूप एवेत्युक्तं भवति ॥१५॥

परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य = क्लेशों के विवेक, भेद, स्वरूप को अच्छी-प्रकार, सम्यक् रूप से जानने वाले। विवेकिन = विवेक सम्पन्न योगी के लिये। दृश्यमात्र = समस्त दृश्य भोग्य पदार्थ। सकलमेव = सभी। भोगसाधन = उपभोग के साधन, विषय। सविष = विषसहित, विषमिश्रित। स्वादु अन्न = स्वाद युक्त मधुर अन्न को। इव = तरह, समान। दुःखमेव = दुःख रूप ही है। प्रतिकूल-वेदनीयमेव = प्रतिकूल असद्वेदनीय, दुःखरूप अनुभव किया जाने वाला, पीडा प्रदान करने वाला ही है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है। ज्ञानी योगी के लिये सभी सुख रूप प्रतीत होने वाले पदार्थ भी विषमिश्रित मधुर भोजन के समान परिणाम में दुःख को ही देने वाले हैं, अतः सभी पदार्थ त्याज्य है। यस्मात् = जिससे। अत्यन्ताभिजात = अत्यन्त श्रेष्ठ, ज्ञानयुक्त। योगी = योगी। दुःख-लेशेन = दुःख के किंचित् सम्पर्क, अत्यल्प संसर्ग से। अपि = भी। उद्विजते = उद्विग्न, व्याकुल हो उठता है। यथा = जैसे। अक्षिपात्रं = आँखों का पात्र, पुतली। ऊर्णातन्तुस्पर्शमात्रेण = ऊर्णनाभि, मकडी के ईषत् स्पर्श द्वारा। एव= ही। महती=अत्यधिक। पीडा = पीडा दुःख का। अनुभवति = अनुभव करती है। इतरदङ्ग = अन्य अङ्ग। न = नहीं, उस प्रकार की पीडा का अनुभव नहीं करते। तथा = उसी प्रकार। विवेकी = ज्ञानी, योगी। स्वल्प दुःखानुबन्धेन = थोडे ही दुःख के सम्बन्ध से। अपि = भी। उद्विजते = पीडित हो जाता है। कथं = किस प्रकार अर्थात् योगी सभी भोगों को दुःखमय क्यों समझता है। इति= इसी को। आह = कहते है। परिणामतापसंस्कारदुःखं = परिणामजन्य एवं संस्कारजन्य दुःखों के साथ। उपभुज्यमानानां = उपभोग किये जाते हुये। विषयाणां = विषयों, भोग के साधनों का। यथायथं = जैसे-जैसे। गर्द्धाभिवृद्धं =

तृष्णा, अभिलाषा की वृद्धि होने से। तद् = उन भोगों के साधन, विषयो को। अप्रातिकूलस्य = अनुपलब्धि से उत्पन्न हुये। सुखदु.खस्य = सुख एव दु.ख के। अपरिहार्यतया = दूर न किये जाने योग्य, अवश्यम्भावी होने के कारण। दु.खान्तरसाधनत्वाद् = दूसरे दु.ख में साधन होने के कारण अर्थात् अन्य दु.ख को उत्पन्न करने के कारण। सुखरूपता = विषयो, भोगो के साधनो की सुख-रूपता, सुखमयता। नास्ति एव = नही ही है। इति = इस प्रकार। परिणामदु.-खत्व = सभी विषय, भोग दु.ख रूप परिणाम वाले हैं अन्त में दु.ख ही प्रदान करने वाले है अर्थात् भोगों के उपभोग से बराबर तृष्णा बढती जाती है और उनकी प्राप्ति न होने पर दु.ख होता ही है। सुखसाधनेषु = सुखप्रदान करने वाले साधनों, विषय भोगो के। उपगृह्यमाणेषु = ग्रहण, उपभोग करते समय। यत्प्रतिपन्थिन प्रति = उन सुख साधनो के प्रतिपक्षी, बाधा पहुँचाने वाले। द्वेषस्य = द्वेष भावना के। सर्वदा = सदा। एव = ही। अवस्थिततत्वात् = विद्य-मान रहने के कारण। सुखानुभवकाले = सुख की प्राप्ति के समय। अपि = भी। तापदु.ख = तापदु.ख। दुष्परिहर = दुष्परिहार्य है। इति = यही। ताप-दु.खता = विषय भोगो का तापदु.ख है। सस्कार-दु.ख तु = संस्कार दु.ख तो। स्वाभिमतानभिमतविषयसन्निधाने = अपने अभीष्ट-अभिलषित एव अनभिलषित विषय के सम्बन्ध में। उपजायमाना = उत्पन्न हुआ। सुखसंवित् = सुख ज्ञान। च = तथा। दु.खसंवित् = दु.ख का ज्ञान। तथाविधमेव=उसी प्रकार के, सुख एव दु.ख रूप ही। स्वक्षेत्रे = अपने क्षेत्र में, चित्त में उस विषय के सम्बन्ध में। सस्कार = सस्कार को। आरभते = उत्पन्न करता है। च = और। पुन = फिर। सस्कारात् = इस संस्कार से। तथाविधसंविदनुभव. = उसी प्रकार के सुख तथा दु.ख के ज्ञान की प्रतीति, अनुभव होता है। इति = इस प्रकार मे। अपरिमितसस्कारोत्पत्तिद्वारेण=असख्य सस्कारो के उत्पन्न होने से। सर्वस्य एव = सभी भोगों की। दु.खानुवेधाद् = दु.ख सपृक्त, दु.ख से मिश्रण होने के कारण। दु.खत्व = दुःखरूपता ही है। एवमुक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है। क्लेशकर्माशयविपाकसस्कारानुच्छेदात् = पञ्चविध क्लेशो, शुभाशुभ कर्मों के संस्कार तथा कर्मफल, विपाक के सस्कारो का निर्मूल, अभाव न होने के कारण। सर्वस्य एव = सभी विषय। दु.खरूपत्व = दु.ख रूप ही है। च = और। गुण-

वृत्तिविरोधात् = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों की वृत्तियों, व्यापारों, कार्यों के परस्पर विपरीत होने के कारण भी। इति = ऐसा है, सभी विषय दुःख रूप ही है। गुणाना = गुणों की अर्थात्। सत्त्वरजस्तमसा = सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की। या = जो। सुखदुःखमोहरूपा = सुख, दुःख एवं मोह स्वरूप वाली। वृत्तय = वृत्तियाँ हैं। वे। परस्पर = परस्पर, एक दूसरे को। अभिभाव्याभिभावकत्वेन = = अभिभाव्य एवं अभिभावक रूप से, अभिभूत होने वाली एवं अभिभूत करने वाली। विरुद्धा प्रतिकूल स्वभाव वाली। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। तासा = उन वृत्तियों का। सर्वत्र एव = सभी विषयों में। दुःखानुवेधात् = दुःख से अनुविद्ध, मिश्रण होने के कारण। दुःखत्व = सभी विषय दुःख रूप ही हैं। एतद् उक्त भवति = यह अभिप्राय है कि। ऐकान्तिकी = अनिवार्य, निश्चय रूप से। च=और। आत्यन्तिकी=सदा के लिये, सार्वकालिक रूप से। दुःखनिवृत्तिम्= दुःख के अभाव की। इच्छत = इच्छा, कामना करने वाले। विवेकिन = विवेकी, ज्ञानी योगी के लिये। उक्तरूपकारणचतुष्टया = पूर्व बतलाये गये चतुर्विध कारणों से युक्त अर्थात् परिणामजन्य, तापजन्य, संस्कारजन्य दुःखों से मिश्रित होने से तथा त्रिविध गुणों की वृत्तियों के परस्पर विपरीत होने के कारण। सर्वे = सभी। विषया = भोग्य पदार्थ। दुःखरूपतया = दुःख सम्बन्ध, दुःखप्रदान करने वाले। प्रतिभान्ति = प्रतीत होते हैं। च = और। तस्मात् = इसलिये। सर्वकर्मविपाक = सभी कर्मों के फल। दुःखरूप एव = दुःख रूप ही हैं। दुःख में अवसान होने वाले हैं। इति उक्त भवति = यह अभिप्राय है॥ १५॥

तदेवमुक्तस्य क्लेशकर्माशयविपाकराशेरविद्याप्रभवत्वाद् अविद्यायाश्च मिथ्याज्ञानरूपतया सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात् सम्यग्ज्ञानस्य च समाधनहेयोपादेयावधारणरूपत्वात् तदभिधानमाह—

तदेव = इस प्रकार से। उक्तस्य = पहले वर्णन किये गये। क्लेशकर्माशयविपाकराशे = क्लेश, कर्म, कर्मसंस्कार एवं विपाक-कर्मफल की राशि, समुदाय का। अविद्याप्रभवत्वाद् = अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अर्थात् अविद्या से ही क्लेश, कर्म, संस्कार एवं विपाक की उत्पत्ति होने से। च = और।

प्रकृति जड, त्रिगुणात्मिका, प्रसवधर्मा है। सर्वथा भिन्न दोनो का सयोग अविद्या के कारण होता है, यही पुरुष का बन्धन है, जन्म-मृत्यु के चक्र में पुरुष का ससरण होता रहता है। विवेकख्याति होते ही पुरुष अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वृत्ति—द्रष्टा चिद्रूप पुरुष, दृश्य बुद्धिसत्त्व, तयोरविवेकख्यातिपूर्वको *योऽसौ सयोगो भोक्तृ-भोग्यत्वेन सन्निधानम्*, हेयस्य दु खस्य गुणपरिणामरूपस्य ससारस्य हेतु कारणम्, तन्निवृत्त्या ससारनिवृत्तिर्भवतीत्यर्थ ॥ १७ ॥

द्रष्टा = द्रष्टा, देखने वाला। चिद्रूप = चेतन स्वरूप वाला। पुरुष = पुरुष है। दृश्य = दृश्य, भोग्य। बुद्धिसत्त्व = सत्त्वगुणबहुला बुद्धि है। तयो = पुरुष और बुद्धि उन्ही दोनो का। अविवेकख्यातिपूर्वक = अविवेक ज्ञान द्वारा, परस्पर भेद की प्रतीति न होने से। य = जो। असौ = वह। सयोग = सयोग, सबन्ध है अर्थात्। भोक्तृभोग्यत्वेन = भोक्ता एव भोग्य रूप से, पुरुष भोक्ता एव बुद्धि का भोग्य रूप से। सन्निधान = सन्निधि, समीपता, एकरूपता है। (वही सयोग ही) हेयस्य = त्याज्य, त्यागने, छोडने योग्य। दु खस्य = दु ख का अर्थात् गुणपरिणामरूपस्य = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणो का परिणाम, फल, कार्य रूप। ससारस्य = ससार, ससरण का। हेतु = हेतु अर्थात्। कारण = कारण है। तत् = उस अविवेक जन्य सयोग की। निवृत्त्या = निवृत्ति, दूर होने से। ससारनिवृत्ति = ससरणरूप दु खो का निराकरण, अभाव। भवति = होता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है अर्थात् सयोग के दूर होते ही उसके कार्यरूप ससार का स्वत अभाव हो जाता है॥ १७ ॥

द्रष्टृ-दृश्ययो सयोग इत्युक्त, तत्र दृश्यस्य स्वरूप कार्य्यं प्रयोजनञ्चाह—

दृष्टृदृश्ययो = द्रष्टा पुरुष तथा दृश्य बुद्धि का। सयोग = सयोग, सम्बन्ध। इति = इस प्रकार। उक्त = कहा गया। तत्र = उनमें। दृश्यस्य = दृश्य बुद्धि के। स्वरूप = स्वरूप। कार्य्यं = कार्य। च = और। प्रयोजन = प्रयोजन, उद्देश्य, को। आह = कहते है।

प्रकाश-क्रिया-स्थितिशील भूतेन्द्रियात्मक
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

अर्थं —प्रकाशक्रियास्थितिशील = प्रकाश, क्रिया एवं स्थिति स्वभाव वाला। भूतेन्द्रियात्मकं = भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप वाला तथा। भोगापवर्गार्थं = भोग एवं अपवर्ग प्रयोजन वाला। दृश्य = दृश्य प्रकृति है अर्थात् प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतः सत्वगुण के कारण प्रकाशित करना, रजोगुण के कारण क्रिया में प्रवृत्त करना तथा तमोगुण के कारण अवरोध, नियमन करना उसका स्वभाव है। उसी से महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्राओं, महाभूतों, इन्द्रियों आदि की उत्पत्ति होती है अतः वह भूतेन्द्रिय स्वरूप वाली है यही प्रकृति तरह-तरह के विषय भोगों को पुरुष के लिए प्रस्तुत करती है तथा परम पुरुषार्थ अपवर्ग भी सम्पन्न करती है। अतः वह भोग एवं अपवर्ग प्रयोजन वाली है।

वृत्ति—प्रकाशः सत्वस्य धर्मः, क्रिया प्रवृत्तिरूपा रजसः, स्थितिर्नियमरूपा तमसः, ताः प्रकाश-क्रिया-स्थितयः शीलं स्वाभाविकं रूपं यस्य तत्तथाविधमिति स्वरूपमस्य निर्दिष्टम्।

भूतेन्द्रियात्मकमिति। भूतानि स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधानि, पृथिव्यादीनि गन्धतन्मात्रादीनि च, इन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन त्रिविधानि, उभयमेतद् ग्राह्य-ग्रहणरूपम्, आत्मा स्वरूपाभिन्नः परिणामो यस्य तत्तथाविधमित्यनेनास्य कार्य्यमुक्तम्। भोगः कथितलक्षणः, अपवर्गो विवेकख्यातिपूर्विका संसारनिवृत्तिः, तौ भोगापवर्गौ अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथाविधं दृश्यमित्यर्थः ॥१८॥

प्रकाशः = प्रकाश। सत्वस्य = सत्वगुण का। धर्मः = धर्म है। प्रवृत्तिरूपा= प्रवृत्तिरूप, प्रवृत्त करने वाली, गतिशील बनाने वाली। क्रिया = क्रिया, चेष्टा, व्यापार। रजसः = रजोगुण का धर्म है। नियमरूपा, अवरोध उत्पन्न करने वाली। स्थितिः = स्थिरता। तमसः = तमोगुण का धर्म है। प्रकाशप्रवृत्तिस्थिति क्रमशः सत्त्व रजस्-तमस् गुणों के धर्म हैं। ताः = वही त्रिविध धर्म। प्रकाश-क्रियास्थितयः = प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति रूप। शील = शील अर्थात्। स्वाभाविक रूप = स्वाभाविक स्वरूप, अपने वास्तविक स्वरूप हैं। यस्य = जिसके। तत् = वह दृश्य। तथाविधं = उस प्रकार का अर्थात् प्रकाश-क्रिया-स्थिति स्वभाव वाला है। इति = इस रूप से। अस्य = इस दृश्य का। स्वरूप = स्वरूप का। निर्दिष्ट = निर्देश, कथन किया गया, जाता है। भूतेन्द्रियात्मक-

मिति = भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप वाला दृश्य है अर्थात् । स्थूलसूक्ष्मभेदेन = स्थूल एवं सूक्ष्म के भेद से । भूतानि = भूत । द्विविधानि = दो प्रकार के हैं । पृथिव्यादीनि = पृथिवी इत्यादि, पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश स्थूलभूत हैं । च = और । गन्धतन्मात्रादीनि = गन्धतन्मात्रा इत्यादि, गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द तन्मात्रायें सूक्ष्म भूत हैं । बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन = ज्ञानेन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण के भेद से । त्रिविधानि = तीन प्रकार की । इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ हैं । एतद् = ये । उभय = दोनों ही, भूत एवं इन्द्रियाँ । ग्राह्यग्रहणरूप = ग्राह्य तथा ग्रहण रूप हैं । यस्य = जिस दृश्य के । आत्मा = भूत एवं इन्द्रियाँ आत्मा हैं अर्थात् । स्वरूपाभिन्न = अपने स्वरूप से भिन्न पृथक् न होने वाला । परिणाम = परिणाम है अर्थात् भूत एवं इन्द्रियाँ अपने से ही व्यक्त होने के कारण दृश्य से भिन्न न होने के कारण स्वरूप परिणाम हैं, क्योंकि कारण से कार्य अभिन्न ही होता है । इसलिये । तत् = वह दृश्य । तथाविधम् = उस प्रकार का है अर्थात् भूत एवं इन्द्रियों के स्वरूप का है । इति = इस प्रकार । अनेन = इसके द्वारा । अस्य = इस दृश्य का । कार्यं = कार्य-भूत तथा इन्द्रियों की अभिव्यक्ति । उक्त = कही गई । भोग = भोग । कथितलक्षण = पूर्व बतलाये गये लक्षण वाला है । विवेकख्यातिपूर्विका = विवेक ज्ञानद्वारा, द्रष्टा एवं दृश्य के स्वरूप ज्ञान, भेद प्रतीति द्वारा । संसारनिवृत्ति = संसार की निवृत्ति, दुःखों का सार्वकालिक अभाव हो जाना ही । अपवर्ग = अपवर्ग, मोक्ष है । तौ = वही दोनों । भोगापवर्गौ = भोग एवं अपवर्ग ही है । अर्थ = अर्थ अर्थात् । प्रयोजन = प्रयोजन, उद्देश्य । यस्य = जिसके । तत् = वह । दृश्य = दृश्य । तथाविध = उस प्रकार का है अर्थात् भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन को सम्पन्न करने वाला है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ १८ ॥

तस्य दृश्यस्य नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य हेयत्वेन ज्ञातव्यत्वात् तदवस्था कथयितुमाह—

नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य = विविध प्रकार के परिणाम, स्वरूप को ग्रहण करने वाले । तस्य = उस । दृश्यस्य = दृश्य का । हेयत्वेन = त्याज्य होने से । ज्ञातव्यत्वात् = जानने के योग्य होने के कारण । तद् = उस दृश्य की ।

अवस्थाः = विविध अवस्थाओं को। कथयितुं = बतलाने के लिये। आह = कहते हैं। दृश्य की विविध अवस्थायें होती हैं और वे सभी हेय हैं। अत दृश्य की उन अवस्थाओं को बतलाते हैं। गुणों की अवस्था का वर्णन

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

अर्थ —विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि=विशेष, अविशेष, लिङ्गमात्र एव अलिङ्ग ये चारों ही। गुणपर्वाणि=त्रिविध गुणों के पर्व, अवस्थायें हैं अर्थात् सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की अवस्थायें १–विशेष स्थूल पञ्चमहाभूत, एकादश इन्द्रियाँ २–अविशेष-सूक्ष्मतन्मात्रायें, ३–लिङ्गमात्र केवल बुद्धि तथा ४–अलिङ्ग-प्रकृति रूप चार अवस्थायें हैं।

वृत्ति —गुणानां पर्वाण्यवस्थाविशेषाश्चत्वारो ज्ञातव्या इत्युपदिष्टं भवति। तत्र विशेषा महाभूतेन्द्रियाणि, अविशेषास्तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गमव्यक्तमित्युक्तम्, सर्वत्र त्रिगुणरूपस्याव्यक्तस्यान्वयित्वेन प्रत्यभिज्ञाना-दवश्यं ज्ञातव्यत्वेन योगकाले चत्वारि पर्वाणि निर्दिष्टानि ॥ १९ ॥

गुणानां = सत्त्व-रजस्-तमस् गुणों की। पर्वाणि = पर्व अर्थात्। अवस्था-विशेषा = विशेष अवस्थायें। चत्वारः = चार। ज्ञातव्या = जानने योग्य हैं, जानना, समझना चाहिये। इति = यह। उपदिष्टं भवति = प्रस्तुत सूत्र द्वारा कहा गया अर्थात् गुणों की चार अवस्थायें होती हैं। तत्र=उन चारों अवस्थाओं में से। महाभूतेन्द्रियाणि = आकाश आदि पञ्च स्थूल महाभूत एव मन सहित एकादश इन्द्रियाँ। विशेषा = गुणों की विशेष अवस्था हैं। तन्मात्रान्तःकर-णानि = शब्द, स्पर्श आदि पञ्चसूक्ष्म तन्मात्रायें एव अहंकार। अविशेषा = अविशेष अवस्था हैं। बुद्धि =महत्तत्व। लिङ्गमात्र = लिङ्गमात्र अवस्था है। अव्यक्त = अव्यक्त, प्रधान, प्रकृति ही। अलिङ्ग = गुणों की अलिङ्ग अवस्था है। इति = इस रूप में। उक्तं = गुणों की चार अवस्थाओं का कथन किया गया। सर्वत्र = इन सभी चारों अवस्थाओं में। त्रिगुणरूपस्य=त्रिगुणात्मक। अव्यक्तस्य= प्रकृति का। अन्वयित्वेन = सम्बन्ध होने के कारण। प्रत्यभिज्ञानात् = प्रत्यभिज्ञा, पहचान होने के कारण। योगकाले = योग, चित्तवृत्तिनिरोध के समय, योग-साधना के समय। अवश्य = अवश्य ही। ज्ञातव्यत्वेन = जाननेयोग्य होने के

कारण अर्थात् प्रकृति का सम्बन्ध सभी अवस्थाओं में होता है और साधन के लिये उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। अत । चत्वारि = चार। पर्वाणि = अवस्थाओं का। निर्दिष्टानि = निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

एवं हेयत्वेन दृश्यस्य प्रथमं ज्ञातव्यत्वात् तदवस्थासहितं व्याख्याय उपादेयं द्रष्टारं व्याख्यातुमाह—

एवं = इस प्रकार। हेयत्वेन = त्याज्य होने के कारण। प्रथमं = सबसे पहले। दृश्य का। ज्ञातव्यत्वेन = स्वरूप ज्ञान आवश्यक होने के कारण। तद् = उस दृश्य की। अवस्थासहितं = अवस्थाओं के साथ। व्याख्याय = व्याख्यान, निरूपण करके। उपादेयं = उपादेय, प्राप्तव्य। द्रष्टारं = द्रष्टा पुरुष को। व्याख्यातुं = कहने के लिए। आह = कहते हैं। द्रष्टा पुरुष के स्वरूप को बतलाते हैं।

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

अर्थ—दृशिमात्र = केवल चेतन स्वरूप, ज्ञान रूप। द्रष्टा = द्रष्टा पुरुष है। शुद्ध अपि = सर्वथा शुद्ध होने पर भी, सभी धर्मों से रहित, निर्विकार असङ्ग होने पर भी। प्रत्ययानुपश्य = बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला होता है अर्थात् यद्यपि पुरुष केवल चेतन, ज्ञान रूप है, सभी धर्मों, विशेषणों का उसमें अभाव है, फिर भी अविद्या, अविवेक के कारण बुद्धिरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर, बुद्धि के साथ एकता, तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। और इस प्रकार उसकी वृत्तियों के अनुसार ही वह देखने वाला द्रष्टा बन जाता है, बुद्धिगत सभी धर्मों को अपना समझने लगता है। विवेक ख्याति से दृश्य का सम्बन्ध समाप्त होते ही वह द्रष्टा नहीं रह जाता और अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वृत्ति—द्रष्टा पुरुषः, दृशिमात्रश्चेतनामात्र, मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्। केचिद्धि[1] चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति। स शुद्धोऽपि परिणामित्वाद्यभावेन स्वप्रतिष्ठोऽपि, प्रत्ययानुपश्यः प्रत्यया विषयोपरक्तानि विज्ञानानि, तानि अनु

---

१. चेतना = ज्ञानम्। ज्ञानं नाम आत्मधर्म इति नैयायिका वैशेषिकाश्च।

अव्यवधानेन प्रतिसंक्रमाद्यभावेन पश्यति। एतदुक्तं भवति—जातविषयोपरागायामेव बुद्धौ सन्निधिमात्रेणैव पुरुषस्य द्रष्टृत्वमिति ॥ २० ॥

द्रष्टा = द्रष्टा। पुरुष = पुरुष है। दृशिमात्र = दृशिमात्र अर्थात्। चेतनामात्र = केवल चेतन स्वरूप वाला है। धर्मधर्मिनिरासार्थं = धर्म एवं धर्मी का निराकरण करने के लिये। मात्रग्रहण = मात्र शब्द का प्रयोग किया गया है। हि = क्योंकि। केचित् = कुछ लोग। चेतना = चेतना को। आत्मनः = पुरुष का। धर्मं = धर्म। इच्छन्ति = मानते हैं अर्थात् पुरुष धर्मी और चैतन्य उसका धर्म है। पर चेतन पुरुष का स्वरूप ही है, धर्म नहीं। इसी एकता को व्यक्त करने के लिये मात्र शब्द का प्रयोग किया गया है। स = वह पुरुष। शुद्ध अपि = सर्वथा शुद्ध होने पर भी अर्थात्। परिणामित्वाद्यभावेन = परिणाम, विकार के अभाव में, अपरिणामी, अकर्ता, उदासीन इत्यादि होने पर भी। स्वप्रतिष्ठोऽपि = अपने ही चेतन स्वरूप में प्रतिष्ठित रहने पर भी। प्रत्ययानुपश्य: = बुद्धि की वृत्तियों के अनुरूप देखने वाला होता है। विषयोपरक्तानि = विषयों से अनुरञ्जित, सम्बद्ध। विज्ञानानि = विषयों के ज्ञानवाली, विषयों को ग्रहण करने वाली। प्रत्यया = बुद्धिकी वृत्तियाँ। तानि अनु = उन्हीं विषयों से अनुरक्त वृत्तियों के अनुसार अर्थात्। अव्यवधानेन = बिना किसी व्यवधान के। प्रतिसंक्रमाद्यभावेन = प्रतिसंक्रमण इत्यादि के न होने पर भी। पश्यति = देखता है, बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार ही देखता है। एतद् उक्तं भवति = यह अभिप्राय है। जातविषयोपरागाया = उत्पन्न हुये विषयों के उपराग वाली, विषयों के राग-सम्बन्ध से युक्त। बुद्धौ—बुद्धि में। एव = ही। सन्निधिमात्रेण = केवल समीपता, सामीप्य के कारण। एव = ही। पुरुषस्य = पुरुष का। द्रष्टृत्व = द्रष्टा होना है। इति = यह तात्पर्य है अर्थात् बुद्धि के सम्पर्क, सामीप्य लाभ से वह पुरुष भी द्रष्टा हो जाता है, अन्यथा वह चेतन रूप है ॥ २० ॥

स एव भोक्तेत्याह—

स = वह। एव = ही पुरुष। भोक्ता = भोक्ता है। इति = इसी को। आह = कहते हैं।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

अर्थ—दृश्यस्य = दृश्य का। आत्मा = स्वरूप। तद् अर्थ = उस पुरुष के प्रयोजन के लिये। एव = ही है अर्थात् पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करना ही दृश्य का स्वरूप है, उसकी सार्थकता है।

वृत्ति—दृश्यस्य प्रागुक्तलक्षणस्य य आत्मा यत्[1] स्वरूप तदर्थं एव, तस्य पुरुषार्थभोक्तृत्वसम्पादन नाम स्वार्थपरिहारेण प्रयोजनम्, न हि प्रधान प्रवर्त्तमानम् आत्मन किञ्चित् प्रयोजनमपेक्ष्य प्रवर्त्तते, किन्तु पुरुषस्य भोक्तृत्व सम्पादयितुमिति[2] ॥ २१ ॥

प्राक् उक्तलक्षणस्य = पहले बतलाये गये लक्षण वाले। दृश्यस्य = दृश्य का। य = जो। आत्मा = आत्मा है अर्थात्। यत् = जो। स्वरूप = स्वरूप है। तदर्थं एव = उस पुरुष के लिये ही है अर्थात्। स्वार्थपरिहारेण = अपने उद्देश्य, प्रयोजन का परिहार, परित्याग कर। तस्य = उस पुरुष का। पुरुषार्थभोक्तृत्व-सम्पादन नाम = भोगरूप पुरुषार्थ को सम्पन्न, पूर्ण करना ही। प्रयोजन = उद्देश्य है। हि = क्योंकि। प्रवर्त्तमान = पुरुष के प्रति प्रवृत्त, कार्यरत होने वाली। प्रधान = प्रकृति। आत्मन = अपने, स्वकीय। किञ्चित् = किसी। प्रयोजन = उद्देश्य की। अपेक्ष्य = अपेक्षा करके। न = नहीं। प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होती है। किन्तु = परन्तु। पुरुषस्य = पुरुष के। भोक्तृत्व = भोग को। सम्पादयितु = सम्पन्न करने के लिए ही। इति = प्रवृत्त होती है, यह अभिप्राय है अर्थात् प्रकृति का अपना कोई भी प्रयोजन नहीं है, वह पुरुष के भोग के लिए ही प्रवृत्त होती है ॥ २१ ॥

यद्येव पुरुषस्य भोगसम्पादनमेव प्रयोजन, तदा सम्पादिते तस्मिन् तद् निष्प्रयोजन विरतव्यापार स्यात्, तस्मिश्च परिणामशून्ये शुद्धत्वात् सर्वे द्रष्टारो बन्धरहिता स्यु, ततश्च ससारोच्छेद इत्याशङ्कयाह—

यदि = यदि। एव = इस प्रकार। पुरुषस्य = पुरुष का। भोगसम्पादनमेव = भोग सम्पन्न करना ही। प्रकृति का। प्रयोजन = उद्देश्य है। तदा = ऐसी स्थिति

---

१ यत् स्वरूप, स तदर्थस्तस्य पुरुषस्य (पा०)।

२ भोग सपादयामीति (पा०)।

में। तस्मिन् = उस भोग के। सम्पादिते = पूर्ण हो जाने पर। तद् = वह प्रधान, प्रकृति। निष्प्रयोजन = अन्य शेष प्रयोजन के अभाव में। विरतव्यापार = व्यापार से उपरत। स्यात् = हो जावेगी। च = और। तस्मिन् = उस प्रधान, प्रकृति के। परिणामशून्ये = परिणाम रहित हो जाने पर। सर्वे = सभी। द्रष्टार = द्रष्टा, पुरुष। शुद्धत्वात् = शुद्ध होने के कारण। बन्धरहिता = बन्धन से रहित, मुक्त। स्यु = हो जायेंगे। ततश्च = और उनके बाद, इस प्रकार। ससारोच्छेद = दुःखमय ससार का ही निराकरण, निर्मूल, अभाव हो जायगा। इति = इस प्रकार की। आशङ्क्य = आशङ्का, सन्देह करके। आह = कहते हैं।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

अर्थः—कृतार्थं प्रति = सम्पन्न हुए अर्थ वाले पुरुष के प्रति अर्थात् भोग एव अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करने वाले पुरुष के प्रति। नष्टमपि = नष्ट होने पर भी। तद् = वह दृश्य। अन्यसाधारणत्वात् = अन्य, दूसरे पुरुषो के लिये साधारण, समान होने के कारण। अनष्ट = नष्ट नही होता है, विद्यमान ही रहता है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने पर भी नित्य है। उसका कभी विनाश नही होता। जिस किसी पुरुष का भोग अपवर्ग वह सिद्ध कर देती है अथवा विवेक ख्याति सम्पन्न पुरुष के प्रति वह अपने व्यापार से उपरत हो जाती है, उसे पुन बन्धनगत नही करती। किन्तु अन्य अविवेकी पुरुषों के साथ उसका सम्बन्ध बना ही रहता है। इस प्रकार कभी भी उसका विनाश नही होता।

वृत्ति—यद्यपि विवेकख्यातिपर्यन्ताद् भोगसम्पादनात् कमपि कृतार्थं पुरुष प्रति तन्नष्ट विरतव्यापार, तथापि सर्वपुरुषासाधारणत्वाद् अन्यान् प्रति अनष्टव्यापारमवतिष्ठते, अत प्रधानस्य सकलभोक्तृसाधारणत्वाद् न कदाचिदपि विनाश। एकस्य मुक्तौ वा न सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्युक्त भवति ॥ २२ ॥

यद्यपि = यद्यपि। विवेकख्यातिपर्यन्ताद् = विवेक ज्ञान उत्पन्न होने तक ही। भोगसम्पादनात् = भोग उपस्थित करने के कारण। उसके पश्चात्। कृतार्थं = अर्थ को प्राप्त कर लेने वाले, प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करने वाले।

कमपि = किसी एक। पुरुष प्रति = पुरुष के प्रति। तत् = वह दृश्य। नष्ट = नष्ट हो जाता है अर्थात्। विरतव्यापार = उपरत व्यापार, समाप्त हुये व्यापार वाला होता है अर्थात् उस पुरुष के प्रति प्रकृति अपना व्यापार बन्द कर देती है। तथापि = फिर भी। सर्वपुरुषसाधारणत्वाद् = दृश्य का सभी पुरुषों के लिए समान रूप से होने के कारण। अन्यान् प्रति = अन्य अकृतार्थ अज्ञानी पुरुषों के प्रति। अनष्टव्यापार = न नष्ट हुए, न उपरत हुए व्यापार वाला वह दृश्य। अवतिष्ठते = विद्यमान रहता है। अज्ञानियों के प्रति प्रकृति का व्यापार चलता ही रहता है। तत = इसलिए। प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति का। सकलभोक्तृ-साधारणत्वाद् = सभी भोक्ता पुरुषों के लिए साधारण, समान होने के कारण। कदाचिदपि = कभी भी। विनाश = विनाश। न = नहीं होता। वा=अन्यथा। एकस्य = किसी एक पुरुष के। मुक्तौ = मुक्त हो जाने पर। सर्वमुक्तिप्रसङ्ग = सभी पुरुषों की मुक्ति का प्रसङ्ग, दोष। न = नहीं है। इति उक्त भवति = यह अभिप्राय है॥ २२॥

दृश्य-द्रष्टारौ व्याख्याय सयोग व्याख्यातुमाह—

दृश्यद्रष्टारौ = दृश्य तथा द्रष्टा का। व्याख्याय = व्याख्यान, वर्णन करके। सयोग = दोनों के सयोग को। व्याख्यातु = वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं।

स्व-स्वामिशक्त्यो स्वरूपोपलब्धिहेतु सयोग ॥ २३ ॥

अर्थ —स्वस्वामिशक्त्यो = स्वशक्ति दृश्य रूप एव स्वामिशक्ति पुरुष रूप इन दोनो को। स्वरूपोपलब्धिहेतु = स्वरूप की प्राप्ति, ज्ञान का हेतु, कारण। सयोग = सयोग है अर्थात् भोग्य होने से दृश्य स्वशक्ति वाला तथा भोक्ता होने से पुरुष स्वामिशक्ति वाला है। इन्ही दोनो के भोग्य एव भोक्ता रूप से स्वरूप की उपलब्धि का हेतु सयोग है। यही सयोग, भोग्यभोक्तृभावसम्बन्ध ससार का कारण है।

वृत्ति —कार्यद्वारेणास्य लक्षण करोति। स्वशक्तिर्दृश्यस्य स्वभाव, स्वामि-शक्तिर्द्रष्टु स्वरूप, तयोर्द्वयोरपि सवेद्य-सवेदकत्वेन व्यवस्थितयोर्या स्वरूपोपलब्धि-

स्तस्या कारण य, स सयोग , स[1] च सहजो भोग्य-भोक्तृभावस्वरूपानन्य , न हि तयोर्नित्ययोर्व्यापकयो स्वरूपादतिरिक्त कश्चित् सयोग , यदेव भोग्यस्य भोग्यत्व भोक्तुश्च भोक्तृत्वमनादिसिद्ध स एव सयोग ॥ २३ ॥

कार्य्यद्वारेण = कार्य के माध्यम से । अस्य = इस सयोग का । लक्षण = लक्षण, स्वरूप । करोति = बतलाते है । स्वशक्ति = स्वशक्ति । दृश्यस्य = दृश्य, बुद्धि इत्यादि का । स्वभाव = अपना ही स्वभाव, स्वरूप है । स्वामिशक्ति = स्वामिशक्ति । द्रष्टु = द्रष्टा पुरुष का । स्वरूप=स्वरूप है । तयो द्वयो = उन्ही दोनो दृश्य-द्रष्टा का । सवेद्यसवेदकत्वेन = सवेद्य एव सवेदक रूप से, ज्ञेय एव ज्ञाता रूप से । व्यवस्थितयो = विद्यमान रहने वाले दृश्य द्रष्टा की । य = जो । स्वरूपोपलब्धि = स्वरूप का ज्ञान है । तस्या = उस उपलब्धि, उस ज्ञान प्राप्ति का । य = जो । कारण = हेतु है । स = वही । सयोगः = सयोग है । च = और । स = वह सयोग । सहज = सहज स्वाभाविक । [2]भोग्यभोक्तृभावस्वरूपानन्य = भोग्य एव भोक्ता भाव रूप से अन्य, भिन्न नही है अर्थात् दृश्य एव द्रष्टा का सयोग भोग्य-भोक्ता रूप ही है । हि = क्योकि । नित्ययो = नित्य । व्यापकयो = व्यापक । तयो = उन दोनो दृश्य द्रष्टा का । स्वरूपाद् = स्वरूप, भोग्यभोक्ता मे । अतिरिक्त = पृथक्, भिन्न । कश्चित् = कोई । सयोग. = सयोग । न = नही है । यदेव = जो ही । भोग्यस्य = भोग्यदृश्य की । भोग्यत्व = भोग्यत्व रूप होना, भोग्यता । च = और । भोक्तु = भोक्ता द्रष्टा पुरुष का । भोक्तृत्व = भोक्ता होना । अनादिसिद्ध = अनादि काल से ही सिद्ध है । स एव = वही । सयोग = सयोग है ॥ २३ ॥

तस्यापि कारणमाह—

तस्य = उस सयोग का । अपि = भी । कारण = कारण, हेतु । आह = बतलाते है ।

---

१. स च सहजभोग्यभोक्तृभावस्वरूपान्नान्य (पा०) ।

२—भोग्यभोक्तृभावस्वरूपान् नान्य (पाठभेद) = दृश्य एवं द्रष्टा का सयोग भोग्य एव भोक्ता रूप से पृथक् नही है ।

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

अर्थ—तस्य = उस दृश्य एव द्रष्टा के परस्पर सयोग का। हेतु = कारण। अविद्या = अविद्या है। अपरिणामी, त्रिगुणातीत, असङ्ग, केवल चिन्मात्र पुरुष का अचेतन, परिणामिनी प्रकृति के साथ सयोग में अनादि अविद्या ही कारण है।

वृत्ति—या पूर्वं विपर्य्यासात्मिका मोहरूपाऽविद्या व्याख्याता (२।४–५), सा तस्य विवेकख्यातिरूपस्य सयोगस्य कारणम् ॥ २४ ॥

या = जिसका। पूर्वं = पहले २।४-५ सूत्र में। विपर्य्यासात्मिका = विपर्यय स्वरूप वाली। मोहरूपा = मोह, अज्ञान रूप। अविद्या = अविद्या का। व्याख्याता = व्याख्यान, निरूपण किया गया है। सा = वही अविद्या। तस्य = उस। अविवेकख्यातिरूपस्य = भेद रूप से प्रतीति न कराने वाले। सयोगस्य = दृश्य तथा द्रष्टा के सयोग का। कारण = कारण है ॥ २४ ॥

हेयं[1] हानिक्रिया-कर्मोच्यते, किं पुनस्तद्धानम् इत्याह—

हेय = त्याज्य। हानिक्रियाकर्म = हानि करने वाले कर्म, साधन को। उच्यते = कहते हैं, वर्णन करते हैं। पुन = फिर। तद् = वह। हान = हानि। किं = क्या है, हानि का क्या स्वरूप है? इति = इसी के उत्तर में। आह = कहते हैं।

तदभावे संयोगाभावो हानं तद् दृशे कैवल्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ—तद् अभावे = उस अविद्या का अभाव हो जाने से। सयोगाभाव = दृश्य एव द्रष्टा के परस्पर सयोग का अभाव हो जाना ही। हान = हान है अर्थात्, दु खो का ऐकान्तिक एव आत्यन्तिक अभाव है। तद् = वही। दृशे = द्रष्टा पुरुष का। कैवल्य = केवल, चिन्मात्रस्वरूप, मोक्ष है अर्थात् विवेकख्याति उत्पन्न होने से अविद्या का पूर्ण अभाव हो जाता है, अविद्या का अभाव होने से तत्कृत, तज्जन्य सभी दु खो का कारण दृश्य-द्रष्टा का सयोग स्वत समाप्त हो जाता है। यही सयोग का अभाव ही दु ख की निश्चित रूप से तथा सार्वकालिक

[1] 'हेय' कर्मोच्यते' इति वाक्य पूर्वसूत्रव्याख्यानान्ते केषुचित् सस्करणेषु पठितम्।

निवृत्ति है। इस प्रकार केवल, विशुद्ध चिन्मात्र पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही कैवल्य, मोक्ष है।

वृत्ति.—अविद्याया स्वरूपविरुद्धेन सम्यग्ज्ञानेन उन्मूलिताया योऽयमभावस्तस्मिन् सति तत्कार्यस्य सयोगस्याप्यभाव, तत् हानमित्युच्यते। अयमर्थ — नैतस्य[1] अमूर्त्तवस्तुन विभागो युज्यते, किन्तु जाताया विवेकख्यातौ अविवेकनिमित्त सयोग स्वयमेव निवर्त्तत इति तस्य हान, यदेव च सयोगस्य हान तदेव नित्य केवलस्यापि पुरुषस्य कैवल्य व्यपदिश्यते। तदेव दृश्यसयोगस्य स्वरूप कारण कार्यञ्चाभिहितम् ॥ २५ ॥

स्वरूपविरुद्धेन = अपने स्वरूप से भिन्न, प्रतिकूल। सम्यग्ज्ञानेन = सम्यक् ज्ञान द्वारा। सत्त्वपुरुषान्यताख्याति द्वारा। उन्मूलिताया = समूल, नि शेष रूप से विनाश की गई। तस्या = उस। अविद्याया = समस्त दु खों का मूलरूप अविद्या का। य = जो। अय = यह। अभाव = अभाव है। तस्मिन् सति = उस अविद्या का अभाव हो जाने पर। तत्कार्यस्य = उस अविद्या जन्य कार्य। सयोगस्य = दृश्यद्रष्टा के परस्पर सयोग, एकरूपता, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि का। अपि = भी। अभाव = अभाव हो जाता है। तत् = वही सयोग का अभाव। हान = त्रिविध दु खों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अभाव है। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। एतस्य = इस। अमूर्त्तवस्तुन = अमूर्तवस्तु अविद्या का। विभाग- = विभाग, पृथक्करण विनाश। न = नहीं। युज्यते = सम्भव है। किन्तु = परन्तु। विवेकख्यातौ = प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान के। जाताया = उत्पन्न होते ही। अविवेकनिमित्त = अविद्याके कारण उत्पन्न हुआ। सयोग = सत्त्व-पुरुष का परस्पर सयोग। स्वयमेव = स्वत ही, अपने आप ही। निवर्त्तते = निवृत्त, दूर हो जाता है। इति = यही। तस्य = उस सयोग का। हान=हान, अभाव, सदा के लिये सबन्ध विच्छेद है। च = और। यदेव = जो ही। सयोगस्य = सत्त्वपुरुष के सयोग का। हान = हानि है। तदेव = वही। कैवल्यस्य = केवल, शुद्ध,

---

१ नैतस्य मूर्तद्रव्यवत् परित्यागो युज्यते (पा०)।

निर्विकार त्रिगुणातीत । पुरुषस्य = पुरुष का । नित्य = सार्वकालिक । कैवल्य = मोक्ष । व्यपदिश्यते = कहा जाता है । तद् = वह । एव = इसलिए, इस प्रकार से । दृश्यसंयोगस्य = दृश्य का द्रष्टा के साथ संयोग का । स्वरूप = स्वरूप । कारण = कारण, अनादि अविद्या । च = तथा । कार्य्यं = फल, संयोग के फल का । अभिहित = वर्णन किया गया ॥ २५ ॥

अथ हानोपायकथनद्वारेण उपादेयकारणमाह—

अथ = अब । हानोपायकथनद्वारेण = दृश्यद्रष्टा के परस्पर संयोग के हान, निवृत्ति के उपाय निरूपण के द्वारा । उपादेयकारण = उपादेय कारण को । आह = बतलाते हैं ।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय ॥ २६ ॥

अर्थ—अविप्लवा = दोषरहित एवं निश्चल । विवेकख्याति = दृश्य एवं द्रष्टा का विवेकज्ञान, भेद ज्ञान ही । हानोपाय = हान, मोक्ष का उपाय है । प्रकृति एवं पुरुष के यथार्थ स्वरूप की प्रतीति ही समस्त दु खों के आत्यन्तिक अभाव में कारण है । विवेक ज्ञान होते ही प्रकृतिकृत सभी दु खों का सम्बन्ध पुरुष में समाप्त हो जाता है । इसे ही मोक्ष कहते हैं ।

वृत्ति—अन्ये गुणा, अन्य पुरुष इत्येवंविधस्य विवेकस्य या ख्याति साऽस्य हानस्य दृश्यदु खपरित्यागस्योपाय[1] कारणं, कीदृशी ? अविप्लवा—न[2] विद्यते विप्लवो विच्छेदोऽन्तराऽव्युत्थानरूपो[3] यस्या स अविप्लवा ।

इदमत्र तात्पर्य्यम्—प्रतिपक्षभावनाबलादविद्याप्रलये निवृत्तकर्त्तृत्व-भोक्तृत्वाभिमानाया रजस्तमोमलानभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छायासङ्क्रान्ति सा

१ दृश्यपरित्यागस्य (पा०) ।

२ द्र० "भोजव्याख्यान तु—'न विद्यते विप्लवो विच्छेदो व्युत्थानरूपो यस्या, अन्ये गुणा अन्य पुरुष इति प्रतिपक्षभावनाबलाद् अविद्या प्रविलये निवृत्तज्ञातृत्वकर्तृत्वाभिमानाया रजस्तमोम्लानाभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छक्तिसंक्रान्ति, सा विवेकख्यातिरित्युच्यते" (शिवानन्दकृतयोगचिन्तामणि, पृ० २०) ।

३ व्युत्थान रूप (पा०)

विवेकख्यातिरुच्यते, तस्या च सन्ततत्वेन प्रवृत्तायां सत्यां दृश्यस्याधिकारनिवृत्ते-र्भवत्येव कैवल्यम् ॥ २६ ॥

गुणा = गुण, प्रकृति सम्बन्धी त्रिगुणात्मक विषय, भोग्यपदार्थ । अन्ये = भिन्न, पृथक् हैं । पुरुष = द्रष्टा पुरुष । अन्य = प्रकृति से भिन्न, पृथक् है, केवल चिद्रूप त्रिगुणरहित, अपरिणामी, अकर्ता इत्यादि है । इति एवं विधस्य= इस रूप में, इस प्रकार के । विवेकस्य = परस्पर भेद की । या = जो । ख्याति = ज्ञान, प्रतीति होती है । सा = वही दृश्यद्रष्टा की विवेकख्याति, भेदज्ञान । अस्य = इस । हानस्य = हान का, समस्त दुःखों के सार्वकालिक अभाव, मोक्ष का अर्थात् । दृश्यदुःखपरित्यागस्य = दृश्यप्रकृतिसम्बन्धी सभी दुःखों के परित्याग, अभाव का । उपाय = उपाय साधन अर्थात् । कारणं = कारण है । कीदृशी ? = वह विवेक ख्याति किस प्रकार की है ? । अविप्लवा = अविप्लवा है अर्थात् यस्या = जिस विवेकख्याति का । विप्लवा = विप्लव । न = नहीं । विद्यते = विद्यमान है अर्थात् । अन्तराऽन्तराऽव्युत्थानरूप = मध्य-मध्य में चित्त का अभ्यु-त्थान रूप । विच्छेद (नहीं विद्यमान है) अर्थात् चित्त को बाह्य विषयों में ले जाने वाले विघ्न उपस्थित नहीं होते । स = वही विच्छेद का अभाव रूप ज्ञान । अविप्लवा = अविप्लवा अविवेकख्याति है । अत्र = इसका । इदं = यह । तात्पर्यं= अभिप्राय है । प्रतिपक्षभावनाबलात् = प्रतिकूल भावनाओं का सदा चिन्तन करने से । अविद्याप्रलये = अविद्या का विलय, अभाव हो जाने से । निवृत्तकर्तृत्व-भोक्तृत्वाभिमानाया = कर्त्री एवं भोक्त्री की भावना से रहित हुई । बुद्धेः = बुद्धि की । या = जो । अन्तर्मुखा = बाह्यविषयों के परित्याग से अन्तर्मुखी हुई । चिच्छायासङ्क्रान्ति = चेतन पुरुष के छाया की सङ्क्रान्ति, चेतन के प्रतिबिम्बरूप बुद्धि की परिणति है । सा = वही । विवेकख्याति = विवेकख्याति । उच्यते = कही जाती है । च=और । सन्ततत्वेन = सतत, निरन्तर रूप से । तस्या = उसी विवेकख्याति के । प्रवृत्तायां सत्यां = प्रवृत्त रहने पर, निर्बाध रूप से विद्यमान रहने पर । दृश्यस्य=दृश्य, प्रकृति सम्बन्धी सभी विषयों के । अधिकारनिवृत्ते = अधिकार की निवृत्ति, निराकरण हो जाने पर, भेद ज्ञान से विषयों का भोग्य रूप में ग्रहण न होने पर । कैवल्य = पुरुष का कैवल्य, मोक्ष, सभी दुःखों से

सम्बन्ध विच्छेद । भवति एव = होता ही है ॥ २६ ॥

उत्पन्नविवेकख्याते पुरुषस्य यादृशी प्रज्ञा भवति ता कथयन् विवेकख्यातेरेव स्वरूपमाह—

उत्पन्नविवेकख्याते = विवेकज्ञान उत्पन्न हो जाने पर । पुरुषस्य = पुरुष की । यादृशी = जिस प्रकार की । प्रज्ञा = प्रज्ञा, बुद्धि । भवति = होती है । ता = उस प्रज्ञा का । कथयन् = स्वरूप बतलाते हुये । विवेकख्याते = विवेकख्याति के । एव = ही । स्वरूप = स्वरूप को । आह = कहते हैं ।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ[1] प्रज्ञा ॥ २७ ।

अर्थः—तस्य = विवेक ज्ञान सम्पन्न उस पुरुष की । प्रान्तभूमौ (भूमि) = प्रान्तभूमि, उत्कृष्टतम अवस्था में अथवा उत्कृष्टतम अवस्था वाली । प्रज्ञा = प्रज्ञा, बुद्धि । सप्तधा = सातप्रकार, सातविषयों वाली होती है । विवेक ज्ञान से अविद्या का पूर्ण अभाव हो जाने से सात प्रकार की उत्कृष्ट अवस्थाओं वाली प्रज्ञा होती है ।

क—कार्यविमुक्तप्रज्ञा :

१ ज्ञेयशून्यावस्था
२ हेयशून्यावस्था
३ प्राप्यप्राप्तावस्था
४ चिकीर्षाशून्यावस्था

ख—चित्तविमुक्तिप्रज्ञा .

१ चित्तकृतार्थता अवस्था
२ गुणलीन अवस्था
३ आत्मस्थिति अवस्था ।

वृत्ति—[2]तस्योत्पन्नविवेकज्ञानस्य, ज्ञातव्य-विवेकरूपा प्रज्ञा प्रान्तभूमौ

१ प्रान्तभूमि प्रज्ञेति अन्ये पठ्यते ।

२ अन्यत्या भोजवृत्ति शिवानन्देन अनुसृता—"तद् व्याख्यान तु उत्पन्नविवेकख्याते पुंस प्रान्तभूमौ सकलसालम्बन-समाधिपर्यन्तप्रज्ञा सप्तविधा भवति । तत्र कार्यविमुक्तिरूपा चतुर्विधा " (योगचिन्तामणि, पृ० ७८-७९) ।

सकल[1]सालम्बनसमाधिपर्य्यन्ते सप्तप्रकारा भवन्तीत्यर्थः ।

तत्र कार्य्यविमुक्तिरूपाचतुः प्रकारा,—ज्ञातं मया ज्ञेयं ज्ञातव्यं किञ्चिदस्ति, क्षीणा मे क्लेशा न किञ्चित् क्षेतव्यमस्ति, अधिगतं मया ज्ञानं, प्राप्ता मया विवेकख्यातिरिति प्रत्ययान्तरपरिहारेण तस्यामवस्थायाम् ईदृश्येव प्रज्ञा जायते । ईदृशी प्रज्ञा कार्य्यविषयं निर्मलं ज्ञानं, कार्य्यविमुक्तिरित्युच्यते ।

चित्तविमुक्तिस्त्रिधा—चरितार्था मे बुद्धिः, गुणा हृताधिकारा गिरिशिखरनिपतिता इव ग्रावाणो न पुनः स्थितिं यास्यन्ति स्वकारणे, प्रविलयाभिमुखाना गुणाना मोहाभिधानमूलकारणाभावाद् निष्प्रयोजनत्वाच्चामीषा कुतः प्ररोहो भवेत् ? [2]स्वरूपीभूतश्च मे समाधिः, तस्मिन् सति स्वरूपप्रतिष्ठोऽहमिति । ईदृशी त्रिप्रकारा चित्तविमुक्तिः । तदेवमीदृश्या सप्तविधप्रान्तभूमिप्रज्ञायामुपजातायां पुरुषः केवल इत्युच्यते ॥ २७ ॥

उत्पन्नविवेकज्ञानस्य=उत्पन्न हुये विवेक ज्ञान वाले, दृश्य द्रष्टा भेदज्ञान वाले । तस्य = उस साधक पुरुष की । ज्ञातव्यविवेकरूपा = जानने योग्य विवेक रूपी । सकलसालम्बनसमाधिपर्य्यन्ते = समस्त आलम्बन-सहित समाधि की सिद्धि तक । प्रान्तभूमौ = प्रान्तभूमि में अथवा उत्कृष्टतम अवस्था वाली । प्रज्ञा = बुद्धि । सप्तप्रकारा =सात प्रकार की । भवन्ति=होती है । इत्यर्थ =यह अभिप्राय है । विवेकख्याति उत्पन्न होने से उत्कृष्ट अवस्था वाली प्रज्ञा सात प्रकार की होती है । कोई भी विषय इसके लिये ज्ञातव्य नहीं रहते । अतः यही प्रान्तभूमिप्रज्ञा है, यही योगी की जीवन्मुक्त दशा है । तत्र = उन सात भेदों में । कार्यविमुक्तिरूपा =कार्य्यविमुक्तिरूप प्रज्ञा । चतुः प्रकारा =चार प्रकार की होती है । ज्ञेय= जानने योग्य समस्त विषय । मया = मेरे द्वारा । ज्ञातं =जान लिये गये । किञ्चित् = कुछ । ज्ञातव्य = जानने के लिए । न = नहीं । अस्ति = शेष है । मे = हमारे । क्लेशाः = अविद्याऽस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश । क्षीणा =क्षीण, नष्ट हो गये हैं । किञ्चित् = कुछ । क्षेतव्य = क्षीण करने

१ सकलालम्बनसमाधिभूमिपर्यन्त (पा०) ।

२ स्वरूपीभूतश्च (पा०) ।

के लिए। न = नहीं। अस्ति = शेष है। मया = मेरे द्वारा। ज्ञान = ज्ञान। अधिगतं = प्राप्तकर लिया गया। मया = मेरे द्वारा। विवेकख्याति = प्रकृतिपुरुष भेदज्ञान। प्राप्ता = प्राप्त कर लिया गया। इति = इस रूप से। प्रत्यन्तरपरिहारेण = दूसरे विषयों के परिहार, निराकरण, अभाव के द्वारा। तस्या = उस। अवस्थाया = अवस्था में। ईदृशी = इस प्रकार की, कार्य विमुक्तिरूप चार प्रकार की। एव = ही। प्रज्ञा = बुद्धि। जायते = उत्पन्न होती है। ईदृशी = इस प्रकार की, कार्य विमुक्ति रूप चार प्रकार की। प्रज्ञा = प्रज्ञा। कार्य्यविषय = कार्य विषय सम्बन्धी। निर्मल = विमल। ज्ञान = ज्ञान। कार्य्यविमुक्ति = कार्यविमुक्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। चित्तविमुक्ति = चित्त विमुक्ति नामक प्रज्ञा। त्रिधा = तीन प्रकार की होती है। मे = मेरी। बुद्धि = बुद्धि। चरितार्था = पुरुष के प्रयोजन का सम्पन्न कर चुकी है। गुणा = गुण। हृताधिकारा = अधिकार, फल प्रदान करने की शक्ति से रहित हो गये हैं। गिरिशिखरनिपतिता = पर्वत की चोटी से गिरे हुये। ग्रावाणो = पाषाण की। इव = तरह। पुन स्थिति = अपनी पूर्व स्थिति को। न = नहीं। यास्यन्ति = प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार। मोहाभिधानमूलकारणाभावात् = अविद्या नामक मूल कारण का अभाव हो जाने से। स्वकारणे = अपने कारण, प्रकृति में। प्रविलयाभिमुखाना = लय की ओर उन्मुख हुये, विलय को प्राप्त होते हुये। गुणाना = गुणों का। निष्प्रयोजनत्वात् = कुछ भी प्रयोजन शेष न रहने से। अमीषा = कृतार्थ हुये इन गुणों का। कुतः = कैसे। अङ्कुर = अङ्कुर, उद्भव। भवेत् = हो सकता है। च = और। मे = मेरी। समाधि = समाधि। स्वस्थीभूत = स्वस्थरूप को, सिद्धि को प्राप्त कर ली है अर्थात् चित्त की सभी वृत्तियों का सम्यक् निरोध हो चुका है। तस्मिन् सति = उस समस्त वृत्तिनिरोध रूप समाधि की सिद्धि हो जाने पर। अह = मैं। स्वरूपप्रतिष्ठ = अपने केवली, चिन्मात्ररूप से विद्यमान हूँ। इति = इस रूप से। ईदृशी = इस प्रकार की। त्रिप्रकारा = तीन भेद वाली प्रज्ञा। चित्तविमुक्ति = चित्तविमुक्ति प्रज्ञा है। तदेव = इस प्रकार, इसलिए। ईदृश्या = इस प्रकार की। सप्तविधभूमिप्रज्ञाया = सात प्रकार की उत्कृष्ट

अवस्था वाली बुद्धि के। उपजातायां = उत्पन्न होने पर। पुरुष = पुरुष। केवल = केवली, विशुद्ध, चिन्मात्र, प्रकृति के सम्बन्ध से रहित। उच्यते = कहा जाता है॥ २७॥

विवेकख्यातिः संयोगाभावहेतुरित्युक्त, तस्यास्तु उत्पत्तौ किं निमित्तम् इत्याह—

विवेकख्याति = प्रकृतिपुरुषभेदज्ञान। संयोगाभावहेतु = दृश्य द्रष्टा के परस्पर संयोग के अभाव का कारण। इति उक्त = इस रूप में कहा गया। तु = किन्तु। तस्या = उस विवेकख्याति के। उत्पत्तौ = उत्पत्ति में। किं = क्या। निमित्त = कारण है। इति = इस कारण को। आह = कहते हैं—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २८॥

अर्थ—योगाङ्गानुष्ठानात् = यम, नियम इत्यादि अष्टविध योग के अङ्गों का अनुष्ठान, आचरण करने से। अशुद्धिक्षये = चित्तगत सभी दोषों का पञ्चविध क्लेशों का अभाव होने से। आविवेकख्याते = विवेकख्याति, प्रकृति-पुरुष-भेदज्ञान के उदय पर्यन्त। ज्ञानदीप्तिः = ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। योग के अङ्गों का सतत सेवन करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, चित्त का विक्षेप नहीं होता। अविद्या-अस्मिता इत्यादि क्लेशों की निवृत्ति हो जाने से ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है।

वृत्ति—योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि, तेषामनुष्ठानाज् ज्ञानपूर्वकाभ्यासाद् आविवेकख्यातेरशुद्धिक्षये चित्तसत्त्वस्य प्रकाशावरण[1]रूपक्लेशात्मकाशुद्धिक्षये या ज्ञानदीप्तिः, तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्यन्तस्तस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थः ॥ २८॥

योगाङ्गानि = योग के अङ्ग। वक्ष्यमाणानि = आगे वर्णन किये जाने वाले हैं। तेषां = उन योगाङ्गों के। अनुष्ठानात् = अनुष्ठान से अर्थात्। ज्ञानपूर्वकाभ्यासात् = ज्ञानपूर्वक अभ्यास, सतत सेवन करने से। आविवेकख्याते = विवेक ज्ञान के उत्पन्न होने तक। अशुद्धिक्षये = सभी प्रकार की अशुद्धियों का विनाश

१ प्रकाशावरणलक्षणक्लेशरूपाशुद्धिक्षये (पा०)।

हो जाने से अर्थात् । चित्तसत्त्वस्य = सत्त्वगुण बहुल चित्त का । प्रकाशावरणरूप-क्लेशात्मकाशुद्धिक्षये = ज्ञान का आवरण करने वाले अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेश रूपी अशुद्धियों का अभाव हो जाने से । या = जो । ज्ञानदीप्ति = ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है अर्थात् । विवेकख्याति-पर्यन्त = विवेकज्ञान के उदय होने तक । तारतम्येन = क्रमश । सात्त्विक = रजोगुण एवं तमोगुण से अनभिभूत प्रकाशात्मक सत्त्वगुणविशिष्ट । परिणाम = चित्त का परिणाम होता है अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से पञ्चविधक्लेशों का अभाव हो जाता है और दोष रहित विमल चित्त का केवल सात्त्विक परिणाम होता है । इस तरह ज्ञान के आलोक की प्राप्ति होती है । तस्या = उस । ख्याते = विवेकख्याति, प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान का । हेतु = योगाङ्ग के अभ्यास में सात्त्विक परिणाम को प्राप्त होने वाला चित्त कारण है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ २८ ॥

योगाङ्गानामनुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्त, कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह—

योगाङ्गाना = योग के अङ्गों के । अनुष्ठानात् = अनुष्ठान, आचरण से । अशुद्धिक्षय = सभी अशुद्धियों, क्लेशों का अभाव होता है । इति उक्त = यह कहा गया । पुन = फिर । तानि = वे । कानि = कौन-कौन । योगाङ्गानि = योग के अङ्ग हैं । इति = इसलिये । तेषा = उन योगाङ्गों के । उद्देश = नाम को । आह = कहते हैं ।

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

अर्थ —यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नाम वाले योग के । अष्टौ = आठ । अङ्गानि = अङ्ग हैं । योग सिद्धि के यम, नियम, आसन इत्यादि आठ साधन हैं ।

वृत्ति,—इह, कानिचित्, समाधे, साक्षादुपकारकाणि, यथा, धारणादीनि,

कानिचित् प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति, यथा यमादय, तत्र आसनादीनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्व, तद् यथा—सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यम्, एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ २९ ॥

इह = इन आठ अङ्गो में। कानिचित् = कुछ अङ्ग। समाधे = समाधि के। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से। उपकारकाणि = उपकारक, सहायक हैं। यथा = जैसे। धारणादीनि = धारण, ध्यान इत्यादि। कानिचित् = कुछ अङ्ग। प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण = बाधक रूप से विद्यमान हिंसा इत्यादि वितर्कों का भली भाँति विनाश करके। समाधि = समाधि का। उपकुर्वन्ति = उपकार करते हैं, समाधि की सिद्धि में सहायता पहुँचाते हैं। यथा = जैसे। तत्र = उनमें, वितर्कों का विनाश करने वाले, समाधि सिद्धि के *बाह्यसाधनों में। यमादय = यम, नियम इत्यादि। आसनादीना = आसन,* प्राणायाम इत्यादि का। उत्तरोत्तरोपकारकत्व = क्रमश उत्तर काल के अङ्गों का उपकारक, सहायक होना सिद्ध होता है। तद् यथा = जैसे कि। *आसनजये सति = आसन जय हो जाने पर,* आसन का स्थिर एव सुखरूप सिद्ध हो जाने पर ही। प्राणायाम की स्थिरता, सिद्ध होती है। एव = इसी प्रकार से। उत्तरत्रापि = पश्चात् के योग के अङ्गो में भी। योज्य = सयोजना करनी चाहिये अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि से प्रत्याहार तथा प्रत्याहार से ध्यान की सिद्धि होती है ॥ २९ ॥

क्रमेणैषा स्वरूपमाह—

एषा = योग के इन अष्टाङ्गो के। स्वरूप = स्वरूप का। क्रमेण=क्रमश। आह = निरूपण करते हैं।

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमा ॥ ३० ॥

अर्थ—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह नाम वाले पञ्चविध। यमा = यम है। अष्टाङ्गयोग का प्रथम अङ्ग यम पाँच प्रकार का होता है।

वृत्ति—तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा, सा च सर्वानर्थहेतु, तद-

भावोऽहिंसा। हिंसायाः सर्वप्रकारेणैव परिहार्यत्वात् प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः। सत्यं वाङ्मनसोर्यथार्थत्वम्। स्तेयं परस्वापहरणं, तदभावोऽस्तेयम्, ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः[१]। अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः। त एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्दवाच्या योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः ॥ ३० ॥

तत्र = उन पञ्चविध यमों में। प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारः = शरीर से प्राण को वियुक्त, पृथक् करने के उद्देश्य से किया गया कार्य, चेष्टा। हिंसा = हिंसा है। च = और। सा = वही हिंसा। सर्वानर्थहेतुः = सभी अनर्थों का मूल कारण है। तद् अभाव = उसी हिंसा का अभाव। अहिंसा = अहिंसा है। सर्वप्रकारेण = सभी प्रकार से। एव = ही। हिंसायाः = हिंसा का। परिहार्यत्वात् = परित्याग के योग्य, हिंसा के त्याज्य होने के कारण। प्रथमं = सबसे पहले। तद् अभावरूपायाः = उस हिंसा के अभावरूपी। अहिंसायाः = अहिंसा का। निर्देशः = उल्लेख किया गया। वाङ्मनसोः = वाणी तथा मन का। यथार्थत्वं = अर्थ के अनुरूप रहना अर्थात् अर्थ का जैसे स्वरूप है उसी के अनुसार वाणी से कहना तथा मन से वैसा मनन करना ही। सत्यं = सत्य है। परस्वापहरणं = दूसरे के धन का अपहरण करना ही। स्तेयं = स्तेय, चोरी है। तद् अभाव = उस स्तेय का अभाव, दूसरे के धन, सत्त्व का अपहरण न करना ही। अस्तेयं = अस्तेय है। उपस्थसंयमः = उपस्थ इन्द्रिय के संयम को। ब्रह्मचर्यं = ब्रह्मचर्य कहते हैं। भोगसाधनानां = उपभोग, आनन्द प्रदान करने वाले साधनों का। अनङ्गीकारः = स्वीकार न करना, ग्रहण न करना ही। अपरिग्रहः = अपरिग्रह है। यमशब्दवाच्याः = यमशब्द के द्वारा कहे जाने वाले। ते = वे। एते = ये, यह। अहिंसादयः = अहिंसा इत्यादि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। पञ्च = पांच। योगाङ्गत्वेन = योग सिद्धि में अङ्ग, सहायक रूप से। निर्दिष्टाः = वर्णन किये गये हैं ॥ ३० ॥

एषां विशेषमाह—

एषां = इन पञ्चविध यमों के। विशेषं = विशेषस्वरूप को। आह = बतलाते हैं।

---

१ नियम (पा०)।

जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

अर्थ—जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना = अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह नामक पाँचो यम, ब्राह्मणत्व आदि जाति, तीर्थ आदि देश, एकादशी-चतुर्दशी इत्यादि काल एवं ब्राह्मण भोजन इत्यादि समय के अनवच्छिन्न अर्थात् इनके प्रतिबन्ध, सीमा से रहित। सार्वभौमा = सभी भूमि, अवस्थाओं में होने वाले। महाव्रत = महाव्रत हो जाते हैं अर्थात् जाति-देश-काल-समय की परिधि से रहित पालन किये जाने पर यम ही महाव्रत हो जाते हैं।

वृत्ति—जातिर्ब्राह्मणत्वादि, देशस्तीर्थादि, कालश्चतुर्दश्यादि, समयो ब्राह्मणप्रयोजनादि, एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्ना पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमा सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यते, तद् यथा—ब्राह्मण न हनिष्यामि, तीर्थे न कञ्चन हनिष्यामि, चतुर्दश्या न हनिष्यामि, देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामि इत्येव चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण किञ्चित् क्वचित् कदाचित् कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्ना। एवं सत्यादिषु यथायोग योज्यम्।

इत्थमनियतीकृता सामान्येनैव प्रवृत्ता महाव्रतमित्युच्यते, न पुन[1] परकीय-परिच्छिन्नावधारणम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणत्वादि = ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व इत्यादि। जाति = जाति है। तीर्थादि = तीर्थ इत्यादि स्थान। देश = देश है। चतुर्दश्यादि = चतुर्दशी, एकादशी इत्यादि। काल = काल है। ब्राह्मणप्रयोजनादि = ब्राह्मण प्रयोजन इत्यादि। समय. = समय है। एतै = इन। चतुर्भि = जाति-देश-काल-समय चारों से। अनवच्छिन्ना = न घिरे हुए, न रोके गये। पूर्वोक्ता = पहले वर्णन किये गये। अहिंसादय = अहिंसा इत्यादि, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरिग्रह। यमा = यम। सर्वासु = सभी। क्षिप्तादिषु = क्षिप्त इत्यादि, क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त-एकाग्र-निरुद्ध। चित्तभूमिषु = चित्त की भूमियों में। भवा = होने वाले, पालन किये जाने पर। महाव्रत = महाव्रत। इति = इस रूप, नाम से। उच्यते = कहे जाते हैं। तद् यथा = जैसे कि। ब्राह्मण = ब्राह्मण का। न हनिष्यामि =

---

1. न पुन परिच्छिन्नावधारणम् (पा०)।

वध नहीं करूँगा। तीर्थे = तीर्थ स्थान में। कञ्चन = किसी को। न हनिष्यामि नहीं मारूँगा। चतुर्दश्या = चतुर्दशी तिथिकाल में। न हनिष्यामि = किसी का वध नहीं करूँगा। देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण = देव तथा ब्राह्मण के उद्देश्य के बिना देव तथा ब्राह्मण के प्रयोजन के अतिरिक्त अर्थात् इनसे भिन्न प्रयोजन में। कमपि = किसी भी जीव को। न हनिष्यामि = हत्या नहीं करूँगा। इत्येव = इस प्रकार। चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण = चार प्रकार के बाधकों के बिना, इन चार प्रकार के विधान रूप बाधाओं सीमाओं के अभाव में। किञ्चित् = किसी प्राणी को। क्वचित् = किसी भी स्थान पर। कदाचित् = किसी भी काल में। कस्मिंश्चित् = किसी। अर्थे = प्रयोजन के लिए। न हनिष्यामि = वध नहीं करूँगा। इति = इस रूप से, यही। अनवच्छिन्ना = जाति-देश-काल-समय की सीमा से रहित, निस्सीम अहिंसा का पालन है। अतएव यह अहिंसा महाव्रत है। एवं = इसी प्रकार। सत्यादिषु = सत्य इत्यादि में अर्थात् सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह में। यथायोग = सम्बन्ध के अनुसार। योज्यं = संयोजना, सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। इत्थं = इस प्रकार से। अनियतीकृता = बिना निश्चय किए गए, सीमा से न बँधे हुए, नियन्त्रित न किये गए। सामान्येन = सामान्य, साधारण, स्वाभाविक रूप से। एव = ही। प्रवृत्ता = प्रवृत्त हुये, पालन किये गये, अहिंसा इत्यादि यम ही। महाव्रतं = महाव्रत। इति = इस रूप, नाम से। उच्यते = कहे जाते हैं। पुनः = फिर। न परकीयपरिच्छिन्नावधारण = दूसरी आवरण सीमा को न ग्रहण करना ही, इसरूप से पालन किए गये अहिंसा इत्यादि यम की ही संज्ञा महाव्रत है ॥३१॥

नियमानाह—

नियमान् = योग के द्वितीय अङ्ग नियम को। आह = कहते हैं।

शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

अर्थ —शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि = शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान ये पाँच। नियमाः = नियम हैं। योग का द्वितीय अङ्ग नियम, शौचसन्तोष इत्यादि रूप से पाँच प्रकार का होता है।

वृत्ति—शौच द्विविध—बाह्यमाभ्यन्तरञ्च, बाह्यं मृज्जलादिभि कायादिप्रक्षालनम्, आभ्यन्तर मैत्र्यादिभिश्चित्तमलाना प्रक्षालनम्। सन्तोषस्तुष्टि। शेषा प्रागेव (२।१) कृतव्याख्याना। एते शौचादयो नियमशब्दवाच्या ॥ ३२ ॥

शौच = शौच, पवित्रता। द्विविध = दो प्रकार की होती है। बाह्य = बाहरी पवित्रता। च = और। आभ्यन्तर = आन्तरिक शौच, अन्तःकरण की पवित्रता। मृज्जलादिभि = मिट्टी, जल इत्यादि से। कायादिप्रक्षालन = शरीर इत्यादि के अङ्गों का धोना, स्वच्छ करना। बाह्य = बाहरी स्वच्छता, पवित्रता है। मैत्रादिभि = मैत्री इत्यादि अर्थात् मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा के द्वारा। चित्तमलाना = चित्त में रहने वाले राग-द्वेष, क्रोध-द्रोह-ईर्ष्या-असूया-मद-मोह-मत्सर-लोभ इत्यादि मलों, कलषों, अशुद्धियों का। प्रक्षालन = स्वच्छ, निराकरण करना ही। आभ्यन्तरं = आन्तरिक स्वच्छता, पवित्रता है। तुष्टि = तुष्टि ही। सन्तोष = सन्तोष है। अर्थात् स्वकर्तव्य का पालन करते हुये, प्रबन्ध के अनुसार प्राप्त फल से सन्तुष्ट हो जाना, किसी प्रकार की तृष्णा का न होना ही सन्तोष है। शेषा = शेष नियम के तीन प्रकार तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान। प्रागेव = पहले ही (सूत्र २।१ में)। कृतव्याख्याना = किये गये व्याख्यान, वर्णन वाले हैं। एते=ये। शौचादय = शौच इत्यादि, शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधान पाँचों ही। नियमशब्दवाच्या = नियम शब्द के द्वारा कहे जाने योग्य हैं। नियम नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ३२ ॥

कथमेषा योगाङ्गत्वमित्याह—

कथ = किस प्रकार से। एषा = इन शौच इत्यादि पाँचों का योगाङ्गत्व = योग की सिद्धि में सहायकरूपता है। इत्याह = इसी साहाय्य को कहते हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—वितर्कबाधने = यम, नियमों के पालन करने में हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य, परिग्रह इत्यादि वितर्कों से बाधा उपस्थित होने पर। प्रतिपक्षभावन = बराबर प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए अर्थात् उन्हीं वितर्कों में

दोषदर्शन करना चाहिए। वितर्कों से बाधित होने पर उन्हीं में दोषों की भावना का चिन्तन करना चाहिए।

वृत्ति—वितर्क्यन्त इति वितर्का योगपरिपन्थिनो हिंसादय, तेषा प्रतिपक्षभावने सति यदा बाधा भवति, तदा योग सुकरो भवतीति भवत्येव यम-नियमयोर्योगाङ्गत्वम् ॥ ३३ ॥

वितर्क्यन्ते = जिनके द्वारा विपरीत, प्रतिकूल तर्क, कल्पनाएँ की जाती हैं। इति वितर्का = उनको वितर्क कहते हैं। योगपरिपन्थिन = योग की सिद्धि में प्रतिबन्धक, बाधक स्वरूप। हिंसादय = हिंसा इत्यादि, हिंसा-असत्य-स्तेय-अब्रह्मचर्य-परिग्रह हैं। तेषा = उन वितर्कों की। प्रतिपक्षभावने सति = प्रतिकूल-भावना करने पर, दोषदर्शन के विचार करते रहने पर। यदा = जब। बाधा = वितर्कों की बाधा, निराकरण, निवृत्ति। भवति = हो जाती है। तदा = तब। योग = योग की सिद्धि। सुकर = सरल। भवति = हो जाती है। इति = इसलिए। यमनियमयो = यम और नियम का। योगाङ्गत्व योग की सिद्धि में अङ्ग, साधन रूप। भवत्येव=होता ही है। योग के अङ्ग के रूप में यमनियमों की सिद्धि होती ही है ॥ ३३ ॥

इदानी वितर्काणा स्वरूप भेदप्रकार फलञ्च क्रमेणाह—

इदानी = अब। वितर्काणा = वितर्कों के। स्वरूप = स्वरूप। भेदप्रकार = भेदप्रकार। च = और। फल = फल को। क्रमेण = क्रमश। आह = कहते हैं, वर्णन करते हैं।

वितर्का हिंसादय कृत-कारितानुमोदिता लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वका मृदु-मध्याधिमात्रा दुःखाऽज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष-भावनम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—हिंसादय = हिंसा इत्यादि हिंसा-असत्य-स्तेय-अब्रह्मचर्य-परिग्रह पञ्च। वितर्का = वितर्क हैं। कृतकारितानुमोदिता = वे वितर्क तीन प्रकार

के हैं। १—कृत—स्वयं किए गए। २—कारित—प्रेरणा देकर दूसरों से कराये गए। ३—अनुमोदिता = दूसरों के हिंसा इत्यादि वितर्कों का अनुमोदन करना, अपनी अनुमति से समर्थन करना ही अनुमोदित वितर्क है। लोभक्रोध-मोहपूर्वका = ये वितर्क लोभ-क्रोध-मोहपूर्वक हैं, लोभजन्य, क्रोधजन्य तथा मोहजन्य हैं। लोभ क्रोध तथा मोह से उत्पन्न होने वाले ये वितर्क हैं। मृदुमध्याधिमात्रा = मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद, प्रकार वाले ये वितर्क हैं। दुःखाज्ञानानन्तफला = ये वितर्क अनन्त दुःख एवं अनन्त अज्ञान रूप फल प्रदान करने वाले हैं। इति = इस प्रकार के विचार। प्रतिपक्षभावन = वितर्कों की प्रतिकूल भावना है, उनमें विद्यमान दोषों का दर्शन चिन्तन है अर्थात् ये अहिंसा इत्यादि वितर्क सदैव दुःख एवं अज्ञान ही प्रदान करते हैं, कभी भी इनसे सुख तथा ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। यही विचार वितर्कों की प्रतिकूल भावना है।

वृत्ति—एते पूर्वोक्ता हिंसादयः प्रथमं त्रिधा भिद्यन्ते, कृत-कारितानुमोदनभेदेन, तत्र स्वयं निष्पादिता कृता, 'कुरु कुरु' इति प्रयोजकव्यापारेण समुत्पादिता कारिता, अन्येन क्रियमाणा साध्वङ्गीकृता अनुमोदिता। एतच्च त्रैविध्यं परस्परं व्यामोहनिराकरणायावधारणायोच्यते, अन्यथा मन्दमतिरेवं मन्येत—मया स्वयं न कृतेति नास्ति मे दोषः। एतेषां कारणप्रतिपादनाय लोभ-क्रोध-मोहपूर्वका इति।

यद्यपि लोभः प्रथमं निर्दिष्टः,[1] तथाऽपि सर्वक्लेशानां मोहस्य अनात्मनि आत्माभिमानलक्षणस्य निदानत्वात्, तस्मिन् सति स्व-परविभागपूर्वकत्वेन लोभ-क्रोधादीनामुद्भवाद् मूलत्वमवसेयं, मोहपूर्विका दोषजातिरित्यर्थः। लोभस्तृष्णा, क्रोधः कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः प्रज्वलनात्मकश्चित्तधर्मः।

प्रत्येकं कृतादिभेदेन त्रिप्रकारा अपि हिंसादयो मोहादिकारणत्वेन त्रिधा भिद्यन्ते। एषामेव पुनरवस्थाभेदेन त्रैविध्यमाह, मृदु-मध्याधिमात्रा। मृदवो मन्दाः, न तीव्रा नापि मन्दा मध्याः, अधिमात्रास्तीव्राः। पाश्चात्त्या नवभेदाः, *इत्थं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भवति। मृद्वादीनामपि प्रत्येकं मृदु-मध्याधिमात्र-*

---

१ लोभक्रोधौ प्रथमं निर्दिष्टौ (पा०)

भेदात् त्रैविध्य सम्भवति, तद् यथायोग योज्यम् । तद् यथा—मृदुमृदु मृदुमध्य, मृदुतीव्र इति ।

एषा फलमाह—दुःखाज्ञानानन्तफला, दुःख प्रतिकूलतयाऽवभासमानो राजसश्चित्तधर्म । अज्ञान मिथ्याज्ञान सशय-विपर्ययरूपम्, ते दुःखाज्ञाने अनन्तमपरिच्छिन्न फल येषा ते तथोक्ता । इत्थ तेषा स्वरूपकारणादिभेदेन ज्ञाताना प्रतिपक्षभावनया योगिना परिहार कर्त्तव्य इत्युपदिष्ट भवति ॥ ३४ ॥

एते = ये । पूर्वोक्ता = पहले निरूपण किये गये । हिंसादय = हिंसा इत्यादि पञ्च वितर्क । प्रथम = सबसे पहले । कृतकारितानुमोदितभेदेन = कृत, कारित तथा अनुमोदित भेद, प्रकार से । त्रिधा = तीन प्रकार से । भिद्यन्ते = विभक्त होते हैं । तत्र = उन तीन भेदों में । स्वयनिष्पादिता = स्वय, अपनी ही इच्छा से निष्पन्न, पूरे किये वितर्क । कृता = कृत है । 'कुरु कुरु' = करो, करो । इति = इस । प्रयोजकव्यापारेण = प्रेरणा प्रदान करने वाले व्यापार, चेष्टा से । समुत्पादिता = दूसरो द्वारा उत्पन्न करने वाले व्यापार, चेष्टा से । समुत्पादिता = *दूसरो द्वारा उत्पन्न कराये गये हिंसा इत्यादि वितर्क ।* कारिता = कारित है । अन्येन = दूसरे मनुष्य के द्वारा । क्रियमाणा = की गई हिंसा इत्यादि को । साधु = अच्छे है, इस रूप से । अङ्गीकृता = स्वीकार को गई, समर्थन की गई हिंसा इत्यादि । अनुमोदिता = अनुमोदित वितर्क है । च = और । एतत् = यह । त्रैविध्य = वितर्कों के तीन प्रकार के भेद । परस्पर = परस्पर । व्यामोहनिराकरणावधारणाय = मोह, भ्रम, अज्ञान के निवारण, निवृत्ति के ज्ञान के लिये । उच्यते = कहे जाते हैं अर्थात् वितर्कों के स्वरूप के सम्बन्ध में भ्रम, सन्देह दूर करने के लिए ही तीन भेद कहे जाते हैं । अन्यथा = नही तो । मन्दमति = अज्ञानी मनुष्य । एव = इस प्रकार । मन्येत = मान लेगा कि । मया = मेरे द्वारा । तु = तो । इय = यह हिंसा । न = नही । कृता = की गई । इति = इसलिए । मे = मेरा । दोष = दोष, अपराध, पाप, इस हिंसा में । न = नही । अस्ति = है । एतेषा = इन वितर्कों के । कारणप्रतिपादनाय = कारण का प्रतिपादन करने के लिए, इनकी उत्पत्ति बतलाने के लिये । लोभक्रोधमोहपूर्वका इति = सूत्र में लोभक्रोध-मोहपूर्वक कहा गया है अर्थात् लोभ, क्रोध, मोह को

इनकी उत्पत्ति का कारण कहा गया है। यद्यपि = यद्यपि। लोभ = लोभ का। प्रथम = वितर्क की उत्पत्ति में कारण रूप मे पहले। निर्दिष्ट = उल्लेख किया गया है। तथापि = फिर भी। अनात्मनि = आत्मा से भिन्न वस्तु में। आत्माभिमानलक्षणस्य = आत्मा का अभिमान करने वाले। सर्वक्लेशाना = अविद्या, अस्मिता इत्यादि पञ्चविध क्लेशो का। मोहस्य = मोह का, अविद्या का। निदानत्वात् = कारण के रूप में होने से। तस्मिन् सति = उस मोह की स्थिति बनी रहने पर। स्वपरविभागपूर्वकत्वेन = स्व एव पर के विभाग पूर्वक लोभक्रोधादीना = लोभ, क्रोध इत्यादि का। उद्भवाद् = मोह से उत्पन्न होने के कारण। मूलत्वं = मोह को ही लोभ, क्रोध का मूल कारण के रूप में। अवसेय = निर्णय करना चाहिये। दोपजाति = सभी प्रकार के दोष। मोहपूर्विका = मोहपूर्वक, मोह से उत्पन्न होने वाले हैं। इत्यर्थ = यह अभिप्राय है। लोभ = लोभ। तृष्णा = तृष्णा है, तृष्णा को ही लोभ कहते हैं। कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलक = कर्त्तव्य एव अकर्त्तव्य में विवेकबुद्धि, भेदज्ञान का नाश करने वाला। प्रज्वलनात्मक = दाहात्मक, जलाने वाला, सतप्त करने वाला। क्रोध = क्रोध। चित्तधर्म = चित्त का धर्म है। कृतादिभेदेन = कृत इत्यादि भेद से अर्थात् कृत, कारित, अनुमोदित भेद से। त्रिप्रकारा = तीन प्रकार वाले। हिंसादय = हिंसा, असत्य इत्यादि पञ्च वितर्क। अपि = भी। प्रत्येक = प्रत्येक। मोहादिकारणत्वेन = लोभ-क्रोध-मोह से उत्पन्न होने के कारण। पुन। त्रिधा = तीन प्रकार से। भिद्यन्ते = विभक्त हो जाते हैं अर्थात् कृत-कारित-अनुमोदित तीन प्रकार के वितर्क लोभ-क्रोध-मोह से उत्पन्न होने के कारण पुन तीन प्रकार के हो जाते हैं। इस प्रकार इनके ९ भेद होते हैं। १ लोभकृतवितर्क, २ क्रोधकृतवितर्क, ३. मोहकृतवितर्क। ४. लोभकारितवितर्क ५ क्रोधकारितवितर्क, ६ मोहकारितवितर्क, ७ लोभानुमोदित वितर्क। ८ क्रोधानुमोदितवितर्क, ९ मोहानुमोदितवितर्क। एषामेव = इन नवविध वितर्कों का ही। पुन = फिर। अवस्थाभेदेन = अवस्था, मात्रा के भेद से। मृदुमध्याधिमात्रा = मृदु, मध्य, अधिमात्र (तीव्र) रूप से। त्रैविध्य = तीन प्रकार। आह = बतलाते हैं। मृदव = मृदु अवस्था वाले वितर्क। मन्दा = मन्द होते हैं। मध्या = मध्य

अवस्था वाले हिंसा इत्यादि वितर्क। न तीव्रा = तीव्र नहीं होते। नापि मन्दा = और मन्द भी नहीं होते। अधिमात्रा = अधिमात्र अवस्था वाले वितर्क। तीव्रा = तीव्र होते हैं। पाश्चात्त्या = पूर्व के बतलाये गये। नवभेदा = ९ भेद वाले वितर्क। इत्थ = इस प्रकार से अर्थात् मृदु-मध्य-अधिमात्र अवस्था भेद से। त्रैविध्ये सति = तीन प्रकार होने से। सप्तविंशति = सत्ताइस प्रकार के। भवन्ति = हो जाते हैं। मृदु आदीना = मृदु-मध्य-अधिमात्र भेद से तीन प्रकार की। (२७ प्रकार के) वितर्कों का। अपि = पुन, भी। मृदुमध्याधिमात्रभेदात् = मृदु-मध्य अधिमात्र भेद से। प्रत्येक = प्रत्येक का। त्रैविध्य = तीन भेद। सम्भवति = सम्भव है। तद्=वह। यथायोग = सम्बन्ध के अनुसार। योज्य = सयोजना करनी चाहिये, जोडना चाहिये। तद् यथा = वह इस प्रकार से, जैसे। मृदुमृदु = मृदुमृदुवितर्क। मृदुमध्य = मृदुमध्यवितर्क। मृदुतीव्र = मृदुतीव्रवितर्क अथवा मृदु अधिमात्र वितर्क। इति = इस रूप से सम्बन्धित करना चाहिये। एषा = इन वितर्कों के। फल = फल, परिणाम को। आह = कहते हैं। दु खाज्ञानानन्तफला = ये वितर्क अनन्त दु ख तथा अनन्त अज्ञान रूप फल को देने वाले होते हैं। दुख = दु ख। प्रतिकूलतया = प्रतिकूल रूप, अनिष्ट रूप, असद्वेदनीय रूप से। अवभासमान = प्रतीत होने वाला, अनुभव किया जाने वाला। राजस = रजोगुण सम्बन्धी। चित्तधर्म = चित्त का धर्म है। सशयविपर्ययरूप = सशय तथा विपर्यय स्वरूप वाला, सन्देह तथा विपरीत स्वरूप वाला। मिथ्याज्ञान = मिथ्या ज्ञान ही। अज्ञान = अज्ञान है। दु खाज्ञाने = दु ख तथा अज्ञान। ते = वे दोनो। अनन्त = अनन्त अर्थात्। अपरिच्छिन्न = अपरिच्छिन्न, अपरिमित, असीमित। फल = फल, परिणाम है। येषा = जिन वितर्कों के। ते = वे वितर्क। तथोक्ता = उस प्रकार के अर्थात् सूत्र में "दु खाज्ञानानन्तफला" असीम दु ख और अज्ञान रूप फल को प्रदान करने वाले बतलाये गये हैं। इत्थ = इस प्रकार। स्वरूपकारणादिभेदेन = स्वरूप, प्रकार, उत्पत्ति के कारण, अवस्था भेद, फल इत्यादि के भेद से। ज्ञाताना = जाने गये, अच्छी प्रकार स्वरूपत ग्रहण किये गये। तेषा = उन हिंसा इत्यादि पञ्च वितर्कों का। प्रतिपक्षभावनया = प्रतिकूल भावना द्वारा, दोषदर्शन द्वारा। परिहार = वितर्कों का परिहार, निराकरण, निवृत्ति।

कर्त्तव्य = करना चाहिये। इति = इसलिये। उपदिष्ट भवति = इन वितर्कों का सविस्तार उपदेश, वर्णन किया गया है ॥ ३४ ॥

एषाम् अभ्यासवशात् प्रकर्षमागच्छताम् अनुनिष्पादिन्य सिद्धयो यथा भवन्ति तथा क्रमेण प्रतिपादयितुमाह—

प्रकर्ष = उत्कर्ष को। आगच्छता = प्राप्त होने हुये। एषा = इनके। अभ्यासवशात् = अभ्यास करने से, साधना के बल से। अनुनिष्पादिन्यः = वितर्कों के निराकरण के पश्चात् उत्पन्न होने वाली। सिद्धय = सिद्धियाँ। यथा = जिस प्रकार, जैसे। भवन्ति = प्राप्त हो जाती हैं। तथा = उसी प्रकार, वैसे ही। क्रमेण = क्रमशः। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिये। आह = कहते हैं। अहिंसा

अहिंसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग ॥ ३५ ॥

अर्थ—अहिंसाप्रतिष्ठाया = योगी में अहिंसा की दृढ स्थिति हो जाने पर। तत्सन्निधौ = उस योगी के समीप। वैरत्याग = परस्पर सभी प्राणी अपनी जन्म-जात शत्रुता का परित्याग कर देते हैं अर्थात् जाति, देश, काल, समय की सीमा से ऊपर उठकर अहिंसा का पालन करने वाले योगी में जब यह अहिंसा की भावना दृढ स्थिति को प्राप्त कर लेती है, तब उस योगी के समीप सहज, स्वाभाविक विरोधी अहिनकुल, गज-सिंह इत्यादि जीव वैर, द्वेषभाव को छोडकर मित्रत्व भाव से विचरण करते हैं।

वृत्ति—तस्य अहिंसा भावयत, सन्निधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीना वैरत्यागो निर्मत्सरतयावस्थान भवति, हिंस्रस्वभावा अपि हिंसा त्यजन्तीत्यर्थ[1] ॥ ३५ ॥

अहिंसा = अहिंसा को। भावयत = भावना, पालन करने वाले। तस्य = उस योगी के। सन्निधौ = समीप। अहिनकुलादीना = अहिनकुल इत्यादि। सहजविरोधिना = सहज स्वभाव से जन्मजात विरोधी जीवो का। अपि = भी वैरभाव का त्याग, शत्रुता का परित्याग अर्थात्। निर्मत्सरतया = द्वेषभाव से

---

[1] हिंस्रा अपि हिंसत्व परित्यजन्तीत्यर्थ (पा०)।

रहित होकर, ईर्ष्याभाव छोड़कर। अवस्थान = स्थिति। भवति = होती है। हिंस्रस्वभावा = हिंसक स्वभाव वाले जीव। अपि = भी। हिंसां = परस्पर हिंसा की भावना को। त्यजन्ति = छोड़ देते हैं। इत्यर्थः = यह अभिप्राय है ॥ ३५ ॥

सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह—

सत्याभ्यासवत = सत्य का सतत सेवन करने वाले योगी को। किं = किस फल की प्राप्ति। भवति = होती है। इत्याह = इसे बतलाते हैं।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—सत्यप्रतिष्ठाया = योगी में सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर। क्रियाफलाश्रयत्व = क्रिया के फल का आश्रय भाव हो जाता है अर्थात् जाति-देश काल-समय से अनवच्छिन्न पालन किए जाते हुए सत्य की सुदृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी में क्रिया से उत्पन्न होने वाले फल का आश्रय होता है। बिना कार्य किये ही फल प्राप्ति की शक्ति उसमें उद्भूत हो जाती है तथा वरदान से दूसरों को अभिमत फल प्रदान करने की शक्ति उसमें आ जाती है।

वृत्ति—क्रियमाणा हि क्रिया यागादिका फल स्वर्गादिक प्रयच्छन्ति[1]। तस्य तु सत्याभ्यासवतो योगिनस्तथा सत्य प्रकृष्यते, यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमप्नोति, तद्वचनाद् यस्य कस्यचित् क्रियामकुर्वतोऽपि क्रिया फल भवतीत्यर्थ ॥ ३६ ॥

क्रियमाणा हि = की गई, सम्पन्न की गई। यागादिका = यज्ञ इत्यादि। क्रिया = क्रियायें, अनुष्ठान। स्वर्गादिक = स्वर्ग इत्यादि। फल = फल को। प्रयच्छन्ति = प्रदान करते हैं। सत्याभ्यासवत = सत्य का ही सदैव अभ्यास, पालन करनेवाले। तस्य = उस। योगिन = योगी का। तु = तो। सत्य = सत्य का पालन। तथा = उस प्रकार का। प्रकृष्यते = उत्कृष्ट, उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यथा = जैसा कि। क्रियाया = कर्मों, अनुष्ठानों के। अकृतया = न करने पर। अपि भी। योगी = योगी। फल = स्व इच्छित

१ यागादिका फल स्वर्गादिक प्रयच्छति (पा०)।

फल को। आप्नोति = प्राप्त कर लेता है। तद् वचनाद् = सत्याभ्यासी उस योगी के वचन, वरदान से। क्रिया = कर्म को। अकुर्वत = न करने वाले। यस्य कस्यचित् = जिस किसी पुरुष को। अपि = भी। क्रियाफल = कर्म करने का फल प्राप्ति। भवति = होती है। इत्यर्थ = यह अभिप्राय है॥ ३६॥

अस्तेयाभ्यासवत फलमाह—

अस्तेयाभ्यासवत = अस्तेय का अभ्यास करने वाले योगी को। फल = प्राप्त होने वाले फल को। आह=कहते हैं।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥ ३७॥

अर्थ—अस्तेयप्रतिष्ठाया = योगी में अस्तेय की दृढ स्थिति हो जाने पर। सर्वरत्नोपस्थान = उनके लिए सभी प्रकार के रत्नों की उपस्थिति, अभिव्यक्ति होती है अर्थात् पृथिवी में निहित, जल के अन्तराल में अन्तर्हित, विप्रकृष्ट देश में विद्यमान तथा व्यवधानयुक्त सभी रत्न उस अस्तेयनिष्ठ योगी को प्राप्त हो जाते हैं।

वृत्ति—अस्तेय यदाभ्यस्यति, तदास्य तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते॥ ३७॥

यदा = जब। अस्तेय=अस्तेय का। अभ्यसति = योगी अभ्यास, सदैव पालन करता है। तदा = तब। तत्प्रकर्षान् = उस अस्तेय अभ्यास की उत्कर्ष अवस्था का दृढ स्थिति प्राप्त करने पर। निरभिलापस्य = अभिलाषा, कामना, इच्छा न रखने वाले। तस्य = उस अस्तेय साधक योगी के लिये। अपि = भी। सर्वत = सभी स्थानों पर। दिव्यानि = दिव्य, अतिरमणीय, अमूल्य। रत्नानि= रत्न। उपतिष्ठन्ते = उपस्थित, व्यक्त, प्राप्त हो जाते हैं॥ ३७॥

ब्रह्मचर्याभ्यासस्य फलमाह—

ब्रह्मचर्याभ्यासस्य = ब्रह्मचर्य के अभ्यास से। फलं = प्राप्त होने वाले फल को। आह = कहते हैं।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ॥ ३८॥

अर्थ—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया = योगी में ब्रह्मचर्य की दृढ स्थिति हो जाने पर। वीर्यलाभ = सभी प्रकार की शक्तियों का लाभ, प्राप्ति होती है।

वृत्ति—य किल ब्रह्मचर्य्यमभ्यस्यति तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशय वीर्य्यं सामर्थ्यमाविर्भवति, वीर्य्यनिरोधे हि ब्रह्मचर्य्यस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमन सु वीर्य्यं प्रकर्षमागच्छति ॥ ३८ ॥

किल = निश्चय रूप से। य' = जो योगी। ब्रह्मचर्य्यं = ब्रह्मचर्य का। अभ्यस्यति = अभ्यास करता है। तस्य = उस योगी के लिए। तत्प्रकर्षात् = उस ब्रह्मचर्य के उत्कर्ष, दृढ अवस्था प्राप्त कर लेने पर। निरतिशय = अतिशय-रहित, अपरिमित, अत्यधिक। वीर्य्यं = वीर्य अर्थात्। सामर्थ्य = सामर्थ्य, शक्ति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है। हि = क्योंकि। वीर्य्यनिरोधे = वीर्य के निरोध, रोकने पर, सयम करते पर। ब्रह्मचर्य्यस्य = ब्रह्मचर्य के। प्रकर्षात् = आधिक्य, प्रबलता से। शरीरेन्द्रियमन सु = शरीर, इन्द्रिय तथा मन में। वीर्य्यं = वीर्य, शक्ति, सामर्थ्य, पराक्रम। प्रकर्ष = उत्कर्ष, प्रबल अवस्था को। आगच्छति = प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्य फलमाह—

अपरिग्रहस्य = अपरिग्रह के अभ्यास से उत्पन्न होने वाले। फल = फल को। आह = कहते हैं।

अपरिग्रहस्थैर्य्ये जन्मकथन्तासम्बोध ॥ ३९ ॥

अर्थ—अपरिग्रहस्थैर्य्ये = योगी में अपरिग्रह की दृढ स्थिति हो जाने पर। जन्मकथन्ता = किस प्रकार का जन्म था। सम्बोध = अच्छी प्रकार से ज्ञान हो जाता है अर्थात् योगी में अपरिग्रह की प्रकृष्ट अवस्था हो जाने पर उसका पूर्व जन्म किस प्रकार का था, किस योनि में जन्म हुआ था, किस प्रकार के कर्मों को किया था तथा भावी जन्म के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। अतीत-वर्तमान-अनागत जन्मों के स्वरूप तथा प्रकार के विषय में जिज्ञासा होने पर उनका भली प्रकार से बोध होता है।

वृत्ति—कथमित्यस्य[1] भाव कथन्ता, जन्मन कथन्ता जन्मकथन्ता, तस्या सम्बोध सम्यग्ज्ञान, जन्मान्तरे कोऽहमासन् कीदृश किंकार्य्यकारीति जिज्ञासाया

१ कथमो भाव (पा०)।

सर्वमेव सम्यग् जानातीत्यर्थ । न केवल भोगसाधनपरिग्रह एव परिग्रह', यावदात्मन शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रह , भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य, तस्मिन् सति रागानुबन्धाद् बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भाव ।

यदा पुन शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते, तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात् सम्यग्[1] ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसम्बोध ॥ ३९ ॥

कथमित्यस्य भाव कथन्ता = कथ इस शब्द का भाव कथन्ता है। जन्मकथन्ता शब्द का अर्थ है, जन्मन कथन्ता = जन्म की प्रकारता । तस्या = उसी जन्म की प्रकारता का। सम्बोध = सम्बोध अर्थात्। सम्यग्ज्ञान = अच्छी प्रकार ज्ञान होता है। यहाँ पर सर्वप्रथम 'जन्मकथन्तासम्बोध' समास का विग्रह किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि पूर्व जन्म किस प्रकार का था, उसी का भली-भाँति ज्ञान होता है। जन्मान्तरे = पूर्व जन्म में। अह = मैं। क कौन। आसम् = था। अर्थात् किस योनि में उत्पन्न हुआ था। कीदृश. = किस प्रकार का था। कि कार्य्यकारी = किस प्रकार के कार्यों को करने वाला था। इति = इस प्रकार की। जिज्ञासाया = जिज्ञासा, जानने की इच्छा करने पर। सर्वमेव = सभी बातों को। सम्यक् = अच्छी प्रकार से। जानाति = जानता है। इत्यर्थ = यह अभिप्राय है। न केवल = यहाँ पर न केवल। भोगसाधनपरिग्रह एव = उपभोग के साधनों का सग्रह ही। परिग्रह = परिग्रह है, परिग्रह कहा जाता है। यावत् = अपितु, जब तक। आत्मन = स्वकीय। शरीरपरिग्रह = शरीर का परिग्रह। अपि = भी। परिग्रह = परिग्रह है। शरीरस्य = शरीर का। भोगसाधनत्वात् = समस्त उपभोगों का साधन होने के कारण। शरीर द्वारा ही सभी पदार्थों का उपभोग सम्पन्न होता है, अत. शरीर भी परिग्रह ही है। तस्मिन् सति = परिग्रह रूप शरीर के विद्यमान रहने पर। रागानुबन्धात् = राग, वासना के अनुबन्धन, आकर्षण के कारण। प्रवृत्तौ = चित्त की वृत्तियों के। बहिर्मुखायामेव = बहिर्मुखी, बाह्य विषयों की ओर गमन करने के कारण। तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भाव = यथार्थ, सम्यक् ज्ञान की

१. रागादित्यागात्मको ज्ञानहेतु (पा०)

उत्पत्ति । न = नहीं होती । यदा = जब । पुन =पुन, फिर । शरीरादिपरिग्रहनैर-पेक्षयेण = शरीर इत्यादि के परिग्रह की अपेक्षा न रखने से । माध्यस्थ्य = मध्यस्थ, उदासीन भाव या । अवलम्बते = वह योगी अवलम्बन करता है, शरीर रक्षा की चिन्ता न करने से यह देह विद्यमान रहे अथवा विनष्ट हो जावे, इस प्रकार अभिलाषा रहित समभावना का ग्रहण जब योगी करता है । तदा = तब । मध्यस्थस्य = उदासीन योगी के लिये । रागादित्यागात्मक =विषयों तथा शरीर के सम्बन्ध में राग, वासना, अभिलाषा इत्यादि भावनाओं का परित्याग कर देने वाला अपरिग्रह । ज्ञानहेतु = ज्ञान की उत्पत्ति में कारण । भवति एव = होता ही है । पूर्वापरजन्मसम्बोध =पूर्व तथा अपर जन्मों का भली प्रकार ज्ञान होता ही है ॥ ३९ ॥

उक्ता यमाना सिद्धय , अथ नियमानामाह—

यमाना = यमों के पालन से प्राप्त होने वाली । सिद्धय =सिद्धियाँ । उक्ता = कही गयी । अथ = अब । नियमाना = नियमों के पालन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों को । आह = कहते हैं ।

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरससर्ग ॥ ४० ॥

अर्थ:—शौचात् = शौच के पालन से, योगी में शौच की दृढ़ स्थिति हो जाने से । स्वाङ्गजुगुप्सा = अपने अङ्गों में घृणा की भावना तथा । परै = दूसरे मनुष्यों के अङ्गों से । अससर्ग = ससर्ग, सयोग का अभाव होता है । शौच की भावना से शरीर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है । अत अपने शरीर के अङ्गों में वैराग्य की भावना तथा अन्य मनुष्यों के साथ ससर्ग की इच्छा नहीं होती ।

वृत्ति —य शौच भावयति, तस्य स्वाङ्गेष्वपि कारणस्वरूपपर्यालोचनद्वारेण जुगुप्सा घृणा समुपजायते, अशुचिरय कायो नात्राग्रह कार्य्य इति, अमुनैव हेतुना परैरन्यैश्च कायवद्भिरससर्ग सम्पर्काभाव , ससर्गपरिवर्जनमित्यर्थ । य किल स्वमेव काय जुगुप्सते तत्तदवद्यदर्शनात्, स कथ परकीयैस्तथाभूतैश्च कायै ससर्ग-मनुभवति ? ॥ ४० ॥

य = जो योगी। शौच = शौच, बाह्य-अन्त पवित्रता को। भावयति = भावना, पालन करता है। तस्य = उस योगी को। कारणस्वरूपपर्य्यालोचनद्वारेण = शरीर के कारण के यथार्थ स्वरूप का सम्यक् दर्शन, ज्ञान हो जाने से। स्वाङ्गेषु = अपने अङ्गो में। अपि = भी। जुगुप्सा = जुगुप्सा अर्थात्। घृणा = घृणा। समुपजायते = उत्पन्न होती है। अय = यह। काय = शरीर, देह। अशुचि = अपवित्र है। अत्र = इस शरीर में। आग्रह = आसक्ति। न = नहीं। कार्य्य = करनी चाहिये। इति = इस प्रकार अपने ही अङ्गो में जुगुप्सा की भावना उत्पन्न होती है। च = और। अमुना एव = इस ही, इसी। हेतुना = कारण से शरीर के स्वरूप ज्ञान से। परै = पर अर्थात्। अन्यैः = अन्य मनुष्यो के। कायवद्भि = शरीरों से। असंसर्ग = असंसर्ग अर्थात्। सम्पर्काभाव = सम्पर्क, संयोग का अभाव होता है। संसर्गपरिवर्जन = संसर्ग, सङ्ग का परित्याग होता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। तत्तद् = शरीर में उन-उन। अवद्यदर्शनात् = दोषो के दर्शन के कारण। य किल = निश्चय ही जो योगी। स्वयमेव = अपने ही। कार्यं = शरीर से। जुगुप्सते = घृणा करता है। च = और। स = वही योगी। तथाभूतै = उसी प्रकार के, उन्ही दोषो से युक्त। परकीयै = दूसरे मनुष्यो के। कायै = शरीरो के साथ। कथ = किस प्रकार से। संसर्ग = संसर्ग सुख का। अनुभवति ? = अनुभव कर सकता है ? अर्थात् इस प्रकार का योगी दूसरे के शरीर के अङ्गों से घृणा ही करेगा, उसके सम्बन्ध में कभी भी सुख का अनुभव नही करेगा ॥ ४० ॥

शौचफलान्तरमाह—

शौचफलान्तर = शौच पालन से प्राप्त होने वाले दूसरे फल को। आह = कहते हैं।

सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१

अर्थ—च = और। सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि = शौच के पालन से, योगी में शौच की दृढ स्थिति हो जाने से बुद्धि की शुद्धता, मन को प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियजय तथा आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता उत्पन्न होती है अर्थात् जलप्रक्षालन से बाह्य तथा मैत्री-

करुणा-मुदिता-उपेक्षा इत्यादि भावनाओं से राग-द्वेष-क्रोध-लोभ-मोह इत्यादि अन्त के कलुष, दोष दूर हो जाते हैं। इस प्रकार शौच के अभ्यास से बुद्धि विमल हो जाती है, चित्त समाहित हो जाता है। इन्द्रियों पर विजय हो जाती है तथा आत्मा के स्वरूप दर्शन की योग्यता आ जाती है।

वृत्ति—भवन्तीति वाक्यशेषः। सत्त्वं प्रकाश-सुखाद्यात्मकं, तस्य शुद्धी रजस्तमोभ्यामनभिभवः। सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः। एकाग्रता नियतविषये चेतसः स्थैर्यम्। इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणाम् आत्मन्यवस्थानम्। आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे, चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम्। शौचाभ्यासवत एव एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति, तथा हि—सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं, सौमनस्यादेकाग्रता, एकाग्रताया इन्द्रियजयः, तस्मादात्मदर्शनयोग्यतेति ॥ ४१ ॥

भवन्ति इति वाक्यशेषः = 'भवन्ति' यह वाक्य शेष है, सूत्र के साथ इसका सम्बन्ध होना चाहिये अर्थात् शौच के अभ्यास से क्रमशः इन फलों की प्राप्ति होती है। सत्त्वं = बुद्धि। प्रकाशसुखाद्यात्मकं = प्रकाश तथा सुख इत्यादि स्वरूप वाली है अथात् 'सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्ट' सत्त्व गुण लघु तथा पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है। अतः सत्त्वगुण विशिष्ट होने के कारण बुद्धि प्रकाशित करने वाली, पदार्थों को ग्रहण करने वाली तथा सुख स्वरूप है। रजस्तमोभ्यां = रजोगुण तथा तमोगुण से। अनभिभवः = अभिभूत न होना ही। तस्य = उस बुद्धि की। शुद्धिः = शुद्धता है। खेदाननुभवेन = खेद का अनुभव, प्रतीति न होने से। मानसी प्रीतिः = मानसिक प्रसन्नता होना ही। सौमनस्यं = सौमनस्य है। नियतविषये = निश्चित विषय में। चेतसः = चित्त की। स्थैर्यं = स्थिरता ही। एकाग्रता = एकाग्रता है। विषयपराङ्मुखाणां = शब्दस्पर्शरसगन्धरूप विषयों से पराङ्मुख, प्रतिकूल, दूर हुई, विषयों का परित्याग करने वाली। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों को। आत्मनि = आत्मा में। अवस्थानं = स्थित होना, प्रतिष्ठित होना ही। इन्द्रियजयः = इन्द्रियजय है। विवेकख्यातिरूपे = प्रकृतिपुरुषभेदज्ञान रूप। आत्मदर्शने = आत्मा के साक्षात्कार में। चित्तस्य = चित्त की। समर्थत्वं = सामर्थ्य होना ही।

योग्यत्व = योग्यता है, योगी में आत्म-साक्षात्कार कीयोग्यता है। शौचाभ्यासवत = शौच का अभ्यास करने वाले योगी को। एव= हो। एते = ये। सत्त्वशुद्धयादय = बुद्धि की शुद्धता इत्यादि। क्रमेण = क्रमश। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं। तथाहि = जैसे की। सत्त्वशुद्धे = बुद्धि की शुद्धता हो जाने पर। सौमनस्य = मन की प्रसन्नता होती है। सौमनस्यात् = मन की प्रसन्नता होने से। एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता होती है। एकाग्रताया = चित्त की एकाग्रता से। इन्द्रियजय = इन्द्रियजय होता है, इन्द्रियाँ वश में हो जाती है। तत्पश्चात् = उस इन्द्रियजय से। आत्मदर्शनयोग्यता = आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता उत्पन्न होती है। इति = इस प्रकार शौच के अभ्यास से इन फलों की प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

सन्तोषाभ्यासस्य[1] फलमाह—

सन्तोषाभ्यासस्य = सन्तोष का पालन करने वाले योगी को प्राप्त होने वाले। फल = फल को। आह = कहते हैं।

सन्तोषादनुत्तम. सुखलाभ ॥ ४२ ॥

अर्थ—सन्तोषात् = सतोष के अभ्यास, पालन से। अनुत्तम = सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ। सुखलाभ = सुख, आनन्द की प्राप्ति होती है।

वृत्ति—सन्तोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तर सुखमाविर्भवति, यस्य बाह्य विषयसुख[2] शताशेनापि न समम् ॥ ४२ ॥

सन्तोषप्रकर्षेण = सन्तोष के उत्कर्ष, प्रबलता, दृढ स्थिति से। योगिन = योगी को। तथाविध = उस प्रकार का। आन्तर = अन्त। सुख = सुख, आनन्द। आविर्भवति = उत्पन्न होता है, अनुभव होता है। तस्य = जिस सुख के। शताशेन = सौवें भाग के। सम = बराबर, समान। बाह्य = बाहरी। विषयसुख = विषयो के उपभोग से प्राप्त होने वाला सुख। न=नही है॥ ४२ ॥

तपस फलमाह—

१. सन्तोषाभ्यासवत (पा०)।
२ बाह्य सुख लेशेनापि (पा०)।

वृत्ति—ईश्वरे यत् प्रणिधान भक्तिविशेषस्तस्मात् समाधेरुक्तलक्षणस्याविर्भावो भवति, यस्मात् स भगवानीश्वर प्रसन्न सन्नन्तरायरूपान् क्लेशान् परिहृत्य समाधि सम्बोधयति ॥ ४५ ॥

ईश्वरे = ईश्वर में। यत = जो। प्रणिधान = प्रणिधान है अर्थात्। भक्तिविशेष = विशेष प्रकार की भक्ति है। तस्मात् = उस भक्ति विशेष वाली। समाधे = समाधि का। आविर्भाव = उदय, उत्पत्ति। भवति = होती है। यस्मात् = क्योंकि। स = वह। भगवान् = समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न। ईश्वर = ईश्वर। प्रसन्न सन् = योगी की भक्ति से प्रसन्न होकर। अन्तरायरूपान् = व्यवधान, विघ्नरूपी। क्लेशान् = अविद्या इत्यादि पञ्चविध क्लेशों का। परिहृत्य = परिहार, दूर करके। समाधि = समाधि का। सम्बोधयति = अच्छी प्रकार से उस योगी के लिये बोध कराता है, उसकी सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध करता है ॥ ४५ ॥

यमनियमानुक्त्वा आसनमाह—

यमनियमान् = यम और नियमों का। उक्त्वा = वर्णन करके। आसन = योग के तृतीय अङ्ग, आसन को। आह = कहते हैं।

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ.—स्थिरसुख = स्थिरभाव से, निश्चल रूप से तथा सुखपूर्वक बैठने को। आसन = आसन कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा स्थिरता तथा सुख की प्राप्ति हो, वह आसन है।

वृत्ति—आस्यतेऽनेनेत्यासन पद्मासन-दण्डासन-स्वस्तिकादि, तद् यदा स्थिर निष्कम्प, सुखमनुद्वेजनीयञ्च भवति तदा योगाङ्गता भजते ॥ ४६ ॥

अनेन = इसके द्वारा। आस्यते = स्थिरभाव से तथा सुखपूर्वक बैठा जाता है। इति = इसलिये। आसन = इसे आसन कहते हैं। यथा। पद्मासनदण्डासनस्वस्तिकादि = पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिकासन इत्यादि। तद् = वह आसन। यदा = जब। स्थिर = स्थिर अर्थात्। निष्कम्प = कम्परहित, निश्चल। च = और। सुख = सुखस्वरूप अर्थात्। अनुद्वेजनीय = पीडा न देने वाला।

भवति = होता है। तदा = तब वह आसन। योगाङ्गता योग के अङ्ग के रूप में, योगसिद्धि में सहायक रूप को। भजते = प्राप्त होता है, निश्चल तथा सुखरूप आसन ही योग की सिद्धि में सहायता प्रदान करता है ॥ ४६ ॥

तस्यैव स्थिर-सुखप्राप्त्यर्थमुपायमाह—

तस्यैव = उसी आसन की। स्थिरसुखप्राप्त्यर्थं = स्थिरता तथा सुख प्राप्ति के लिये। उपाय = उपाय को। आह = बतलाते है।

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्य[1]समापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्या = शारीरिक चेष्टाओ की शिथिलता, न्यूनता तथा अनन्त आकाश में चित्त को समाहित, एकाग्र करने से वह आसन सिद्ध होता है अर्थात् स्थिर तथा सुखस्वरूप होता है। इस अनन्त शब्द के अनन्त आकाश अनन्त परमात्मा, ईश्वर, अनन्त शेषनाग इत्यादि अर्थ किये जाते हैं। आसन की स्थिरता एव सुख रूपता के लिए किसी स्थिर पदार्थ में ध्यान लगाना चाहिये और इस प्रकार भगवान् अनन्त शेषनाग ही सबसे अधिक स्थिर है, जिनके सुस्थिर सहस्रो फणों पर समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है। पर भोजराज ने अनन्त शब्द का अर्थ आकाश ही लिया है।

वृत्ति—तदासन प्रयत्नशैथिल्येन आनन्त्यसमापत्त्या च स्थिर सुख भवतीति सम्बन्ध। यदा-यदा 'आसन बध्नामीति' इच्छा करोति, प्रयत्नशैथिल्येऽपि अक्लेशेनैव तदा तदासन सम्पद्यते, यदा चाकाशादिगते आनन्त्ये चेतस समापत्ति क्रियतेऽवधानेन[2] तादात्म्यमापद्यते, तदा देहाहङ्काराभावान्नासन दु खजनकं भवति। अस्मिश्चासनजये सति समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादय ॥ ४७ ॥

तदा = तब। आसन = आसन। प्रयत्नशैथिल्येन = शारीरगत प्रयत्नो,

---

१. द्र०—इत्र आनन्त्येति भावप्रत्ययान्तपाठ इति भोजदेव " अनन्तसमापत्तिभ्यामिति भावप्रत्ययरहित सूत्रपाठ इति भाष्यसम्प्रदाय (शिवानन्दकृत योगचिन्तामणि, पृ० १५२)।

२ अवधानेन (पा०)।

प्रयासो, चेष्टाओं की शिथिलता, कम करने से। च = और। आनन्त्य-समापत्त्या = अनन्त आकाश में ध्यान लगाने से। स्थिर = स्थिर, निश्चल। सुख = सुखमय पीडा न देने वाला। भवति = होता है। इति सम्बन्ध = यह सम्बन्ध, अभिप्राय है।

यदा यदा = जब-जब। 'आसन बध्नामि' = आसन बाँधता हूँ, लगाता हूँ, अभ्यास करता हूँ। इति = इस रूप से। इच्छा = इच्छा को। करोति = योगी करता है। तदा तदा = तब तब। प्रयत्नशैथिल्येऽपि = शारीरिक चेष्टाओं के शिथिल हो जाने पर भी। अक्लेशेन = बिना क्लेश, पीडा के। एव = ही। आसन = आसन। सम्पद्यते = सिद्ध हो जाता है, स्थिर तथा सुखरूप हो जाता है। च = और। यदा = जिस समय। आकाशादिगते = आकाश इत्यादि सम्बन्धी। आनन्त्ये = अनन्त पदार्थ में। चेतस = चित्त की। समापत्ति = ध्यान, एकाग्रता। क्रियते = की जाती है अर्थात्। अव्यवधानेन = बिना किसी व्यवधान, बाधा के। तादात्म्य = तद्रूपता, तदाकाराकारिता। आपद्यते = प्राप्त हो जाती है। तदा = तब, उस समय। देहाहङ्काराभावात् = कर्तृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि देहगत अहं भाव के अभाव, निराकरण हो जाने से। आसन = आसन। दु खजनकं=दु खदायी, दु ख उत्पन्न करने वाला। न = नही। भवति= होता है। च = और। अस्मिन् = इस। आसनजये सति = आसन की सिद्धि हो जाने पर अर्थात् स्थिर एवं सुखरूप आसन के हो जाने पर। समाध्यन्तराय-भूता = समाधि की सिद्धि में बाधा पहुँचाने वाले। अङ्गमेजयत्वादय = दु ख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व इत्यादि। न = नही। प्रभवन्ति = उत्पन्न होते हैं अर्थात् आसन की सिद्धि हो जाने पर अङ्गों में कम्पन, दु ख, दौर्मनस्य इत्यादि समाधि के विघ्न उपस्थित नही होते हैं ॥ ४७ ॥

तस्यैवानुनिष्पादि[1]फलमाह—

तस्यैव = उसी आसन की सिद्धि के। अनुनिष्पादित = पश्चात् प्राप्त होने वाले। फल = फल को। आह = कहते हैं।

---

१ अनुनिष्पादित (पा०)।

ततो द्वन्द्वानभिघात ॥ ४८ ॥

अर्थ—तत = उस आसन की सिद्धि हो जाने से। द्वन्द्वानभिघात = शीत-ऊष्ण, क्षुत्पिपासा इत्यादि द्वन्द्वों से आघात, पीडा नही होती। स्थिर एव सुखरूप आसन के हो जाने पर योगी को शीत-ऊष्ण आदि द्वन्द पीडित नही करते।

वृत्ति—तस्मिन्नासनजये सति द्वन्द्वै: शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यत इत्यर्थ ॥ ४८ ॥

तस्मिन् = उस स्थिर एव सुखमय। आसनजये सति = आसन की सिद्धि हो जाने पर। शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभि = शीत-ऊष्ण, क्षुधापिपासा इत्यादि। द्वन्द्वै = द्वन्द्वो से। योगी = योगी। न = नही। अभिहन्यते = पीडित होता है। *इत्यर्थ = यह अभिप्राय है। आसनजय से बिना पीडा के द्वन्द्वो को सहन* करने की शक्ति योगी में उत्पन्न हो जाती है तथा द्वन्द्व उसके चित्त को चञ्चल बनाकर योग-सिद्धि में विघ्न उपस्थित नही करते॥ ४८ ॥

आसनजयादनन्तर प्राणायाममाह—

आसनजयात् = आसन की सिद्धि हो जाने के। अनन्तर = पश्चात् अभ्यास किये जाने वाले। प्राणायाम = प्राणायाम को। आह = कहते हैं।

तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेद. प्राणायाम. ॥४९॥

अर्थ—तस्मिन् सति = स्थिर तथा सुखस्वरूप उस आसन की सिद्धि हो जाने पर। श्वासप्रश्वासयो = श्वास, प्राण वायु का शरीर में प्रवेश करना तथा प्रश्वास, प्राण वायु का शरीर से बाहर निकलना, श्वास-प्रश्वास की। गति-विच्छेद = गति, स्वाभाविक गति, आगमन-निर्गमन का रोक देना, धारण करना ही। प्राणायाम = प्राणायाम है। आसन को सिद्धि हो जाने के बाद श्वास एव प्रश्वास रूप प्राणवायु की स्वाभाविक गति का धारण करना ही प्राणायाम है।

वृत्ति.—आसनस्थैर्ये सति तन्निमित्तकप्राणायामलक्षणो योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति। कीदृश? श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षण, श्वास-प्रश्वासो

निरुक्तो (१।३१), तयोस्त्रिधा रेचन-स्तम्भन[1] पूरणद्वारेण बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गते प्रवाहस्य विच्छेदो धारण, प्राणायाम उच्यते ॥ ४९ ॥

आसनस्थैर्ये सति = आसन के स्थिर, निष्कम्प हो जाने पर। तन्निमित्तक-प्राणायामलक्षण = उस आसन की सिद्धि के पश्चात् होने वाला प्राणायाम रूप। *योगाङ्गविशेष = योग का विशेष अङ्ग। अनुष्ठेय = अनुष्ठान, अभ्यास के योग्य। भवति = होता है अर्थात् आसनजय के पश्चात् ही प्राणायाम का अभ्यास* करना चाहिये, इससे पूर्व नहीं। कीदृशः ? = उस प्राणायाम का स्वरूप किस प्रकार का है ? श्वासप्रश्वासयो = श्वास तथा प्रश्वास की। गतिविच्छेदलक्षण = स्वाभाविक गति का निरोधरूप, धारण लक्षण वाला वह प्राणायाम है अर्थात् श्वास तथा प्रश्वास के स्वच्छन्द प्रवाह को रोकना, धारण करना ही प्राणायाम है। श्वासप्रश्वासौ = श्वास तथा प्रश्वास दोनों का। निरुक्तौ १।३१ = प्रथम पाद के ३१ *वें सूत्र में वर्णन किया गया है अर्थात् "प्राणो यद् बाह्य वायुमाचा-*मति स श्वास, यत्कोष्ठ्य वायु नि श्वसिति स प्रश्वास"—बाह्य प्राणवायु का शरीर के भीतर नासिका रन्ध्र से प्रवेश श्वास तथा अन्त प्राण वायु का नासिकारन्ध्र से बाहर जाना ही प्रश्वास है। तयो = उन श्वास-प्रश्वास दोनों को। रेचनस्तम्भनपूरणद्वारेण = रेचक-स्तम्भक-पूरक द्वारा। त्रिधा = तीन प्रकार से। बाह्याभ्यन्तरेषु = बाह्य-नासिकाग्र भाग, आभ्यन्तर-अन्त, भीतर हृदय, नाभि चक्र इत्यादि। स्थानेषु = *शरीर के स्थानों में। गते = गति का अर्थात्।* प्रवाहस्य = प्रवाह, स्वच्छन्द, स्वाभाविक प्रवाह का। विच्छेद = विच्छेद अर्थात्। धारण = धारण करना। प्राणायाम = प्राणायाम। उच्यते = कहा जाता है। शरीर के बाह्य अथवा अन्त स्थानों में श्वास-प्रश्वास रूप प्राण-वायु का धारण करना ही प्राणायाम है ॥ ४९ ॥

तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूप कथयति—

तस्यैव = उसी प्राणायाम के। सुखावगमाय = सुखपूर्वक, सुगमता, सरलता से समझने के लिये। विभज्य = विभाग करके। स्वरूप = स्वरूप को। कथयति = कहते हैं।

---

१ रेचनाक्षेपण (पा०)।

स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिदेशकालसङ्ख्याभिः
परिदृष्टो दीर्घ-सूक्ष्मः ॥ ५०॥

अर्थ—स तु = वह प्राणायाम तो । बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः = बाह्यवृत्ति आभ्यन्तरवृत्ति तथा स्तम्भवृत्ति वाला होता है । जो । देशकालसङ्ख्याभिः—देश—शरीर के नासिकाग्र, हृदयकमल इत्यादि बाह्य-आभ्यन्तर प्रदेश। काल—प्राण-धारण की अवधि तथा। सङ्ख्याभि —सख्या—श्वासप्रश्वास की स्वाभाविक गति की सख्या द्वारा। परिदृष्ट = भली प्रकार देखा जाता हुआ, परीक्षित होता हुआ। दीर्घसूक्ष्म = दीर्घ तथा सूक्ष्म, अधिक अवधि तक तथा हलका होता जाता है।

वृत्तिः—बाह्यवृत्ति श्वासो रेचक, अन्तर्वृत्ति प्रश्वास पूरक, आन्तरस्तम्भवृत्ति[1] कुम्भक, तस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणा अवस्थाप्यन्त इति कुम्भक । त्रिविधोऽय प्राणायाम देशेन कालेन सङ्ख्यया चोपलक्षितो दीर्घ-सूक्ष्मसञ्ज्ञो भवति ।

देशोपलक्षितो यथा नासाद्वादशान्तादि ।[2] कालोपलक्षितो यथा षट्त्रिंशन्मात्रा-दिप्रमाण । सङ्ख्ययोपलक्षितो यथा इयतो वारान् कृत एतावद्भि श्वास-प्रश्वासै प्रथम उद्घातो भवतीति एतज्ज्ञानाय सङ्ख्याग्रहणमुपात्तम् । उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायो शिरस्यभिहननम्[3] ॥ ५० ॥

बाह्यवृत्ति = बाह्य वृत्ति वाला। श्वास = श्वास। रेचक = रेचक कहा जाता है। अन्तर्वृत्ति = आभ्यन्तरवृत्ति वाला। प्रश्वास = प्रश्वास। पूरक = पूरक कहा जाता है। आन्तरस्तम्भवृत्ति = आन्तरस्तम्भवृत्तिवाला। कुम्भक: = कुम्भक कहा जाता है अर्थात् शरीर के बाह्य अथवा आभ्यन्तर, किसी प्रदेश पर प्राण की स्वाभाविक गति का धारण करना स्तम्भवृत्ति है और यही कुम्भक

१. अन्तस्तम्भवृत्ति. (पा०) ।

२ नासादेशान्तादि, नासादेशान्तादौ (पा०) ।

३ द्र०–प्राणापानव्यानोदानसमानाना सकृद् उद्गमन मूर्धानमाहत्य निवृत्ति-श्चोद्घात (मोक्षकाण्डोद्धृतं देवलवचनम्, पृ० १७०) ।

प्राणायाम है। तस्मिन् = उसमें, कुम्भक दशा में। कुम्भे = कुम्भ, घट में। जलमिव = जल के समान। प्राणा = प्राण, वायु। निश्चलतया = स्थिरता पूर्वक। अवस्थाप्यन्ते = स्थापित किये जाते हैं। इति = इस लिये। कुम्भक = इसे कुम्भक कहते हैं। त्रिविध = तीन प्रकार का। अय = यह। प्राणायाम = प्राणायाम। देशेन = देश से। कालेन = काल से। च = और। सङ्ख्यया = सख्या के द्वारा। उपलक्षित = अच्छी प्रकार से देखा गया, परीक्षित किया जाता हुआ। दीर्घसूक्ष्मसञ्ज्ञ = दीर्घ तथा सूक्ष्म रूप का। भवति = होता है। देशोपलक्षित = देश के द्वारा देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। नासाग्रदेशान्तादि=नासिका देश के अग्र भाग में प्राण वायु धारण की गई है। कालोपलक्षित = काल, समय के द्वारा देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। षट्त्रिंशन्मात्रादि-प्रमाण = समय की छत्तीस मात्रा के प्रमाण में प्राण वायु धारण की गई। सङ्ख्यया = सख्या के द्वारा। उपलक्षित = देखा जाता हुआ। यथा = जैसे। इयत = इतनी। वारान् = बार, इतनी सख्या में। एतावद्भिः = इतने। श्वासप्रश्वासै = श्वासप्रश्वासो के द्वारा। कृत = किया गया। प्रथम = पहला। उद्घात' = उद्घात। भवति = होता है। इति = इस प्रकार सख्या के द्वारा परीक्षा की जानी चाहिये। एतज्ज्ञानाय = इसी ज्ञान के लिये, श्वास-प्रश्वास के उद्घात ज्ञान के लिये ही। सङ्ख्याग्रहण = सख्या का ग्रहण, विचार। उपात्त = बतलाया गया है। नाभिमूलात् = नाभिमूल से। प्रेरितस्य = प्रेरित की गई। वायो = प्राणवायु का। शिरसि = शिर में। अभिहनन = अभिघात, सघर्ष करना ही। उद्घातो नाम = उद्घात शब्द का अर्थ है॥ ५०॥

त्रीन् प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह—

त्रीन् = तीन प्रकार के। प्राणायामान् = प्राणायामों को। अभिधाय = कहकर, वर्णन करके। चतुर्थं = चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम को। अभिधातु = कहने के लिये। आह = कहते हैं।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः[1]॥ ५१॥

१. २।५०-५१ सूत्रयोर्व्याख्यानं कृतं शिवानन्देन तत् सर्वथा भोजानुसारीति दृश्यते।

अर्थ—बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी = बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयों का आक्षेप अतिक्रमण, परित्याग करने वाला प्राणायाम। चतुर्थ- = चतुर्थ प्रकार का है।

वृत्ति—प्राणस्य बाह्यो विषयो नाभाद्यादशान्तादि[1] आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादि, तौ द्वौ विषयौ आक्षिप्य पर्य्यालोच्य* य स्तम्भरूपी गतिविच्छेदः स चतुर्थ प्राणायाम। तृतीयस्मात् कुम्भकाद् अयमस्य विशेष—स बाह्याभ्यन्तरविषयौ अपर्य्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत् स्तम्भवृत्त्या[2] निष्पाद्यते, अस्य तु विषयद्वयाक्षेपका[3] निरोध। अयमपि पूर्ववद् देशकालसङ्ख्याभिरुपलक्षितो द्रष्टव्य ॥ ५१ ॥

प्राणस्य = प्राण वायु के। बाह्य = बाहरी। विषय = विषय। नाभादेशान्तादिः = नासिकाग्र इत्यादि देश, स्थान है। आभ्यन्तर- = भीतरी। विषय = विषय। हृदयनाभिचक्रादि = हृदय, नाभिचक्र इत्यादि हैं। तौ = उन। द्वौ = दोनों बाह्य तथा आभ्यन्तर। विषयौ = विषयों को। आक्षिप्य = आक्षेप, परित्याग करके अर्थात्। पर्य्यालोच्य = भली प्रकार सम्यक् रूप से विचार करके। य. = जो। स्तम्भरूपी = स्तम्भन, धारण रूप। गतिविच्छेद = श्वास प्रश्वास प्राणवायु की गति का निरोध है। स = वह। चतुर्थ = चतुर्थ प्रकार का। प्राणयाम = प्राणायाम है। तृतीयस्मात् = तृतीय प्रकार के प्राणायाम। कुम्भकाद् = कुम्भक से। अस्य = इस चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का। अय = यह। विशेष = विशेषता, भेद है। स = वह तृतीय प्रकार का कुम्भक प्राणायाम। बाह्याभ्यन्तरविषयौ = बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयों का। अपर्य्यालोच्य = बिना पर्यालोचन, विचार के। एव = ही। सहसा = एकाएक। तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन = सतप्त, तपे हुए पत्थर पर गिरे हुए जल के समान। युगपत् = एक साथ। स्तम्भवृत्त्या = स्तम्भवृत्ति के द्वारा। निष्पाद्यते = सम्पन्न,

---

१ नाभाग्रदेशान्तादि, नाभाद्यादशान्तादी (पा०)।

२ निष्पद्यते (पा०)।

३ विषयापेक्षको, विषयद्वयापेक्षको (पा०)।

सिद्ध होता है। अस्य = इस चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का। तु = तो। विषयद्वयाक्षेपक = बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके विषयों का आक्षेप, परित्याग रूप। निरोध = निरोध होता है अर्थात दोनो प्रकारके विषयो के परित्याग के बाद प्राणवायु की धारणा होती है। अय = यह चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम। अपि—भी। पूर्ववद् = पूर्वके रेचक-पूरक-कुम्भक के समान। देशकालसङ्ख्याभि = देश, काल तथा सख्याके द्वारा। उपलक्षित = परीक्षित किया जाता हुआ। द्रष्टव्य = दीर्घ तथा सूक्ष्म रूप से देखना चाहिये अर्थात् यह चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम भी देश-काल-सख्याके द्वारा भली प्रकार से देखा जाता हुआ क्रमश दीर्घ सूक्ष्म होता जाता है ॥ ५१ ॥

चतुर्विधस्यास्य फलमाह—

चतुर्विधस्य = चार प्रकार वाले। अस्य = इस प्राणायाम के। फल = फल को। आह = बतलाते हैं अर्थात् चतुर्विध प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फलका निरूपण करते हैं।

तत क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—तत = चतुर्विध इस प्राणायाम के अभ्यास से। प्रकाशावरण = प्रकाश, ज्ञान का आवरण, निरोधक। क्षीयते = क्षीण हो जाता है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान का अवरोध करने वाले ढकने वाले, अविद्या, अस्मिता इत्यादि क्लेशो का क्रमश क्षय होता जाता है और इस प्रकार प्रकृति-पुरुषविवेकख्याति की उपलब्धि होती है।

वृत्ति—तत तस्मात प्राणायामाद् प्रकाशस्य चित्तसत्त्वगतस्य यदावरण क्लेशरूप तत् क्षीयते विनश्यतीत्यर्थ ॥ ५२ ॥

तत तस्मात् = तत का अर्थ है तस्मात् उस। प्राणायामात् = प्राणायाम के अभ्यास से। प्रकाशस्य = प्रकाशका अर्थात्। चित्तसत्त्वगतस्य = सत्त्वगुणविशिष्ट चित्त में रहने वाला। क्लेशरूप = अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष अभिनिवेश नाम वाला क्लेशरूपी। यत् = जो। आवरण = आवरण, अवरोधक, ढकने वाला है। तत् = वह आवरण। क्षीयते = क्षीण होता है अर्थात्। विनश्यति = नष्ट हो जाता है। इत्यर्थ = यह अभिप्राय है। अविद्या ही ज्ञानका आवरण है

और प्राणायामके अभ्यास से आवरण स्वरूप इस अविद्या का क्रमशः विनाश होता जाता है॥ ५२ ॥

फलान्तरमाह—

फलान्तर = प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त होने वाले दूसरे फल को आह = कहते हैं।

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

अर्थः—च = और प्राणायाम के अभ्यास से। धारणासु = धारणाओं में। मनसः = मन की। योग्यता = योग्यता हो जाती है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से किसी भी अभिमत पदार्थ में मन को एकाग्र करने की सामर्थ्य आ जाती है। बिना प्रयास के अनायास ही मन चञ्चलता का परित्याग करके ध्येय पदार्थ में स्थिर हो जाता है।

वृत्तिः—धारणा वक्ष्यमाणलक्षणा, तासु प्राणायामैः क्षीणदोषं मनो यत्र धार्यते तत्र तत् स्थिरीभवति न विक्षेपं भजते ॥ ५३ ॥

वक्ष्यमाणलक्षणा ३।१ = आगे तृतीय पाद के प्रथम सूत्र में स्वरूप निरूपण, वर्णन किये जाने वाली। धारणा = धारणा है। तासु = उन धारणाओं में। प्राणायामैः = प्राणायाम के अभ्यास द्वारा। क्षीणदोषं = क्षीण हुये दोषों वाला, अविद्या इत्यादि मलिनताओं से रहित। मनः = मन। यत्र = जिस पदार्थ में। धार्यते = धारण किया जाता है, स्थिर, एकाग्र किया जाता है। तत्र = उसी पदार्थ में। तत् = वह क्षीण दोषों वाला मन। स्थिरीभवति = स्थिर, एकाग्र हो जाता है। विक्षेपं = विक्षेप को। न = नहीं। भजते = प्राप्त होता है॥ ५३ ॥

प्रत्याहारस्य लक्षणमाह—

प्रत्याहारस्य = प्रत्याहार के। लक्षण = लक्षण, स्वरूप को। आह = कहते हैं। 5) प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

अर्थ—स्वविषयासम्प्रयोगे = अपने विषय के साथ सम्प्रयोग, सम्बन्ध न होने पर। इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों का। चित्तस्वरूपानुकार इव = चित्त स्वरूप के अनुसार सा हो जाना ही। प्रत्याहार =प्रत्याहार है अर्थात् अपने अपने विषयों का परित्याग करने वाली इन्द्रियाँ जो चित्त के स्वरूप सी, तद्रूप सी, हो जाती हैं, वही प्रत्याहार है।

वृत्ति—'इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्' इति प्रत्याहार, स च कथं निष्पद्यत इत्याह—चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां स्वविषयो रूपादि, तेन सम्प्रयोगः तदाभिमुख्येन वर्त्तनं, तदभावस्तदाभिमुख्यं परित्यज्य स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तस्मिन् सति चित्तमात्रानुकारिणीन्द्रियाणि भवन्ति, यतश्चित्तमनुवर्तमानानि मधुकरराजमिव [1]मक्षिकाः सर्वाणीन्द्रियाणि प्रतीयन्ते, अतश्चित्तनिरोधे तानि प्रत्याहृतानि भवन्ति, तेषां तत्स्वरूपानुकारः प्रत्याहार उक्तः ॥ ५४ ॥

इन्द्रियाणि = श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इन्द्रियाँ। विषयेभ्यः =शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध रूप अपने अपने विषयों से। प्रतीप = विपरीत प्रतिकूल, विमुख। आह्रियन्ते = लाई जाती हैं। अस्मिन् = इसमें, इस भावना, व्यापार में। इति = इसलिये। प्रत्याहार = उसे प्रत्याहार कहते हैं। च = और। स = वह प्रत्याहार। कथं = किस प्रकार। निष्पद्यते = निष्पन्न, प्राप्त, सिद्ध होता है। इत्याह = इसी को कहते हैं। चक्षुरादीनां = चक्षु इत्यादि। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों के। स्वविषय =अपने अपने विषय। रूपादि = रूप इत्यादि है। तेन = उस विषय से। सम्प्रयोग = सम्प्रयोग अर्थात्। तदाभिमुख्येन = उस विषय के अभिमुख, ओर, तरफ। वर्त्तनं = व्यवहार, गमन करना है। तद् अभाव = उसका अभाव अर्थात् सम्प्रयोग का अभाव, विलोम असम्प्रयोग है। वह असम्प्रयोग। तद् आभिमुख्य = उन रूप इत्यादि विषयों की ओर गमन को। परित्यज्य = छोड़कर। स्वरूपमात्रे = अपने शुद्ध, केवल स्वरूप में। अवस्थान= अवस्थित, विद्यमान होना है। तस्मिन् सति = विषयों का परित्याग करके अपने स्वरूप में विद्यमान रहने पर। चित्तमात्रानुकारीणि = केवल, शुद्धि, निर्विकार चित्तका अनुगमन करने वाली। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ हो जाती हैं। यत =

---

[1] मधुमक्षिका (पा०)।

जिसने, जिस कारण से, मधुकरराजमिव मक्षिका = रानी मधुमक्षिका का सदैव अनुगमन करने वाली मधुमक्खियों के समान ही। चित्तमनुवर्तमानानि=चित्त का अनुवर्तन, अनुगमन करने वाली। सर्वाणि = सभी। इन्द्रियाणि-इन्द्रियाँ। प्रतीयन्ते = अपने अपने रूप इत्यादि विषयों से प्रतिकूल, विमुख लाई जाती हैं। अत = इसलिये। चित्तनिरोधे = चित्त की वृत्तियों के निरोध हो जाने पर। तानि = वे श्रोत्र-त्वक-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इन्द्रियाँ। प्रत्याहृतानि = शब्द-स्पर्श-रूपरसगन्ध इत्यादि विषयों से प्रतिकूल, विमुख लाई गई, दूर की गई। भवन्ति = होती हैं। तेषां = उन इन्द्रियों का। तत्स्वरूपानुकार = चित्त के स्वरूप के अनुसार हो जाना ही। प्रत्याहार = प्रत्याहार, योग का एक अङ्ग विशेष। उक्त = कहा गया है॥ ५४॥

प्रत्याहारफलमाह—

प्रत्याहारफल = प्रत्याहार के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल को। आह= कहते हैं।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्[1] ॥ ५५ ॥

अर्थ—तत = उस प्रत्याहार के अभ्यास से। इन्द्रियाणां = श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण इत्यादि इन्द्रियों की। परमा = परम, अत्यन्त अधिक, उत्कृष्ट, पूर्णरूप से। वश्यता = वशीकारिता होती है अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वथा उस योगी के वश में हो जाती हैं, उन पर पूर्ण निग्रह हो जाता है।

वृत्ति—अभ्यस्यमाने हि प्रत्याहारे तथा वश्यानि आयत्तानीन्द्रियाणि सम्पद्यन्ते, यथा बाह्यविषयाभिमुखता नीयमानान्यपि न यान्ति इत्यर्थ ॥ ५५ ॥

प्रत्याहारे = प्रत्याहार के। अभ्यस्यमाने हि = अभ्यास किये जाने पर, उसकी दृढ स्थिति हो जाने पर। इन्द्रियाणि = सभी इन्द्रियाँ। तथा = उस प्रकार से, इतना अधिक। वश्यानि = वश में। आयत्तानि = आयत्त, आधीन, निगृहीत। सम्पद्यन्ते = हो जाती हैं। यथा = कि। बाह्यविषयाभिमुखता =

---

[1] २।५४-५५ सूत्रयोर्द्वयोर्व्याख्यानं कृतं शिवानन्देन तत् सर्वथा भोजानुसारीति दृश्यते।

बाह्य विषयों की ओर। नीयमानानि = ले जाये जाने पर। अपि = भी। न = नहीं। यान्ति = जाती हैं। इत्यर्थ = यह अभिप्राय है अर्थात् प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ इतनी अधिक वश में हो जाती हैं कि बाह्य विषयों में ले जाने पर भी नहीं जातीं। वे सर्वथा विषयों से उपरत ही रहती हैं॥ ५५॥

तदेवं प्रथमपादोक्तलक्षणस्यायोगस्याङ्गभूतक्लेशतनूकरणफलं क्रियायोगमभिधाय, क्लेशानामुद्देशं स्वरूपं कारणं क्षेत्रं फलञ्चोक्त्वा, कर्मणामपि भेदं कारणं स्वरूपं फलञ्चाभिधाय, विपाकस्य कारणं स्वरूपञ्चाभिहितम्।

ततस्त्याज्यत्वात् क्लेशादीनां ज्ञानव्यतिरेकेण त्यागस्य अशक्यत्वात् ज्ञानस्य च शास्त्रायत्तत्वात् शास्त्रस्य हेय-हानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन चतुर्व्यूहत्वाद् हेयस्य हानव्यतिरेकेण स्वरूपानिष्पत्तेर्हानसहितं चतुर्व्यूहं स्वस्वकारणसहितमभिधाय, उपादेयकारणभूतायाः विवेकख्यातेः कारणभूतानामन्तरङ्ग-बहिरङ्गभावेन स्थितानां यमादीनां स्वरूपं फलसहितं व्याकृत्य, आसनादीनां धारणापर्यन्तानां परस्परमुपकार्योपकारकभावेनावस्थितानामुद्देशमभिधाय, प्रत्येकं लक्षणकरणपूर्वकं फलमभिहितम्।

तदयं योगो यम-नियमादिभिः प्राप्तबीजभावः, आसन-प्राणायामैरङ्कुरितः, प्रत्याहारेण पुष्पितः, ध्यान-धारणा-समाधिभिः फलिष्यतीति व्याख्यातः साधनपादः।

तदेवं = इस प्रकार। प्रथमपादोक्तयोगस्य = प्रथम समाधिपाद में वर्णन किये गये 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' १।२ योग के। अङ्गभूतक्लेशतनूकरण = अङ्गस्वरूप तथा अविद्यास्मिता २।३ इत्यादि क्लेशों को क्षीण करने वाले। क्रियायोग = क्रियायोग २।१ तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधान का। अभिधाय = कहकर। क्लेशानां = पञ्चविध क्लेशों का। उद्देश = नाम २।३ अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश। स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण। कारण = क्लेशों का कारण। क्षेत्र = क्षेत्र। च = और। फल = फल को। उक्त्वा = २।१२ कहकर के। कर्मणा = कर्मों के। अपि = भी। भेद = प्रकार। कारण = कारण। स्वरूप = लक्षण। च = और। फल = फल को। अभिधाय = २।१४ कहकर।

१ पादोक्तयोगस्य (पा०)।

विपाकस्य = विपाक, कर्मफलका २।१३। कारण = कारण। च = और। स्वरूप = लक्षण। अभिहित = कहा गया। तत = इसलिये। क्लेशादीना = क्लेश इत्यादि के। त्याज्यत्वात् = परित्याग के योग्य होने के कारण। ज्ञानव्यतिरेकेण = ज्ञान के बिना। त्यागस्य = क्लेशो का त्याग। अशक्यत्वात् = सम्भव न होने से। च = और। ज्ञानस्य = ज्ञान का। शास्त्रायत्तत्वात् = शास्त्र के आधीन होने से, शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त होने के कारण। हेयहानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन = त्याज्य, त्यागका कारण, उपाय, उपादेय, ग्राह्य तथा उपादान के कारण का ज्ञान, बोध के कारण। शास्त्रस्य = शास्त्र का। चतुर्व्यूहत्वाद् = चतुर्व्यूह रूप, चतुर्विध होने के कारण। हानव्यतिरेकेण = हान, परित्याग के बिना। हेयस्य = त्याज्य, नाश किये जाने योग्य का। स्वरूपानिष्पत्ते = स्वरूप न सिद्ध होने के कारण। हानसहित = हान के सहित, साथ-साथ। चतुर्व्यूह = चतुर्विध, चारो प्रकारो को। स्वस्वकारणसहित = अपने अपने कारणों के सहित। अभिधाय = कह करके। उपादेयकारणभूताया= उपादेय कारण स्वरूप। विवेकख्याते = विवेकख्याति भेदज्ञान का। कारणभूताना = कारण रूप में विद्यमान। अन्तरङ्गबहिरङ्गभावेन = धारणा-ध्यान-समाधि अन्तरङ्ग तथा यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार बहिरङ्ग रूप से। स्थिताना = विद्यमान। यमादीना = यम-नियम इत्यादि योग के अङ्गो का। फलसहित = फल के साथ। स्वरूप = स्वरूप, लक्षण को अर्थात् विशेष अङ्ग के अभ्यास से किस फल की प्राप्ति होती है, इस रूप से। व्याकृत्य = व्याख्यान करके। आसनादीना = आसन इत्यादि का। धारणपर्य्यन्ताना = धारणापर्य्यन्त। परस्पर = परस्पर। उपकार्योपकारकभावेन = उपकार्य एव उपकारक भाव से। अवस्थिताना = विद्यमान योगाङ्गों को अर्थात् आसन की सिद्धि पर प्राणायाम, प्राणायाम की सिद्धि पर प्रत्याहार एव प्रत्याहार की सिद्धि पर धारणा की सिद्धि होती है। उद्देश = नाम। अभिधाय = कह करके। प्रत्येक = प्रत्येक योग के अङ्ग का। लक्षणकरणपूर्वक = लक्षण-स्वरूप बतलाकर। फल = योगाङ्गो के अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल का। अभिहित = वर्णन किया गया। तत् = वह। अथ = यह। योग = योग। यमनियमादिभि = यम-नियम इत्यादि के द्वारा। प्राप्तबीजभाव = बीजभाव को प्राप्त करके। आसन-

प्राणायामैः = आसन तथा प्राणायाम के द्वारा। अङ्कुरित = अङ्कुरित हुआ। प्रत्याहारेण = प्रत्याहार के द्वारा। पुष्पित = पुष्पित हुआ, पुष्प को धारण किये हुये। ध्यानधारणसमाधिभि = धारणाध्यान समाधि के द्वारा। फलिष्यति = कैवल्य रूप फल को प्रदान करेगा। इति = इस रूप में। साधनपाद = द्वितीय साधनपाद को। व्याख्यात = व्याख्या की गई।

इति धारेश्वर[1] भोजविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां
पातञ्जलवृत्तौ साधनपाद ॥ २ ॥

❀ इति साधनपादः ❀



१ महाराजश्रीभोज (पा०)।

अथ विभूतिपादः

यत्पादपद्मस्मरणादणिमादिविभूतयः ।
भवन्ति भविनामस्तु भूतनाथः स भूतये ॥

तदेवं पूर्वोद्दिष्टं धारणाद्यङ्गत्रयं निर्णेतुं संयमसंज्ञाभिधानपूर्वकं बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय लक्षयितुमुपक्रमते । तत्र धारणायाः स्वरूपमाह—

तदेवं = इस प्रकार से । पूर्वोद्दिष्टं = पहले कहे गये । धारणाद्यङ्गत्रयं = धारणा इत्यादि, धारणा-ध्यान-समाधि अङ्ग रूप से तीनों का । निर्णेतुं = निर्णय करने के लिये । संयमसंज्ञाभिधानपूर्वकं = संयम नामक संज्ञा का अभिधान करके अर्थात् धारणा-ध्यान-समाधि की संयम संज्ञा करके । बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय = बाह्य, अन्तः इत्यादि सिद्धियों का वर्णन करने के लिये अर्थात् योगाङ्गों के अनुष्ठान से प्राप्त होने वाली बाह्य तथा अन्तः सिद्धियों के निरूपण के उद्देश्य से । लक्षयितुं = धारणा-ध्यान-समाधि का लक्षण, स्वरूप बतलाने के लिये । उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं । तत्र = उनमें, धारणा-ध्यान-समाधि में । धारणायाः = धारणा के । स्वरूपं = स्वरूप, लक्षण को । आह = कहते हैं ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

अर्थ—चित्तस्य = चित्त का, चित्त की वृत्ति का । देशबन्धः = आकाश, सूर्य, चन्द्र, देव, प्रतिमा इत्यादि बाह्य पदार्थ तथा नाभिचक्र, हृदयकमल इत्यादि शरीर के भीतरी स्थान, किसी एक देश में बांधना, लगाना, स्थिर करना ही । धारणा = धारणा है । किसी एक देश में चित्तवृत्ति का स्थिर करना ही धारणा नामक योग का एक विशिष्ट अङ्ग है ।

वृत्तिः—देशे नाभिचक्र-नासाग्रादौ चित्तस्य [1]बन्धो विषयान्तरपरिहारेण यत् स्थिरीकरणं, सा चित्तस्य धारणोच्यते । अयमर्थः—मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मवा-

---

१ सम्बन्धः (पा०) ।

सितान्त करणेन यम-नियमवता जितासनेन परिहृतप्राणविक्षेपेण प्रत्याहृतेन्द्रिय-ग्रामेण निर्बाधे प्रदेशे ऋजुकायेन जितद्वन्द्वेन योगिना नासाग्रादौ सम्प्रज्ञातस्य समाधेरभ्यासाय चित्तस्य स्थिरीकरणं कर्त्तव्यमिति ॥ १ ॥

देशे = देश में अर्थात् । नाभिचक्रनासाग्रादौ = नाभिचक्र, नासिका के अग्र भाग इत्यादि में । चित्तस्य = चित्त का, चित्त की वृत्ति का । बन्ध = बाँधना, स्थिर करना अर्थात् । विषयान्तरपरिहारेण = दूसरे विषयों के परित्याग के द्वारा । यत् = जो । स्थिरीकरण = स्थिर करना है । सा = वह । चित्तस्य = चित्त को । धारणा = धारणा । उच्यते = कही जाती है अर्थात् अन्य विषयों, पदार्थों से चित्त को हटाकर केवल एक ही बाह्य अथवा अन्त देश में चित्त का स्थिर करना ही धारणा है । अयमर्थ = यह अभिप्राय है । मैत्र्यादिचित्तपरिकर्म-वासितान्त करणेन = मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा-इत्यादि चित्त के परिकर्मों से शुद्ध हुए अन्त करण वाले । यमनियमवता = अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरि-ग्रह रूप पञ्च यम तथा शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान रूप पञ्च नियमों का पालन करने वाले । जितासनेन = आसन पर विजय प्राप्त कर लेने वाले, स्थिर तथा सुखरूप आसन की सिद्धि कर लेने वाले । परिहृतप्राणवि-क्षेपेण = प्राण वायु के विक्षेप का परिहार करने वाले अर्थात् प्राणायाम की सिद्धि वाले । प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामेण = शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धरूप विषयों से श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राणरूप इन्द्रियसमूहों का प्रत्यावर्त, लौटा लेने वाले । जितद्वन्द्वेन = शीत ऊष्ण, क्षुधापिपासा इत्यादि द्वन्द्वों को जीत लेने वाले । योगिना = योगी के द्वारा । निर्बाधे = बाधा रहित । प्रदेशे = स्थान में । ऋजु-कायेन = सरल शरीर के द्वारा, शरीर को सीधा रखते हुए । नासाग्रादौ = नासिका के अग्र भाग इत्यादि में । सम्प्रज्ञातस्य = सम्प्रज्ञात । समाधे = समाधि के । अभ्यासाय = अभ्यास, सिद्धि के लिए । चित्तस्य = चित्तको । स्थिरीकरण = स्थिर करना, स्थिरता, एकाग्रता । कर्त्तव्य = करना चाहिए । इति = यह अभिप्राय है ॥ १ ॥

धारणामभिधाय ध्यानमभिधातुमाह—

धारणां = धारणा का स्वरूप । अभिधाय = कहकर के । ध्यान = ध्यान

को। अभिधातु = बतलाने के लिए। आह = कहते हैं।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

अर्थ—तत्र = उसी बाह्य आकाश, चन्द्र, प्रतिमा इत्यादि में अथवा अन्त नाभिचक्र, हृदयकमल इत्यादि ध्येय पदार्थ में। प्रत्ययैकतानता = प्रत्यय की एकतानता, चित्तवृत्ति का अनवरत, एकतान रूप से लगे रहना, एकाग्रता ही। ध्यान = ध्यान है। ध्येय पदार्थ में सदैव धाराप्रवाह रूप से एक ही वृत्ति का बना रहना, अन्य वृत्ति का उदय न होना ही ध्यान है। ध्येयमात्र में चित्तवृत्ति का एकाग्र हो जाना ही ध्यान है।

वृत्ति—तत्र तस्मिन् प्रदेशे, यत्र चित्त धृत तत्र, प्रत्ययस्य ज्ञानस्य, या एकतानता विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण यदेव धारणायाम् अवलम्बनीकृत, तदवलम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्ति सा ध्यानमुच्यते ॥ २ ॥

तत्र तस्मिन् = उस। प्रदेशे = प्रदेश, स्थान, ध्येय पदार्थ में, बाह्य अथवा अन्त विषय में। यत्र = जिसमें। चित्तं = चित्त को। धृत = लगाया गया, धारण, एकाग्र किया गया है। तत्र = उसी ध्येय पदार्थ में। प्रत्ययस्य = प्रत्यय की अर्थात्। ज्ञानस्य = ज्ञान की। या = जो। एकतानता = एक ही धाराप्रवाह, एकाग्रता है अर्थात्। विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण = विलोम, भिन्न, विपरीत परिणाम के परित्याग द्वारा, अन्य विषयों की ओर चित्तवृत्ति का गमन न करना अर्थात्। धारणायां = धारणा की अवस्था में। यदेव = जिस ही ध्येय पदार्थ को। अवलम्बनीकृत = आलम्बन, आश्रय बनाया गया, जिस विषय में चित्त को स्थिर किया गया था। तद् एव = उस ही पदार्थ, विषय का। अवलम्बनतया = आश्रय, आधार के रूप से। निरन्तर = सदैव। उत्पत्ति = उत्पत्ति होती है, धाराप्रवाह रूप से उसी विषय की सदा ही प्रतीति होती है। सा = उसी को। ध्यान = ध्यान। उच्यते = कहते हैं।

चरमयोगाङ्ग समाधिमाह—

चरमयोगाङ्गं = योग के सर्व श्रेष्ठ अन्तिम अङ्ग। समाधि = समाधि को। आह = बतलाते हैं।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।। ३ ।।

अर्थ —अर्थमात्रनिर्भासं = केवल ध्येय पदार्थ की ही प्रतीति कराने वाला तथा । स्वरूपशून्यमिव = चित्त के अपने स्वरूप का भी अभाव सा हो जाना । तदेव = वही ध्यान । समाधि = समाधि है अर्थात् ध्यान की परिपक्व अवस्था ही समाधि है जिसमें केवल ध्येय पदार्थ की ही प्रतीति होती है और चित्त का अपना स्वरूप शून्य सा हो जाता है । सामान्य ध्यान की दशा में ध्याता, ध्यान, ध्येय की पृथक्-पृथक् प्रतीति होती है । पर समाधि की अवस्था में चित्त में केवल ध्येय पदार्थ ही एकतानता, निरन्तर रूप में प्रकाशित होता रहता है ।

वृत्ति —तदेवोक्तलक्षणं ध्यानं, [1]यत्रार्थमात्रनिर्भासम् अर्थाकारसमावेशादुद्भूतार्थरूपं, [2]न्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन स्वरूपशून्यतामिवापद्यते, स समाधिरित्युच्यते, [3]सम्यक् आधीयत एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः ।। ३ ।।

तदेव = वही । उक्तलक्षण = बतलाये गये लक्षण वाला ३।२ । ध्यान = ध्यान । यत्र = जिस ध्यान में । अर्थमात्रनिर्भास = केवल ध्येय पदार्थ को प्रकाशित करने वाला । अर्थाकारसमावेशात् = ध्यान में ध्येय पदार्थ के आकार का समावेश, प्रवेश होने से । उद्भूतार्थरूप = उत्पन्न हुए ध्येय पदार्थ के स्वरूप वाला अर्थात् जिस ध्यान में केवल ध्येय पदार्थ का ही स्वरूप निरन्तर विद्यमान हो । न्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन = ज्ञान के स्वरूप के लुप्त हो जाने से, अभिभूत हो जाने से । स्वरूपशून्यतामिव = चित्त का स्वयं अपना स्वरूप भी शून्य सा, तिरोहित सा । आपद्यते = प्राप्त हो जाता है । अर्थात् जिसमें चित्त के ध्याता स्वरूप का अभाव हो जाता है । स = वह ध्यान । समाधि = समाधि । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । विक्षेपान् = विक्षेपों का । परिहृत्य = परिहार करके, दूर करके । मन = मन । यत्र = जिसमें । सम्यक् = अच्छी

---

१ यथार्थमात्र (पा०) ।

२ रूपमभूत ज्ञानस्वरूपत्वेन (पा०) ।

३ द्र० "अन्ये तु सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परित्यज्य यत्र मनः समाधिरित्याहुः" (योगचिन्तामणि, पृ० २४२) ।

प्रकार से। आधीयते = स्थापित, धारण किया जाता है अर्थात्। एकाग्रीक्रियते= एकाग्र किया जाता है। स = वही। समाधिः = समाधि है। जिस ध्यान में सभी विषयों से चित्त को हटाकर केवल एक ही ध्येय में उसे स्थिर किया जाता है, वही ध्यान की प्रौढ अवस्था समाधि है ॥ ३ ॥

उक्तलक्षणस्य योगाङ्गत्रयस्य व्यवहाराय स्वशास्त्रे तान्त्रिकीं संज्ञां कर्तुमाह—

उक्तलक्षणस्य = कहे गये लक्षण वाले। योगाङ्गत्रयस्य = योग के तीन अङ्गों का, धारणा-ध्यान-समाधि का। व्यवहाराय = व्यवहार के लिए। स्वशास्त्रे = अपने शास्त्र, योगशास्त्र में। तान्त्रिकीं = तंत्र, प्रस्तुत शास्त्र सम्बन्धी। संज्ञां = संज्ञा, परिभाषा। कर्तुं = करने के लिए। आह = कहते हैं।

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

अर्थ—एकत्र = किसी एक ध्येय विषय, पदार्थ में। त्रय = तीनों का, धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का एक साथ, समुदाय रूप से होना ही। संयम = संयम है। संयम योगशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। उसका अभिप्राय है कि किसी एक ही ध्येय पदार्थ में धारणा-ध्यान-समाधि तीनों की ही समुदाय रूप से प्रवृत्ति होती है। तीनों ही समान विषयक होते हैं।

वृत्ति—एकस्मिन् विषये धारणा-ध्यान-समाधित्रयं प्रवर्त्तमानं संयमसंज्ञया शास्त्रे व्यवह्रियते ॥ ४ ॥

शास्त्रे = योग शास्त्र में। एकस्मिन् = एक ही, समान। विषये = विषय, ध्येय पदार्थ में। प्रवर्त्तमानं = प्रवृत्त होने वाले। धारणाध्यानसमाधित्रयं = धारणा-ध्यान-समाधि तीनों का। संयमसंज्ञया = संयम रूप पारिभाषिक संज्ञा के द्वारा। व्यवह्रियते = व्यवहार किया जाता है। एक ही विषय में समुदाय रूप से प्रवृत्त होने वाले धारणा-ध्यान-समाधि की पारिभाषिक संज्ञा संयम है ॥ ४ ॥

तस्य फलमाह—

तस्य = उस संयम के। फलं = अभ्यास से प्राप्त होने वाले फल को। आह = कहते हैं।

नहीं होती। अतः स्थूल से सूक्ष्म में क्रमशः संयम का अभ्यास करना चाहिये।

वृत्ति—तस्य संयमस्य भूमिषु स्थूल-सूक्ष्मावलम्बनभेदेन स्थितासु चित्त-वृत्तिषु विनियोगः कर्त्तव्य, अधरामधरां चित्तभूमिं जितां जितां ज्ञात्वोत्तरस्यां भूमौ संयमः कार्य्यः, न ह्यनात्मीकृताधरभूमि[1]रुत्तरस्यां भूमौ संयमं कुर्वाणः फल-भाग्भवति ॥ ६ ॥

तस्य = उस। संयमस्य = संयम का। भूमिषु = भूमियों में अर्थात्। स्थूल-सूक्ष्मावलम्बनभेदेन = स्थूल एवं सूक्ष्म आश्रय, ध्येय पदार्थ के भेद से। स्थितासु =विद्यमान। चित्तवृत्तिषु = चित्त की वृत्तियों में। विनियोग = प्रयोग, अभ्यास। कर्त्तव्य = करना चाहिए अर्थात्। जितां जितां = जीत ली गई, जीत ली गई, सिद्ध हुई। अधरामधरां =नीचे नीचे की, स्थूल। चित्तभूमिं = चित्त की भूमि को। ज्ञात्वा = जान कर। उत्तरस्यां = उत्तर, बाद की, सूक्ष्म। भूमौ = भूमि में। संयमः = संयम। कार्य्यः = करना चाहिये, संयम का अभ्यास करना चाहिये। हि = क्योंकि। अनात्मीकृताधरभूमिः = नीचे की भूमि को बिना आत्मीकृत करके, स्थूल ध्येय पदार्थ पर संयम की सिद्धि न प्राप्त करके। उत्तरस्यां = उत्तर, सूक्ष्म की। भूमौ = भूमि में। संयमं = संयम को, संयम का अभ्यास। कुर्वाणः = करता हुआ साधक। न = नहीं। फलभाग् = फल का भागी, संयम के फल का भागी। भवति = होता है। संयम का फल उस साधक को कभी भी नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

साधनपादे योगाङ्गान्यष्टावुद्दिश्य पञ्चानां लक्षणं विधाय त्रयाणां कथं न कृतमित्याशङ्क्याह—

साधनपादे = साधनपाद में। योगाङ्गानि अष्टौ = योग के आठ अङ्गों का। उद्दिश्य = कथन करके। पञ्चानां = पञ्चयोगाङ्गोंका यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार का। लक्षणं = लक्षण, स्वरूप को। विधाय = कहकर। त्रयाणां = धारणा-ध्यान-समाधि तीन अङ्गों का लक्षण। कथं = क्यों। न = नहीं। कृतं =

१ नह्यसावात्मीकृताधरभूमिः (पा०)।

= बहिरङ्ग ही हैं। असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि में साक्षात् एवं प्रत्यक्ष साधन न होने के कारण धारणा-ध्यान-समाधि बहिरङ्ग भी है, अन्तरङ्ग ही नही। इस समाधि की सिद्धि में ये परम्परया साधन हैं। पर वैराग्य ही साक्षात् साधन होने से अन्तरङ्ग है। अतः अन्वय-व्यतिरेकी सम्बन्ध के अभाव में साध्य असम्प्रज्ञात समाधि के प्रति धारणा-ध्यान-समाधि बहिरङ्ग ही हैं।

वृत्ति—निर्बीजस्य निरालम्बनस्य शून्यभावनाऽपरपर्य्यायस्य समाधेरेतदपि योगाङ्गत्रय बहिरङ्ग, पारम्पर्य्येणोपकारकत्वात् ॥ ८ ॥

निर्बीजस्य = निर्बीज अर्थात्। निरालम्बनस्य = आलम्बन रहित, ध्येय विषयरहित, निर्विषयक। शून्यभावनाऽपरपर्यायस्य = समस्त भावनाओं से रहित रूप समानार्थक से समझी जाने वाली, सभी ध्येय पदार्थों के अभाव वाली। समाधे = समाधि का, असम्प्रज्ञात समाधि का। पारम्पर्येण = परम्परा से, क्रमशः। उपकारकत्वात् = उपकार करने वाले। एतद् अपि = ये धारणा-ध्यान-समाधि भी। योगाङ्ग = योगसिद्धि के तीनों अन्तिम अङ्ग। बहिरङ्ग = बहिरङ्ग ही हैं ॥ ८ ॥

इदानी योगसिद्धीर्व्याख्यानुकाम संयमस्य विषयविशुद्धि कर्तुं क्रमेण परिणामत्रयमाह—

इदानी = अब। योगसिद्धी = योग को साधन से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का। व्याख्यानुकाम = वर्णन करने के विचार से। संयमस्य = संयम के, धारणा-ध्यान-समाधि के। विषयविशुद्धि = विषय को शुद्ध। कर्तुं = करने के लिये। क्रमेण = क्रमश। परिणामत्रय = तीन प्रकार के परिणाम, निरोध-समाधि-एकाग्रता रूप त्रिविध परिणाम को। आह = कहते हैं।

व्युत्थान-निरोधसंस्कारयोरभिभव-प्रादुर्भावौ निरोधक्षण-चित्तान्वयो निरोधपरिणाम ॥ ९ ॥

अर्थ—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयो = व्युत्थान तथा निरोध अवस्था के संस्कारों का। अभिभवप्रादुर्भावौ = क्रमशः अभिभूत एवं उद्भूत होना तथा। निरोधक्षणचित्तान्वय = निरोध अवस्था में चित्त का केवल संस्कारों से सबद्ध रह जाना ही। निरोधपरिणाम = चित्त का निरोध परिणाम कहा जाता है।

चित्त धर्मी है तथा संस्कार उसके धर्म। पञ्चभूमियों में क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त भूमि में चित्त व्युत्थान की दशा में होता है। यही धर्मी चित्त सभी का आश्रय है। निरोधपरिणाम में व्युत्थान अवस्था के संस्कारों का तिरोभाव, लोप हो जाता है और निरोध अवस्था के संस्कार प्रकट हो जाते हैं। इन उद्भूत निरोध संस्कारों से चित्त का सम्बन्ध हो जाता है। यद्यपि दोनों ही अवस्था के संस्कारों के साथ चित्त का सम्बन्ध होता है, तथापि व्युत्थान संस्कार अभिभूत तथा निरोध संस्कार उद्भूत होते हैं। सतत अभ्यास से ज्ञान के प्रसादरूप परवैराग्य की प्राप्ति हो जाती है तथा क्रमशः व्युत्थान के संस्कारों का लोप हो जाता है। और निरोध के संस्कारों की अभिव्यक्ति हो जाती है। चित्त की समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं केवल उनके संस्कार ही चित्त में विद्यमान रह जाते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में धर्म-लक्षण-अवस्थारूप त्रिविध परिणामों में से धर्म परिणाम का कथन किया गया। व्युत्थान धर्म से निरोध धर्म में परिणत होना ही चित्त का निरोध परिणाम है।

वृत्ति—व्युत्थानं क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्ताख्यं भूमित्रयम्, निरोधः प्रकृष्टसत्त्वस्य अङ्गितया चेतसः परिणामः, ताभ्यां व्युत्थान-निरोधाभ्यां, यौ जनितौ संस्कारौ तयोर्यथाक्रमम् अभिभव-प्रादुर्भावौ यदा भवतः, अभिभवो न्यग्भूततया कार्यकरणासामर्थ्येनावस्थानं, प्रादुर्भावो वर्त्तमानेऽध्वनि अभिव्यक्तरूपतया आविर्भावः[1], तदा निरोधक्षणे चित्तस्योभयक्षणवृत्तित्वादन्वयो यः स निरोधपरिणाम उच्यते।

अयमर्थः—यदा व्युत्थानसंस्काररूपो धर्मस्तिरोभूतो भवति, निरोधसंस्काररूपश्च आविर्भवति, धर्मिरूपतया च चित्तमुभयान्वयित्वेऽपि निरोधात्मना अवस्थितं प्रतीयते, तदा स निरोधपरिणामशब्देन व्यवह्रियते, चलत्वात् गुणवृत्तस्य यद्यपि चेतसो निश्चलत्वं नास्ति, तथापि एवम्भूतः परिणामः स्थैर्यमुच्यते॥ ९॥

क्षिप्तमूढविक्षिप्ताख्य = क्षिप्त, मूढ तथा विक्षिप्त नाम वाली। भूमित्रय= तीन भूमियाँ। व्युत्थान = चित्त की व्युत्थान अवस्था कहलाती है। प्रकृष्टसत्त्वस्य = सत्त्वगुण बहुल। चेतसः = चित्त का। अङ्गितया = अङ्गीरूप, प्रधान रूप से। परिणाम = होने वाला जो परिणाम है। निरोध = वही चित्त की निरोध

---

१. अवस्थानम् (पा०)।

अवस्था है। ताभ्यां = उन दोनों। व्युत्थाननिरोधाभ्यां = व्युत्थान तथा निरोध अवस्था से। यौ = जो। जनितौ = उत्पन्न हुए। संस्कारौ = संस्कार हैं। तयोः = उन दोनों का। यथाक्रम = क्रमशः। यदा = जब। अभिभवप्रादुर्भावौ = लोप तथा उद्भव। भवतः = होता है। अभिभव = अभिभव शब्द का अर्थ है। न्यग्भूततया = तिरस्कृत रूप से, निर्बल शक्तिविहीन रूप से। कार्य्यकरणा-सामर्थ्येन = कार्य उत्पन्न करने की सामर्थ्य से रहित होकर, फलोत्पादन की शक्ति से रहित होकर। अवस्थान = चित्त में विद्यमान रहना है। प्रादुर्भाव शब्द का अभिप्राय है। वर्तमाने वर्तमान। अध्वनि = मार्ग स्वरूप में। अभिव्यक्त-रूपतया = प्रकट रूप से। आविर्भाव = चित्त में उत्पन्न होता है। अतीतावस्था का परित्याग कर वर्तमान स्वरूप को धारण करना ही प्रादुर्भाव है। तदा = तब, उस। निरोधक्षणे = निरोध काल में। चित्तस्य = धर्मी चित्त का। उभय-क्षणवृत्तित्वाद् = व्युत्थान-निरोध दोनों ही अवस्था की वृत्तियों से युक्त होने के कारण। य = जो। अन्वय = चित्त का निरोध अवस्था के संस्कारों के साथ सम्बन्ध है। स = वही। निरोधपरिणाम = निरोधपरिणाम। उच्यते = कहा जाता है। अयं = यह। अर्थ = अभिप्राय है। यदा = जिस समय। व्युत्थान-संस्काररूप = चित्त का व्युत्थान कालीन संस्कार रूपी। धर्म = धर्म। तिरो-भूत = तिरोहित, लुप्त। भवति = हो जाता है। च=और। निरोध-संस्काररूप = चित्त की निरोध की दशा में होने वाला संस्कार रूपी धर्म। आविर्भवति = व्यक्त, प्रकट, उद्भूत हो जाता है। च = और। धर्मिरूपतया = धर्मरूप संस्कारों का आश्रय, धर्मी रूप होने के कारण। उभयान्वयित्वे = व्युत्थान कालीन तथा निरोधकालीन दोनों ही दशाओं के संस्कारों से सम्बन्ध होने पर। अपि = भी। चित्त = चित्त। निरोधात्मना = निरुद्ध रूप में। अवस्थितं = स्थित, स्थिर रूप में विद्यमान। प्रतीयते = प्रतीत होता है। तदा = उस समय चित्त का। स = वही। निरोधपरिणामशब्देन = निरोधपरिणाम शब्द के द्वारा, चित्त निरोध परिणाम में स्थित है इस रूप से। व्यवह्रियते = व्यवहार किया जाता है। गुण-वृत्तस्य = गुणों की वृत्तियों का। चलत्वात् = चञ्चल होने के कारण। यद्यपि = यद्यपि। चेतस = चित्त का। निश्चलत्व = निश्चल स्थिर, निरुद्ध, एकाग्र

होना। न = नहीं। अस्ति = है। चित्त त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम है और रजोगुण सदैव प्रवृत्ति उत्पन्न करता रहता है। अतः चित्त स्थिर नहीं हो सकता। तथापि = फिर भी। एवम्भूत = इस प्रकार का। परिणाम = चित्त का निरोध परिणाम। स्थैर्य = चित्त की स्थिरता, एकाग्रता रूप। उच्यते = कहा जाता है ॥ ९ ॥

तस्यैव फलमाह—

तस्य एव = उस ही निरोध परिणाम के। फलं = फल को। आह = बतलाते हैं।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

अर्थ—संस्कारात = प्रबल निरोध संस्कारों के प्रभाव से। तस्य = उस निरोध परिणाम वाले चित्त की। प्रशान्तवाहिता = प्रशान्तवाहिता, धीर, स्थिर प्रवाह वाली स्थिति होती है। अर्थात् विक्षेपों का परित्याग करके सदैव एक ही ध्येयाकार में परिणाम को प्राप्त करता रहता है, उस ध्येय से भिन्न किसी भी अन्य विषय में उसका गमन नहीं होता।

वृत्ति—तस्य चेतस, निरुक्तात्निरोधसंस्कारात् प्रशान्तवाहिता भवति, परिहृतविक्षेपतया सदृशप्रवाह-परिणामि चित्तं भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

तस्य = उस निरोध परिणाम वाले। चेतस = चित्त की। निरुक्तात् = पूर्व में वर्णन किये गये। निरोधसंस्कारात् = निरोध कालीन संस्कारों के बल से। प्रशान्तवाहिता = प्रशान्तवाहिता, स्थिर, शान्त प्रवाह वाली दशा। भवति = होती है अर्थात्। परिहृतविक्षेपतया = विक्षेपों का परित्याग कर देने से, ध्येय से भिन्न किसी अन्य विषय में गमन न होने से। सदृशप्रवाहपरिणामि= समान, एक ही ध्येयाकार के प्रवाह में परिणाम को प्राप्त करने वाला, सदैव एक ही ध्येय का अवलम्बन ग्रहण करने वाला। चित्त = चित्त। भवति = होता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ १० ॥

निरोधपरिणामम् अभिधाय समाधिपरिणाममाह—

निरोधपरिणाम = चित्त के निरोध परिणाम का। अभिधाय = वर्णन करके। समाधिपरिणाम = समाधि परिणाम को। आह = कहते हैं।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥११॥

अर्थ.—सर्वार्थतैकाग्रतयो = सर्वार्थता, सभी प्रकार के विषयों को ग्रहण करने वाली, विक्षेप, व्युत्थानवृत्ति तथा एकाग्रता, एक ही ध्येय विषय को ग्रहण करने वाली वृत्तियों का क्रमश । क्षयोदयौ = तिरोभाव तथा आविर्भाव, लुप्त होना तथा प्रकट होना हो । चित्तस्य = चित्त का । समाधिपरिणामः = समाधि परिणाम है । व्युत्थानवृत्ति का तिरोहित होना तथा साथ ही एकाग्रता वृत्ति का उद्भूत होना ही चित्त का समाधिपरिणाम है।

वृत्ति—सर्वार्थता चलत्वान्नानाविधार्थग्रहणं, चित्तस्य विक्षेपो धर्मः । एकस्मिन्नेवालम्बने सदृशपरिणामिता एकाग्रता, सापि चित्तस्य धर्मः । तयोर्यथाक्रमं क्षयोदयौ सर्वार्थतालक्षणस्य धर्मस्य क्षयोऽत्यन्ताभिभवः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्य प्रादुर्भावोऽभिव्यक्तिः, चित्तस्योद्रिक्तसत्त्वस्यान्वयितयावस्थानं समाधिपरिणाम इत्युच्यते ।

पूर्वस्मात् परिणामादस्याय विशेष —तत्र संस्कारलक्षणयोः धर्मयोरभिभवप्रादुर्भावौ, पूर्वस्य व्युत्थानसंस्काररूपस्य न्यग्भावः, उत्तरस्य निरोधसंस्काररूपस्योद्भवोऽनभिभूतत्वेनावस्थानम्; इह तु क्षयोदयाविति सर्वार्थतारूपस्य विक्षेपस्यात्यन्तंतिरस्कारादनुत्पत्तिरतीतेऽध्वनि प्रवेशः क्षयः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्योद्भवो वर्तमानेऽध्वनि प्रकटत्वम् ॥ ११ ॥

सर्वार्थता = सर्वार्थता का अभिप्राय है। चलत्वात् = चञ्चल होने के कारण । नानाविधार्थग्रहण = अनेक प्रकार के विषयों का ग्रहण रूप। विक्षेप = विक्षेप, त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम चित्त स्वभावत चञ्चल होने से विविधप्रकार के विषयों में गमन करता रहता है । अत यह विक्षेप, व्युत्थान वृत्त । चित्तस्य = धर्मी चित्त का । धर्म = धर्म है। एकस्मिन् एव = एक ही । अवलम्बने = ध्येय पदार्थ में । सदृशपरिणामिता = समान, ध्येयाकार रूप से बराबर परिणति होते रहना, चित्त में सदैव निर्बाध रूप से ध्येय पदार्थ का विद्यमान रहता ही । एकाग्रता = चित्त की एकाग्रता है। सा अपि = वह एकाग्रता भी । चित्तस्य = धर्मीचित्त का । धर्म = धर्म है। तयो = उन्हीं दोनों

का, सर्वार्थता तथा एकाग्रता वृत्ति का। यथाक्रम = क्रमश। क्षयोदयौ = क्षय तथा उदय होना अर्थात्। सर्वार्थतालक्षणस्य = सर्वार्थता लक्षण वाली, सभी प्रकार के विषयों को ग्रहण करने वाली चित्तवृत्ति रूपी। धर्मस्य = धर्म का। क्षय = क्षय होना अर्थात्। अत्यन्ताभिभव = अत्यन्त अभिभूत हो जाना, बिलकुल ही दब जाना, लुप्त सा हो जाना। एकाग्रतालक्षणस्य = एकाग्रता लक्षण वाली, एक ही ध्येय विषय का सदैव चिन्तन करने वाली चित्त वृत्ति रूपी। धर्मस्य = धर्म का। प्रादुर्भाव = प्रादुर्भाव होना अर्थात्। अभिव्यक्ति = उद्भूत, प्रकट हो जाना ही। सर्वार्थता तथा एकाग्रता संस्कारों का क्रमश क्षय तथा उदय होना है। उद्रिक्तसत्त्वस्य = प्रवृद्ध, बढ़े हुए सत्त्वगुण वाले, सत्त्वगुण विशिष्ट। चित्तस्य = चित्तका। अन्वयितया = अन्वय रूप से, ध्येय विषय के साथ एकाकार रूप से। अवस्थान = स्थित, विद्यमान होना ही। समाधि-परिणाम = समाधिपरिणाम। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। पूर्वस्मात् = पहले वर्णन किये गये। परिणामाद् = निरोधपरिणाम से। अस्य = इस समाधिपरिणाम की। अयं = यह। विशेष = विशेषता, भेद है। तत्र = उस निरोधपरिणाम में। संस्कारलक्षणयो = व्युत्थान एवं निरोध संस्कार रूप। धर्मयो = दोनो धर्मों का। अभिभवप्रादुर्भावौ = क्रमश तिरोभाव एवं आविर्भाव, दबजाना एवं उदय होना होता है। पूर्वस्य = पूर्व, प्रथम अवस्था के। व्युत्थानसंस्काररूपस्य = व्युत्थान संस्कार रूपी धर्म का। न्यग्भाव = अत्यन्त तिरस्कृत, दब जाना। उत्तरस्य = पश्चात् कालीन। निरोध-संस्कार-रूपस्य = निरोधसंस्कार रूपी धर्म का। उद्भव = उदय होना अर्थात्। अनभिभूतत्वेन = अनभिभूत रूप में, किसी दूसरे संस्कार से न दबाये गये रूप में। अवस्थान = स्थित, विद्यमान होना है। इह तु = और इस समाधि परि-णाम में तो। क्षयोदयौ इति = सर्वार्थता तथा एकाग्रता के संस्कारो का क्रमश क्षय तथा उदय होता है अर्थात्। सर्वार्थसारूपस्य = सभी विषयों का चिन्तन करने वाली। विक्षेपस्य = विक्षेपवृत्ति, संस्कारो का। अत्यन्ततिरस्कारात् = अत्यन्त तिरस्कार के कारण। अनुत्पत्ति = उत्पन्न न होना अर्थात्। अतीते = अतीत अवस्था वाले। अध्वनि = मार्ग कारण, धर्मी चित्त में। प्रवेश = प्रवेश,

विलय को प्राप्त कर लेना ही। क्षय = क्षय है। एकाग्रतालक्षणस्य = एकाग्रता लक्षण वाले संस्कार रूपी। धर्मस्य = धर्म का। उद्भव = उद्भूत, उत्पन्न होना अर्थात्। वर्तमाने = वर्तमान अवस्था वाले। अध्वनि = मार्ग, कारण, धर्मी, चित्त में। प्रकटत्वम् = प्रकट होना है ॥ ११ ॥

तृतीयमेकाग्रतापरिणाममाह—

तृतीय = तृतीय। एकाग्रतापरिणाम = एकाग्रतापरिणाम को। आह = कहते हैं।

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणाम ॥ १२ ॥

अर्थ—शान्तोदितौ = शान्त तथा उदय होने वाली। तुल्यप्रत्ययौ = जब चित्त की दोनों वृत्तियाँ एक सी, भेद रहित हो जाती हैं। तब। चित्तस्य = चित्त का। एकाग्रतापरिणाम = एकाग्रता परिणाम होता है। चित्त की शान्त तथा उदय होने वाली वृत्तियों में जब एकरूपता, अभेद की स्थिति होती है, तब चित्त का एकाग्रता परिणाम होता है। विक्षेप का परित्याग कर एकाग्रदशा को प्राप्त करना ही चित्त का समाधि परिणाम है। सम्प्रज्ञात समाधि की प्रारम्भ दशा में चित्त का समाधि परिणाम होता है। सम्यक् रूप से समाहित चित्त में होने वाला परिणाम एकाग्रतापरिणाम है। इसमें शान्त तथा उदय होने वाली वृत्तियाँ एक सी होती हैं, पृथक् रूप से उनकी प्रतीति नहीं होती, क्योंकि उदित हुई सजातीयवृत्ति शान्त होती है और पुन दूसरी सजातीय वृत्ति का उदय होता है। यह चित्त का एकाग्रता-परिणाम सम्प्रज्ञातसमाधि की परिपक्व दशा में होता है।

वृत्ति—समाहितस्यैव चित्तस्यैकप्रत्ययो वृत्तिविशेष शान्त, अतीतनध्वानं प्रविष्ट। अपरस्तु उदितो वर्तमानेऽध्वनि स्फुरित.। द्वावपि समाहितचित्तत्वेन तुल्यावेकरूपालम्बनत्वेन सदृशौ प्रत्ययौ, उभयत्रापि समाहितस्यैव चित्तस्यान्वयित्वे-नावस्थान, स एकाग्रता-परिणाम इत्युच्यते ॥ १२ ॥

समाहितस्य = समाहित, विक्षेप रहित। चित्तस्य = चित्त का। एव = ही। एकप्रत्ययः = एकप्रत्यय अर्थात्। वृत्तिविशेष = एक विशेष वृत्ति। शान्तः = शान्त होती है अर्थात्। अतीत = अतीत कालीन। अध्वान = मार्ग, कारण,

धर्मी में। प्रविष्ट = प्रवेश प्राप्त करती है। अपर तु = और चित्त की दूसरी विशेष वृत्ति तो। उदित = उदित होती है अर्थात्। वर्त्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = मार्ग, कारण धर्मी में। स्फुरित = स्फुरण प्राप्त करती है। द्वौ अपि = दोनों ही शान्त एवं उदित वृत्तियाँ। समाहितचित्तत्वेन = समाहित चित्त के रूप की होने के कारण। तुल्यौ = तुल्य, सदृश एक सी होती हैं। एकरूपा-लम्बनत्वेन = एक ही सजातीय ध्येय पदार्थ का आश्रय ग्रहण करने के कारण। प्रत्ययौ = दोनों ही शान्त होने वाली तथा उदित होने वाली वृत्तियाँ। सदृशौ= समान सजातीय, एक सी होती हैं। उभयत्र = दोनों ही वृत्तियों में। अपि = भी। समाहितस्य= समाहित। चित्तस्य = चित्त की। एव = ही। अन्वयित्वेन= अन्वय रूप से। अवस्थान = स्थिति होती है। स = वही। एकाग्रतापरि-णाम = चित्त का एकाग्रता परिणाम। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है॥ १२॥

चित्तपरिणामोक्त रूपमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह—

चित्तपरिणाम = चित्त के समाधि एकाग्रता-निरोध रूप त्रिविध परिणाम। उक्त = कहे गये। अन्यत्र = अन्य सभी पदार्थों में। अपि = भी। रूप=परिणाम का। अतिदिशन् = अतिदेश, निर्देश करते हुए। आह = कहते हैं। समस्त पदार्थों में होने वाले परिणामों का निरूपण करते हैं।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म-लक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याता ॥ १३ ॥

अर्थ—एतेन = इस समाधि-एकाग्रता-निरोध रूप चित्त के त्रिविध परिणाम वर्णन से। भूतेन्द्रियेषु = पञ्च सूक्ष्म एवं स्थूल महाभूतों में तथा इन्द्रियों में। धर्मलक्षणावस्थापरिणामा = धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परि-णाम भी। व्याख्याता = व्याख्या हो जाती है। चित्त के त्रिविध परिणाम कथन से समस्त पदार्थों में होने वाले त्रिविध परिणामों का भी वर्णन हो जाता है। गुणवृत्ति के परिवर्तनशील होने के कारण समस्त पदार्थ भी परिणामशील हैं।

वृत्ति—एतेन त्रिविधेनोक्तेन चित्तपरिणामेन, भूतेषु स्थूल-सूक्ष्मेषु, इन्द्रियेषु

[1]बुद्धिकर्मान्त करणभेदेनावस्थितेषु, धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन त्रिविध परिणामो व्याख्यातोऽवगन्तव्य ।

अवस्थितस्य धर्मिण पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरापत्ति धर्मपरिणाम, यथा—मृल्लक्षणस्य धर्मिण पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूपधर्मान्तरस्वीकारो धर्मपरिणाम इत्युच्यते। लक्षणपरिणामो यथा—तस्यैव घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्तमानाध्वस्वीकार । तत्परित्यागेनातीताध्वपरिग्रह । अवस्थापरिणामो यथा—तस्यैव घटस्य प्रथमद्वितीययो सदृशयो क्षणयो[2]रन्वयित्वेन, यतश्च गुणवृत्तिर्न अपरिणम्यमाना क्षणमप्यस्ति ॥ १३ ॥

एतेन = इस । त्रिविधेन = तीन प्रकार के । उक्तेन = वर्णन किये गये । चित्तपरिणामेन = समाधि-एकाग्रता-निरोध रूप चित्त के परिणाम कथन द्वारा । स्थूलसूक्ष्मेषु = स्थूल एव सूक्ष्म । भूतेषु = पञ्च महाभूतो मे । बुद्धिकर्मान्त करणभेदेन = ज्ञान, कर्म एव अन्त करण के भेद, रूप मे । अवस्थितेषु = विद्यमान । इन्द्रियेषु = इन्द्रियो मे । धर्मलक्षणावस्थाभेदेन = धर्म, लक्षण तथा अवस्था भेद मे । त्रिविध = तीन प्रकार का । परिणाम = परिणाम । व्याख्यात = वर्णन किया गया अर्थात् । अवगन्तव्य = समस्त पदार्थों में विद्यमान त्रिविध परिणामो को समझना चाहिये । अवस्थितस्य = विद्यमान । धर्मिण = धर्मी का । पूर्वधर्मनिवृत्तौ = प्रथम धर्म की निवृत्ति, तिरोभाव हो जाने पर । धर्मान्तरापत्ति = द्वितीय अभिनव धर्म का ग्रहण करना ही । धर्मपरिणाम = धर्म परिणाम है । यथा = जैसे । मृल्लक्षणस्य = मृत्तिका रूप । धर्मिण = धर्मी का । पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन = पिण्ड रूप प्रथम धर्म का परित्याग करके । घटरूपधर्मान्तरस्वीकार = घट रूप द्वितीय धर्म को ग्रहण करना ही । धर्मपरिणाम = धर्मपरिणाम । इति = इस रूप मे । उच्यते = कहा जाता है । लक्षणपरिणाम यथा = लक्षण परिणाम का उदाहरण इस प्रकार है । तस्य एव = उस ही । घटस्य = घट का । अनागताध्वपरित्यागेन = अनागत स्वरूप का परित्याग करके । वर्तमानाध्वस्वीकार = वर्तमान कालीन घट रूप को ग्रहण करना । तथा । तत्परित्यागेन = उस वर्तमान स्वरूप का परित्याग कर । अतीताध्वपरिग्रह = अतीतस्वरूप को

१. बुद्धिकर्मलक्षणभेदेन (पा०) ।

२. काललक्षणयोरन्वयित्वेन (पा०) ।

स्वीकार करना ही लक्षणपरिणाम है। अवस्थापरिणाम यथा = अवस्था परिणाम का उदाहरण इस प्रकार है। तस्य एव = उस ही। घटस्य = घट का। प्रथम-द्वितीययो = प्रथम अनागत तथा द्वितीय अतीत दोनो। सदृशयो = समान। काल-लक्षणयो = काल एवं लक्षणा में। अन्वयित्वेन = अन्वयी रूप से विद्यमान रहना ही अवस्था परिणाम है। गुणवृत्ति = गुणो की वृत्ति। अपरिणम्यमाना = बिना परिणाम को प्राप्त किये। क्षण = एक क्षण। अपि = भी। न = नही। अस्ति = स्थित रहती है। प्रवृत्तक रजोगुण सदैव पदार्थों में गति उत्पन्न करता रहता है। अत त्रिगुणात्मक प्रकृति के परिणाम भूत समस्त पदार्थ परिवर्तनशील है ॥ १३ ॥

ननु कोऽय धर्मीत्याशङ्क्य धर्मिणो लक्षणमाह—

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि। अय = यह। धर्मी = धर्मी। क = कौन है। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशका करके, सदेह होने पर। धर्मिण = धर्मी के। लक्षण = लक्षण, स्वरूप को। आह = कहते हैं।

• शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

अर्थ —शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती = शान्त, उदित तथा अव्यपदेश्य, अतीत, वर्तमान तथा अनागत धर्मों में अनुगत व्याप्त रहने वाला, त्रैकालिक धर्मों में आधार रूप से विद्यमान रहने वाला। धर्मी = धर्मी होता है। धर्मी आधार, आश्रय है तथा उसपर रहने वाले धर्म आधेय है। अतीत, वर्तमान-अनागत सभी धर्मो में एक ही धर्मी आश्रय रूप से विद्यमान रहता है।

वृत्ति —शान्ता ये कृतस्वस्वव्यापारा अतीतेऽध्वनि अनुप्रविष्टा, उदिता य अनागतमध्वान परित्यज्य वर्त्तमानेऽध्वनि स्वव्यापार कुर्वन्ति, अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण स्थिता व्यपदेष्टु न शक्यन्ते, तेषा यथास्व सर्वात्मकत्वमित्येवमाद्यो नियतकार्य्यकारणरूपयोग्यतयावच्छिन्ना शक्तिरेवेह धर्मशब्देनाभिधीयते।

त त्रिविधमपि धर्म योऽनुपतति अनुवर्त्तते, अन्वयित्वेन स्वीकरोति स शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मीति उच्यते, यथा—सुवर्ण रुचकरूपधर्मपरित्यागेन स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे सुवर्णरूपतयाऽनुवर्त्तमान तेषु धर्मेषु कथञ्चि-

द्भिन्नेषु धर्मिरूपतया सामान्यात्मना धर्मस्पतया विशेषात्मना स्थितमन्वयित्वे-नाव[1] भासते ॥ १४ ॥

शान्ता = वे धर्म शान्त कहे जाते हैं। ये = जो। कृतस्वस्वव्यापारा = अपने अपने व्यापारों को सम्पन्न करके। अतीते = अतीत कालीन। अध्वनि = मार्ग, कारण, स्वरूप में। अनुप्रविष्टा = प्राप्त कर चुके हैं, विलीन हो गये हैं। उदिता = वे धर्म उदित हैं। ये = जो। अनागत = अनागत, भविष्य। अध्वान = स्वरूप का। परित्यज्य = परित्याग करके। वर्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = स्वरूप में। स्वव्यापार = अपने व्यापार को। कुर्वन्ति = पूर्ण करते हैं। अव्यपदेश्या = वे धर्म अव्यपदेश्य कहे जाते हैं। ये = जो। शक्तिरूपेण = शक्ति रूप से। स्थिता = अपने कारण में विद्यमान है। और व्यपदेष्टु = उन धर्मों का व्यपदेश, निर्देश, वर्णन करना। न = नहीं। शक्यन्ते = सम्भव हैं। तेषा = उन्ही तीनों कर्मों का। यथास्व = क्रमश। सर्वात्मकत्व = सर्वात्मक रूप में, पूर्ण रूप से, कारण स्वरूप अभिन्न रूप का होना। इत्येवमादय = इस प्रकार तीनो हो अतीत-वर्तमान-अव्यपदेश्य इत्यादि कार्य। नियतकार्य्य-कारणरूपयोग्यतया = निश्चित कार्य कारण रूप योग्यता से। अवच्छिन्ना = = मयुक्त, मवद्ध। शक्तिः = शक्ति। एव = ही। इह = यहा पर, प्रस्तुत प्रसङ्ग में। धर्मशब्देन = धर्म शब्द के द्वारा। अभिधीयते = कही जाती हैं। निश्चित कार्य कारण से युक्त शक्ति ही धर्म हैं। तं = उस। त्रिविध = तीन प्रकार के। अपि= भी। धर्म = धर्म का। य = जो। अनुपतति = अनुगमन करता है। अनुवर्तते = अनुवर्तन करता है। अन्वयित्वेन = अन्वय रूप से। स्वीकरोति = स्वीकार। करता है। स = वही। शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती = अतीत-वर्तमान-अनागत धर्मों का आश्रय रूप से अनुगमन करने वाला। धर्मी = धर्मी। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। सुवर्ण = धर्मीसुवर्ण। रुचकरूपधर्मपरित्यागेन = रुचक, कण्ठाभरण रूप प्रथम धर्म का परित्याग करके। स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे = स्वस्तिक रूप द्वितीय धर्म के ग्रहण कर

१ अनुयायित्वेन, अनुपातित्वेन (पा०)।

रने पर भी। सुवर्णरूपतया = सुवर्ण रूप में। अनुवर्त्तमान = अनुगमन करता हुआ। कयञ्चित् = कुछ। भिन्नेषु = भिन्न रूप से प्रतीत होने वाले। तेषु = उन। धर्मेषु = धर्मों में। धर्मिरूपतया = धर्मी रूप में। सामान्यात्मना = सामान्य रूप में। स्थित = विद्यमान रहता है। अन्वयित्वेन = अन्वयी रूप से। अवभासते = प्रकाशित होता है। अर्थात् कनक, स्वस्तिक, कटक, कुण्डल धर्मों में यद्यपि भेद दृष्टिगोचर होता है। फिर भी धर्मों में सुवर्ण धर्मी की स्थिति से सामान्यरूप में तथा धर्म की स्थिति से विशिष्टरूप में सबद्ध रहता ही है ॥ १४ ॥

एकस्य धर्मिण कथमनेके परिणामा[1] इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

एकस्य = एक ही। धर्मिण = धर्मी के। कथ = किस प्रकार। अनेके = अनेक, विविध। परिणामा=परिणाम होते हैं। इति = इस। आशङ्का = सदेह को। अपनेतु =दूर करने के लिये। आह = कहते हैं।

क्रमान्यत्व परिणामान्यत्वे हेतु ॥ १५ ॥

अर्थ—परिणामान्यत्वे = परिणाम के अन्यत्व, विविधता में, एक ही धर्मी के, एक ही धर्मी में होने वाले परिणाम की अनेकता में। क्रमान्यत्व = क्रम की अनेकता, मृत्तिकाचूर्ण, मृत्तिकापिण्ड, कपाल, घट इत्यादि क्रम का अनेकता ही। हेतु = कारण है। एक ही धर्मी में जो अनेक प्रकार के परिणाम पाये जाते हैं, उस विविधता में क्रम भिन्नता ही कारण है।

वृत्ति—धर्माणाम् उक्तलक्षणाना य क्रमस्तस्य यत् प्रतिक्षणमन्यत्व परिदृश्यमान, परिणामस्योक्तलक्षणस्यान्यत्वे, नानाविधत्वे, हेतुर्लिङ्ग ज्ञापक भवति। अयमर्थ—योऽय नियत क्रम मृच्चूर्णाद् मृत्पिण्ड, तत कपालानि, तेभ्यश्च घट इत्येव क्रमरूप परिदृश्यमान परिणामस्य अन्यत्वमावेदयति। तस्मिन्नेव धर्मिणि यो लक्षणपरिणामस्य अवस्थापरिणामस्य च क्रम, सोऽपि अनेनैव न्यायेन परिणामान्यत्वे गमकोऽवगन्तव्य।

सर्व एव भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षण परिणम्य[2]माना परिदृश्यन्ते, अत

---

१ धर्मा (पा०)।

२ परिणममाना (पा०)।

सिद्धं क्रमान्यत्वात् परिणामान्यत्वम्। सर्वथा चित्तस्य परिणममाना¹ नाना केचिद्धर्मा प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते, यथा—सुखादयः प्रत्ययाश्च। केचिदेकान्तेनानुमानगम्याः, यथा—धर्मसंस्कार-शक्तिप्रभृतयः। धर्मिणश्च भिन्नाभिन्नरूपता सर्वत्रानुगमः ॥ १५ ॥

उक्तलक्षणानां = वर्णन किये गये लक्षण वाले। धर्माणां = धर्मों का। य = जो। क्रम = क्रम है। तस्य = उसी क्रम का। यत् = जो प्रतिक्षण = प्रत्येक क्षण, सदा। परिदृश्यमान = देखा जाता हुआ, ग्रहण किया जाता हुआ। अन्यत्व = अनेकरूपता, विविधता है। वहाँ क्रम की अनेकता। उक्तलक्षणस्य = कहे गये, वर्णित लक्षण वाले। परिणामस्य = एक ही धर्मी के परिणाम की। अन्यत्वे = अनेकता अर्थात्। नानाविधत्वे = विविध प्रकार के रूप में। हेतु = हेतु अर्थात्। लिङ्ग = लिङ्ग अर्थात्। ज्ञापक = ज्ञान प्रदान कराने वाला। भवति = होता है। धर्मों के विविध परिणाम में क्रम की अनेकता ही हेतु, लिङ्ग है। अयं = यह। अर्थ = अभिप्राय है। य = जो। अयं = यह। नियत = निश्चित। क्रम = क्रम है कि। मृच्चूर्णाद् = मृत्तिका चूर्ण से। मृत्पिण्ड = मृत्तिकापिण्ड। ततः = उस मृत्तिका पिण्ड से। कपालानि = कपाल। च=और। तेभ्य = उन कपालों से। घट इति = घट बनता है। एवं=इस प्रकार से। परिदृश्यमान = देखा जाता हुआ, उपलब्ध होने वाला। क्रमरूप = क्रम। परिणामस्य = एक ही धर्मी के परिणाम की। अन्यत्व = अनेकता को। आवेदयति = प्रकट, सूचित करता है। तस्मिन् एव = उस ही एक। धर्मिणि = धर्मी में। य = जो। लक्षणपरिणामस्य = लक्षण परिणाम का। च = और। अवस्था-परिणामस्य = अवस्था परिणाम का। क्रम = क्रम है। स = वह। अपि=भी। अनेन = इस। एव = ही। न्यायेन = न्याय से, क्रम की अनेकता से। परिणामान्यत्वे = परिणाम की विविधता में। गमक = ज्ञान कराने वाला। अवगन्तव्य = समझना चाहिये। सर्वे एव = सभी। भावा = भाव। नियतेन = निश्चित। क्रमेण = क्रम से। एव = ही। प्रतिक्षण = प्रत्येक क्षण, सदैव। परिणम्यमाना = परिणाम, परिवर्तन को प्राप्त करते हुए। परिदृश्यन्ते = दिखलाई पड़ते हैं।

---

१. परिणम्यमानानाम् (पा०)।

अत = इसलिये। सिद्ध = यह सिद्ध होता है कि। क्रमान्यत्वात् = क्रम की अनेकता के कारण। परिणामान्यत्व = एक ही धर्मी के परिणाम को विविधता उपलब्ध होती है। परिणममानाना = परिणाम को प्राप्त करते हुए। सर्वेषा = सभी। चित्तादीना = चित्त इत्यादि के। केचित् = कुछ। धर्मा = धर्म। प्रत्यक्षेण = प्रत्यक्ष रूप से। एव = ही। उपलभ्यन्ते = उपलब्ध, प्राप्त होते हैं। यथा = जैसे। सुखादय = सुख इत्यादि। च = और। सस्थानादय = सस्थान इत्यादि। केचित् = कुछ धर्म। एकान्तेन = एकान्तत, एकान्त, पूर्ण रूप से। अनुमानगम्या = अनुमान द्वारा ही जानने योग्य होते हैं। यथा = जैसे। धर्म-सस्कारशक्तिप्रभृतय = धर्म, सस्कार, शक्ति इत्यादि। च = और। धर्मिण = धर्मी का। भिन्नाभिन्नरूपतया = भिन्न तथा अभिन्न रूप से। विशेष तथा सामान्य रूप से। सर्वत्र = सभी धर्मो में। अनुगम = अनुगमन सम्बन्ध होता ही है। सभी दशाओं में धर्मो का धर्म से अन्वय होता ही है। क्योंकि वह धर्म का आधार है ॥ १५ ॥

इदानीमुक्तस्य सयमस्य विषयप्रदर्शनद्वारेण सिद्धी प्रतिपादयितुमाह—

इदानी = अब। उक्तस्य = पूर्व में ३।४ वर्णन किये गये। सयमस्य = सयम के। विषयप्रदर्शनद्वारेण = विषय निरूपण के द्वारा। सिद्धी = सिद्धियों का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन, वर्णन करने के लिए। आह = कहते हैं।

परिणामत्रयसयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

अर्थ.—परिणामत्रयसयमाद् = धर्म-लक्षण-अवस्था रूप त्रिविध परिणामो में सयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास करने से। अतीतानागतज्ञान = अतीत तथा अनागत का ज्ञान होता है। योगी को समस्तपदार्थों का भूत कालीन तथा भविष्यकालीन स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होता है। वस्तु के मूल-करण, परिवर्तन, विलय इत्यादि का ज्ञान परिणामों में सयम करने से होता है।

वृत्ति—धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन यत् परिणामत्रयमुक्त, तत्र सयमात् तस्मिन् विषये पूर्वोक्तसयमस्य करणात्, अतीतानागतज्ञान योगिन समाधिर्भवति[1]।

---

१ आविर्भवति (पा०)।

इदमत्र तात्पर्य्यम्—अस्मिन् धर्मिणि अयं धर्म, इदं लक्षणम्, इयमवस्था च अनागतादध्वन समेत्य वर्त्तमाने अध्वनि स्वव्यापार विधायातीतम् अध्वान प्रविशतीत्येव परिहृतविक्षेपतया यदा संयम करोति, तदा यत् किञ्चिदनुत्पन्न-मतिक्रान्त, वा तत् सर्वं योगी जानति, यतश्चित्तस्य शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात् सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमविद्यादिभिर्विक्षेपैरपक्रियते[1]। यदा तु तैस्तैरुपायैर्विक्षेपा परिह्रियन्ते तदा निवृत्तमलस्येव आदर्शस्य सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमेकाग्रतावलादा-विर्भवति ॥ १६ ॥

धर्मलक्षणावस्थाभेदेन = धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम, अवस्थापरिणाम भेद से। यत् = जो। परिणामत्रय = तीन प्रकार के परिणाम। उक्त = कहे गये हैं। तत्र = उन त्रिविध परिणामों में। संयमात् = संयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास करने से। तस्मिन् = उस। विषये = विषयमें। पूर्वोक्तसंयमस्य = पहले वर्णन किये गये संयम के। करणात् = करने से। अतीतानागतज्ञान = अतीत तथा अनागत का ज्ञान होता है, पदार्थ के भूत तथा भविष्यकालीन स्वरूप का ज्ञान होता है। योगिन = योगी की। समाधि = समाधि। भवति = होती है। अत्र = यहाँ पर, इस विषय में। इदं = यह। तात्पर्यं = तात्पर्य है। अस्मिन् = इस। धर्मिणि = धर्मी में। अयं = यह। धर्म = धर्म है, इस धर्मी का यह धर्म परिणाम है। इद = यह। लक्षण लक्षण परिणाम है। च = और। इयं = यह। अवस्था = अवस्था परिणाम है। अनागताद् = भविष्यकालीन। अध्वन = स्वरूप को। समेत्य = पार करके, त्याग कर। वर्त्तमाने = वर्तमानकालीन। अध्वनि = स्वरूप में। स्वव्यापार = अपने कार्य को। विधाय = पूर्ण करके। अतीत = अतीतकालीन। अध्वान = अपने मूल कारण, स्वरूप में। प्रविशति = प्रवेश कर रहा है, विलय को प्राप्त कर रहा है। इति = इस रूप से। एव = इस प्रकार। परिहृतविक्षेपतया = विक्षेप का परिहार, परित्याग करके, चित्त का अन्य विषयों में गमन रोककर। यदा = जब। संयमं=संयम को, धारण-ध्यान-समाधि के अभ्यास को। करोति =

१ विक्षेपैरत्र परिह्रियन्ते (पा०)।

योगी करता है। तदा = तब, संयम करने पर। यत् = जो। किञ्चिद् = कुछ। अनुत्पन्न = उत्पन्न नहीं हुआ है, कारण में बीजरूप में अव्यक्तरूप से निहित, स्थिति है। वा=अथवा। अतिक्रान्त=अतिक्रमण कर गया है, वर्तमानस्वरूप का परित्याग कर पुन कारण में विलीन हो गया है। तत् सर्वं = वह सब कुछ, वस्तु के अव्यक्त व्यक्त तिरोहित स्वरूप को। योगी=योगी। जानाति = जानता है। यत =क्योंकि। चित्तस्य = चित्त का। शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात् = विशुद्धसत्त्व एवं प्रकाशक रूप होने के कारण, सत्त्वगुणविशिष्टप्रकाशक होने के कारण। सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यं = सभी पदार्थों को ग्रहण करने की सामर्थ्य होती है। समस्त पदार्थ के अतीत-वर्तमान-अनागत स्वरूप को जानने की शक्ति होती है। अविद्यादिभि =अविद्या इत्यादि। विक्षेपैः = विक्षेपों के द्वारा। अपक्रियते = दूर किया जाता है, अविद्या का निराकरण किया जाता है। यदा = जब। तु =तो। तैः तैः = उन उन। उपायैः = उपायों, साधनों के द्वारा। विक्षेपा = विक्षेपों का। परिह्रियन्ते = परिहार, निवारण किया जाता है। तदा = तब। निवृत्तमलस्य = दूर हुये कलुष वाले। आदर्शस्य = दर्पण की। इव = तरह। एकाग्रताबलाद् = एकाग्रता के बल से। सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यं = समस्त पदार्थ के स्वरूप को ग्रहण करने की शक्ति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते है।

शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभाग-संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थप्रत्ययाना = शब्द, पदार्थ और ज्ञान का। इतरेतर = परस्पर एक दूसरे में। अध्यासात् = अध्यास होने से, एक दूसरे की एक दूसरे में बुद्धि होने से। सङ्कर = सम्मिश्रण हो रहा है। तत् = उन शब्द, पदार्थ और ज्ञान के। प्रविभागसंयमात् = विभागों में संयम करने से। योगी को। सर्वभूतरुतज्ञान = समस्त पशु, पक्षी, सरीसृप इत्यादि प्राणियों की वाणी का ज्ञान होता है।

इस अभिप्राय से इस प्राणी द्वारा इस शब्द का उच्चारण किया गया, इसका पूर्ण ज्ञान होता है।

वृत्ति—शब्द श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो नियतक्रमवर्णात्मा नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्न, यदि वा, क्रमरहितस्फोटात्मा शास्त्रसंस्कृतबुद्धिग्राह्य [1], उभयथापि पदरूपो वाक्यरूपश्च, तयोरेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यात्। अर्थो जाति-गुण-क्रियादिः, प्रत्ययो ज्ञान, विषयाकारा बुद्धिवृत्ति, एषा शब्दार्थज्ञानानां व्यवहारे इतरेतराध्यासाद् भिन्नानामपि बुद्ध्येकरूपतासम्पादनात् सङ्कीर्णत्वम्। तथा हि—

गामानयेत्युक्ते कश्चिद् गोलक्षणमर्थं गोत्वजात्यवच्छिन्नं सास्नादिमत् पिण्डरूपं शब्दञ्च तद्वाचकं ज्ञानञ्च तद्ग्राहकमभेदेनैवाध्यवस्यति, न त्वस्य गोशब्दो वाचकः, अयं गोशब्दस्य वाच्यः, तयोरिदं ग्राहकं ज्ञानमिति भेदेन व्यवहरति। कोऽयमर्थः, तथा हि—कोऽयं शब्दः, किमिदं ज्ञानमिति पृष्टः सर्वत्रैकरूपमेवोत्तरं ददाति गौरिति। स यद्येकरूपता न प्रतिपद्यते, कथमेकरूपमुत्तरं प्रयच्छति ?

एवं [2] तस्मिन् अवस्थिते योऽयं प्रविभागः,—इदं शब्दस्य तत्त्वं यद्वाचकत्वं नाम, इदमर्थस्य यद्वाच्यत्वम्, इदं ज्ञानस्य, यत् प्रकाशकत्वमिति प्रविभागं विधाय तस्मिन् प्रविभागे यः संयमं करोति तस्य सर्वेषां भूतानां मृग-पक्षि-सरीसृपादीनां यद् रुतं यः शब्दस्तत्र ज्ञानमुत्पद्यते, अनेनैवाभिप्रायेण तेन प्राणिनायं शब्दः समुच्चारित इति सर्वं जानाति ॥ १७ ॥

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य = श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण किया जाने वाला। नियतक्रमवर्णात्मा = निश्चित क्रम एवं वर्ण स्वरूप वाला। नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्न = निश्चित एक अर्थ का ज्ञान कराने की शक्ति से युक्त। शब्दः = शब्द है। यदि वा = अथवा। क्रमरहितस्फोटात्मा = वर्णों के क्रम से रहित स्फोट, ध्वनिरूप। ध्वनिसंस्कृतबुद्धिग्राह्य = परिष्कृत बुद्धि द्वारा ग्राह्य ध्वनि वाला शब्द होता है। उभयथा = दोनों प्रकार से। अपि = भी। पदरूप = पद के रूप में। च = और। वाक्यरूप = वाक्य के रूप में। तयो = उन दोनों प्रकार के

---

१ ध्वनिसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः (पा०)।

२ एकस्मिन् स्थिते योऽयम्, एतस्मिन् स्थिते योऽयम् (पा०)।

शब्दों की। एकार्थप्रतिपत्तौ = एक पदार्थ के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने में। सामर्थ्यात् = सामर्थ्य, शक्ति होने के कारण, दोनों प्रकार के शब्द में एक नियत पदार्थ का ज्ञान प्रदान करने की शक्ति होती है। जातिगुणक्रियादि = जाति-गुण-क्रिया इत्यादि स्वरूप, लक्षण वाला। अर्थ = पदार्थ होता है। प्रत्यय = प्रत्यय। ज्ञान = ज्ञान को कहते हैं। वह। विषयाकारा = विषय के आकार की हुई। बुद्धिवृत्ति = चित्त की वृत्ति ही है। एषां = इन। शब्दार्थज्ञानानां = शब्द, पदार्थ तथा ज्ञान का। व्यवहारे = व्यवहार में। इतरेतर = परस्पर, एक दूसरे में। अध्यासाद्=अध्यास होने से 'अध्यासो नाम अतस्मिन् तद्बुद्धि'। भिन्नाना = भिन्नों का, शब्द-अर्थ-ज्ञान परस्पर पृथक् स्वरूप वालों का। अपि = भी। बुद्ध्येकरूपता = बुद्धि का एक समान रूप होना, सबमें एक ही बुद्धि का। सम्पादनात् = सपन्न होने से, शब्द-अर्थ-ज्ञान सब में अभिन्न रूप से एक ही प्रतीति होना। सङ्कीर्णत्व = संकीर्ण, मिश्रित होना है। तथाहि = जैसे कि। गाम् आनय इति उक्ते = 'गौ ले आओ' ऐसा कहे जाने पर, शब्द के उच्चारण करने पर कश्चिद् = कोई मनुष्य। गोलक्षण = गोलक्षण से युक्त। अर्थं = पदार्थ को। गोत्वजात्यवच्छिन्न = गोत्व जाति से समन्वित। सास्नादिमन् = सास्ना इत्यादि से युक्त। पिण्डरूप = पिण्डरूप पदार्थ को। च = और। तद्वाचक = उस पिण्ड, पदार्थ के वाचक, बतलाने वाले। शब्द = शब्द को। च = और। तद् ग्राहक = उस पदार्थ का ग्रहण कराने वाले। ज्ञान = ज्ञान, विषयाकार चित्त वृत्ति को। अभेदेन = अभेद, अभिन्न, एक रूप से, शब्द-अर्थ-ज्ञान को समान बुद्धि से। एव = ही। अध्यवस्यति = निश्चय करता है, सबको पृथक् रूप से प्रतीति न करके एक ही रूप में करता है। तु = किन्तु। अस्य = इस गो रूप पदार्थ का। गोशब्द = यह मुख उच्चरित तथा श्रोत्रग्राह्य गो शब्द। वाचक = वाचक है। अय = यह गोरूप पदार्थ। गोशब्दस्य = गोशब्द का। वाच्य = वाच्य, अभिधेय है। तया = गोरूप पदार्थ तथा गोशब्द उन दोनों का। इद = यह। ग्राहक = ग्रहण कराने वाला, प्रतीति कराने वाला। ज्ञान = ज्ञान, चित्तवृत्ति है। इति = इस रूप से वाचक, वाच्य, ग्राहक रूप से। भेदेन = भेद के साथ, पृथक्-पृथक् रूप से। न = नहीं। व्यवहरति = व्यवहार करता है अपितु भिन्न होने पर भी

वाचक-वाच्य-ग्राह्य तीनों का एक ही रूप में अभिन्न रूप से व्यवहार करता है। तथा हि = जैसे कि। क = कौन। अयं = यह। अर्थ = पदार्थ है। क = कौन। अयं = यह। शब्द = शब्द है। कि = कौन। इद = यह। ज्ञान = ज्ञान है। इति = इस त्रिविध भिन्न-भिन्न रूप में। पृष्ठ = प्रश्न किये जाने पर। सर्वत्र= सभी तीनों विषयों में, प्रश्नों के सम्बन्ध में। एकरूप = एक रूप का, समान। एव = ही। उत्तर = उत्तर। गौ = यह गौ है। इति = इस रूप से। ददाति= देता है। यदि = यदि। स = वह पुरुष। एकरूपता = वाचक-वाच्य-ग्राहक-शब्द-अर्थ-ज्ञान को एक ही रूप में। न = नहीं। प्रतिपद्यते = मान लेता, निश्चय कर लेता। कथ = तो किस प्रकार से। एकरूप = एक ही प्रकार का, गौरूप। उत्तर = उत्तर। प्रयच्छति = देता है। इन सभी को एक रूप समझ करके ही वह मनुष्य 'यह गौ है' ऐसा एक ही उत्तर देता है। एव = इस प्रकार से। तस्मिन् = उसमें। अवस्थिते = विद्यमान। य = जो। अयं = यह। प्रविभाग = विभाग है अर्थात्। यद् = जो। वाचकत्व नाम = वाचकत्व है। इद = यह। शब्दस्य = शब्द का। तत्त्व = तत्त्व है। यद् वाच्यत्व = जो वाच्यत्व है। इद = यह। अर्थस्य = पदार्थ का तत्त्व है। यत् = जो। प्रकाशकत्व = प्रकाशकत्व, ग्राहकत्व है। इद = यह। ज्ञानस्य = ज्ञान का तत्त्व है। इति = इस रूप से। प्रविभाग = विभाग को। विधाय = करके। तस्मिन् = उस। प्रविभागे = शब्द-अर्थ-ज्ञान रूप विभाग में। य = जो योगी। सयम = सयम, धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास। करोति = करता है। तस्य = उस योगी को। मृगपक्षि-सरीसृपादीना = मृग, पक्षी, सरीसृप इत्यादि। सर्वेषा = सभी, समस्त। भूताना प्राणियों की। यद् = जो। रुत = वाणी है। य शब्द = उन प्राणियों से उच्चरित जो शब्द है। तत्र = उस शब्द के विषय में। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तेन = उस। प्राणिना = पशु पक्षी इत्यादि प्राणी के द्वारा। अनेन = इस। एव = ही। अभिप्रायेण = उद्देश्य प्रयोजन से। अयं = इस। शब्द = शब्द का। समुच्चारित = उच्चारण किया गया। इति = इस रूप से वह योगी। सर्व = समस्त प्राणियों की उच्चारित वाणी के अर्थ को। जानाति= जानता है॥ १७॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = संयम से उपलब्ध होने वाली दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

अर्थ—संस्कारसाक्षात्करणात् = चित्त में विद्यमान संस्कारों को संयम द्वारा साक्षात् प्रत्यक्ष कर लेने पर। पूर्वजातिज्ञान = योगी को पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

वृत्ति—द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपा संस्कारा, केचित् स्मृतिमात्रोत्पादनफला, केचिज् जात्यायुर्भोगलक्षणा विपाकहेतव, यथा—धर्माधर्माख्या, तेषु संस्कारेषु यदा संयम करोति, एव मया सोऽर्थोऽनुभूत', एव मया सा क्रिया निष्पादितेति पूर्ववृत्तमनुसन्दधानो भावयन्नेव[1] प्रबोधकमन्तरेण उद्बुद्धसंस्कार सर्वमतीत स्मरति, क्रमेण साक्षात्कृतेषूद्बुद्धेषु संस्कारेषु पूर्वजन्मान्तरानुभूतानपि ज्ञात्यादीन् प्रत्यक्षेण पश्यति ॥ १८ ॥

चित्तस्य = चित्त के। वासनारूपा = वासनारूपी। संस्कारा = संस्कार। द्विविधा = दो प्रकार के हैं। केचित् = उन संस्कारों में कुछ। स्मृतिमात्रोत्पादनफला = स्मृतिमात्र फल को उत्पन्न करने वाले, केवल स्मृति को उद्बुद्ध करने वाले होते हैं। केचित् = कुछ संस्कार। जात्यायुर्भोगलक्षणा = देव-मानव-पशु-पक्षी इत्यादि जाति, आयु-अवस्था परिणाम, जीवन की अवधि, तथा सुख-दुःख इत्यादि भोगरूप। विपाकहेतव = विपाक के कारण बनते हैं। यथा = जैसे। धर्माधर्माख्या = धर्म तथा अधर्म नाम वाले संस्कार जाति-आयु-भोग रूपी विपाक को प्रदान करने वाले होते हैं। तेषु = उन। संस्कारेषु = संस्कारों में। यदा = जब। योगी। संयम = संयम। करोति = करता है। तब। एवं = इस प्रकार। मया = मेरे द्वारा। स = उस। अर्थ = अर्थ का। अनुभूत = अनुभव किया गया। एव = इस प्रकार। मया = मेरे द्वारा। सा = वह। क्रिया = कार्य। निष्पादिता = सम्पन्न, पूरा किया गया। इति = इस रूप से। पूर्ववृत्त = पहले

---

[1] भावनयैव (वा०)।

के वृत्तान्त को। अनुसन्दधान = स्मरण करता हुआ। भावयन् = भावना, ध्यान करता हुआ। एव = ही। प्रबोधकम् अन्तरेण = बोध ज्ञान कराने वाले किसी अन्य पुरुष के बिना ही। उद्बुद्धसंस्कार = उद्बुद्ध हुए संस्कारों वाला योगी, पूर्व के संस्कारों के प्रबुद्ध जग जाने पर। सर्वं = समस्त। अतीत = अतीतकाल, भूतकालीन वृत्तान्तों का। स्मरति = स्मरण करता है। क्रमेण = क्रमशः। साक्षात्कृतेषु = साक्षात् किये गये। उद्बुद्धेषु = संस्कारों में, संस्कारों के प्रबुद्ध होने पर। पूर्वजन्मान्तर = पूर्व जन्म में। अनुभूतान् = अनुभव किये गये। जात्यादीन् = जाति इत्यादि, जाति-आयु-भोग को। अपि = भी। प्रत्यक्षेण = प्रत्यक्ष रूप से। पश्यति = देखता है ॥ १८ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

सिद्ध्यन्तर = संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

अर्थ—प्रत्ययस्य = संयम द्वारा दूसरे मनुष्य के चित्त का साक्षात्कार कर लेने पर। परचित्तज्ञान = दूसरे मनुष्य के चित्त का ज्ञान होता है। श्रीविज्ञानभिक्षु के अनुसार संयम द्वारा स्वयं अपनी ही चित्तवृत्ति का साक्षात्कार कर लेने पर अन्य पुरुषों के चित्त का ज्ञान सङ्कल्पमात्र से ही हो जाता है।

वृत्ति—प्रत्ययस्य परचित्तस्य केनचिद् मुखरागादिना लिङ्गेन गृहीतस्य, यदा संयम करोति, तदा परकीयचित्तस्य ज्ञानमुत्पद्यते, सरागम् अस्य चित्त वीतराग वेति परचित्तगतान् सर्वानपि धर्मान् जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥

केनचित् = किसी। मुखरागादिना = मुख के राग इत्यादि। लिङ्गेन = लिङ्ग, चिह्न द्वारा। गृहीतस्य = ग्रहण किये गये। प्रत्ययस्य = प्रत्यय का अर्थात्। परचित्तस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त का। यदा = जब। संयमं = संयम को। करोति = करता है। तदा = तब। परकीयचित्तस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त का। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है अर्थात्। अस्य = इस मनुष्य का। चित्त = चित्त। सराग = राग युक्त है। वा = अथवा। वीतरागं = राग

से रहित है। इति = इस रूप से। परचित्तगतान् = दूसरे मनुष्य के चित्त में विद्यमान। सर्वान् अपि = सभी। धर्मान् = धर्मों को। जानाति = जानता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ १९ ॥

अस्यैव परचित्तज्ञानस्य विशेषज्ञानमाह—

अस्य = इस। एव = ही। परचित्तज्ञानस्य = दूसरे मनुष्य के चित्त के ज्ञान के। विशेषज्ञान = विशेष ज्ञान को। आह = कहते हैं।

न च तत् सालम्बन तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २० ॥

अर्थ —च = किंतु। तत् = दूसरे मनुष्य के चित्त का ज्ञान। सालम्बन = आलम्बन सहित। न = नहीं होता है। क्योंकि। तस्य = उस परपुरुष के चित्त का आलम्बन। अविषयीभूतत्वात् = साधक के चित्त का विषय न होने के कारण। परपुरुष का चित्त ही योगी का ध्येय विषय होता है। अत उस पुरुष के चित्त के सामान्य स्वरूप का ही ज्ञान होता है। उसका चित्त रागयुक्त है अथवा राग रहित, इत्यादि सामान्य रूप का ही ग्रहण होता है। किंतु परपुरुष के चित्त का आलम्बन क्या है, इस विशेष का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि यह योगी के चित्त का ध्येय विषय नहीं होता। पर इस आलम्बन के सम्बन्ध में भी प्रणिधान, सयम करने से योगी को आलम्बन सहित परपुरुष के चित्त का ज्ञान होता ही है।

वृत्ति —तस्य परस्य यच्चित्त तत सालम्बन स्वकीयेनालम्बनेन सहित न शक्यते ज्ञातुम्, आलम्बनस्य केनचिल्लिङ्गेनाविषयीकृतत्वात्। लिङ्गाच्चित्तमात्र परस्यावगत न तु नीलविषयमस्य चित्त पीतविषयमिति वा।

यच्च न गृहीत तत्र सयमस्य कर्तुमशक्यत्वात् न भवति परचित्तस्य यो विषयस्तत्र ज्ञान, तस्मात् परकीयचित्त नालम्बनसहित गृह्यते, तस्यालम्बनस्यागृहीतत्वात्, चित्तधर्मा पुनर्गृह्यन्त एव। यदा तु किमनेनालम्बितमिति प्रणिधान करोति, तदा तत्सयमात्तद्विषयमपि ज्ञानम् उत्पद्यत एव ॥ २० ॥

तस्य = उस। परस्य = दूसरे मनुष्य का। यत् = जो। चित्त = चित्त है। तत् = वह परपुरुष का चित्त। सालम्बन = सालम्बन अर्थात् आलम्बन के साथ।

स्वकीयेन = अपने ही । आलम्बनेन = आलम्बन के । सहितं = साथ । ज्ञातुं = जानने में । न = नहीं । शक्यते = सम्भव है । आलम्बन सहित पर चित्त का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। क्योंकि । केनचित् = किसी । लिङ्गेन = लिङ्ग, चिह्न द्वारा । आलम्बनस्य = परपुरुष के चित्त का आलम्बन । अविदनीकृत-त्वात् = विषय रूप न होने के कारण, विषय न बनने के कारण । हि = क्योंकि । लिङ्गात् = लिङ्ग चिह्न द्वारा ही । परस्य = दूसरे मनुष्य के । चित्त-मात्र = केवल चित्त का, चित्त के सामान्य रूप का । अवगतं = ज्ञान होता है । तु = किन्तु । अस्य = इस परपुरुष का । चित्त = चित्त । नीलविषयं = नीलविषयक, नीलवर्ण को विषय बनाने वाला चिन्तन करने वाला । वा = अथवा । पीतविषयं = पीतविषय है । इति = इस रूप से अर्थात् आलम्बन सहित परचित्त का ज्ञान । न = नहीं सम्भव है । च = और । यत् = जिसका । न = नहीं । गृहीतं = ग्रहण किया गया है, जिसको विषय नहीं बनाया गया । है । तत्र = उस अगृहीत विषय में । संयमस्य = संयम का । कर्तुं = करना । अशक्यत्वात् = असम्भव होने के कारण । परचित्तस्य = परपुरुष के चित्त का । यः = जो । विषयः = विषय है । तत्र = उस विषय में । ज्ञानं = ज्ञान । न = नहीं । भवति = होता है । तस्मात् = इसलिये । परकीयचित्तं = दूसरे मनुष्य का चित्त । आलम्बनसहित = आलम्बन के साथ । न = नहीं । गृह्यते = ग्रहण किया जाता है । तस्य = उस चित्त के । आलम्बनस्य = आलम्बन का । अगृ-हीतत्वात् = गृहीत न होने के कारण; विषय न बनने के कारण । पुनः = फिर भी । चित्तधर्मा = चित्त के धर्म । गृह्यन्ते एव = ग्रहण किये ही जाते हैं । यदा = जब । तु = तो । अनेन = इस परपुरुष के चित्त के द्वारा । किं = किस विषय को । आलम्बितं = आलम्बन बनाया गया है । इति = इस रूप से, उस चित्त के आलम्बन में । प्रणिधानं = प्रणिधान, ध्यान । करोति = करता है । तदा = तब । तत् = उसमें । संयमात् = संयम करने से । तत = उस आलम्बन के । विषये = विषय में । अपि = भी । ज्ञानं = ज्ञान । उत्पद्यते एव = उत्पन्न होता ही है ॥ २० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = संयम से सिद्ध होने वाली दूसरी सिद्धि का। आह = निरूपण करते हैं।

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ २१ ॥

अर्थ—कायरूपसंयमात् = अपने शरीर के रूप में संयम करने से। तद् = उस शरीर के रूप में। ग्राह्यशक्तिस्तम्भे = पर पुरुष के चक्षु की ग्राह्यशक्ति के अवरुद्ध, रुक जाने पर। चक्षुष्प्रकाशासंयोगे = चक्षु इन्द्रिय के प्रकाश का योगी के शरीर के रूप के साथ सवन्ध न होने से। अन्तर्द्धान = योगी का शरीर अन्तर्धान, अन्तर्हित, अदृश्य हो जाता है। रूप का ग्रहण प्रकाशकारिणी चक्षु द्वारा होता है। अपने शरीर के रूप में संयम करने से योगी दूसरे मनुष्यों के नेत्रों की ग्राह्यशक्ति को स्तम्भित कर देता है। अतः पर पुरुषों की चक्षु के साथ योगी के शरीर गत रूपका सवन्ध न होने से उसका शरीर अदृश्य हो जाता है।

वृत्तिः—काय शरीर, तस्य रूप चक्षुर्ग्राह्यो गुण, तस्मिन्नस्त्यस्मिन्[1] काये रूपमिति संयमात्तस्य रूपस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा या शक्ति तस्या स्तम्भे भावनावशात् प्रतिबन्धे, चक्षुष्प्रकाशासंयोगे चक्षुष प्रकाश सत्त्वधर्म, तस्य असंयोगे तद्ग्रहणव्यापाराभावे योगिनोऽन्तर्द्धानं भवति, न केनचिदसौ दृश्यत इत्यर्थ। एतेनैव[2] रूपाद्यन्तर्द्धानोपायप्रदर्शनेन शब्दादीनां श्रोत्रादिग्राह्याणामन्तर्द्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

काय = काय। शरीर = शरीर है। तस्य = उस शरीर का। रूप = रूप। चक्षुर्ग्राह्य = चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जाने वाला। गुण = गुण

---

१ तस्मिन् तस्मिन् काये (पा०)।

२ केचन वाक्यमिदं 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तं वेदितव्यम्' इति सूत्रस्य वृत्तिरूपेण पठन्ति, तदसत्, न खलु एतेनेत्यादि वाक्यं सूत्ररूपम्, प्रत्युत भाष्यवाक्यम् (द्र०—३।२१)।

हैं। तस्मिन् = उस शरीर के रूप में अर्थात्। 'अस्मिन् = इस। काये = शरीर में। रूप = रूपनामक गुण। अस्ति = विद्यमान है।' इति = इस प्रकार। संयमात् = संयम करने से, धारणा-ध्यान-समाधि से। तस्य = उस शरीर के। रूपस्य = रूप की। चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा = चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण की जाने वाली। या = जो। शक्ति = शक्ति है। तस्या = उस शक्ति के। स्तम्भे = अवरुद्ध कर लेने पर अर्थात्। भावनावशात् = संकल्पमात्र से। प्रतिबन्धे = रोक लेने पर। चक्षुष्प्रकाशासंयोगे = चक्षु के प्रकाश का शरीरगत रूप के साथ संबन्ध न होने पर। प्रकाश = प्रकाश। चक्षुष = चक्षु का। सत्त्वधर्म = सत्त्वगुणविशिष्ट धर्म है, सात्त्विकगुण है। तस्य = उस चक्षु प्रकाश के। असंयोगे = रूप के साथ संयोग, संबन्ध न होने पर। तद्ग्रहणव्यापाराभावे = शरीर के रूप को ग्रहण करने वाले व्यापार के अभाव, शरीरगत रूप का चक्षु के प्रकाश से ग्रहण न होने पर। योगिन = योगी का शरीर। अन्तर्द्धान = अन्तर्हित, अदृश्य। भवति = हो जाता है। केनचित् = किसी मनुष्य के द्वारा। असौ = वह योगी। न = नहीं। दृश्यते = दिखलाई पड़ता। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। एतेन = इस। एव = ही। रूपान्तर्द्धानोपायप्रदर्शनेन = शरीर के रूप से अदृश्य होने के उपाय के वर्णन के द्वारा। श्रोत्रादिग्राह्याणा = श्रोत्र, त्वक् इत्यादि इन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले। शब्दादीना = शब्द, स्पर्श इत्यादि का। अन्तर्द्धान को। उक्त = कहा गया। वेदितव्य = समझना चाहिये अर्थात् शरीर के रूप में संयम करने की ही भाँति शब्द, स्पर्श इत्यादि में संयम करने से उस योगी के शब्द को कोई सुन नहीं सकता तथा उसका स्पर्श नहीं कर सकता ॥ २१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर=संयम से प्राप्त होने वाली दूसरी सिद्धि को। आह=बतलाते हैं।

सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानम-रिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

अर्थ—सोपक्रम = उपक्रम सहित, प्रारम्भ हुये, शीघ्र फल प्रदान करने वाले। च = और। निरुपक्रम = उपक्रम रहित, प्रारम्भ न हुये, विलम्ब से फल

प्रदान करने वाले। कर्म = दो प्रकार के कर्म हैं। तत् = उन द्विविध कर्मों में। संयमात् = संयम करने से। अपरान्तज्ञान = मृत्यु का ज्ञान होता है। वा = अथवा। अरिष्टेभ्य = आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक अरिष्टों, अशुभों से भी मृत्यु का ज्ञान होता है। मनुष्य की आयु का निर्धारण करने वाले दो प्रकार के कर्म हैं १—सोपक्रम—जो अपना फल देना आरम्भ कर चुके हैं। २—निरुपक्रम—जिनका फल प्रदान करना प्रारम्भ नहीं हुआ है। संयम से योगी को ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार के कर्म का फलभोग कितनी मात्रा में अवशिष्ट है और इस प्रकार उसे अपनी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि कर्मों के भोग के अन्तर ही देहसम्पात होता है।

वृत्ति—आयुर्विपाक यत् पूर्वकृत कर्म तत् द्विप्रकार, सोपक्रम निरुपक्रमञ्च, तत्र सोपक्रम यत् फलजननाय सहोपक्रमेण[1] कार्यकरणाभिमुख्येन वर्त्तते, यथा—उष्णप्रदेशे प्रसारितार्द्रवास शीघ्रमेव शुष्यति। उक्तविपरीत निरुपक्रमम्, यथा—तदेवार्द्रवास सर्वर्तितम् अनुष्णप्रदेशे चिरेण शुष्यति।

तस्मिन् द्विविधे कर्मणि य संयम करोति—किं मम कर्म शीघ्रविपाकम्, चिरविपाकं वा, एवं ध्यानदार्ढ्यादपरान्तज्ञानमस्योत्पद्यते। अपरान्त शरीर-वियोग, तस्मिन् ज्ञानम् अमुष्मिन् काले अमुष्मिन् देशे मम शरीरवियोगो भविष्यतीति निःसंशय जानाति।

अरिष्टेभ्यो वा—अरिष्टानि त्रिविधानि, आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि। तत्राध्यात्मिकानि—पिहितकर्ण कोष्ठ्यस्य वायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमादीनि। अधिभौतिकानि—अकस्माद् विकृतपुरुषदर्शनादीनि। आधिदैविकानि—अकाण्डे एव द्रष्टुमशक्यस्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि, तेभ्य शरीरवियोगकाल जानाति।

यद्यपि अयोगिनामप्यरिष्टेभ्य प्रायेण तज्ज्ञानमुत्पद्यते, तथापि तेषा सामान्याकारेण तत् संशयरूप, योगिना पुनर्नियतदेशकालतया प्रत्यक्षवदव्यभिचारि ॥ २२ ॥

---

१ उपक्रमेण कार्यकरणाभिमुख्येन सह वर्त्तते (पा०)

आयु = आयुरूपी। विपाक = विपाक, फल को प्रदान करने वाला। यत् = जो। पूर्वकृत = पूर्व जन्म में किया गया। कर्म = कर्म है। तत् = वह। द्विप्रकार = दो प्रकार का है। सोपक्रम = उपक्रम सहित। च = तथा। निरुपक्रम = उपक्रम रहित। तत्र = उन दोनों कर्मों में। सोपक्रम = वह सोपक्रम कर्म है। यत् = जो। फलजननाय = आयु रूप फल को उत्पन्न करने के लिये। उपक्रमेण सह = उपक्रम के साथ। कार्यकरणाभिमुख्येन = कार्यों को सपन्न करने की ओर। वर्त्तते = विद्यमान हैं अर्थात् पूर्व जन्म कृत जो कर्म अपने विपाक को प्रदान कर रहे हैं। यथा = जैसे। उष्णप्रदेशे = उष्ण, तापयुक्त स्थान में। प्रसारितार्द्रवास = फैलाया गया जल से विलिन्न, भीगा वस्त्र। शीघ्र = शीघ्र। एव = ही। शुष्यति = सूख जाता है। उक्तविपरीत = कहे गये, वर्णन किये गये सोपक्रम कर्म के विलोम। निरुपक्रम = निरुपक्रम कर्म है, जो अभी अपने विपाक को नहीं उत्पन्न कर रहे है। यथा = जैसे। तद् = वह। एव = ही। आर्द्रवास = जल से भीगा वस्त्र। अनुष्णप्रदेशे = उष्ण, ताप रहित स्थान में। संवर्तित = विद्यमान, फैलाया गया। चिरेण = देर में। शुष्यति = सूखता है। तस्मिन् = उस सोपक्रम तथा निरुपक्रम। द्विविधे = दो प्रकार के। कर्मणि = कर्म में। य = जो योगी। सयम = सयम। करोति = करता है। किं = क्या। मम = मेरे। कर्म = पूर्व जन्मकृत कर्म। शीघ्रविपाक = शीघ्र ही फल प्रदान करने वाले हैं। वा = अथवा। चिरविपाक = विलम्ब से, देर में फल प्रदान करने वाले हैं। एव = इस प्रकार उन कर्मों में सयम करने से। ध्यानदार्ढ्याद् = ध्यान की दृढता से। अस्य = इस योगी को। अपरान्तज्ञान = मृत्यु का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। अपरान्त = अपरान्त शब्द का अर्थ है। शरीरवियोग = शरीर का वियोग, शरीर का परित्याग। तस्मिन् = उस शरीर के वियोग के सम्बन्ध में। ज्ञान = ज्ञान अर्थात्। अमुष्मिन् = अमुक। काले = समय में। अमुष्मिन् = अमुक। देशे = देश में। मम = मेरा। शरीरवियोग = शरीर के साथ वियोग। भविष्यति = होगा। इति = इस रूप से। नि सशय = सशय रहित रूप से। जानाति = जानता है। वा = अथवा। अरिष्टेभ्य = अरिष्टों, अशुभों, अपशकुनों से भी मृत्यु का ज्ञान

होता है। अरष्टानि = अरिष्ट। त्रिविधानि = तीन प्रकार के हैं। आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि = आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। तत्र = उन त्रिविध अरिष्टों में। आध्यात्मिकानि = वे आध्यात्मिक अरिष्ट हैं। पिहितकरण = करण, इन्द्रिय, दोनों कर्णों को बन्द करने वाला पुरुष। कोष्ठस्य = कोष्ठस्थित, उदरस्थ, हृदय में विद्यमान। वायो = वायु के। घोष = शब्द को। न = नहीं सुनना। इति एवम् आदीनि = इत्यादि रूप से अन्य आध्यात्मिक अरिष्टों को समझना चाहिये। यथा = दोनों नेत्रों को बन्द कर लेने पर अन्त की ज्योति को नहीं देखता। आधिभौतिकानि = आधिभौतिक अरिष्ट हैं। अकस्माद् = सहसा, एकाएक। विकृतपु पदर्शनादीनि = यमदूत, भूत प्रेत इत्यादि तथा विकृत पुरुषों का दर्शन करना। आधिदैविकानि = वे आधिदैविक अरिष्ट हैं। अकाण्डे = असमय में, अकस्मात् रूप से। एव = ही। द्रष्टु = देखने में। अशक्य = असम्भव, असंभावित दर्शन वाले। स्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि = स्वर्ग इत्यादि पदार्थों का दर्शन है। तेभ्य = उन त्रिविध अरिष्टों के द्वारा। शरीरवियोगकाल = शरीर वियोग, देहसपात के समय को। जानाति = योगी जानता है। यद्यपि = यद्यपि। अयोगिना = अयोगी, योग की साधना न करने वाले पुरुषों को। अपि = भी। प्रायेण = प्राय। अरिष्टेभ्य = अरिष्टों के द्वारा। तत् = शरीर वियोग, मृत्यु का। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तथापि = फिर भी। तेषा = उन अयोगी पुरुषों को। सामान्याकारेण = सामान्य रूप में। तत् = उस शरीर वियोग का ज्ञान। सशयरूप = सशयात्मक, सदेहयुक्त होता है। पुन = किन्तु। योगिना = योगी पुरुषों का ज्ञान। नियतदेशकालतया = निश्चित स्थान एव निश्चित समय के रूप से। प्रत्यक्षवद् = प्रत्यक्ष ज्ञान के समान। अव्यभिचारि = सत्य, यथार्थ, निर्दोष होता है॥ २२॥

परिकर्मनिष्पादिता सिद्धी प्रतिपादयितुमाह—

परिकर्मनिष्पादिता = परिकर्मों से निष्पन्न, प्राप्त होने वाली। सिद्धी = सिद्धियों का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन करने के लिये आह = कहते हैं।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

अर्थ—मैत्र्यादिषु = मैत्री इत्यादि भावनाओं में, मैत्री, करुणा, मुदिता में सयम करने से। बलानि = मैत्रीबल, करुणाबल, मुदिताबल की प्राप्ति होती है।

वृत्ति—मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षासु यो विहित[1] सयमस्तद्बलानि तासा मैत्र्यादीना सम्बन्धीनि प्रादुर्भवन्ति, मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षास्तथास्य प्रकर्ष गच्छन्ति यथा सर्वस्य मित्रत्वादिकम् अय प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासु = मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा रूप भावनाओं में। य = जिस। सयम = सयम का। विहित = विधान, वर्णन किया गया है। उसी संयम को इन भावनाओं में करने से। तद्बलानि = उन मैत्री इत्यादि भावनाओं के बल की अर्थात्। तासा = उन। मैत्र्यादीना = मैत्री इत्यादि, मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा रूप भावनाओं को, भावनाओं से। सम्बन्धीनि = *संबन्ध रखने वाले बल। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होते हैं। अस्य = सयम करने* वाले इस योगी को। मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षा = मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा की भावनायें। तथा = इस रूप में। प्रकर्ष = प्रकृष्टरूप को, अत्यन्त प्रबल रूप को। गच्छन्ति = प्राप्त कर लेती हैं। यथा = कि। अय = यह योगी। सर्वस्य = सभी मनुष्यों का। मित्रत्वादिक = मित्रता इत्यादि को। प्रतिपद्यते = प्राप्त कर लेता है, अतिशयता की भावना से यह युक्त होता है तथा मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—
सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

अर्थ—बलेषु = गज, गरुड, सिंह, वायु इत्यादि के बल में सयम करने से। हस्तिबलादीनि = योगी को सयम से ही सम्बद्ध गज, गरुड, सिंह, वायु इत्यादि बल की प्राप्ति होती है।

---

१. विहित सयमस्तद् (पा०)।

वृत्ति —हस्त्यादिसम्बन्धिषु बलेषु कृतसंयमस्य तद्बलानि हस्त्यादिबलाविर्भवन्ति। तदयमर्थ —यस्मिन् हस्तिबले वायुवेगे सिंहवीर्ये वा तन्मयीभावेन अयं संयमं करोति [1]तत्तत्सामर्थ्ययुक्तं सत्त्वमस्य प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

हस्त्यादिसम्बन्धिषु = गज इत्यादि संबन्धी। बलेषु = बलों में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को, संयम करने पर। तद्बलानि = उन बलों को अर्थात्। हस्त्यादिबलाविर्भवन्ति = गज इत्यादि बल प्रकट होते हैं। तद् = वह। अयं = यह। अर्थ = अभिप्राय है। यस्मिन् = जिस। हस्तिबले = हाथी के बल में। वायुवेगे = वायु के वेग में। वा = अथवा। सिंहवीर्ये = सिंह के पराक्रम में। तन्मयीभावेन = तन्मयभाव से, एकाग्रभाव से। अयं = जब यह योगी। संयमं = संयम को। करोति = करता है। तत्तत्सामर्थ्ययुक्त = उन उन संयम किये गये बलों से युक्त, सदृश। अस्य = इस योगी का भी। सत्त्व = बल। प्रादुर्भवति = उद्भूत, अभिव्यक्त होता है। इति अर्थ- = यह अभिप्राय है ॥ २४ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

अर्थ —प्रवृत्त्यालोकन्यासात् = संयम द्वारा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का प्रकाश ज्ञेय पदार्थों पर डालने से। सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञान = परमाणु प्रकृति, महत्तत्त्व इत्यादि सूक्ष्म पदार्थों का, व्यवहित, अन्तर्हित, सागर के अन्तराल में निहित रत्न इत्यादि, भूमि के गर्भ में छिपे खनिज इत्यादि पदार्थों का विप्रकृष्ट, दूर देश में विद्यमान पदार्थों का ज्ञान, साक्षात्कार होता है।

वृत्ति —प्रवृत्तिविषयवती ज्योतिष्मती च प्रागुक्ता (१।३५-३६) तस्या य आलोक सात्त्विकप्रकाश तस्य निखिलेषु विषयेषु न्यासात् तद्वासितानां विषयाणां भावनात अन्त करणेषु इन्द्रियेषु च प्रकृष्टशक्तिमापन्नेषु सूक्ष्मस्य परमाण्वादे

[1] तत्सर्वं सामर्थ्ययुक्तत्वात् सर्वस्येति (पा०)।

व्यवहितस्य भूम्यन्तर्गतस्य निधानादे, विप्रकृष्टस्य मेरुपरपार्श्ववर्तिनो रसायना-देर्ज्ञानमुत्पद्यते ॥ २५ ॥

च = और । विषयवती = दिव्य विषयों का अनुभव करने वाली । ज्योतिष्मती = ज्योतिष्मती नाम की । प्रवृत्ति = प्रवृत्ति । प्राक् = पहले १।३५-३६ में । उक्ता = कही गई है । तस्या = उस ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का । य = जो । आलोक = प्रकाश है । सात्त्विकप्रकाश = सत्त्वगुण बहुल प्रकाश है । तस्य = उन प्रकाश का । निखिलेषु = समस्त । विषयेषु = विषयों में । न्यासात् = स्थापित करने से, रखने से । तद् = उस प्रकाश से । वासितानां = युक्त । विषयाणां = विषयों का । भावनात = भावना, संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से । अन्तःकरणेषु = अन्तःकरणों में । च = और । इन्द्रियेषु = इन्द्रियों में । प्रकृष्टशक्ति = अत्यधिक शक्ति के । आपन्नेषु = प्राप्त हो जाने पर, आजाने पर । सूक्ष्मस्य = अत्यन्त सूक्ष्म । परमाण्वादे = परमाणु इत्यादि का । व्यवहितस्य = व्यवधानयुक्त, अन्तर्हित, छिपे हुये । भूम्यन्तर्गतस्य = पृथिवी के गर्भ, भीतर में, विद्यमान । निधानादे = सुवर्ण इत्यादि खनिजपदार्थों का । विप्रकृष्टस्य = दूरस्थ विद्यमान पदार्थों का अर्थात् । मेरुपरपार्श्ववर्तिन = सुमेरु पर्वत के दूसरी ओर विद्यमान । रसायनादेः = रसायन, औषधि इत्यादि का । ज्ञान = ज्ञान । उत्पद्यते = उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

एतत्समानवृत्तान्तसिद्ध्यन्तरमाह—

एतत्समानवृत्तान्तसिद्ध्यन्तरं = इसी के सदृश विषय वाली दूसरी सिद्धि का । आह = वर्णन करते हैं ।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

अर्थ—सूर्ये = सूर्य में । संयमात् = संयम करने से । भुवनज्ञानं = समस्त भुवनों, लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है ।

वृत्ति—सूर्ये प्रकाशमये[2] यः संयमं करोति तस्य सप्तभूर्भुवःस्वःप्रभृतिषु

१. रसायनादे (पा०) ।

२. सूर्यप्रकाशमये इति पाठान्तरमनाथ् ।

लोकेषु यानि भुवनानि तत्तत्सन्निवेशभाञ्जि पुराणि,[1] तेषु यथावदस्य ज्ञानमुत्पद्यते। पूर्वस्मिन् सूत्रे सात्त्विकप्रकाश आलम्बनतयोक्त, इह तु भौतिक इति विशेष ॥ २६ ॥

प्रकाशमये = प्रकाशमान्, सदैव प्रकाशित रहने वाले। सूर्ये = सूर्य में। य = जो योगी। संयम = संयम। करोति = करता है। तस्य = उस योगी को। सप्त = सात। भूर्भुव स्व = भू, भुव, स्व। प्रभृतिषु = इत्यादि मह, जन, तप, सत्य। लोकेषु = लोकों में। यानि = जो। भुवनानि = भुवन हैं। तत्तत् सन्निवेशभाञ्जिस्थानानि = उन-उन सन्निवेशों से युक्त स्थान हैं। तेषु = उन स्थानों के विषय में। अस्य = इस योगी को। यथावत् = अच्छी प्रकार से। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न हो जाता है। पूर्वस्मिन् = इससे पूर्व के। सूत्रे = ३।२५ सूत्र में। आलम्बनतया = आलम्बन के रूप से। सात्त्विकप्रकाश = सत्त्वगुण विशिष्ट प्रकाश का, ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का। उक्त = वर्णन किया गया है। इह तु = यहाँ पर तो। भौतिक = भौतिकप्रकाश में संयम का वर्णन किया जाता है। इति = यह। विशेष = विशेषता, भेद है ॥ २६ ॥

भौतिकप्रकाशान्तरालम्बनद्वारेण सिद्ध्यन्तरमाह—

भौतिकप्रकाशान्तरालम्बनद्वारेण = भौतिक प्रकाश के विषय में संयम करने से प्राप्त होने वाली। सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

अर्थ—चन्द्रे = चन्द्रमा में संयम करने से। ताराव्यूहज्ञान = नक्षत्रों के व्यूह, विशिष्ट सन्निवेश, विशेष स्थिति का ज्ञान होता है।

वृत्ति—ताराणां ज्योतिषां यो व्यूहो विशिष्ट सन्निवेशस्तस्य[2] चन्द्रे कृतसंयमस्य ज्ञानमुत्पद्यते। सूर्यप्रकाशेन हततेजस्कत्वात्ताराणां सूर्यसंयमात्तज्ज्ञानं न शक्यं भवितुमर्हतीति पृथगुपायोऽभिहित ॥ २७ ॥

ताराणां = ताराओं अर्थात्। ज्योतिषां = प्रकाशयुक्त नक्षत्रों का। य =

---

१ स्थानानि (पा०)।

२ तस्मिन् चन्द्रे (पा०)।

जो। व्यूह = व्यूह है अर्थात्। विशिष्ट = विशेष। सन्निवेश = सनिवेश, सस्थान, स्थिति है। तस्य = उस नक्षत्रो के व्यूह का। चन्द्रे = चन्द्रमा में। कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी को। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। सूर्य्यप्रकाशेन = सूर्य के प्रखर प्रकाश से। ताराणा = नक्षत्रो का। हततेजस्कत्वात् = तेज, प्रकाश के अभिभूत हो जाने के कारण। सूर्य्यसयमात् = सूर्य में सयम करने से। तत् ज्ञान = उन नक्षत्रो के व्यूह का ज्ञान। न = नही। शक्य = सभव है अर्थात्। भवितु = प्राप्त करने में। अर्हति = (नही) योग्य है अर्थात् सूर्य के प्रखर प्रकाश के कारण नक्षत्रों का तेज पूर्णत अभिभूत हो जाता है। अत सूर्य में संयम करने से उन नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नही है। इति = इसलिए। पृथगुपाय = नक्षत्रों के व्यूहज्ञान के लिये भिन्न उपाय, चन्द्र में सयम करना। अभिहित = कहा गया है ॥ २७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

अर्थः—ध्रुवे = निश्चल, स्थिर ध्रुवनक्षत्र में सयम करने से। तद्गतिज्ञान = उन नक्षत्रो की गति का ज्ञान प्राप्त होता है।

वृत्ति—ध्रुवे निश्चले ज्योतिषा प्रधाने कृतसयमस्य तासा ताराणा या गति प्रत्येक नियतकाला नियतदेशा च, तस्या ज्ञानमुत्पद्यते, इय तारा, अय ग्रह-इयता कालेनामु राशिम् इद नक्षत्र यास्यतीति सर्व जानाति। इद कालज्ञानस्य फलमुक्त भवति ॥ २८ ॥

ज्योतिषा = कान्तियुक्त नक्षत्रों में। प्रधाने = प्रमुख। निश्चले = स्थिर, गति रहित। ध्रुवे = ध्रुव नक्षत्र में। कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी को। तासा = उन। ताराणा = नक्षत्रो की। या = जो। गति = गति है। प्रत्येक = प्रत्येक नक्षत्र की। नियतकाला = निश्चित समय। च = और। नियत-देशा = निश्चित स्थान सम्बन्धी जो गति है। तस्या = उस गति का। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है अर्थात्। इय = यह। तारा = तारा। अय =

यह। ग्रह = ग्रह। इयता = इतने। कालेन = समय में। अमु = इस। राशि = राशि पर। इद = इस। नक्षत्र = नक्षत्र पर। यास्यति = जायेगा। इति = इस रूप से। सर्वं = नक्षत्रों की गति के विषय में सब कुछ। जानाति = वह योगी जानता है। इद = यह। कालज्ञानस्य = काल ज्ञान का। फल = फल। उक्त भवति = कहा गया॥ २८॥

बाह्या सिद्धी प्रतिपाद्य अन्तरा सिद्धी प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

बाह्या = बाह्य। सिद्धी = सिद्धियों का। प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करके। अन्तरा = अन्त। सिद्धि = सिद्धियों का। प्रतिपादयितु = प्रतिपादन करने के लिये। उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्॥ २९॥

अर्थ—नाभिचक्र = नाभिस्थित षोडश अरों वाले चक्र में संयम करने से। कायव्यूहज्ञान = कायव्यूह, शरीर संस्थान, शरीर में विद्यमान वातपित्तकफ, रक्त, मज्जा इत्यादि विशिष्ट रस, नाडियों की स्थिति का सम्यक् ज्ञान होता है। नाभिचक्र में ही शरीर की समस्त नाडियाँ सम्बधित हैं। अतः इसमें संयम करने से कायव्यूह का ज्ञान होता है।

वृत्ति—शरीरमध्यवर्ति नाभिसंज्ञकं यत् षोडशारं चक्रं तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः कायगतो व्यूहो विशिष्टरस-मल-धातु-नाड्यादीनामवस्थानं, तत्र ज्ञानमुत्पद्यते। इदमुक्तं भवति—नाभिचक्रं शरीरमध्यवर्ति सर्वतः प्रसृतानां नाड्यादीनां मूलभूतम्, अतस्तत्र कृतावधानस्य समग्रसन्निवेशो यथावद् आभाति॥ २९॥

शरीरमध्यवर्ति = शरीर के मध्य में विद्यमान। नाभिसंज्ञकं = नाभि नाम वाला। यत् = जो षोडशार = सोलह अरों वाला। चक्र = चक्र है। तस्मिन् = उस नाभिचक्र में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले। योगिनः योगी को कायगत = शरीर में विद्यमान। व्यूह = व्यूह, विशिष्ट संनिवेश अर्थात्। विशिष्टरसमलधातुनाड्यादीनां = विशेष प्रकार के रस, रक्त, मज्जा, मल वातपित्तकफरूप त्रिविध धातुओं का, नाडी इत्यादि की। अवस्थान = स्थिति, सनिवेश है। तत्र = उस व्यूह के सबन्ध में। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न

होता है। इदम् उक्त भवति = यह अभिप्राय है। शरीरमध्यवर्ति = शरीर के मध्य भाग में विद्यमान। नाभिचक्र = नाभिचक्र। सर्वत. = शरीर में चारो तरफ। प्रसृताना = व्याप्त, फैली हुई। नाड्यादीना = नाडी इत्यादि का। मूल-भूत = मूल है। अत = इसलिये। तत्र = उस नाभिचक्र मे। कृतावधानस्य = ध्यान करने वाले, सयम करने वाले योगी को। समग्रसन्निवेश = शरीर का समस्त अवयवसस्थान, व्यूह। यथावद् = अच्छी प्रकार से। आभाति = प्रकाशित होता है, ज्ञान प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्धचन्तर = सयम से प्राप्त होने वाली दूसरी आन्तरिक सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्ति ॥ ३० ॥

अर्थ—कण्ठकूपे = कण्ठकूप में सयम करने से। क्षुत्पिपासानिवृत्ति = बुभुक्षा तथा प्यास की निवृत्ति, निराकरण होता है।

वृत्ति—कण्ठे गले कूप कण्ठकूप, जिह्वामूले जिह्वातन्तोरधस्तात्[1] कूप इव कूपो गर्ताकारप्रदेश, प्राणादेर्यत्सम्पर्कात् क्षुत्पिपासादय प्रादुर्भवन्ति, तस्मिन् कृतसयमस्य योगिन क्षुत्पिपासादयो निवर्त्तन्ते, घण्टिकाधस्तात् स्रोतसा धार्य-माणे तस्मिन् भाविते भवत्येवविधा सिद्धि ॥ ३० ॥

कण्ठे = कण्ठ में अर्थात्। गले = गले में। कूप है। कण्ठ कूप = उसे कण्ठ-कूप कहते हैं। जिह्वामूले = जिह्वा के मूल भाग में। अर्थात्। जिह्वातन्तो = जिह्वा तन्तु के। अधस्तात् = नीचे। कूप इव = कूप के समान। कूप = जो कूप है। गर्ताकारप्रदेश = गर्त, गढ्ढे की आकृति का जो रिक्त स्थान है, उसे ही कण्ठकूप कहते हैं। प्राणादे = प्राण वायु इत्यादि का। यत् = जिस कण्ठकूप से। सम्पर्कात् = स्पर्श होने पर। क्षुत्पिपासादय = क्षुधा तथा प्यास इत्यादि की। प्रादुर्भवन्ति = उत्पत्ति होती है। तस्मिन् = उस कण्ठकूप में। कृतसयमस्य =

---

1 जिह्वातोऽधस्तात् (पा०)।

सयम करने वाले। योगिन = योगी की। क्षुत्पिपासादय = क्षुधा तथा प्यास इत्यादि। निवर्त्तन्ते = निवृत्त, दूर हो जाते हैं, उस योगी को क्षुधा-तृषा की अनुभूति नही होती। घण्टिकाधस्तात् = कण्ठ की घण्टिका के नीचे। स्रोतसा = स्रोत रूप से निरन्तर। धार्य्यमाणे = धारण करने पर। तस्मिन् = उसमें सयम की। भाविते = भावना करने पर। एवविधा = इस प्रकार की, क्षुधातृषा को निवृत्त करने वाली। सिद्धि = सिद्धि। भवति = होती है॥ ३०॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

कूर्मनाड्या स्थैर्य्यम्॥ ३१॥

अर्थ—कूर्मनाड्या = कण्ठकूप के नीचे विद्यमान कूर्म आकार की नाडी में सयम करने से। स्थैर्य्य = शरीर तथा चित्त की स्थिरता होती है।

वृत्ति—कण्ठकूपस्याधस्ताद् या कूर्माख्या नाडी तस्या कृतसयमस्य चेतस स्थैर्य्यमुत्पद्यते, तत्स्थानमनुप्रविष्टस्य चञ्चलता न भवतीत्यर्थ, यदि वा—कायस्य[1] स्थैर्य्यमुत्पद्यते न केनचित् स्पन्दयितु शक्यत इत्यर्थ॥ ३१॥

कण्ठकूपस्य = कण्ठ कूप के। अधस्ताद् = अधो भाग में, नीचे। या = जो। कूर्माख्या = कूर्म नाम वाली। नाडी = नाडी है। तस्या = उस कूर्म नाडी में। कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी के। चेतस = चित्त की। स्थैर्य्य = स्थिरता। उत्पद्यते = उत्पन्न होती है। तत्स्थान = उस कूर्म नाडी में। अनुप्रविष्टस्य=प्रवेश प्राप्त कर लेने वाले योगी की। चञ्चलता=चित्त की चञ्चलता। न = नही। भवति = होती है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। यदि वा = अथवा। कायस्य = शरीर की। स्थैर्य्य = स्थिरता। उत्पद्यते = कूर्म नाडी में सयम करने से उत्पन्न होती है। केनचित् = किसी भी अन्य कारण के द्वारा। स्पन्दयितु = स्पन्दनशील, चञ्चल, चेष्टा, क्रिया वाला करने में। न = नही। शक्यते = सभव है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है॥ ३१॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

---

१ काये (पा०)।

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = बतलाते हैं।

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मूर्द्धज्योतिषि = मूर्द्धा की ज्योति में संयम करने से। सिद्धदर्शन = पृथ्वी एवं आकाश के अन्तराल में विद्यमान सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है।

वृत्ति—शिर कपाले ब्रह्मरन्ध्राख्ये छिद्रे प्रकाशाधारत्वाज् ज्योतिषि, यथा गृहाभ्यन्तरस्थस्य मणे प्रसरन्ती प्रभा कुञ्चिताकारेव[1] सर्वप्रदेशे सङ्घटते, तथा हृदयस्थ सात्त्विक प्रकाश प्रसृतस्तत्र सम्पिण्डितत्व भजते। तत्र कृतसंयमस्य ये द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिन सिद्धा दिव्या पुरुषा तेषामितरप्राणिभिरदृश्याना, तस्य दर्शन भवति, तान् पश्यति तैश्च स सम्भाषत[2] इत्यर्थ ॥ ३२ ॥

शिर कपाले = शिर के कपाल में। ब्रह्मरन्ध्राख्ये = ब्रह्मरन्ध्र नाम वाले छिद्रे = छिद्र में। प्रकाशाधारत्वात् = प्रकाश का आधार, पुञ्जीभूत केन्द्र होने के कारण। ज्योतिषि-ज्योति, प्रकाश रूप मूर्द्धा में। यथा = जैसे। गृहाभ्यन्तरस्थस्य = गृह के भीतर विद्यमान। मणे = मणि की। कुञ्चिताकारा = कुञ्चित आकार वाली, पिण्डरूप। प्रसरन्ती = चारो तरफ फैलती हुई। प्रभा = प्रभा, ज्योति। सर्वप्रदेशे = सभी स्थानों में, गृह के सभी भागो में। सङ्घटते = फैलती है। तथा = उसी प्रकार। हृदयस्थ = हृदय में विद्यमान। सात्त्विक = सत्त्वगुण-विशिष्ट। प्रकाश = प्रकाश। प्रसृत = सर्वत्र फैला हुआ। तत्र = उस मूर्द्धास्थान में। सम्पिण्डितत्व = पिण्डरूप, पुञ्जीभूत रूप को। भजते = प्राप्त करता है। तत्र = उस मूर्द्धा की ज्योति में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। द्यावापृथिव्यो = द्युलोक तथा पृथिवी लोक के। अन्तरालवर्तिन = मध्य में विद्यमान। ये = जो। सिद्धा = सिद्ध। दिव्या = दिव्य। पुरुषा = पुरुष हैं। इतरप्राणिभि = अन्य सामान्य प्राणियों के द्वारा। अदृश्याना = न देखे जाने वाले। तेषा = उन सिद्ध, दिव्य पुरुषों का। तस्य = उस संयमी योगी को। दर्शन = दर्शन। भवति = होता है। तान् = उन दिव्य पुरुषों को। पश्यति =

---

१ कुञ्चिकाविवरप्रदेशे (पा०)।

२ सभाष्यते इति केषुचिन् संस्करणेषु पठ्यते, पाठोऽयमसाधु।

च = और। तैं = उन दिव्य पुरुषों से। सम्भाषते = वार्तालाप करता है। इति अर्थः = यह अभिप्राय है॥ ३२॥

सर्वज्ञत्व उपायमाह—

सर्वज्ञत्व = सर्वज्ञता के। उपाय = उपाय को। आह = कहते हैं।

प्रातिभाद्वा सर्वम्॥ ३३॥

अर्थ—वा = अथवा। प्रातिभात् = प्रातिभ नामक ज्ञान उत्पन्न होने से। सर्वं = योगी भूत-वर्तमान-भविष्यत्कालीन, व्यवहित-अन्तर्हित, दूरस्थ-निकटस्थ, स्थूल-सूक्ष्म समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानता है।

वृत्ति—निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यम् अविसंवादकं प्रागुत्पद्यमानं[1] ज्ञानं प्रतिभा, तस्यां संयमे क्रियमाणे प्रातिभं विवेकख्यातेः पूर्वभावि तारकं ज्ञानमुदेति, यथा उदेष्यति सवितुः पूर्वं प्रभा प्रादुर्भवति, तद्वद् विवेकख्यातेः पूर्वं तारकं सर्वविषयं ज्ञानमुत्पद्यते, तस्मिन् सति संयमान्तरानपेक्षः सर्वं जानातीत्यर्थः॥ ३३॥

निमित्तानपेक्षं = किसी निमित्त की अपेक्षा न रखते हुए, निमित्त के बिना ही। मनोमात्रजन्यं = केवल बुद्धि से उत्पन्न। अविसंवादकं = विरोध रहित। प्रागुत्पद्यमानं = विवेक ख्याति से पहले उत्पन्न होने वाला। ज्ञानं = ज्ञान। प्रतिभा = प्रतिभा है। तस्यां = उस प्रतिभा में। संयमे = संयम के। क्रियमाणे = करने पर। विवेकख्याते = विवेकख्याति से। पूर्वभावि = पूर्व उत्पन्न होने वाला। तारकं = सभी दुःखों, क्लेशों से पार करने वाला, मुक्ति प्रदान करने वाला। प्रातिभं = प्रातिभ नाम का। ज्ञानं = ज्ञान। उदेति = उत्पन्न होता है। यथा = जैसे। उदेष्यतः = उदित होते हुए। सवितुः = सूर्य से। पूर्वं = प्रथम। प्रभा = प्रभा। प्रादुर्भवति = उद्भूत, उत्पन्न होती है। तद्वद् = उसी प्रकार। विवेकख्याते = विवेक ख्याति, प्रकृतिपुरुष विवेक से। पूर्वं = पहले। तारकं = दुःख क्लेश इत्यादि से तारने वाला, उत्तीर्ण करने वाला। सर्वविषयं = भूत-वर्तमान-भविष्य, व्यवहित, अन्तर्हित, सूक्ष्म इत्यादि सभी विषयों के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करने वाला। ज्ञानं = प्रातिभ नाम का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तस्मिन्

1 प्रागुत्पद्यमानं (पा०)।

सति = उस प्रातिभ ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर। संयमान्तरानपेक्ष = सूर्य-चन्द्र-नाभिचक्र-कूर्मनाडी इत्यादि अन्य पदार्थों में संयम की अपेक्षा के बिना ही, संयम न करने पर भी। सर्वं = समस्त, पदार्थों के स्वरूप को। जानाति = प्रातिभज्ञानयुक्त योगी जानता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ ३३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि का। आह = निरूपण करते है।

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

अर्थ —हृदये = हृदय में संयम करने से। चित्तसंवित् = स्व तथा पर पुरुष के चित्त के स्वरूप का अच्छी प्रकार ज्ञान होता है।

वृत्ति —हृदय शरीरस्य प्रदेशविशेष, तस्मिन्नधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाभ्यन्तरेऽन्त करणसत्त्वस्य स्थान, तत्र कृतसंयमस्य स्व-परचित्तज्ञानमुत्पद्यते, स्वचित्तगता सर्वा वासना, परचित्तगतांश्च रागादीन् जानातीत्यर्थ ॥ ३४ ॥

हृदय = हृदय। शरीरस्य शरीर का। प्रदेशविशेष = एक विशेष स्थान, अग है। तस्मिन् = उस हृदय में अर्थात्। अधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाभ्यन्तरे = नीचे की ओर मुख किये हुए लघु पुण्डरीक, कमल के भीतर। अन्त करणसत्त्वस्य = सत्त्वगुणप्रधान अन्त करण चित्त का। स्थान = स्थान है। तत्र = उस हृदय में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। स्वपरचित्तज्ञान = स्वकीय चित्त तथा परकीय चित्त का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। स्वचित्तगता अपने चित्त में रहने वाली। सर्वा = सभी। वासना = वासनाएँ। च = तथा। परचित्तगतान् = दूसरे मनुष्य के चित्त में विद्यमान। रागादीन् = राग, द्वेष इत्यादि भावनाओं को। जानाति = जानता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है।

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरीसिद्धि को। आह = बतलाते हैं ॥ ३४ ॥

सत्त्व-पुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयो प्रत्ययाविशेषो भोग परार्थान्यस्वार्थसंयमात्[1] पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

---

१ परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् इत्येव बहुसमत सूत्रपाठ।

अर्थ —अत्यन्तासङ्कीर्णयो = नितान्त, अत्यन्त भिन्न, पृथक्। सत्त्वपुरुषयो = सत्त्व बुद्धि तथा पुरुष का। प्रत्ययविशेष = समान प्रत्यय, अभेद रूप, ऐक्य रूप मे प्रतीति ही। भोग = भोग है। परार्थात् = परार्थ की अपेक्षा। स्वार्थसयमात = स्वार्थ में सयम करने से। पुरुषज्ञान = पुरुष के स्वरूप का ज्ञान होता है अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान त्रिगुणात्मिका अचेतन प्रकृति का परिणाम बुद्धि है। अत = बुद्धि सत्त्वगुण बहुल, अचेतन परिणामी, भोग्य है। किंतु इसके विपरीत पुरुष चेतन, परिणामी, त्रिगुणातीत असङ्ग, उदासीन, अकर्ता इत्यादि है। अनादि अविद्या के कारण ही परस्पर अत्यन्त भिन्न इन दोनों में तादात्म्य की प्रतीति होती है—तस्य हेतुरविद्या २।२४। इसी ऐक्य रूप की प्राप्ति के कारण बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतन असङ्ग पुरुष तद्गत सुखदुखमोह इत्यादि समस्त धर्मों को अपने में उपचरित कर लेता है। बुद्धि एवं पुरुष में यही अभेद की प्रतीति ही भोग है। यह अभेद की वृत्ति यद्यपि बुद्धिका धर्म है तथापि पुरुष के लिये भोग सपन्न करने के कारण परार्थ है। किंतु बुद्धि की जो वृत्ति पुरुष के स्वरूप को ही विषय बनाती है, वह स्वार्थ वृत्ति है। अत परार्थवृत्ति से भिन्न इस स्वार्थ वृत्ति में सयम करने से पुरुष के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है, शुद्ध-निर्विकारी चिन्मात्र पुरुष का ग्रहण होता है।

वृत्ति —सत्त्व प्रकाशसुखात्मक प्राधानिक परिणामविशेष, पुरुषो भोक्ता अधिष्ठातृरूप, तयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोर्भोग्य-भोक्तृरूपत्वाद् अचेतनचेतनत्वाच्च भिन्नयोर्य प्रत्ययस्याविशेषो भेदेनाप्रतिभासन तस्मात्, सत्त्वस्यैव कर्तृताप्रत्ययेन या सुखदुखसवित् स भोग।

सत्त्वस्य स्वार्थनैरपेक्ष्येण परार्थ पुरुषार्थनिमित्त, तस्माद् अन्यो य स्वार्थ पुरुषस्वरूपमात्रालम्बन परित्यक्ताहङ्कारसत्त्वे या चिच्छायासक्रान्तिस्तत्र कृत-सयमस्य पुरुषविषय ज्ञानमुत्पद्यते, तत्र तदेव रूप स्वालम्बन ज्ञान सत्त्वनिष्ठ[1] पुरुषो जानातीत्यर्थ। न पुन पुरुषो ज्ञाता ज्ञानस्य विषयभावमापद्यते, ज्ञेयत्वा-पत्ते, ज्ञातृ-ज्ञेयत्वयोरत्यन्तविरोधात्॥ ३५॥

१ सत्त्वनिष्ठ पुरुषो (पा०)।

सत्त्व = बुद्धि, चित्त। प्रकाशसुखात्मक = प्रकाश एवं सुखस्वरूप। प्राधानिक = प्रधान, प्रकृति का। परिणामविशेष = विशिष्ट, उत्कृष्टतम प्रथम परिणाम, विकार है। पुरुष = पुरुष। भोक्ता = भोक्ता। तथा। अधिष्ठातृरूप = चेतन अधिष्ठाता, नियन्ता स्वरूप वाला है। अत्यन्तासङ्कीर्णयो = नितान्त पृथक् भिन्न। तयो = उन बुद्धि एवं पुरुष का अर्थात्। भोग्यभोक्तृरूपत्वाद् = भोग्य तथा भोक्ता रूप से। च = और। अचेतनचेतनत्वात् = अचेतन तथा चेतन रूप होने से। भिन्नयो = भिन्न स्वरूप वाले बुद्धि तथा पुरुष का। य = जो। प्रत्ययस्य = प्रत्यय, ज्ञान को। अविशेष = अविशेषता समानता अर्थात्। भेदेन = भेद के रूप में। अप्रतिभासन = न प्रकाशित होता है। तस्मात् = उसी अभेद की प्रतीति से। सत्त्वस्य = बुद्धि के। एव = ही। कर्तृता = कर्तृत्व। प्रत्ययेन = प्रत्यय, व्यापार से अर्थात् यथार्थत बुद्धि के ही कर्त्री होने पर। या = जो। सुखदु खसंवित् = सुख, दु ख इत्यादि का ज्ञान है। स = वही। भोग = भोग है, पुरुष के लिये भोग है। सत्त्वस्य = बुद्धि का। स्वार्थनैरपेक्ष्येण = स्वकीय प्रयोजन की अपेक्षा न होने से। परार्थ = कर्मत्व, भोग रूप, व्यापार पदार्थ, दूसरे के लिये है अर्थात्। पुरुषार्थनिमित्त = पुरुष के भोग रूप प्रयोजन के लिये है। तस्माद् = उस परार्थ, भोग रूप वृत्ति से। अन्य = अन्य, भिन्न। य = जो। स्वार्थ = स्वार्थ है। अर्थात्। पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः = पुरुष के केवल चिन्मात्र स्वरूप को आलम्बन, विषय बनाना है अर्थात् पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप को विषय बनाने वाली चित्त की वृत्ति स्वार्थ है। परित्यक्ताहङ्कारसत्त्वे=अहंकार का परित्याग करने वाली बुद्धि में। या = जो। चिच्छायासङ्क्रान्ति = चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब है। तत्र = उसमें। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। पुरुषविषय = पुरुष के स्वरूप के सम्बन्ध में। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तत्र = उस बुद्धि में। तद् एव = इस प्रकार से। स्वं = चेतन मात्र पुरुष के स्वरूप को। स्वालम्बन = अपने ही स्वरूप को आलम्बन बनाने वाले। सत्त्वनिष्ठ = बुद्धि में विद्यमान। ज्ञान = *ज्ञान यथार्थ स्वरूप को। पुरुष = योगी* पुरुष। जानाति = जानता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। पुन = फिर। पुरुष = पुरुष। ज्ञाता = ज्ञाता। ज्ञानस्य = और ज्ञान के। विषयभाव = विषय

भाव रूप को। न = नहीं। आपद्यते = प्राप्त करता है। ज्ञातृज्ञेयत्वयो = ज्ञाता तथा ज्ञेय में। अत्यन्तविरोधात् = अत्यन्त विरोध, पार्थक्य, भेद होने के कारण। ज्ञेयत्वापत्ते = ज्ञेयत्व की प्राप्ति, स्वरूप ज्ञान की उपलब्धि हो जाने पर वह पुरुष पुन ज्ञाता तथा ज्ञान के रूप को नही प्राप्त होता ॥ ३५ ॥

अस्यैव सयमस्य फलमाह—

अस्य = इस। एव = ही। सयमस्य = सयम के। फल = फल को। आह = बतलाते हैं।

तत. प्रातिभ-श्रावण-वेदनादर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

अर्थ —तत = पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप को विषय बनाने वाली स्वार्थ वृत्ति में संयम करने से। प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता = प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता नाम वाली छ सिद्धियाँ। जायन्ते = प्रकृतिपुरुष विवेक-ख्याति से पहले हो उत्पन्न होती हैं। स्वार्थ समय का प्रधान प्रयोजन पुरुष स्वरूपदर्शन, स्वरूप साक्षात्कार ही है। किंतु उससे पूर्व इन छ सिद्धियों की उद्भूति होती है।

वृत्ति —तत पुरुषसयमादभ्यस्यमानाद् व्युत्थितस्यापि ज्ञानानि जायन्ते। तत्र प्रातिभं पूर्वोक्त ज्ञान, तस्याविर्भावनात् सूक्ष्मादिकमर्थं पश्यति। श्रावण श्रोत्रेन्द्रियज ज्ञान, तस्माच्च प्रकृष्ट दिव्य शब्द जानाति। वेदना[1] स्पर्शेन्द्रियज ज्ञान, वेद्यतेऽनयेति कृत्वा तान्त्रिक्या सज्ञया व्यवह्रियते, तस्माद् दिव्यस्पर्शविषय ज्ञान समुपजायते। आदर्शश्चक्षुरिन्द्रियज ज्ञानम्, आ समन्तात् दृश्यतेऽनुभूयते रूपमनेनेति कृत्वा, तस्य प्रकर्षाद्दिव्य रूपज्ञानमुत्पद्यते। आस्वादो रसनेन्द्रियज ज्ञानम्, आस्वाद्यतेऽनेनेति कृत्वा, तस्मिन् प्रकृष्टे दिव्ये रसे सविदुपजायते[2]। वार्ता गन्धसवित्, वृत्तिशब्देन तान्त्रिक्या परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्त्तते गन्धविषये इति वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्ता गन्धसवित्, तस्या प्रकृष्यमाणाया दिव्यगन्धोऽनुभूयते ॥ ३६ ॥

---

१ वेदनेति अकारान्तोऽय शब्द इति भाष्यत प्रतीयते।

२ दिव्यरससविद् (पा०)।

तत = उस स्वार्थ संयम से। पुरुषसंयमाद् = पुरुष के चिन्मात्र स्वरूप में संयम के। अभ्यस्यमानाद् = अभ्यास करने से। व्युत्थितस्य = व्युत्थान, विक्षेपयुक्त चित्त वाले पुरुष को। अपि = भी। ज्ञानानि = ज्ञान, सिद्धियाँ। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। तत्र = उन षड्विध ज्ञान, सिद्धियों। प्रातिभ = प्रातिभ नामक ज्ञान। पूर्वोक्त = ३।३३ में पहले वर्णन किया गया। ज्ञानं = ज्ञान है। अस्य = उस प्रातिभ ज्ञान के। आविर्भवनात्=उद्भूत, प्रकट होने से। सूक्ष्मादिक = सूक्ष्म इत्यादि, सूक्ष्म, व्यवहित, अनभिव्यक्त, इत्यादि त्रैकालिक समस्त। अर्थ = पदार्थों को। पश्यति=देखता है। श्रावण = श्रावण नाम की सिद्धि। श्रोत्रेन्द्रियज = श्रोत्र इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाला। ज्ञान = ज्ञान है। च = और। तस्मात् = उस श्रावण ज्ञान से। प्रकृष्ट = उत्कृष्ट एव। दिव्य = दिव्य, अलौकिक। शब्द = शब्द को। जानाति = जानता है, सुनता है। वेदना = वेदना नामक सिद्धि। स्पर्शेन्द्रियज = स्पर्श इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञान = ज्ञान है। अनया = इस वेदना सिद्धि के द्वारा। वेद्यते = दिव्य स्पर्श का ज्ञान होता है। इति = ऐसा। कृत्वा = करके, इस विचार से। तान्त्रिकया = तन्त्र, शास्त्र की। संज्ञया = संज्ञा, नाम से। व्यवह्रियते=व्यवहार किया जाता है अर्थात् प्रस्तुत शास्त्र में इसे वेदना कहते हैं। तस्माद् = उस वेदना से। दिव्यस्पर्शविषय = दिव्य स्पर्श विषयक, अलौकिक स्पर्श को ग्रहण करने वाला। ज्ञान = ज्ञान। समुपजायते = उत्पन्न होता है। आदर्श = आदर्श नाम की सिद्धि। चक्षुरिन्द्रियज = चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञान = ज्ञान है। अनेन = इस आदर्श के द्वारा। आ समन्तात्=चारों तरफ से। दृश्यते= देखा जाता है। अनुभूयते=अनुभव किया जाता है। रूपं=रूप। इति कृत्वा=इस विचार से इसे आदर्श कहते हैं। तस्य = उस वेदना के। प्रकर्षाद् = उत्कर्ष, प्रबलता के कारण। दिव्यं = दिव्य विषय सम्बन्धी। रूपज्ञान = रूप का ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। आस्वाद = आस्वाद नाम की सिद्धि। रसनेन्द्रियज= रसना इन्द्रिय से उत्पन्न। ज्ञान = ज्ञान है। अनेन = इस आस्वाद के द्वारा। आस्वाद्यते=दिव्य रस का स्वाद ग्रहण किया जाता है। इति कृत्वा = इस विचार से इसे आस्वाद कहते हैं। तस्मिन् = उस आस्वाद के। प्रकृष्टे = उत्कर्ष की स्थिति प्राप्त कर लेने पर। दिव्ये = दिव्य पदार्थ के। रससंविद् = रस का ज्ञान।

उपजायते = उत्पन्न होता है। गन्धसंविद् = गन्ध का ज्ञान ही। वार्ता = वार्ता है। तान्त्रिकना=प्रस्तुत शास्त्र की। परिभाषया=परिभाषा के द्वारा। वृत्तिशब्देन = वृत्तिशब्द से। घ्राणेन्द्रिय = घ्राण इन्द्रिय। उच्यते = कही जाती है। गन्धविषये= गन्ध के विषय में। वर्त्तते = जिसके द्वारा प्रवृत्ति होती है। इति वृत्ते = वृत्ति से अर्थात्। घ्राणेन्द्रियात् = घ्राण इन्द्रिय से। जाता = उत्पन्न। गन्धसंविद् = गन्ध का ज्ञान ही। वार्ता = वार्ता है। तस्या= उस वार्ता के। प्रकृष्यमाणायां = उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त कर लेने पर। दिव्यगन्ध = दिव्य गन्ध का। अनुभूयते= अनुभव होता है, उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

एतेषां फलविशेषाणां विषयविभागमाह—

एतेषां = इन। फलविशेषाणां = विशेष फलों के, स्वार्थसंयम से प्राप्त प्रातिभश्रावण आदर्श इत्यादि के। विषयविभाग = विषय विभाग को। आह = कहते हैं।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

अर्थ —ते = वे प्रातिभ-श्रावण-वेदना-आदर्श-आस्वाद-वार्ता रूप षट् सिद्धियाँ। समाधौ = पुरुष के स्वरूप का दर्शन कराने वाली असंप्रज्ञात समाधि में। उपसर्गा = विघ्नरूप, बाधा पहुँचाने वाली हैं। किन्तु। व्युत्थाने = चित्त की व्युत्थान दशा में, व्युत्थित चित्त वाले के लिये। सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं। पुरुष के स्वरूप का साक्षात्कार असंप्रज्ञात समाधि में ही होता है, जिसमें चित्त पूर्ण रूप से समाहित रहता है और उसमें केवल चिन्मात्र पुरुष का ही प्रतिबिम्ब रहता है। किन्तु स्वार्थ वृत्ति के संयम से इन सिद्धियों की उपलब्धि हो जाने से योगी कृतकृत्य समझ कर स्वरूप साक्षात्कार के लिये प्रयास नहीं करता। अतः ये सिद्धियाँ विघ्नरूप हैं। इन विघ्नों का परिहार कर स्वरूप दर्शन के लिये प्रयास करना ही चाहिये।

वृत्ति —ते प्राक् प्रतिपादिता फलविशेषाः, समाधेः [1]प्रकर्षं गच्छत उपसर्गाः

---

१ प्रकर्षे उपसर्गा (पा०)।

उपद्रवा विघ्ना', तत्र हर्ष[1]-स्मयादिकरणेन समाधि शिथिलीभवति । व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशाया विशिष्टफलदायकत्वात् सिद्धयो भवन्ति ॥ ३७ ॥

ते = वे । प्राक् = पहले ३।३५ में । प्रतिपादिता = प्रतिपादन की गई, वर्णन की गई । फलविशेषा = स्वार्थवृत्ति से प्राप्त प्रातिभ-आदर्शआस्वाद इत्यादि विशेष फल । समाधे = समाधि की । प्रकर्षे = उत्कृष्ट स्थिति में, पुरुष के स्वरूप का दर्शन कराने वाली असम्प्रज्ञात समाधि में । उपसर्गा = उपसर्ग अर्थात् । उपद्रवा = उपद्रव अर्थात् । विघ्ना = विघ्न हैं । तत्र = उसमें । हर्षस्मयादिकरणेन = हर्ष, विस्मय इत्यादि उत्पन्न करने के कारण । समाधि = समाधि । शिथिलीभवति = शिथिल हो जाती है । तु = किन्तु । व्युत्थाने = व्युत्थान की दशा में अर्थात् । पुन = फिर । व्यवहारदशाया = व्यवहार की दशा में । विशिष्टफलदायकत्वात् = विशेष प्रकार का फल प्रदान करने के कारण । सिद्धय = सिद्धियां । भवन्ति = होती हैं, सिद्धिरूप हैं ॥ ३७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को । आह = कहते हैं ।

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेश. ॥ ३८ ॥

अर्थ —बन्धकारणशैथिल्यात् = बन्धन के कारण धर्म-अधर्मरूप कर्मसंस्कारों के शिथिल हो जाने से । च = और । प्रचारसंवेदनात् = चित्त के प्रचार, गति का अच्छी तरह ज्ञान हो जाने से । चित्तस्य = चित्त का । परशरीरावेश = दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है ।

वृत्तिः—व्यापकत्वादात्म-चित्तयोर्नियतकर्मवशादेव शरीरान्तर्गतयोरेव भोक्तृभोग्यभावेन यत् संवेदनमुपजायते स एव शरीरबन्ध इत्युच्यते, तद् यदा समाधिवशाद् बन्धकारणं धर्माधर्माख्यं शिथिलं भवति तानवमापद्यते । चित्तस्य च योऽसौ प्रचार हृदयप्रदेशादिन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुख्येन प्रसर तस्य संवेदन

---

१ हर्ष-विस्मयादि (पा०) ।

ज्ञानम्—इयं चित्तवहा नाडी, अनया चित्तं वहति, इयं च प्राणादिवहाभ्यो[1] नाडीभ्यो विलक्षणेति—स्व-परशरीरयोर्यदा सञ्चारं जानाति तदा परकीयं मृतं जीवच्छरीरं वा चित्तसञ्चारद्वारेण प्रविशति, चित्तञ्च परशरीरे प्रविशदिन्द्रियाण्यपि अनुवर्तन्ते मधुकरराजमिव मक्षिका ।

अथ परशरीरप्रविष्टो योगी स्वशरीरवत् तेन सर्वं[2] व्यवहरति, यतो व्यापकयोश्चित्तपुरुषयोर्भोगसङ्कोचे कारणं कर्म, तच्चेत् समाधिना क्षिप्तं, तदा स्वातन्त्र्यात् सर्वत्रैव भोगनिष्पत्तिः ॥ ३८ ॥

व्यापकत्वाद् = व्यापक होने के कारण । शरीरान्तर्गतयोः = शरीर के भीतर विद्यमान । आत्मचित्तयोः = पुरुष तथा चित्त का । नियतकर्मवशात् = धर्म तथा अधर्म रूप निश्चित कर्मों के अनुसार । एव = ही । भोक्तृभोग्यभावेन = भोक्ता तथा भोग्यरूप से । यत् = जो । संवेदन = ज्ञान । उपजायते = उत्पन्न होता है । सः = वह । एव = ही । शरीरबन्ध = शरीर में पुरुष का बन्धन । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । तद् = वह । धर्माधर्माख्य = धर्म तथा अधर्म नाम वाला । बन्धकारण = बन्धन का कारण । यदा = जब । समाधिवशाद् = समाधि के प्रभाव से । शिथिल = शिथिल । भवति = हो जाता है अर्थात् । तानवं = तनुरूप, सूक्ष्म रूप को । आपद्यते = प्राप्त करता है । च = और । चित्तस्य = चित्त का । यः = जो । असौ = वह । प्रचार = प्रचार, गति, गमन है अर्थात् । हृदयप्रदेशाद् = हृदय प्रदेश से । इन्द्रियद्वारेण = इन्द्रियों के द्वारा । विषयाभिमुख्येन = विषयों की ओर । प्रसर = गमन करना है । तस्य = चित्त के उस प्रसार गमन का । संवेदन = संवेदना अर्थात् । ज्ञान = ज्ञान अर्थात् । इयं = यह । चित्तवहा = चित्त का वहन करने वाली, ले जाने वाली । नाडी = नाडी है । अनया = इसी नाडी के द्वारा । चित्त = चित्त का । वहति = वहन किया जाता है । च = और । इयं = चित्त का वहन करने वाली यह नाडी । रसप्राणादिवहाभ्य = रक्त इत्यादि रस तथा प्राण का वहन करने वाली । नाडीभ्य = नाडियों से । विलक्षणा = विलक्षण,

---

१ रसप्राणादिवहाभ्यो (पा०) ।

२ सर्वमितिचित्तचित्तरिति (पा०) ।

भिन्न हैं। इति = इस रूप से। स्वपरशरीरयो = अपने तथा दूसरे मनुष्य के शरीरों में। यदा = जब। सञ्चार = चित्त के सञ्चार, गमन को। जानाति = जानता है। तदा = तब। परकीय = दूसरे मनुष्य के। मृत = मरे हुए। वा = अथवा। जीवच्छरीर = जीवित शरीर में। चित्तसञ्चारद्वारेण = चित्त के गमन के द्वारा। प्रविशति = प्रवेश करता है। च = और। परशरीरे = दूसरे मनुष्य के शरीर में। चित्त = चित्त के। प्रविशद् = प्रवेश कर लेने पर। इन्द्रियाणि = सभी इन्द्रियाँ। अपि = भी। अनुवर्तन्ते = चित्त का अनुगमन करती हैं। मधुकरराजम् इव मक्षिका = जैसे रानी मधुमक्षिका का अन्य मधुमक्षिकायें अनुगमन करती हैं। अथ = इसके बाद। परशरीरप्रविष्ट = दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया हुआ। योगी = योगी। स्वशरीरवत् = अपने ही शरीर की भाँति। तेन = उस परकीय शरीर से। सर्व = सब कुछ। व्यवहरति = व्यवहार करता है। यत = जिससे। व्यापकयो = व्यापक। चित्तपुरुषयो = चित्त तथा पुरुष के। भोगसङ्कोचे = भोग के संकोच में। कारण = कारण। कर्म = कर्म ही। चेत् = यदि। तत् = वह कर्म। समाधिना = समाधि के द्वारा। क्षिप्त = दूर फेंका जा चुका है, विनष्ट किया जा चुका है। तदा = तब। स्वातन्त्र्यात् = स्वतन्त्र होने के कारण। सर्वत्र = सभी स्थान पर, सभी शरीरों में। एव = ही। भोगनिष्पत्ति = भोग की प्राप्ति, सिद्धि होती है॥ ३८॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को। आह = कहते हैं।

उदानजयाज्जल-पङ्क-कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ.—उदानजयात् = उदान वायु के जय से। जलपङ्ककण्टकादिषु = जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि में। असङ्ग = असङ्ग, सम्बन्ध का अभाव होता है अर्थात् सामान्य स्थल की भाँति जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि पर निर्बाध रूप से गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। च = और। उत्क्रान्ति = ऊर्ध्वगमन, प्रयाणकाल में देवयानमार्ग से ब्रह्मलोक में ऊर्ध्व गति होती है। उदानवायु के जय से शरीर निर्धूत तूलिका सदृश हो जाता है। अतः किसी से प्रतिघात नहीं होता।

वृत्तिः—समस्तानामिन्द्रियाणां तुषज्वालावद् या युगपदुत्थिता वृत्तिः सा जीवनशब्दवाच्या, तस्याः क्रियाभेदात् प्राणापानादिसंज्ञाभिर्व्यपदेशः। तत्र हृदयान्मुखनासिकाद्वारेण वायोः प्रणयनात् प्राण इत्युच्यते। नाभिदेशात् पादाङ्गुष्ठपर्यन्तमपनयनादपानः। नाभिदेशं परिवेष्ट्य समन्ताद् नयनात् समानः। कृकाटिकादेशादाशिरोवृत्तेरुन्नयनादुदानः। व्याप्य नयनात् सर्वशरीरव्यापी व्यानः।

तत्र उदानस्य संयमद्वारेण जयादितरेषां वायूनां रोधादूर्ध्वगतित्वेन जले महानद्यादौ महति वा कर्दमे तीक्ष्णेषु कण्टकेषु वा न[2] मज्जति इति, लघुत्वान्-लपिण्डवज्जलादौ मज्जितोऽप्युद्‌गच्छतीत्यर्थः॥ ३९॥

समस्तानां = सभी। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। तुषज्वालावद् = तुषराशि में प्रक्षिप्त अग्नि से सहसा प्रज्वलित होने वाली ज्वाला के समान। या = जो। युगपद् = एकसाथ। उत्थिता = उत्पन्न होने वाली। वृत्तिः = वृत्ति है। सा = वही। जीवनशब्दवाच्या = जीवन शब्द के द्वारा कही जाती है। तस्याः = उसी वृत्ति का। क्रियाभेदात् = क्रियाओं के साथ भेद होने के कारण। प्राणापानादि-संज्ञाभिः = प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान रूप संज्ञाओं के द्वारा। व्यपदेशः = निर्देश किया जाता है। तत्र = उन पञ्च प्राणों में। हृदयात् = हृदयस्थान से। मुखनासिकाद्वारेण = मुख तथा नासिका द्वार से। वायोः = वायु का। प्रणयनात् = निर्गमन होने के कारण। प्राण = प्राण। इति = इस नाम से। उच्यते = कहते हैं। नाभिदेशात् = नाभिस्थान से। पादाङ्गुष्ठपर्यन्त = पैर के अङ्गुष्ठ तक। अपनयनात् = नीचे की ओर गमन करने के कारण। अपान = यह अपान वायु है। नाभिदेशं = नाभि प्रदेश को। परिवेष्ट्य = घेरकर, प्रवेश कर। समन्ताद् = शरीर में सर्वत्र, चारों ओर। नयनात् = रस ले जाने के कारण। समान = यह समान वायु है। कृकाटिकादेशात् = कृकाटिका स्थान से। आशिरोवृत्ते = शिर, मूर्धा तक विद्यमान जीवन को धारण करने वाली विशेष वृत्ति। उन्नयनाद् = रस इत्यादि को ऊपर की ओर गमन कराने वाली। उदान = उदान वायु है। व्याप्य = व्याप्त करके, व्यापक रूप

---

१ इतरेषां मूलनिरोधाद् ऊर्ध्वगतित्वेन (पा०)।

२ न मज्जतेऽतिलघुत्वात् (पा०)।

से समस्त शरीर में विद्यमान होकर । नयनात् = ले जाने के कारण शरीर में गति उत्पन्न करने के कारण । सर्वशरीरव्यापी = समस्त शरीर में रहने वाला । व्यान = व्यान वायु है । तत्र = उन पञ्चविध प्राणों में । उदानस्य = उदान प्राण को । संयमद्वारेण = संयम के द्वारा । जयात् = जीत लेने से । इतरेषां = अन्य चार प्राणों के । मूलनिरोधाद् = मूल रूप का निरोध हो जाने से । ऊर्द्ध्वगतित्वेन = उदान के प्रभाव से ऊर्द्ध्व गति हो जाने से । जले = जल में अर्थात् । महानद्यादौ = विशाल नदी इत्यादि । वा = अथवा । महति = विस्तृत, फैले हुए । कर्दमे = पङ्क, कीचड में । वा = अथवा । तीक्ष्णेषु = अत्यन्त तेज, तीव्र धार वाले । कण्टकेषु = कण्टकों में । न = नहीं । मज्जति = डूबता है, संसर्ग को, प्रतिघात को नहीं प्राप्त करता । इति = इस रूप से अर्थात् । लघुत्वात् = अत्यन्त लघु शरीर वाला होने के कारण । तूलपिण्डवत् = तूलिका पिण्ड के समान । जलादौ = जल इत्यादि में, जल, पङ्क, कण्टक इत्यादि में । मज्जित = डूबने, संसक्त होने पर । अपि = भी । उद्गच्छति = बाहर निकल आता है, जल-पङ्क-कण्टक इत्यादि में संग को नहीं प्राप्त करता, उनसे पीडित नहीं होता । इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ ३९ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को । आह = बतलाते हैं ।

समानजयात् प्रज्वलनम्[1] ॥ ४० ॥

अर्थ—समानजयात् = समान वायु का संयम द्वारा जय कर लेने से । प्रज्वलन = प्रज्वलन होता है अर्थात् योगी का शरीर अत्यन्त देदीप्यमान्, आभामय हो जाता है ।

वृत्ति.—अग्निमावेष्ट्य व्यवस्थितस्य समानाख्यस्य वायोर्जयात् संयमेन वशीकारात् निरावरणस्याग्नेरुद्भूतत्वात्तेजसा[2] प्रज्वलन्निव योगी प्रतिभाति ॥ ४० ॥

---

१ ज्वलनमित्येव बहुसमत पाठ ।

२ ग्नेरूर्ध्वत्वात् (पा०) ।

अग्नि = उदर में स्थित जठराग्नि का । आवेष्ट्य = आवरण करके, चारों तरफ से घेर कर । व्यवस्थितस्त = स्थित, विद्यमान रहने वाली । समानाख्यस्य = समान नाम वाली । वायो = वायु के । जयात् = जय से अर्थात् । संयमेन = संयम द्वारा । वशीकाराद् = वश में कर लेने से । निरावरणस्य = आवरण रहित । अग्ने = जठराग्नि का । ऊर्द्ध्वत्वात् = ऊर्ध्व गमन होने से । तेजसा = उस अग्नि के तेज से । प्रज्वलन् = जलता हुआ, दीप्तिमान् होता हुआ । इव = सा । प्रतिभाति = प्रतीत होता है । जठराग्नि तथा समान वायु का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । समान वायु के जीत लेने से यह अग्नि आवरणरहित, निर्मुक्त हो जाती है । अत प्रज्वलित इस अग्नि के प्रभाव से योगी का शरीर अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है ॥ ४० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि को । आह = बतलाते हैं ।

श्रोत्राकाशयो सम्बन्धसयमाद्दिव्य श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—श्रोत्राकाशयो = श्रोत्र इन्द्रिय एव आकाश के । सम्बन्धसयमाद् = सबन्ध में सयम करने से । श्रोत्र = योगी का श्रोत्र । दिव्य = दिव्य हो जाता है । शब्द को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय श्रोत्र है, जो अहङ्कार से उत्पन्न होती है । इसका आधार आकाश है । आकाश भी अहंकार जन्य सूक्ष्म शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न हुआ है । आकाश का गुण होने के कारण शब्द का भी आधार आकाश ही है । अत आधेय-आधार रूप श्रोत्रेन्द्रिय तथा आकाश के सम्बन्ध में सयम करने से श्रोत्र में दिव्य शक्ति का उद्भव होता है, जिससे योगी में सभी प्रकार के शब्दों को सुनने की सामर्थ्य होती है । क्योंकि आकाश व्यापक है जिससे योगी सभी प्रदेशों के शब्दों को ग्रहण करता है ।

वृत्ति—श्रोत्र शब्दग्राहकमाहङ्कारिकमिन्द्रियम्, आकाश व्योम, शब्दतन्मात्रकार्यं, तयो सम्बन्धो देशदेशिभावलक्षण[1], तस्मिन् कृतसयमस्य योगिनो दिव्य श्रोत्र प्रवर्तते, युगपत् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं भवतीत्यर्थ ॥ ४१ ॥

---

[1] देशादिभागलक्षणं (पा०) ।

शब्दग्राहक = शब्द को ग्रहण करने वाली। आहङ्कारिक = सत्त्वविशिष्ट अहंकार से उत्पन्न होने वाली। इन्द्रिय = इन्द्रिय ही। श्रोत्र = श्रोत्र है। आकाशं = आकाश। व्योम = व्योम को कहते हैं। जो। शब्दतन्मात्रकार्यं = अहंकार जन्य शब्दतन्मात्रा का काय है। तयो = उन्हीं दोनों श्रोत्रेन्द्रिय तथा आकाश का। सम्बन्ध = अर्थात्। देशदेशिभावलक्षणः = देशि तथा देश भाव वाला जो सम्बन्ध है। तस्मिन् = उस श्रोत्रेन्द्रिय एवं आकाश के सम्बन्ध में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले। योगिन = योगी का। दिव्य = दिव्य, अलौकिक। श्रोत्र = श्रोत्र, कर्ण। प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होता है, शब्दों को ग्रहण करता है अर्थात्। सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं = एक ही साथ सूक्ष्म, व्यवधान युक्त दूर देश विद्यमान शब्दों को ग्रहण करने की सामर्थ्य शक्ति। भवति = होती है ॥ ४१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्ते-श्चाकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—कायाकाशयो = शरीर तथा आकाश के। सम्बन्धसंयमात् = सम्बन्ध में संयम करने से। च = और। लघुतूलसमापत्ते = तूल, जलद इत्यादि लघु, अल्प परिमाण भार वाले पदार्थों में समापत्ति से चित्त के तन्मय भाव को प्राप्त करने से। आकाशगमन = योगी का आकाश में गमन होता है।

वृत्ति—काय पाञ्चभौतिक शरीर, तस्याकाशेनावकाशदायकत्वेन[1] य सम्बन्धस्तत्र संयम विधाय लघुनि तूलादौ समापत्तिं[2] तन्मयीभावलक्षणा विधाय प्राप्तातिलघुभावो योगी प्रथम यथारुचि जले सञ्चरणक्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन सञ्चरमाण आदित्यरश्मिभिश्च विहरन् यथेष्टमाकाशेन गच्छति ॥ ४२ ॥

---

१ अवकाशदानाद् य (पा०)।

२ समापत्तिस्तन्मयीभावलक्षणा, ता च (पा०)।

काय = काय शब्द का अर्थ है। पाञ्चभौतिक = पृथ्वी-जल-तेज वायु-आकाश रूप पाँच महाभूतों के तत्त्वों से निर्मित। शरीर = शरीर है। तस्य = उस शरीर का। आकाशेन = आकाश के साथ अर्थात्। अवकाशदायकेन = समस्त पदार्थों की स्थिति के लिए स्थान प्रदान करने वाले के साथ। यः = जो। सम्बन्ध = सम्बन्ध है। तत्र = उस शरीर तथा आकाश के सम्बन्ध में। संयम = संयम को। विधाय = करके तथा। लघुनि = लघु, सूक्ष्म, अल्प भार वाले। तूलादौ = तूल, जलद इत्यादि पदार्थों में। समापत्ति = समापत्ति को अर्थात्। तन्मयीभाव-लक्षणा = उसी पदार्थ के समान स्वरूप, तन्मयता को। विधाय = करके। प्राप्तातिलघुभाव = अत्यन्त लघुता, कम भार वाले रूप को प्राप्त कर। योगी = वह योगी। प्रथम = सर्वप्रथम। यथारुचि = अपनी इच्छा के अनुसार। जले = जल में, पानी के ऊपर। सञ्चरणक्रमेण = क्रमशः, सचरण गमन करता हुआ। ऊर्णनाभतन्तुजालेन = लूता, मकड़ी के तन्तुजाल के सहारे। सञ्चरमाण = सचरण करता हुआ। च = और। आदित्यरश्मिभि = सूर्य की किरणों के सहारे। विहरन् = विहार गमन करता हुआ। यथेष्ट = अपनी इच्छा के अनुसार। आकाशेन = आकाश के सहारे, आकाश में। गच्छति = जाता है, स्वेच्छा से सर्वत्र, निर्बाध गति से विचरण करता है ॥ ४२ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सिद्ध्यन्तर = संयम से प्राप्त होने वाली। दूसरी सिद्धि का। आह = वर्णन करते हैं।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा, ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥

अर्थ—बहि = शरीर के बाहर। अकल्पिता = शरीर की अपेक्षा के बिना ही मन की धारणा, अकल्पिता। वृत्ति = चित्त की वृत्ति। महाविदेहा = महाविदेहा नाम की धारणा है। ततः = उसी अकल्पिता महाविदेहा वृत्ति से। प्रकाशावरणक्षय = प्रकाश, ज्ञान रूप चित्त का आवरण करने वाले अविद्या इत्यादि क्लेशों तथा कर्मों का क्षय विनाश होता है। शरीर में अहंकार के रहने पर जो मन की बाह्य वृत्ति है, उसे कल्पिता, विदेहधारणा कहते हैं और

शरीर में अहंभाव का अभाव हो जाने पर मन की स्वतन्त्र वृत्ति अकल्पितावृत्ति, चित्त की महाविदेहा धारणा है, इसमें ज्ञान के आवरणों का नितान्त अभाव होता है।

वृत्ति--शरीराद् बहिर्या मनसः शरीरनैरपेक्ष्येण वृत्तिः, सा महाविदेहा नाम विगताहङ्कारकार्य्यवेगा[1] उच्यते। ततस्तस्याः कृतात् संयमात्, प्रकाशावरणक्षयः, सात्त्विकस्य चित्तस्य यः प्रकाशः, तस्य यदावरणं क्लेशकर्मादि, तस्य क्षयः प्रविलयो भवति। अयमर्थः—शरीराहङ्कारे सति या मनसो बहिर्वृत्तिः सा कल्पिता इत्युच्यते। यदा पुनः शरीरादहङ्कारभावं परित्यज्य स्वातन्त्र्येण मनसो वृत्तिः सा अकल्पिता, तस्यां संयमाद् योगिनः सर्वे चित्तमलाः क्षीयन्ते॥ ४३॥

शरीराद् = शरीर के। बहिः = बाहर। शरीरनैरपेक्ष्येण = शरीर की अपेक्षा के बिना ही। या = जो। मनसः = मन की। वृत्तिः = वृत्ति है। सा = वह वृत्ति। महाविदेहा नाम = महाविदेहा नाम की। विगताहङ्कारकार्य्यवेगा = अहंकार के कार्यवेग, प्रभाव से रहित चित्त की धारणा। उच्यते = कही जाती है। ततः = उस वृत्ति में अर्थात्। तस्याः = उस महाविदेहा वृत्ति में। कृतात् = किये गये। संयमात् = संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से। प्रकाशावरणक्षयः = प्रकाश ज्ञान के आवरण, निरोधक का क्षय, अभाव होता है। सात्त्विकस्य = सत्त्वगुण विशिष्ट। चित्तस्य = चित्त का। यः = जो। प्रकाशः = सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला ज्ञान है। तस्य = उस प्रकाश का। क्लेशकर्मादि = अविद्या-अस्मिता-राग, द्वेष इत्यादि क्लेश तथा पुण्यापुण्य कर्म इत्यादि। यद् = जो। आवरण = आवरण, निरोध ढकने वाले, तिरोहित करनेवाले हैं। तस्य = उस आवरण का। क्षयः = क्षय अर्थात्। प्रविलयः = पूर्णरूप से लोप, अभाव। भवति = होता है। अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है। शरीराहङ्कारे सति = शरीर में अहङ्कार के विद्यमान रहने पर। या = जो। मनसः = मन की। बहिः = बाहरी। वृत्तिः = वृत्ति होती है। सा = वह बाह्यवृत्ति। कल्पिता = कल्पित वृत्ति। इति = इस नाम से। उच्यते = कही जाती है। यदा पुनः = और जब,

---

1 विगतशरीराहङ्कारदार्ढ्यद्वारेण (पा०)।

फिर। शरीराद्=शरीर से। अहङ्कारभाव=अहङ्कार की भावना का। परित्यज्य= परित्याग करके। स्वातन्त्र्येण=स्वतन्त्ररूप से। मनस=मन की। वृत्ति = वृत्ति होती है। सा=वह। अकल्पिता = अकल्पिता वृत्ति है। तस्या = उस अकल्पिता वृत्ति में। संयमाद्=संयम करने से। योगिन = योगी के। सर्वे= सभी, समस्त। चित्तमला = अविद्या, राग, द्वेष इत्यादि चित्त में रहने वाले दोष। क्षीयन्ते=विनष्ट हो जाते है, पूर्णत लुप्त हो जाते है॥ ४३॥

तदेव पूर्वान्तविषया[1] परान्तविषया मध्यभावाश्च सिद्धी प्रतिपाद्य अनन्तर भुवनज्ञानादिरूपा बाह्या, कायव्यूहादिरूपा आभ्यन्तरा, परिकर्मनिष्पन्नभूताश्च 'मैत्र्यादिषु बलानि' त्येवमाद्या समाध्युपयोगिनीश्चान्त करण-बहि करणलक्षणेन्द्रियभवा, प्राणादिवायुभवाश्च सिद्धीश्चित्तदार्ढ्याय समाधेश्चाश्वासोत्पत्तये प्रतिपाद्य इदानीं स्वदर्शनोपयोगि-सबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये विविधोपाय-प्रदर्शनायाह—

तद् = वह। एव = इस प्रकार से। पूर्वान्तविषया = पूर्वान्तविषया=पूर्वान्त-विषय वाली, पूर्व की। अपरान्तविषया=अपरान्तविषय वाली, पश्चात् की। च=और। मध्यभवा =मध्य में होने वाली, मध्य की। सिद्धी =संयम से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का। प्रतिपाद्य = प्रतिपादन, वर्णन करके। अनन्तर = इसके पश्चात्। भुवनज्ञानादिरूपाः = भुवन, ताराव्यूह, नक्षत्रगति इत्यादि का ज्ञान प्रदान कराने वाली। बाह्या = बाह्य सिद्धियाँ। कायव्यूहादिरूपा = कायव्यूह, चित्तसंवित्, प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता इत्यादि के ज्ञान स्वरूप वाली। आभ्यन्तरा = अन्त सिद्धियाँ। च और। परिकर्मनिष्पन्नभूता= परिकर्मों के अभ्यास से प्राप्त होने वाली। 'मैत्र्यादिषु बलानि' इत्येवमाद्या = 'मैत्री, करुणा, मुदिता इत्यादि भावनाओं में संयम करने से उन-उन शक्तियों की प्राप्ति होती है' इत्यादि। समाध्युपयोगिनी =समाधि लाभ में उपयोगी, उपकार करने वाली। च = और। अन्त करण-बहि करण-लक्षणेन्द्रियभवा = अन्त करण एवं बाह्यकरण रूप इन्द्रियों में संयम करने से उत्पन्न होने वाली, श्रोत्रेन्द्रिय

---

1 अपरान्तविषया (पा०)

तथा आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से श्रोत्र दिव्य होता है इत्यादि । च = और । प्राणादिवायुभवा = प्राण, उदान, समान इत्यादि वायु में संयम करने से प्राप्त होने वाली । सिद्धी = सिद्धियों को । चित्तदार्ढ्याय = चित्त की दृढ़ता, स्थिरता एकाग्रता के लिये । च = और । समाधे = समाधि में । आश्वासोत्पत्तये = विश्वास, श्रद्धा, आस्था उत्पन्न करने के लिये । प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करके, सिद्धियों का वर्णन करके । इदानी = अब । स्वदर्शनोपयोगी = अपने स्वरूप के दर्शन में उपयोगी, पुरुषस्वरूप के साक्षात्कार में सहायक । सबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये = सबीज तथा निर्बीज, संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि के लिये । विविधोपायप्रदर्शनाय = अनेक प्रकार के उपायों, साधनों का प्रदर्शन, वर्णन करने के लिये । आह = कहते हैं ।

स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजय. ॥ ४४ ॥

अर्थ —स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् = आकाश इत्यादि पञ्च महाभूतों की स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व नामक पञ्च अवस्थाओं में संयम करने से । भूतजय = भूतों पर जय प्राप्त होती है ।

वृत्ति —पञ्चाना पृथिव्यादीना भूताना ये पञ्च अवस्थाविशेषरूपा धर्मा: स्थूलत्वादय., तत्र कृतसंयमस्य भूतजयो भवति, भूतान्यस्य वश्यानि भवन्तीत्यर्थ । तथा हि—भूताना परिदृश्यमान विशिष्टाकारवत् स्थूलरूपम्, स्वरूपञ्चैषा यथाक्रम कार्य्यं गन्ध-स्नेहोष्णता-प्रेरणावकाशदानलक्षणम्, सूक्ष्मञ्च यथाक्रमं भूताना[1] कारणत्वेन व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि, अन्वयिनो गुणा: प्रकाश-प्रवृत्ति-स्थितिरूपतया सर्वत्रैव अन्वयित्वेन समुपलभ्यन्ते; अर्थवत्त्व तेषु एव गुणेषु भोगापवर्गसम्पादनाख्या शक्ति ।

तदेव भूतेषु पञ्चसु उक्त[2]धर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु प्रत्येकं संयम कुर्वन् योगी भूतजयी भवति । तद्यथा—प्रथम स्थूलरूपे संयम विधाय तदनु[3] स्वरूपे,

---

१ कारणभेदेन (पा०) ।

२. उक्तलक्षणावस्थाभिन्नेषु (पा०) ।

३. सूक्ष्मरूपे (पा०) ।

इत्येव-क्रमेण तस्य कृतसंयमस्य सङ्कल्पानुविधायिन्यो वत्सानुसारिण्य इव गावो भूतप्रकृतयो भवन्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

पृथिव्यादीनां = पृथिवी, जल, तेज इत्यादि। पञ्चानां = पञ्च। भूतानां = महाभूतों की। ये = जो। स्थूलत्वादयः = स्थूलत्व इत्यादि अर्थात् ! स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्व नामक। पञ्च = पाँच। अवस्थाविशेषरूपा = विशेष अवस्था, दशा रूपी। धर्मा = धर्म हैं। तत्र = इन पञ्च महाभूतों की पञ्चविध अवस्थाओं में। कृतसंयमस्य = संयम करने वाले योगी को। भूतजयः = भूतों के ऊपर जय। भवति = होती है। भूतानि = सभी भूत। अस्य = इस योगी के। वश्यानि = वश में। भवन्ति = हो जाते हैं। इति अर्थः = यह अभि-प्राय है। तथा हि = जैसे कि। भूतानां = पृथिवी इत्यादि पञ्च महाभूतों का। परिदृश्यमानं = दिखलाई पड़ने वाला। विशिष्टाकारवत् = विशेष प्रकार की आकृति वाला। स्थूलरूपं = स्थूलरूप, अवस्था है। च = और। एषां = इन पृथिवी-जल तेज-वायु-आकाश रूप महाभूतों का। स्वरूपं = स्वरूप, स्वरूप नाम की विशेष अवस्था। यथाक्रमं = क्रमशः। कार्यं = कार्यरूप। गन्ध-स्नेहोष्णता-प्रेरणावकाशदानलक्षणं = गन्ध, स्नेह-स्निग्धता, उष्णता, प्रेरणा, अवकाश-स्थान प्रदान लक्षण वाला है अर्थात् इन महाभूतों के गन्ध इत्यादि कार्य ही इनके स्वरूप हैं। च = और। सूक्ष्मं = इन महाभूतों की सूक्ष्म अवस्था। यथाक्रमं = क्रमशः। भूतानां = इन महाभूतों के। कारणभेदेन = कारण के रूप में। व्यव-स्थितानि = विद्यमान। गन्धादितन्मात्राणि = गन्ध इत्यादि तन्मात्रायें हैं अर्थात् गन्ध-रस-तेज-वायु-शब्द रूप पञ्च तन्मात्रायें ही इन पञ्च महाभूतों की सूक्ष्म अवस्थायें हैं। अन्वयिनः = अन्वयी, अन्वय रखने वाले। गुणा = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुण। प्रकाश-प्रवृत्ति-स्थिति रूपतया = प्रकाश, प्रवृत्ति, स्थिति रूप से, समस्त पदार्थों को प्रकाशित करना, प्रवृत्त करना तथा नियमन रूप से। सर्वत्र = सभी स्थान पर। एव = ही। सभी पदार्थों में। अन्वयित्वेन = अन्वयी सम्बन्ध से। समुपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं। यही अन्वय अवस्था है। अर्थवत्त्व= महाभूतों की अर्थवत्त्व अवस्था। तेषु एव = उन्हीं। गुणेषु = त्रिविध गुणों में। भोगापवर्गसम्पादनाख्या = भोग एवं अपवर्ग, मोक्ष को सम्पन्न, सिद्ध करने

वाली। शक्ति = शक्ति ही है। तद् एवम् = इस प्रकार से। पञ्चसु = पञ्च। भूतेषु = महाभूतों में। उक्तधर्मलक्षणावस्थाभिन्नेषु = ३।१४ में वर्णन किये गये धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम से भिन्न, पृथक् महाभूतों की इन स्थूल, स्वरूप इत्यादि पञ्च अवस्थाओं में। प्रत्यवस्थं = प्रत्येक अवस्था में। संयमं = संयम को। कुर्वन् = करता हुआ। योगी = योगी। भूतजयी = भूतों के ऊपर जय प्राप्त करने वाला। भवति = होता है। तद् यथा = वह इस प्रकार से। प्रथमं = सबसे पहले। स्थूलरूपे = महाभूतों की स्थूल अवस्था में। संयमं = संयम। विधाय = करके। तद् अनु = उसके पश्चात्, तद् अनन्तर। स्वरूपे = महाभूतों की स्वरूप अवस्था में संयम करना चाहिये। इति = इस रूप में। एवं क्रमेण = इस क्रम से, इस प्रकार से अन्य अवस्थाओं में। कृत-संयमस्य = संयम करने वाले। तस्य = उस योगी के। सङ्कल्पानुविधायिन्य = संकल्प का अनुगमन करने वाले। भूतप्रकृतय = भूतों की प्रकृतियाँ अर्थात् स्वभाव। भवन्ति = हो जाते हैं। वत्सानुसारिण्य = वत्स का अनुगमन करने वाली। गाव = गायों की। इव = तरह, समान अर्थात्। जैसे गायें अपने वत्स का अनुगमन करती है, वैसे ही स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्त्व नाम वाली महाभूतों की पञ्च अवस्थाओं में संयम करने वाले योगी का अनुगमन सभी भूत एवं प्रकृतियाँ करती है। इति अर्थ = यही अभिप्राय है॥ ४४॥

तस्यैव भूतजयस्य फलमाह—

तस्य = उस। एव = ही। भूतजयस्य = भूतों के जय का। फल = फल। आह = कहते हैं।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च ॥४५॥

अर्थ—तत = योगी का भूतों के ऊपर जय हो जाने से, भूतों की प्रकृति योगी के संकल्प के अनुसार हो जाने से। अणिमादिप्रादुर्भाव = अणिमा, लघिमा इत्यादि अष्टसिद्धियों का उद्भव प्राप्ति। कायसम्पत् = रूप, लावण्य अतिशय बल, वज्रसंहननत्व इत्यादि शरीर की सम्पत्तियों की प्राप्ति। च = तथा। तद्धर्म = उस शरीर के धर्मों का। अनभिघात = प्रतिघात, बाधा का क्षय का

प्रभाव होता है। अणिमा-लघिमा-महिमा-गरिमा-प्राकाम्य-वशित्व-ईशित्व-यत्रका-मावसायित्व रूप अष्ट सिद्धियाँ हैं।

वृत्ति—अणिमा परमाणुरूपतापत्ति, महिमा महत्त्व, लघिमा लघुत्व, तूलपिण्डवल्लघुत्वप्राप्ति, गरिमा गुरुत्वप्राप्ति, अङ्गुल्यग्रेण चन्द्रादिस्पर्शन-शक्ति, प्राकाम्यम् इच्छानभिघात, शरीरान्तःकरणेश्वरत्वम् ईशित्व, सर्वत्र प्रभविष्णुता वशित्व, सर्वाण्येव भूतानि अनुगामित्वात्तदुक्त नातिक्रामति। यत्र-कामावसायी यस्मिन् विषयेऽस्य काम स्वेच्छा भवति, तस्मिन् विषये योगिन अध्यवसायो[1] भवति त विषय स्वीकारद्वारेणाभिलाषसमाप्तिपर्यन्त नयतीत्यर्थ, ते एते अणिमाद्या समाध्युपयोगिनो भूतजयाद् योगिन प्रादुर्भवन्ति, यथा—परमाणुत्व प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्त प्रविशति, एवं सर्वत्र योज्यम्। एतेऽणिमाद-योऽष्टौ गुणा महासिद्धय उच्यन्ते।

कायसम्पद् वक्ष्यमाणा, ता प्राप्नोति। तद्धर्मानभिघातश्च, तस्य कायस्य, ये धर्मा रूपादय, तेषामनभिघातो नाशो न कुतश्चित् भवति, नास्य रूपमग्निर्दहति, न वायु शोषयतीत्यादि योज्यम्॥ ४५॥

अणिमा = अणिमा नाम की सिद्धि। परमाणुरूपता = परम अणु अत्यन्त सूक्ष्म रूप की। आपत्ति = प्राप्ति है। महिमा = महिमा सिद्धि, महत्त्व = अत्यन्त महत् रूप, महान्, विशाल स्वरूप की प्राप्ति है। लघिमा = सिद्धि। लघुत्व = अति लघु, कम भार का होना है अर्थात्। तूलपिण्डवत्=तूल के पिण्ड के समान। लघुत्वप्राप्ति =लघु, अल्पभार की प्राप्ति है। गरिमा=गरिमा नामक सिद्धि। गुरुत्वप्राप्ति = गुरु स्वरूप की प्राप्ति है। जिससे। अङ्गुल्यग्रेण=अङ्गुली के अग्रभाग से। चन्द्रादिस्पर्शनशक्ति = दूरस्थ चन्द्र इत्यादि को स्पर्श करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। प्राकाम्य = प्राकाम्य सिद्धि। इच्छानभिघात = इच्छाओं का अनभिघात अभिघात का अभाव, पूर्ण होना है। ईशित्व = ईशित्व सिद्धि। शरीरान्तःकरणेश्वरत्व = शरीर तथा अन्तःकरण का ईश्वर होना है अथवा इस सिद्धि के प्रभाव से योगी शरीर तथा अन्तःकरण को वश में करके

[1] व्यवसायो (पा०)।

ईश्वर के समान समस्त पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय में समर्थ हो जाता है। सर्वत्र = सभी पञ्चभौतिक पदार्थों के ऊपर। प्रभविष्णुता = प्रभविष्णु होना, पूर्णत वशी हो जाना, अपने वश अधिकार में कर लेना ही। वशित्व = वशित्व सिद्धि है। सर्वाणि एव = सभी। भूतानि = भूतों के। अनुगामित्वात् = अनुगामी होने के कारण सभी भूत इस योगी का अनुगमन करते हैं। इसलिये। तत् उक्त = वैसा होना, प्रभविष्णु होना कहा गया है। न अतिक्रामति = कोई भी भूत इस योगी का अतिक्रमण इच्छाओं का उल्लघन नहीं करता। यत्रकामावसाय = यत्रकामावसायित्व सिद्धि। यस्मिन् = जिस। विषये = विषय में। अस्य = इस योगी की। काम = कामना। स्वेच्छा = इच्छा। भवति = होती है। तस्मिन् = उसी। विषये = विषय में। योगिन = योगी का। अध्यवसाय = निर्णय, निश्चय। भवति = होता है। त = उस। विषय = विषय को। स्वीकारद्वारेण = स्वीकार द्वारा, प्राप्त करके। अभिलाषसमाप्तिपर्यंत = अभिलाषा की समाप्ति पर्यन्त, इच्छाओं के पूर्ण होने तक। नयति = इसकी गति, चेष्टा चलती रहती है। ते = वे। एते = ये। अणिमाद्या = अणिमा, महिमा इत्यादि सिद्धियाँ। समाध्युपयोगिन = समाधि की सिद्धि में उपयोगी, उपकारक, सहायक। भूतजयाद् = भूतों पर जय होने से। योगिन = योगी के लिये। प्रादुर्भवन्ति = उद्भूत, व्यक्त होती हैं। यथा = जैसे। परमाणुत्व = परम अणु, अत्यन्त सूक्ष्म रूप को। प्राप्त = प्राप्त हुआ योगी। वज्रादीना = अति सघन वज्र इत्यादि के। अपि = भी। अन्त. = भीतर में। प्रविशति = प्रवेश करता है। एवं = इसी प्रकार। सर्वत्र = सभी सिद्धियों के सम्बन्ध में। योज्य = सयोजना करनी चाहिए। एते = ये। अणिमादय = अणिमा, महिमा इत्यादि। अष्टौ = आठ। गुणा = गुण। महासिद्धय = महासिद्धि नाम से। उच्यन्ते = कहे जाते हैं। कायसम्पद् = शरीर की सपत्ति। वक्ष्यमाणा = ३।४६ में वर्णन की जाने वाली है। ता = उस काय सपत्ति को। प्राप्नोति = भूत जय से योगी प्राप्त करता है। च = और। तद् धर्म = उसके धर्म का। अनभिघात = अनभिघात होना है अर्थात्। तस्य = उस। कायस्य = शरीर के। रूपादय: = रूप, लावण्य, बल इत्यादि। ये = जो। धर्मा. = धर्म, गुण हैं। तेषा = उन धर्मों का।

अनभिघात = अनभिघात अर्थात् । कुतश्चित् = कभी भी । नाश = विनाश, क्षय, अभाव । न = नहीं । भवति = होता है । अस्य = योगी के इस शरीर के । रूप = रूप को । अग्नि = अग्नि । न = नहीं । दहति = जलाती । वायु = वायु । न = नहीं । शोषयति = सुखाती, शुष्क बनाती । इत्यादि = इत्यादि रूप में । योज्य = सयोजना करनी चाहिये ।

कायसम्पदमाह—

कायसम्पद = शरीर की सम्पत्ति को । आह = बतलाते हैं ।

रूप-लावण्य-बल-वज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—रूपलावण्यबलवज्रसहननत्वानि = रूप-दर्शनीय स्वरूप, लावण्य-आकर्षक तेज कान्ति, अतिशय बल तथा वज्र के समान दृढ सघठन, परिपुष्ट अवयव सस्थान । कायसम्पत् = शरीर की सम्पदायें हैं । भूतजयी योगी को इनकी प्राप्ति होती है ।

वृत्ति—रूप-लावण्य-बलानि प्रसिद्धानि, वज्रसहननत्व वज्रवत् कठिना सहतिरस्य शरीरे भवतीत्यर्थ , इति कायस्य आविर्भूतगुणसम्पत् ॥ ४६ ॥

रूपलावण्यबलानि=दर्शनीय स्वरूप सौन्दर्य, प्रकृष्ट कान्ति तथा अतिशय बल शक्ति तो । प्रसिद्धानि=प्रसिद्ध ही हैं अर्थात् इन शब्दों के अर्थ सुस्पष्ट हैं । वज्र-सहननत्व=वज्रसहननत्व शब्द का अर्थ है । अस्य=इस भूतजयी योगी के । शरीरे= शरीर में । वज्रवत् = वज्र के समान । कठिना = अत्यन्त दृढ, पुष्ट । सहति = अवयवसस्थान, अङ्गों के सन्निवेश, सघटन । भवति = होता है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है । इति = इस रूप से । कायस्य = शरीर की । आविर्भूतगुण-सम्पत् = भूतजय से उद्भूत, प्रकट होने वाली गुण सम्पदायें हैं ॥ ४६ ॥

एव भूतजयमभिधाय[1] प्राप्तभूमिकाविशेषस्येन्द्रियजयमाह—

एव = इस प्रकार से । भूतजय = भूतजय का । अभिधाय = वर्णन करके । प्राप्तभूमिकाया = भूमिका के प्राप्त होने पर, प्रकरण आने पर । इन्द्रियजय = इन्द्रियजय को । आह = कहते हैं ।

---

१ प्राप्तभूमिकायामिन्द्रिय (पा०) , प्राप्तभूमिकस्य (पा०) ।

ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् इन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

अर्थ—ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् = इन्द्रियों की ग्रहण-स्वरूप-अस्मिता-अन्वय-अर्थवत्त्व रूप पञ्च अवस्थाओं में संयम, धारणा-ध्यान-समाधि से। इन्द्रियजयः = इन्द्रिय जय होता है। सभी इन्द्रियां योगी के वश में हो जाती है।

वृत्ति—ग्रहणमिन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्तिः, स्वरूपं सामान्येन प्रकाशकत्वम्,[1] अस्मिता अहङ्कारानुगमः, अन्वयार्थवत्त्वे पूर्ववत् (३।४४), एतेषाम् इन्द्रियाणामवस्थापञ्चके पूर्ववत् संयमं कृत्वा इन्द्रियजयी भवति ॥ ४७ ॥

इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। विषयाभिमुखी = शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध विषयों की ओर। वृत्तिः = प्रवृत्ति। ग्रहण = ग्रहण अवस्था है। शब्दादि विषयों में गमन करना ही इन्द्रियों की ग्रहण अवस्था है। सामान्येन = सामान्यरूप से। प्रकाशकत्व = विषयों को प्रकाशित करना ही। स्वरूप = इन्द्रियों का स्वरूप है। अहङ्कारानुगमः = अहङ्कार का अनुगमन करना ही। अस्मिता = अस्मिता है। अन्वयार्थवत्त्वे = अन्वय तथा अर्थवत्त्व। पूर्ववत् = पहले ३।४४ में वर्णन किये गये के समान ही हैं अर्थात् प्रकाशप्रवृत्ति-नियमन रूप सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही अन्वय तथा भोग अपवर्ग रूप प्रयोजन को सम्पन्न करना ही इन इन्द्रियों की अर्थवत्त्व अवस्था है। एतेषां = इन। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। अवस्था-पञ्चके = ग्रहण-स्वरूप-अस्मिता-अन्वय-अर्थवत्त्वरूप पञ्च अवस्थाओं में। पूर्ववत् = पहले की भांति, पञ्चमहाभूतों की पञ्च अवस्थाओं के समान। संयमं=संयम को। कृत्वा = करके। इन्द्रियजयी = इन्द्रियजयी, समस्त इन्द्रियजयी, समस्त इन्द्रियों को वश में करने वाला। भवति=होता है ॥ ४७ ॥

तस्य फलमाह—

तस्य = उस इन्द्रियजय के। फल = फल को। आह = कहते हैं।

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

---

१ प्रकाशकम् (पा०)।

अर्थ—ततः = उस इन्द्रियजय से। मनोजवित्वं = मन के समान वर्तमान जव वेग, गति की प्राप्ति। विकरणभाव = शरीर के बिना ही अतीत वर्तमान अनागत कालीन सर्वत्र विद्यमान विषयों में इन्द्रियों की वृत्ति का लाभ रूप विकरण भाव। च = एवं। प्रधानजय = कार्यकारण रूप में विद्यमान प्रकृति के सभी परिणामों पर अधिकार होना है।

वृत्ति—शरीरस्य मनोवदनुत्तम-गतिलाभो मनोजवित्वम्; कायनिरपेक्षाणाम् इन्द्रियाणां वृत्तिलाभो विकरणभावः, सर्ववशित्वं प्रधानजयः; एताः सिद्धयो जितेन्द्रियस्य प्रादुर्भवन्ति ताश्चास्मिन् शास्त्रे 'मधुप्रतीका' इत्युच्यन्ते, यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदते, एवं प्रत्येकमेताः सिद्धयः स्वदन्त इति मधुप्रतीकाः ॥ ४८ ॥

शरीरस्य = शरीर की। मनोवद् = मन के सदृश। अनुत्तमगतिलाभः = उत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ गति, वेग की प्राप्ति होना ही। मनोजवित्व = मनोजवित्व सिद्धि है। कायनिरपेक्षाणां = शरीर की अपेक्षा के बिना ही। इन्द्रियाणां = इन्द्रियों की। वृत्तिलाभः = त्रैकालिक समस्त विषयों के वृत्ति का लाभ, ज्ञान प्राप्त होना ही। विकरणभाव = विकरणभाव है। सर्ववशित्व = प्रकृति के कार्य-कारण रूप समस्त परिणामों के ऊपर अधिकार, वश होना ही। प्रधानजय, प्रकृति के ऊपर जय पाना है। एताः = ये सभी। सिद्धयः = मनोजवित्व, विकरणभाव, प्रधानजय रूप सिद्धियाँ। जितेन्द्रियस्य = इन्द्रियों को वश में करने वाले योगी के लिये। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न होती हैं। अस्मिन् = इस। शास्त्रे = योगशास्त्र में। ताः = वे सिद्धियाँ। 'मधुप्रतीका' = मधुप्रतीका। इति = इस रूप नाम से। उच्यन्ते = कही जाती हैं। यथा = जैसे। मधुन = मधु का। एकदेश = एक देश, स्थान। अपि = भी। स्वदते = स्वाद प्रदान करता है। एवं = इसी प्रकार। एताः = ये सभी। सिद्धयः = सिद्धियाँ। प्रत्येक = प्रत्येक। स्वदन्ते = स्वाद, फल प्रदान करती है। इति = इसलिये। मधुप्रतीका = इन सिद्धियों को 'मधुप्रतीका' कहते हैं ॥ ४८ ॥

इन्द्रियजयमभिधाय अन्तःकरणजयमाह—

इन्द्रियजय = इन्द्रिय जय को । अभिधाय = कह करके । अन्त करणजय= अन्त करण के जय को । आह = कहते है ।

सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिस्ठातृत्व सर्वज्ञातृत्वञ्च ॥ ४९ ॥

अर्थ —सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य = सत्त्व-पुरुष अन्यताख्यातिमात्र वाले योगी का, सत्त्व-पुरुष के विवेक ख्याति, भेद ज्ञान वाले योगी का । सर्वभावाधिष्ठातृत्व = प्रकृति के सभी परिणामों पर अधिष्ठातृ रूप, स्वाभिभाव । च = और । सर्वज्ञातृत्व=सभी पदार्थो के सम्बन्ध में सर्वज्ञत्व रूप होता है अर्थात् जिस समाधि में योगी को स्वरूपत पृथक् सत्त्व पुरुष के भेद मात्र की ही प्रतीति होती है, उस समय वह सभी का अधिष्ठाता होता है तथा उनके स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञाता होता है ।

वृत्ति.—तस्मिन् बुद्धे.[1] सात्त्विके परिणामे कृतसयमस्य या सत्त्व-पुरुषयोरन्यत्व[2] विवेकख्याति गुणाना कर्तृत्वाभिमान-शिथिलीभावरूपा[3] तन्माहात्म्यात् तत्रैव स्थितस्य योगिन सर्वाधिष्ठातृत्व सर्वकर्तृत्व समाधेर्भवति । सर्वेषा गुणपरिणामाना भावाना स्वामिवदाक्रमणं सर्वाधिष्ठातृत्वम् , तेषामेव च शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेनावस्थिताना यथावद् विवेकज्ञान सर्वज्ञातत्वमेव । एषाऽस्मिन् शास्त्रे परस्या[4] वशीकारसज्ञाया प्राप्ताया विशोका नाम सिद्धिरित्युच्यते ॥ ४९ ॥

बुद्धे = बुद्धि, महत्तत्व के । तस्मिन् = उस । सात्त्विके = सत्त्वगुण बहुल । परिणामे = परिणाम में । कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी को । या = जो । सत्त्व-पुरुषयोः = बुद्धि और पुरुष के विषय में । गुणाना = गुणो का । कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा = कर्ता रूप अहकार की भावना के अति न्यून

१ गुद्धे (पा०) ।
२ अन्यताख्याति (पा०) ।
३ शिथिलीभावरूपात्तन्माहात्म्यात् (पा०)
४ अपरस्या (पा०) ।

भाव वाले। विवेकख्याति = भेद ज्ञान, पृथक् रूप से प्रतीति, बुद्धि का अचेतन, त्रिगुणात्मिका, परिणात्मिका, परिणामिनी कर्त्री तथा पुरुष का चेतन, निर्गुण, परिणामरहित, अकर्ता, असङ्ग रूप से ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तत् = उनके। महात्म्यात् = महिमा, प्रभाव के कारण। तत्र एव = उसी सत्त्व पुरुष के विवेक ज्ञान में। स्थितस्य = विद्यमान। योगिन = योगी की। समाधे = समाधि का। सर्वाधिष्ठातृत्व = सभी पदार्थों के ऊपर अधिष्ठातृरूप। च = और। सर्वज्ञातृत्व = सभी पदार्थों का ज्ञाता रूप, प्रत्यक्ष साक्षात्कर्ता रूप। भवति = होता है। सर्वेषां = समस्त। गुणपरिणामानां = गुणों के परिणामों, कार्यों का। भावानां = और भावों का। स्वामिवद् = स्वामी के समान। आक्रमण = आक्रमण, अभिमुख गमन ही। सर्वाधिष्ठातृत्वं = सभी के ऊपर अधिष्ठाता रूप है। च = और। शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेन = अतीत, वर्तमान एवं अनागत धर्मों के रूप में। अवस्थितानां = विद्यमान। तेषां = उन्हीं गुणों, परिणामों का। एव = ही। यथावद् = अच्छी प्रकार से, सम्यक् रूप से। विवेकज्ञान = भेद ज्ञान, पृथक्, स्वरूपतः प्रतीति ही। सर्वज्ञातृत्वम् एव = सभी पदार्थों का सभी कालों में ज्ञातृरूप है। च = और। अपरस्या = अपर वैराग्य की चतुर्थ दशा। वशीकार संज्ञायां = वशीकार संज्ञा में। प्राप्तायां = प्राप्ति होने पर, पहुँचने पर। विशोकानाम् = विशोका नाम की। सिद्धि = सिद्धि। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है ॥ ४९ ॥

क्रमेण भूमिकान्तरमाह—

क्रमेण = क्रमशः। भूमिकान्तर=दूसरी भूमिका को। आह = कहते हैं।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

अर्थ —तद् = उस विशोका सिद्धि में। अपि = भी। वैराग्याद् = वैराग्य की भावना होने से। दोषबीजक्षये = समस्त दोषों का बीज, कारण अविद्या इत्यादि का क्षय, विनाश हो जाने से। कैवल्य = कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

वृत्तिः—तस्यामपि विशोकायां सिद्धौ यदा वैराग्यमुत्पद्यते योगिनस्तदा

तस्माद्दोषाणां रागादीनां, यद्बीजमविद्यादयः, तस्य क्षये निर्मूलने, कैवल्यमात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य गुणानामधिकारपरिसमाप्तौ स्वरूपप्रतिष्ठत्वम्[१] ॥ ५० ॥

तस्याः = उस। विशोकायाः = विशोका नाम की। सिद्धौ = सिद्ध में। अपि = भी। यदा = जब। योगिनः = योगी का। वैराग्य = वैराग्य। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। तदा = तब। तस्माद् = उस वैराग्य की भावना से। रागादीनां = राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध इत्यादि। दोषाणां = दोषों का। अविद्यादयः = अविद्या इत्यादि। यद् = जो। बीजः = बीज, कारण है। तस्य = उस बीज का। क्षये=क्षय अर्थात्। निर्मूलने = मूल रहित होने पर। कैवल्य = कैवल्य की प्राप्ति अर्थात्। आत्यन्तिकी = सार्वकालिक, सदा के लिये। दुःखनिवृत्ति = आध्यात्मिक-आधिभौतिक आधिदैविक त्रिविध दुःखों की निवृत्ति, पूर्णत परिहार, अभाव होता है। तथा। गुणानां = त्रिविध गुणों का। अधिकारपरिसमाप्तौ=अधिकार समाप्त हो जाने पर। कर्तृत्वभोक्तृत्वरूप फल, कार्य उत्पादन से विरत हो जाने पर। पुरुषस्य = पुरुष को। स्वरूपप्रतिष्ठत्व= अपने ही चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठा, स्थिति होती है। पुरुष को स्वरूपप्रतिष्ठा ही कैवल्य है ॥ ५० ॥

तस्मिन्नेव समाधौ स्थित्युपायमाह—

तस्मिन्=उस। एव=ही। समाधौ = समाधि में। स्थित्युपाय=स्थिति के के उपाय को। आह = कहते हैं।

स्वाम्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

अर्थ.—पुनः=पुनः, फिर। अनिष्टप्रसङ्गात् अनिष्ट का प्रसङ्ग ज्ञात होने से। जन्म मरण रूप संसार, दुःख प्राप्ति की संभावना होने के कारण। स्वाम्युपनिमन्त्रणे=स्वामी देवों के निमन्त्रण पर, दिव्य भोगों को प्रस्तुत करने पर। सङ्गस्मयाकरण = योगी को उन भोगों, सुखों में आसक्ति, राग नहीं करना चाहिये तथा स्मय, अभिमान भी नहीं करना चाहिये। समाधि बल से योगी को

१ स्वरूपनिष्ठत्वम् (पा०)।

देवों का साक्षात्कार होता है। वे देव उसे दिव्य भोगों, ऐश्वर्यो से आकृष्ट करते है। इस स्थिति में योगी को अति सावधान रहना चाहिये। इनमें आसक्ति होने से पुन दु खादि बन्धन की प्राप्ति सभव है।

वृत्ति—चत्वारो योगिनो भवन्ति; तत्राभ्यासवान् प्रवृत्तमात्रज्योति प्रथम। ऋतम्भरप्रज्ञो द्वितीय। भूतेन्द्रियजयी तृतीय। अतिक्रान्तभावनीयश्चतुर्थ। तस्य चतुर्थस्य समाधे प्राप्तसप्तविधभूमिप्रत्ययस्यान्त्या मधुमतीसज्ञा भूमिका साक्षात्कुर्वत स्वामिनो देवा उपनिमन्त्रयितारो भवन्ति, दिव्यस्त्री[1] रसायनादिकमुपढौकयन्तीति तस्मिन्नुपनिमन्त्रणे न अनेन सङ्ग कर्त्तव्य, नापि स्मय। सङ्गकरणे पुनर्विषयभोगे पतति, स्मयकरणे कृतकृत्यमात्मान मन्यानो न समाधौ उत्साह, अत सङ्ग-स्मययोस्तेन वर्जन कर्त्तव्यम्॥ ५१॥

चत्वार=चार प्रकार के। योगिन = योगी। भवन्ति = होते है। तत्र= उन चतुर्विध योगियो में। प्रवृत्तमात्रज्योति =प्रवृत्तमात्रज्योति = प्रवृत्तमात्रज्योति वाला, प्रकाशप्राप्ति में निरत रहने वाला। अभ्यासवान् = अभ्यासी योगी। प्रथम = प्रथम है। ऋतम्भरप्रज्ञ = ऋतभर प्रज्ञा से समन्वित योगी। द्वितीय = द्वितीय है। भूतेन्द्रियजयी = भूतो तथा इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने वाला योगी। तृतीय = तृतीय है। अतिक्रान्तभावनीय = अतिक्रान्त भावनीय, समस्त ध्येय, भाव विषयो का चिन्तन कर लेने वाला, असप्रज्ञात समाधि द्वारा चित्त का विलय करना ही एक मात्र प्रयोजन जिसका शेष है, ऐसा योगी। चतुर्थ = चतुर्थ प्रकार का है। तस्य = उस। चतुर्थस्य = चतुर्थप्रकार के योगी के। समाधे = समाधि का। प्राप्तसप्तविधभूमिप्रत्ययस्य = प्राप्त हुई सात प्रकार की भूमियो के ज्ञान के। अन्त्या = अन्त में, अनन्तर। मधुमतीसज्ञा = मधुमती नाम वाली। भूमिका = भूमिका का। साक्षात्कुर्वत = प्रत्यक्ष करते हुये योगी को। स्वामिन = स्वामी। देवा = देवगण। उपनिमन्त्रयितार = निमन्त्रण प्रदान करने वाले, दिव्य भोगो को उपस्थित करने वाले। भवन्ति = होते है अर्थात्। दिव्यस्त्रीवसनादिक-दिव्य, रमणीय स्त्री, वस्त्र, अलकार इत्यादि। उपढौकयन्ति-प्रदान करते है। इति—इस रूप से देवगण इन योगियों को दिव्य

---

१ दिव्यस्त्रीवसनादिकम् (पा०)।

भोगों द्वारा आकृष्ट करते हैं। किन्तु। अनेन = इस योगी द्वारा। तस्मिन् = उस। उपनिमन्त्रणे = निमन्त्रण में। सङ्ग = आसक्ति, राग। न = नहीं। कर्त्तव्य. = करना चाहिये। और। स्मय = अभिमान। अपि = भी। न = नहीं करना चाहिये। सङ्गतिकरणे=उस दिव्य विषय भोगों में राग करने से। पुन = फिर। यह योगी। विषयभोगे = बन्धन के कारण विषयभोग में। पतति = गिरता है, बंध जाता है। और। स्मयकरणे = अभिमान करने पर। आत्मान = अपने को। कृतकृत्य = कृतकृत्य, कृतार्थ। मन्यमान = मानता हुआ उस योगी का। समाधौ = समाधि में। उत्साह = उत्साह, प्रयास। न = नहीं होता। अत = इसलिये। तेन = उस योगी द्वारा। सङ्गस्मययो = आसक्ति एव अभिमान का। वर्जन = परित्याग। कर्त्तव्य = करना चाहिये॥ ५१॥

अस्यामेव फलभूताया विवेकख्यातौ पूर्वोक्तसयमव्यतिरिक्तमुपायान्तरमाह—

अस्या = इस। एव = ही। फलभूताया = फल रूप में विद्यमान। विवेकख्यातौ = सत्त्व-पुरुष विवेक ज्ञान में। पूर्वोक्तसयमव्यतिरिक्तं = पहले वर्णन किये गये सयम से भिन्न। उपायान्तर = दूसरे उपाय, साधन का। आह = वर्णन करते है।

क्षण-तत्क्रमयो. सयमाद्विवेकज ज्ञानम्॥ ५२॥

अर्थ—क्षण-तत्क्रमयो. = क्षण, समय के सबसे छोटे, अविभाज्य अश तथा उसके क्रम, पूर्वापर भाव, में। सयमाद् = सयम करने से। विवेकज = विवेकजनित। ज्ञान = ज्ञान प्राप्त होता है।

वृत्ति—क्षण सर्वान्तिकालावयव, यस्य कला, प्रभवितु न शक्यन्ते, तथाविधाना कालक्षणाना य क्रम पौर्वापर्येण परिणाम., तत्र सयमात् प्रागुक्त विवेकज ज्ञान[1] मुत्पद्यते। अयमर्थ—अय कालक्षणोऽमुष्मात् कालक्षणादुत्तर, अयमस्मात् पूर्व, इत्येवविधे क्रमे कृतसयमस्यात्यन्तसूक्ष्मेऽपि क्षणक्रमे यदा भवति साक्षात्कार, तदा अन्यदपि सूक्ष्म महदादिमाक्षात्करोतीति विवेकज्ञानोत्पत्ति॥५२॥

---

१. विवेकज्ञानमिति क्वचिद् दृश्यमान पाठोऽसाधु.।

सर्वान्तिकालावयव = काल, समय का सबसे अन्त, छोटा अवयव, भाग। क्षण = क्षण है। यस्य = जिस काल का। कला = शकल, अवान्तरभेद, भाग टुकडा। प्रभवितु = होना। न = नही। शक्यन्ते = सभव है। तथाविधाना = उस प्रकार के। कालक्षणाना = काल के क्षणों का, समय के अविभाज्य अशो का। य = जो। क्रम = क्रम अर्थात्। पौर्वापर्य्येण = पूर्व अपर रूप से। परिणाम = जो परिणाम है। तत्र = उसमें। सयमात् = सयम करने से। प्राग् = पहले। उक्त = कहा गया। विवेकज = विवेकजन्य, विवेकजनित। ज्ञान = ज्ञान। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। अय = यह। अर्थ = अभिप्राय है। अय = यह। कालक्षण = काल का क्षण। अमुष्मात् = इस। कालक्षणाद् = काल के क्षण से। उत्तर = उत्तर, पश्चात् का है। और। अय = यह काल का क्षण। अस्मात् = इस काल के क्षण से। पूर्व = पूर्व पहले विद्यमान है। इति = इस प्रकार से। एव विधे = इस प्रकार के। क्रमे = क्षण के क्रम, पूर्वोत्तर भाव में। कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी को। अत्यन्त सूक्ष्मे = अत्यन्तसूक्ष्म। क्षणक्रमे = क्षण के क्रम मे। अपि = भी। यदा = जब। साक्षात्कार = साक्षात्कार, प्रत्यक्षदर्शन। भवति = होता है। तदा = तब। अन्यद् = दूसरी। अपि = भी। सूक्ष्म = सूक्ष्म वस्तु। महदादिसाक्षात्करोति=महत्तत्त्व, बुद्धि, प्रकृति, अहकार, तन्मात्राओ इत्यादि का साक्षात्कार करता है। इति = इस रूप मे। विवेकज्ञानोत्पत्ति = क्षण तथा उसके क्रम में सयम करने से विवेकजनित ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥ ५२ ॥

अस्यैव सयमस्य विषयविवेकोपक्षेपणायाह[1]—

अस्य = इस। एव = ही। सयमस्य = सयम के। विषयविवेकोपक्षेपणाय= विषय विवेक के उपन्यास के लिये। आह = कहते हैं।

जाति-लक्षण-देशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्तत प्रतिपत्ति ॥ ५३ ॥

अर्थ—तुल्ययो = दो सदृश पदार्थों में। जातिलक्षणदेशै = जाति, लक्षण

---

१ विषयविवेकोपक्षेपणायाह (पा०)।

तथा देश-स्थान के द्वारा। अन्यता = भेद, अनन्तर का। अनवच्छेदात् = अवच्छेद, निर्णय न होने से। ततः = उस विवेक जनित ज्ञान से। प्रतिपत्ति = भेद की प्रतीति ज्ञान होता है। पदार्थों में परस्पर भेद के जातिलक्षण-देश विविध हेतु हैं। किंतु जिन दो समान पदार्थों में इनकी अगति हो जाति है, वहाँ पर भेद का ग्रहण केवल विवेकजन्य ज्ञान द्वारा ही होता है।

वृत्ति—पदार्थानां भेदहेतवो जाति-लक्षण-देशा भवन्ति। क्वचिद्भेदहेतुर्जातिः, यथा—गौरियं, महिषीयमिति। जात्या तुल्ययोर्लक्षणं भेदहेतुः, इयं कर्बुरा, इयम् अरुणेति। जात्या लक्षणेनाभिन्नयोर्भेदहेतुर्देशो द्रष्टव्यः, यथा—तुल्यप्रमाणयोरामलकयोर्भिन्नदेशस्थितयोर्यदा पुनर्भेदोऽवधारयितुं न शक्यते, यथा—एकदेशस्थितयोः शुक्लयोः पार्थिवयोः परमाण्वोः, तथाविधे विषये भेदाय कृतसंयमस्य भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते, तदा तदभ्यासात् सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि[1] भेदेन प्रतिपद्यते। एतदुक्तं भवति—यत्र केनचिदुपायेन भेदो नावधारयितुं शक्यः, तत्र संयमाद्भवत्येव भेदप्रतिपत्तिः[2]॥ ५३॥

पदार्थानां = पदार्थों में। भेदहेतवः = परस्पर भेद के कारण। जातिलक्षणदेशा = जाति, लक्षण तथा देश। भवन्ति = होते हैं। क्वचित् = कहीं पर किन्हीं पदार्थों में। जातिः = जाति ही। भेदहेतुः = भेद में कारण बनती है। यथा = जैसे। इयं = यह। गौः = गौ, गोजाति है। अयं = यह। महिषः = महिष, महिष जाति है। इति = इस रूप से जाति द्वारा भेद होते हैं। जात्या = जाति से। तुल्ययोः = दो समान पदार्थों में, समान जाति के पदार्थों में। भेदहेतुः = भेद का कारण। लक्षणं = लक्षण है। यथा। इयं = यह। कर्बुरा = कर्बुरा वर्ण की, मटल है। इयं=यह। अरुणा=अरुण, रक्त वर्ण की है। इति=इस रूप से। जात्या = जाति। तथा। लक्षणेन = लक्षण की दृष्टि से। अभिन्नयोः = अभिन्न, समान पदार्थों में। देशः = देश, स्थान की। भेदहेतुः = भेद में कारण। द्रष्टव्यः = देखना चाहिये, जाति एवं लक्षण में समान पदार्थों में देश को भेद में

१. तत्त्वानि भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते (पा०),
भेदेन प्रतिपद्यन्ते (पा०)।
२ भेदप्रतीतिः (पा०)।

व्यावर्त्तक हेतु समझना चाहिये । यथा=जैसे । तुल्यप्रमाणयो = समान परिणाम, रूप, लक्षण वाले । आमलकयो = जाति रूप से समान दो आमलकों, आंवलों में । भिन्नदेशस्थितयो = भिन्न दो देशों में विद्यमान आंवलो में देश द्वारा ही भेद का निश्चय होता है । पुन = फिर, किंतु । यत्र = जहाँ पर, जिन पदार्थो में भेद के निर्णायक, उपस्थित करने वाले जाति लक्षण-देश रूप त्रिविध करणों के विद्यमान रहने पर भी । भेद. = भेद का । अवधारयितु = निर्णय करना । न = नही । शक्यते = सभव है । यथा = जैसे कि । एकदेशस्थितयो = देश रूप से एक ही स्थान पर विद्यमान । शुक्लयो = लक्षण रूप शुक्ल वर्ण वाले । पार्थिवयो परमाण्वो = जाति रूप से पृथिवी के दो परमाणुओं में । त्रिविध भेदक हेतुओं के रहने पर भी भेद का ग्रहण करना सम्भव नही है । तथाविधे = उस प्रकार के । विषये = अग्राह्य भेद वाले विषय में । कृतसयमस्य = सयम करने वाले योगी को । भेदेन = उन पदार्थो में परस्पर भेद के साथ । ज्ञान = ज्ञान उत्पन्न होता है । तदा = तब । तद्=उसके । अभ्यासात् = अभ्यास से । सूक्ष्माणि = अहकार, महत्तत्त्व इत्यादि सूक्ष्म । तत्त्वानि=तत्त्वों का । अपि = भी । भेदेन = भेद के साथ । प्रतिपद्यते = ज्ञान होता है । एतद् उक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है । यत्र = जिन पदार्थों में । केनचिद् = जाति-लक्षण-देश रूप किसी भी । उपायेन = उपाय के द्वारा । भेद = भेद । अवधारयितु = निर्णय करना । न = नही । शक्य = सभव है । तत्र = उन पदार्थों में । सयमाद् = सयम के द्वारा । एव = ही । भेदप्रतिपत्ति = परस्पर भेद की प्रतीति । भवति = होती है ॥ ५३ ॥

सूक्ष्माणा तत्त्वानामुक्तस्य विवेकजन्यज्ञानस्य सज्ञा[1]-विषयस्वाभाव्य व्याख्यातुमाह—

सूक्ष्माणा = सूक्ष्म । तत्त्वाना = तत्त्वो के । उक्तस्य = पूर्व में वर्णन किये गये । विवेकजन्यज्ञानस्य = विवेकजनित ज्ञान की । सज्ञा = सज्ञा । विषयस्वाभाव्य = विषय, स्वभाव की । व्याख्यातु = व्याख्या करने के लिये । आह = कहते है ।

१ सज्ञा विषयस्वाभाव्य (पा०) ।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमञ्चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—विवेकज = विवेकजनित । ज्ञान = ज्ञान । तारक = कैवल्य प्रदान करने के कारण त्रिविधदुःख, क्लेशादि से परिपूर्ण संसार सागर से तारने वाला पार करने वाला । सर्वविषय = सभी पदार्थों को ज्ञान का विषय बनाने वाला । सर्वथाविषयं = सभी प्रकार से पदार्थों को ग्रहण करने वाला । च = और । अक्रमं = क्रम रहित, बिना क्रम के ही, युगपत्, एक साथ समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है ।

वृत्ति—उक्तसंयमबलादन्त्यायां भूमिकायामुत्पन्नं ज्ञानं तारकमिति, तारयति अगाधात् संसारसागराद् योगिनम् इत्यन्वर्थया संज्ञया तारकमित्युच्यते । अस्य विषयमाह—सर्वविषयमिति । सर्वाणि तत्त्वानि महदादीनि विषयोऽस्येति सर्वविषयम् । स्वभावश्च अस्य सर्वथाविषयत्वं सर्वाभिरवस्थाभिः स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन तैस्तैः परिणामैः सर्वेण प्रकारेण अवस्थितानि तत्त्वानि विषयोऽस्येति सर्वथाविषयम् ।

स्वभावान्तरमाह अक्रमञ्चेति । निःशेषनानावस्थापरिणतद्रव्यात्मकभाव-ग्रहणेनास्य[1] क्रमो विद्यत इति अक्रमं, सर्वं करतलामलकवद् युगपत् पश्यतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

उक्तसंयमबलाद्=पहले वर्णन किये गये संयम के बल, प्रभाव से । एव=ही । अन्त्यायां = अन्तिम । भूमिकायां = भूमिका में । उत्पन्नं = उत्पन्न हुआ ज्ञान । तारकम् इति = तारक इस नाम वाला है । अगाधात् = अथाह । संसारसागराद् = संसार रूपी समुद्र से । योगिनं =योगी को । तारयति = पार करता है । इति = इसलिये । अन्वर्थया = अर्थ के अनुकूल । संज्ञया = संज्ञा के द्वारा । तारक = इस विवेकजनित ज्ञान को 'तारक' । इति = इस नाम से । उच्यते = कहते हैं । अस्य = इस विवेकजनित ज्ञान के । विषय = विषय को । आह =

---

1. द्रव्यात्मकभावग्रहणे = धर्मलक्षणावस्थात्मत्रिविधभावग्रहणे । द्रव्यैकभावग्रहणे इति पाठान्तरम् ।

बतलाते हैं। सर्वविषय = सर्व विषय। इति = इस रूप से। अर्थात्। सर्वाणि= सभी। महदादीनि = अहंकार, महत्तत्व इत्यादि। तत्त्वानि=तत्त्व। अस्य = इस, विवेकजन्य ज्ञान के। विषय =विषय रूप में हैं। इति=इसलिये, इसे। सर्वविषयं = सर्वविषयक कहा गया है। च = और। सर्वथाविषयत्व = सर्वथा विषयत्व, सभी प्रकार से विषयों का ज्ञान प्राप्त करता हो। अस्य=इस विवेकजनित ज्ञान का। स्वभाव =स्वभाव स्वरूप है। अर्थात्। स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन=स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से। सर्वाभि =सभी। अवस्थाभि =अनागत-उदित-अतीत रूप अवस्थाओं के द्वारा। तैं तैं = उन-उन। परिणामै =धर्म-लक्षण-अवस्था परिणामों के साथ। सर्वेण=सभी। प्रकारेण=प्रकार से। अवस्थितानि = विद्यमान। तत्त्वानि=तत्त्व हों। अस्य = इसके। विषय = विषय हैं। इति = इसलिये। सर्वथाविषय = यह विवेकजनित ज्ञान सर्वथा विषय वाला हैं। च = और। अक्रम = अक्रम। इति = इस रूप, नाम से। स्वभावान्तर = दूसरे स्वभाव को। आह = करते हैं। निःशेषनानावस्थापरिणतद्वित्र्येकभावग्रहणे = नाना प्रकार को, विविध रूप की अवस्थाओं में परिणाम को प्राप्त करते हुए समस्त पदार्थों के एक, दो, तीन इत्यादि भाव को ग्रहण करने में। अस्य = इस विवेकजनित ज्ञान का। क्रम = क्रम। न = नहीं। विद्यते = विद्यमान है। इति = इसलिये। अक्रम = इस ज्ञान को अक्रम कहते हैं। सर्व =सभी पदार्थों, विषयों को। करतलामलकवद = करतल पर स्थित आमलक के समान। युगपत् = क्रम के बिना, एक साथ ही पश्यति देखता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है।। ५४॥

अस्माच्च विवेकजात् तारकाख्यात् ज्ञानात् किं भवतीत्याह—

च = और। अस्मात् = इस। विवेकजात् = विवेक से उत्पन्न। तारकाख्यात् = तारक नाम वाले। ज्ञानात् = ज्ञान से। किं = क्या। भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = निरूपण करते हैं।

सत्त्व-पुरुषयो शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥ ५५ ॥

अर्थ —सत्त्वपुरुषयो = बुद्धि तथा पुरुष दोनों की। शुद्धिसाम्ये = समान रूप में शुद्धि हो जाने पर। कैवल्य = कैवल्य, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

सत्त्व-पुरुषान्यताख्याति से बुद्धि और पुरुष दोनों अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। अत्यन्त निर्मल, विमल बुद्धि पुरुष के लिये भोग उपस्थित न करके अपने कारण में विलीन हो जाती है और पुरुष भी अविद्या के कारण प्राप्त बुद्धि के सबन्ध का परित्याग कर, चिन्मात्र अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। पुरुष की यही स्वरूपप्रतिष्ठा ही कैवल्य है।

वृत्ति —सत्त्व-पुरुषावुक्तलक्षणौ, (२।६, २।१८, २।२०), तयो शुद्धिसाम्ये सत्त्वस्य सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या स्वकारणानुप्रवेशः, बुद्धि, पुरुषस्य शुद्धिरुपचरितभोगाभाव, इति द्वयो समानाया शुद्धौ पुरुषस्य कैवल्यमुत्पद्यते, मोक्षो भवतीत्यर्थ. ॥ ५५ ॥

सत्त्व-पुरुषौ = बुद्धि तथा पुरुष। उक्तलक्षणौ = (२।६, २।१८, २।२०) में निरूपण किये गये लक्षण, स्वरूप वाले हैं। तयो = उन्हीं बुद्धि तथा पुरुष दोनों की। शुद्धिसाम्ये = समान रूप से शुद्ध होना अर्थात् सत्त्वस्य = सत्त्व, बुद्धि की। सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या = सभी प्रकार के कार्यों में कर्तृत्व भावना का निरास हो जाने से, कर्तृत्व की भावना समाप्त हो जाने से। स्वकारणानुप्रवेश = अपने मूल कारण प्रकृति में प्रवेश करना, विलय को प्राप्त करना। शुद्धि = शुद्धता है। पुरुषस्य = पुरुष की, शुद्धि = शुद्धता तो। उपचरितभोगाभाव = उपचार सबन्ध से कल्पित भोग का अभाव है। यद्यपि पुरुष भोक्ता नहीं है, पर अविद्या के कारण उसमें भोक्ता रूप का उपचार होता है। इति = इस प्रकार। द्वयो = बुद्धि तथा पुरुष दोनों की। समानाया = समान रूप से। शुद्धौ = विशुद्धि हो जाने पर, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर। पुरुषस्य = पुरुष का। कैवल्य=कैवल्य, अपवर्ग। उत्पद्यते=उत्पन्न होता है। मोक्ष = मोक्ष, पुरुष का त्रिविध दुःखों से ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक निवृत्ति। भवति = होती है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है ॥ ५५ ॥

तदेवमन्तरङ्ग योगाङ्गत्रयमभिधाय, तस्य च सयमसज्ञा कृत्वा, सयमस्य विषयप्रदर्शनार्थं परिणामत्रयमुपपाद्य, सयमबलोत्पद्यमाना पूर्वान्तपरान्त-मध्यभवा सिद्धीरुपदर्श्य, समाध्यभ्यासोपपत्तये[१] बाह्या भुवनज्ञानादिरूपा आभ्यन्त-

१ समाध्या स्वाम्योत्पत्तये (पा०)।

राश्च कायव्यूहज्ञानादिरूपा प्रदर्श्य, समाध्युपयोगाय इन्द्रियप्राणजयादिपूर्विका[1] परमपुरुषार्थसिद्धये यथाक्रममवस्थासहितभूतजयेन्द्रियसत्त्वजयोद्भवाश्च व्याख्याय, विवेकज्ञानोपपत्तये तांस्तानुपायानुपन्यस्य, तारकस्य सर्वसमाध्यवस्थापर्यन्तभवस्य स्वरूपमभिधाय, तत्समापत्तौ कृताधिकारस्य चित्तसत्त्वस्य स्वकारणानुप्रवेशात् कैवल्यमुपपद्यत इत्यभिहितम् इति निर्णीतो विभूतिपादस्तृतीय ।

तद् एवं = इस प्रकार । अन्तरङ्ग = अन्तरङ्ग साधन के रूप से । योगाङ्गत्रय = धारणा-ध्यान-समाधि रूप योग के त्रिविध अङ्गों का । अभिधाय = वर्णन करके । च = और । तस्य = उस अङ्ग त्रय की । संयमसंज्ञां । कृत्वा = करके । संयमस्य = संयम के । विषयदर्शनार्थं = विषयों का वर्णन करने के लिये । परिणामत्रयं = धर्म-लक्षण-अवस्था रूप त्रिविध परिणामों का । उपपाद्य = प्रतिपादन करके । संयमबलात्पद्यमाना = संयम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली । पूर्वान्तपरान्तमध्यभवा = पूर्व, पश्चात् तथा मध्य में प्राप्त होने वाली । सिद्धी = सिद्धियों का । उपदर्श्य = निरूपण करके । समाध्यभ्यासोपपत्तये = समाधि के अभ्यास की सिद्धि के लिये । भुवनज्ञानादिरूपा = भुवन ज्ञान, नक्षत्र-गति ज्ञान इत्यादि । बाह्या = बाह्य सिद्धियों का । च = और । कायव्यूहज्ञानादि-रूपा = शारीरिक अवयवों को विशेष संहति, नाडीजाल, चित्तज्ञान इत्यादि । आभ्यन्तरा. = अन्त सिद्धियों का । प्रदर्श्य = प्रदर्शन, वर्णन करके । सामाध्युपयोगाय= समाधि के उपयोग, उपकार के लिए । इन्द्रियप्राणजयादिपूर्विका = इन्द्रिय जय तथा उदान-समान इत्यादि प्राणों के जय का । प्रदर्श्य = वर्णन करके । परमपुरुषार्थसिद्धये = परम पुरुषार्थ अपवर्ग की सिद्धि के लिये । यथाक्रम = क्रम के अनुसार । अवस्थासहितभूतजयेन्द्रियसत्त्वजयोद्भवा च = स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्म-अन्वय-अर्थवत्त्व रूप पञ्च अवस्थाओं के साथ भूतों के ऊपर विजय को, ग्रहण-स्वरूप-अस्मिता-अन्वय अर्थवत्त्व सहित सत्त्वगुण विशिष्ट इन्द्रियों के जय को तथा भूत-इन्द्रिय जय से प्राप्त होने वाले फलों को । व्याख्याय = व्याख्या करके । विवेकज्ञानोपपत्तये = सत्त्वपुरुषान्यताख्याति, भेद ज्ञान, स्वरूप ज्ञान की सिद्धि के लिये । तान् तान् = उन, उन । उपायान् = उपायों, साधनों का । उपन्यस्य=

[1] पूर्विका प्रदर्श्य परम (पा०) ।

उपन्यास करके। सर्वसमाध्यवस्थापर्यन्तभवस्य = सभी समाधियों के अन्त में उत्पन्न होने वाला। तारकस्य = तारक ज्ञान के। स्वरूप = स्वरूप को। अभिधाय = कह करके। तत् समापत्ते. = उस तारक ज्ञान की प्राप्ति होने से। कृताधिकारस्य = अधिकारयुक्त, कर्तृत्वभोक्तृत्व रूप भावना से युक्त। चित्तसत्त्वस्य = सत्त्वगुणविशिष्ट चित्त का। स्वकारणानुप्रवेशात् = अपने मूल कारण प्रकृति में प्रवेश करने से, विलीन होने से। कैवल्य = कैवल्य, अपवर्ग की। उपपद्यते = सिद्धि होती है। इति = इस रूप से अभिहित = कहा गया है अर्थात् सत्त्वपुरुषान्यतारख्याति के उत्पन्न होते ही चित्त अपने कारण में विलय को प्राप्त कर लेता है तथा पुरुष की अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठा हो जाती है, यही कैवल्य है। इति = इस प्रकार। तृतीय = प्रस्तुत शास्त्र का तृतीय। विभूतिपाद = विभूतिपाद का। निर्णीत = निर्णय, सम्यक् विवेचन किया गया।

इति धारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ विभूतिपादस्तृतीयः।

❀ इति विभूतिपादः ❀

अथ कैवल्यपादः ।

मदाज्ञयैव कैवल्यं विनोपायैः प्रजायते ।
तमेकमजमीशानं चिदानन्दमयं स्तुमः ॥

इदानीं विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन युक्त्या कैवल्यस्वरूपज्ञानाय[1] कैवल्यपादोऽयमारभ्यते ।

तत्र याः पूर्वमुक्ताः सिद्धयस्तासां नानाविधं जन्मा[2]दिकारणप्रतिपादनद्वारेणैव बोधयति—यदि वा या एता सिद्धयः[3] ताः सर्वाः पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलाज् जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेनाश्रित्य प्रवर्तन्ते । ततश्चानेकभवसाध्यस्य समाधेर्न क्षतिरस्तीत्याश्वासोत्पादनाय[4] समाधिसिद्धेश्च प्राधान्यख्यापनार्थं कैवल्योपयोगार्थमाह—

इदानीं = अब । विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन = विरोध, अविद्याजन्य, भ्रांति, संशय का निराकरण करने के लिये । युक्त्या = युक्ति, तर्क द्वारा । कैवल्यस्वरूपज्ञानाय = कैवल्य, अपवर्ग के स्वरूप, लक्षण के ज्ञान के लिये । अयं = यह । कैवल्यपादः = चतुर्थ कैवल्यपाद का वर्णन । आरभ्यते = प्रारम्भ किया जाता है ।

तत्र = उनमें । याः = जो । पूर्वमुक्ताः = पहले वर्णन की गई । सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं । तासां = उन सिद्धियों का । नानाविधजन्मादिकारणप्रतिपादनद्वारेण = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि इत्यादि विविध प्रकार के कारण, निमित्तों से उत्पत्ति के कथन, निरूपण द्वारा । एव = इस प्रकार से । बोधयति = ज्ञान कराते हैं । मदीयाः = मेरी । एताः = जो ये । सिद्धयः = सिद्धियाँ हैं । ताः = वे । सर्वाः = सभी । पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलात् = पूर्व जन्म में अभ्यास

---

१ ज्ञानाय (पा०) ।
२ जात्यादिकारण (पा०) ।
३ मदीया एता सिद्धयः (पा०) ।
४ विश्वासोत्पादनाय (पा०) ।

की गई समाधि के प्रभाव से । जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेन = केवल जन्म इत्यादि के कारण का । आश्रित्य = आलम्बन प्राप्त कर । प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्त, प्रकट होती है । तत च = और इस प्रकार । अनेकभवसाध्यस्य = अनेक जन्मो से सिद्ध, प्राप्त होने वाली । समाधे = समाधि का । न = नही । क्षति = क्षति, अभाव । अस्ति = होता है । इति = इसी जन्मान्तर अभ्यस्त समाधि की प्राप्ति के विषय में । आश्वासोत्पादनाय = विश्वास, श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये । च = और । कैवल्योपयोगार्थं = कैवल्य, मोक्ष के लिये उपयोगी, उपकारक । समाधिसिद्धे = समाधि की सिद्धि को । प्राधान्यख्यापनार्थं = प्रधानता, प्रमुखता को बतलाने, ज्ञान कराने के लिये । आह = कहते हैं ।

जन्मोपधि-मन्त्र-तप -समाधिजा सिद्धय[1] ॥ १ ॥

अर्थ.—जन्मौपधिमन्त्रतप समाधिजा = जन्म से प्राप्त होने वाली, औषधि के सेवन से, मन्त्रो के अनुष्ठान से, तप की साधना से तथा समाधि से उत्पन्न होने वाली । सिद्धय = पांच प्रकार की सिद्धियां होती हैं ।

वृत्ति.—काश्चन जन्मनिमित्ता एव सिद्धय , यथा—पक्ष्यादीनामाकाशे गमनादय यथा वा—कपिलमहर्षिप्रभृतीना जन्मसमनन्तरमेवोपजायमाना ज्ञानादय सांसिद्धिका गुणा । औषधिसिद्धयो यथा—पारदादिरसायनाद्युपयोगात् । मन्त्रसिद्धिर्यथा—मन्त्रजपात् केषाञ्चिदाकाशगमनादि । तप सिद्धिर्यथा—विश्वामित्रादीनाम् । समाधिसिद्धि प्राक् प्रतिपादिता ।

एता. सिद्धय पूर्वजन्मक्षपितक्लेशानामेवोपजायन्ते , तस्मात् समाधिसिद्धाविव अन्यासा सिद्धीना समाधिरेव जन्मान्तराभ्यस्त कारण, मन्त्रादीनि निमित्तमात्राणि ॥ १ ॥

काश्चन = कुछ । सिद्धय = सिद्धियाँ । जन्मनिमित्ता. = जन्म के कारण जन्म-जात । एव = ही होती है । यथा = जैसे । पक्ष्यादीना = पक्षियों इत्यादि का । आकाशे = आकाश में । गमनादय = गमन, सञ्चरण इत्यादि जन्म से प्राप्त

---

१ जन्मादिसिद्धीना यद् विवरण योगचिन्तामण्या शिवानन्देन प्रदत्तं तद् भोजवृत्तिमनुसरति सर्वथा इति दृश्यते ।

होने वाली सिद्धियाँ हैं। यथा वा = अथवा जैसे। कपिलमहर्षिप्रभृतीनां – महर्षि कपिल इत्यादि ऋषियों का। जन्मसमनन्तरं = जन्म के पश्चात्। एव = ही। उपजायमानाः = उत्पन्न होने वाले। ज्ञानादयः = ज्ञान इत्यादि। सांसिद्धिकाः = सांसिद्धिक, स्वयं सिद्ध, प्राप्त होने वाले। गुणाः = गुण जन्म-जात सिद्धियाँ हैं। औषधिसिद्धयः = औषधियों के सेवन से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ हैं। यथा= जैसे। पारदादिरसायनाद्युपयोगात् = पारद इत्यादि रसायन के प्रयोग से। मन्त्रसिद्धिः = मन्त्रों के अनुष्ठान, पाठ से उत्पन्न होने वाली सिद्धि। यथा = जैसे। मन्त्रजपात् = मन्त्रों के जप, पाठ से। केषाञ्चित् = कुछ पुरुषों को। आकाशगमनादि = आकाश में गमन, सचरण इत्यादि सिद्धि प्राप्त होती है। तपःसिद्धिः = तपस्या की साधना से प्राप्त होनेवाली सिद्धि। यथा = जैसे। विश्वामित्रादीनां = विश्वामित्र इत्यादि ऋषियों को मन्त्रों के प्रभाव से सिद्धि प्राप्त हुई थी। समाधिसिद्धिः = समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि। प्राक् = पूर्व विभूतिपाद में। प्रतिपादिता = वर्णन की गई है। एताः = ये सभी। सिद्धयः = सिद्धियाँ। पूर्वजन्मक्षपितक्लेशानां = पूर्व जन्म में क्षीण किये गये अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष इत्यादि क्लेशों के प्रभाव से। एव = ही। उपजायन्ते = इस जन्म में उत्पन्न होती हैं। तस्मात् = इसलिये। समाधिसिद्धौ इव = समाधि की सिद्धि की ही भाँति। अन्यासां = अन्य, जन्म औषधि, मन्त्र, तप इत्यादि से उत्पन्न होने वाली। सिद्धीनां = सिद्धियों का। जन्मान्तराभ्यस्तः = पूर्व जन्म में अभ्यास की गई। समाधिः = सामाधि। एव = ही। कारणं = प्रमुख कारण, हेतु है। मन्त्रादीनि = मन्त्र, औषधि इत्यादि तो। निमित्तमात्राणि = केवल निमित्त कारण हैं॥ १॥

ननु नन्दीश्वरादिकानां जात्यादिपरिणामोऽस्मिन्नेव जन्मनि दृश्यते, तत् कथं जन्मा[1]न्तराभ्यस्तस्य समाधेः कारणत्वमुच्यत इत्याशङ्क्याह—

ननु = शङ्का होती है, प्रश्न उठता है कि। नन्दीश्वरादिकानां = नन्दीश्वर इत्यादि का। जात्यादिपरिणामः = एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिवर्तन की प्राप्ति रूप इत्यादि परिणाम। अस्मिन् = इस। एव = ही। जन्मनि = जन्म

१ कथं जन्मनि जन्मान्तराभ्यस्तस्य (पा०)।

में। दृश्यते = देखा जाता है, पाया जाता है। तत् = तो। कथं = किस प्रकार से। जन्मनि = इसी जन्म में प्राप्त होने वाले जाति इत्यादि परिणाम के सम्बन्ध में। जन्मान्तराभ्यस्तस्य = पूर्व जन्म में अभ्यास की गई। समाधि = समाधि को। कारणत्वं = कारण के रूप में। उच्यते = कहा जाता है। इति = ऐसा। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = उत्तर देते हुए कहते हैं।

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

अर्थ—जात्यन्तरपरिणाम = मनुष्य, तिर्यक् इत्यादि एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिवर्तन रूप परिणाम। प्रकृत्यापूरात्=प्रकृति के उपादान कारण के आपूर अनुप्रवेश से होता है। जाति का परिणाम शरीर तथा इन्द्रियों के परिवर्तन से होता है। अतः शरीर के उपादानभूत पञ्चमहाभूतों एवं इन्द्रियों के उपादान कारण अहंकार के अवयवों के आपूर, अनुप्रवेश, परस्पर प्रवेश से होता है।

वृत्ति—योऽयमिहैव जन्मनि नन्दीश्वरादीनां जात्यादिपरिणामः स प्रकृत्यापूरात्, पाश्चात्त्या एव हि प्रकृतयोऽमुष्मिन् जन्मनि विकारानापूरयन्ति[1] जात्यान्तरीकारेण परिणामयन्ति ॥ २ ॥

इहएव = इस ही, वर्तमान। जन्मनि = जन्म में। नन्दीश्वरादीनां = नन्दीश्वर इत्यादि का। यः = जो। अयं = यह। जात्यादिपरिणाम = एक जाति से दूसरी जाति के रूप में परिणाम है। सः = वह परिणाम। प्रकृत्यापूरात् = प्रकृति के आपूर, उपादान कारणों के अनुप्रवेश से होता है। हि = क्योंकि। पाश्चात्त्याः = पूर्व जन्म की। एव = ही। प्रकृतयः = प्रकृतियाँ, अहंकार, महाभूत इत्यादि उपादान कारण। अमुष्मिन् = इस वर्तमान। जन्मनि = जन्म, जीवन में। विकारेण = विकारों के द्वारा। आपूरयन्ति = अवयवों का परस्पर प्रवेश करती हैं अर्थात्। जात्यादिद्वारेण = जाति इत्यादि के रूप से। परिणमन्ति = परिणाम को प्राप्त करती हैं ॥ २ ॥

---

१ विकारेणपूरयन्ति (पा०)।

२ जात्यादिद्वारेण परिणामयन्ति (पा०),
नामरूपजात्यादिद्वारेण परिणामयन्ति (पा०)।

ननु धर्मधर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते, तत् कथं प्रकृतीनामपूरकत्वम्[3] इत्याह—

ननु = प्रश्न होता है कि । तत्र = जाति इत्यादि के परिणाम के विषय में । धर्माधर्मादय = धर्म, अधर्म इत्यादि । क्रियमाणा = करते हुए, परिणाम को उत्पन्न करते हुए । उपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं, देखे जाते हैं अर्थात् धर्म, अधर्म इत्यादि ही जाति इत्यादि परिणाम को उत्पन्न करने वाले हैं । तत = तो । कथ = किस प्रकार से । प्रकृतीना = जाति इत्यादि परिणाम में प्रकृतियों, उपादानों का । आपूरकत्व = आपूरकत्व, अवयवों का अनुप्रवेश रूप कारण होता है । इति आह = इसी के उत्तर में कहते हैं ।

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां, वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥३॥

अर्थ —निमित्त = प्रकृति के आपूर में निमित्त रूप धर्म इत्यादि । प्रकृतीना प्रकृतियों के । अप्रयोजक = अप्रवर्तक अर्थात् प्रवृत्त, चलाने वाले नहीं हैं अर्थात् धर्म, इत्यादि निमित्त प्रकृतियों को जाति इत्यादि परिणाम उत्पन्न करने के लिये प्रेरक नहीं बनते । तु = किन्तु । क्षेत्रिकवत् = कृषक की भाँति । तत = उन धर्म इत्यादि निमित्तों के द्वारा । वरणभेद = आवरण, बाधा, व्यवधान का भेद निवारण होता है अर्थात् जैसे कृषक एक केदार से दूसरे केदार में जल ले जाने की इच्छा से केवल प्रतिबन्धक, रुकावट को दूर कर देता है और जल स्वयं ही दूसरी क्यारी में पहुँच जाता है, वैसे ही धर्म इत्यादि प्रकृतियों के आपूर में प्रयोजक नहीं है । इनके द्वारा प्रतिबन्धक रूप अधर्म का केवल भेद निराकरण किया जाता है ।

वृत्ति —निमित्तं धर्मादि, तत् प्रकृतीनामर्थान्तरपरिणामे न प्रयोजकं, न हि कार्य्येण कारणं प्रवर्त्तते । कुत्र तर्हि तस्य धर्मादेर्व्यापार इत्याह्—वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् । ततस्तस्मादनुष्ठीयमानाद् धर्माद् वरणमावरणकम् अधर्मादि, तस्यैव विरोधित्वाद् भेदः क्षयः क्रियते, तस्मिन् प्रतिबन्धे क्षीणे प्रकृतयः स्वयमभिमतकार्याय प्रभवन्ति ।

---

३ आपूरकारणत्वम् ।

रोकने वाले केवल आवरण का ही भेद, निवारण। करोति = करता है। तस्मिन् = जल के उस अवरोध के। भिन्ने = भिन्न, विनष्ट, दूर हो जाने पर। स्वय = स्वय। एव = ही। प्रसरत् = क्यारी में चारों तरफ फैलता हुआ। जल = जल। रूप = प्रसार रूप। परिणाम = परिणाम को। गृह्णाति = ग्रहण कर लेता है। जलप्रसरणे तु = और जल के प्रसार, फैलने में तो। तस्य = उस कृषक का। कश्चित् = कुछ भी। प्रयत्न = प्रयास, उद्यम। न = नही है। एव = इसी प्रकार। धर्मादि = धर्म इत्यादि को भी। बोधव्य = समझना चाहिए अर्थात् प्रकृति के आपूर में धर्म इत्यादि प्रयोजक नही है। वे केवल अधर्म रूप अवरोध को दूर कर देते है ॥ ३ ॥

यदा साक्षात्कृततत्त्वस्य योगिनो युगपत् कर्मफलभोगाय आत्मीयनिरतिशय-*विभूत्यनुभवाद् युगपदनेकशरीरनिर्मित्सा जायते, तदा कुतस्तानि चित्तानि प्रभ-*वन्तीत्याह—

यदा = जब। साक्षात्कृततत्त्वस्य = तत्त्वों का साक्षात्, प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करने वाले। योगिन = योगी को। युगपत् = एक साथ। कर्मफलभोगाय= कर्मों क फल को भोगने के लिये। आत्मीयनिरतिशयविभूत्यनुभवाद् = अपनी ही अतिशय रहित, सबसे अधिक विभूति के अनुभव बल से। युगपद् = एक साथ ही। अनेकशरीरनिर्मित्सा = अनेक शरीरों के निर्माण की इच्छा। जायते = उत्पन्न होती है। तदा = तब। तानि = वे। चित्तानि = चित्त। कुत = किस प्रकार। प्रभवन्ति = कार्य करने में समर्थ होते है। इति आह = इसका उत्तर देते है।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अर्थ.—निर्माणचित्तानि=सकल्प से योगी द्वारा निर्माण किये गये, बनाये गये चित्त। अस्मितामात्रात् = अपने उपादान कारण अस्मिता, अहकार से उत्पन्न होने वाले होते है।

वृत्ति—योगिन स्वय निर्मितेषु कायेषु यानि चित्तानि तानि मूलकारणाद्, अस्मितामात्रादेव तदिच्छया प्रसरन्ति, अग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव युगपत् परिण-मन्ति ॥ ४ ॥

योगिन = योगी के, योगी द्वारा। स्वय = अपने से ही, सकल्प मात्र से ही। निर्मितेषु = बनाये गये। कायेषु = शरीरो में। यानि = जो। चित्तानि = चित्त हैं। तानि = निर्मित शरीरो में विद्यमान वे सभी चित्त। मूलकारणाद् = मूल, उपादान कारण। अस्मितामात्राद् एव = अस्मिता, अहकार मे ही उत्पन्न होते हैं। तद् इच्छया = उस योगी की इच्छा के अनुसार। प्रसरन्ति = उन चित्तों की वृत्तियाँ प्रसार को प्राप्त करती हैं, अपने व्यापारो को करती हैं। अग्ने = अग्नि के। विस्फुलिङ्गा = विस्फुलिङ्गो, अग्निकणो, चिनगारियो की। इव = भाँति। युगपत् = एक साथ। परिणमन्ति = परिणाम को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

ननु बहूना चित्ताना भिन्नाभिप्रायत्वान्नैककार्य्यकर्तृत्व स्यादित्याह—

ननु = प्रश्न होता है कि। बहूना = बहुत से, अनेक। चित्ताना = चित्तो का। भिन्नाभिप्रायत्वात् = भिन्न-भिन्न, विविध प्रकार का अभिप्राय, (उद्देश्य) होने के कारण। एककार्य्यकर्तृत्व = एक समान कार्य का कर्ता होना, सम्पन्न करना। न = नही। स्याद् = सम्भव हो सकेगा। इति आह = इसी का उत्तर देते हैं।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेपाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अनेकेपा = सकल्प मात्र से बनाये गये अनेक नवीन चित्तो की। प्रवृत्तिभेदे = प्रवृत्ति के भेद में, विविध प्रकार की प्रवृत्तियो, व्यापारों में। प्रयोजक = अधिष्ठता रूप से प्रवृत्त, नियुक्त करने वाला। एक = योगी का एक ही। चित्त = चित्त होता है।

वृत्ति—तेपाम अनेकेपा चेतसा प्रवृत्तिभेदे व्यापारनानात्वे एकं योगि-नश्चित्त प्रयोजक प्रेरकम्, अधिष्ठातृत्वेन, तेन न भिन्नमतत्वम्। अयमर्थ—यथा आत्मीयशरीरे मनश्चक्षु पाण्यादीनि यथेच्छ प्रेरयति, अधिष्ठातृत्वेन, एव कार्यान्तरेष्वपीति ॥ ५ ॥

तेपा = सकल्प मात्र से उत्पन्न किये गये उन। अनेकेपा = अनेक, बहुतमे। चेतसा=नवीन चित्तो की। प्रवृत्तिभेदे=प्रवृत्तियो के भेद मे अर्थात्। व्यापारनानात्वे

= विविध प्रकार के व्यापारों में, व्यापार की विविधता में। योगिन = योगी का। एक = एक ही। चित्त = अपना चित्त। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता, नियन्ता रूप से। प्रयोजक=प्रयोजक अर्थात्। प्रेरक = प्रेरक है। तेन = इसलिये। भिन्नमतत्व = इससे भिन्न विपरीत मत। न = नहीं है अर्थात् योगी का अपना एक ही चित्त निर्माण किये गये अनेक चित्तों के व्यापार में प्रेरक बनता है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। यथा = जैसे। आत्मीयशरीरे = अपने शरीर में। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता रूप से योगी का अपना चित्त। मनश्चक्षु पाण्यादीनि = मन, चक्षु, हस्त इत्यादि इन्द्रियों को। यथेच्छ = अपनी इच्छा के अनुसार। प्रेरयति = प्रेरित करता है, व्यापारों में नियुक्त करता है। एव = इसी प्रकार। कायान्तरेषु अपि इति = सकल्प मात्र से बनाये गये अन्य शरीरों में विद्यमान अनेक चित्त को भी प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

जन्मादिप्रभवत्वात् सिद्धीना चित्तमपि तत्प्रभव पञ्चविधमेव, ततोजन्मादिप्रभवाच्चित्तात् समाधिप्रभवस्य चित्तस्य वैलक्षण्यमाह—

सिद्धीना = सिद्धियों का। जन्मादिप्रभवत्वात् = जन्म, औषधि, मन्त्र तप, समाधि से उत्पन्न होने के कारण। पञ्चविध = पाँच प्रकार के। एव = ही। चित्त = चित्त। अपि = भी। तत्प्रभव = उन्हीं से उत्पन्न होते हैं। अत = इसलिये। जन्मादिप्रभवात् = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप से उत्पन्न होने वाले। चित्तात् चित्त से। समाधिप्रभवस्य = समाधि से उत्पन्न। चित्तस्य = चित्त को। वैलक्षण्य = विलक्षणता, विशेषता, भेद को। आह = कहते हैं।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

अर्थ —तत्र = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि रूप पञ्च प्रकार के सकल्प-निर्मित चित्तों में। ध्यानज=ध्यान, समाधि से उत्पन्न होने वाला चित्त। अनाशय= आशय, वासना, सस्कारों से रहित होता है। शेष चार प्रकार के चित्त वासनाओं से युक्त होते हैं।

वृत्ति —ध्यानज समाधिज यच् चित्त तत् पञ्चसु मध्ये अनाशय कर्मवासनारहितमित्यर्थ ॥ ६ ॥

ध्यानज = ध्यान से उत्पन्न अर्थात् । समाधिज = समाधि से उत्पन्न । यत् = जो । चित्तं = चित्त है । तत् = वह समाधि जन्य चित्त । पञ्चसु = जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि पाँचों से उत्पन्न होने वाले चित्तों के । मध्ये = बीच में । अनाशयं = आशय रहित होता है । कर्मवासनारहित = कर्म वासनाओं, संस्कारों से रहित होता है । इति अर्थ = यह अभिप्राय है ।

यथा इतरचित्तेभ्यो योगिनश्चित्त विलक्षण क्लेशादिरहित, तथा कर्मापि विलक्षणमित्याह—

यथा = जैसे । *इतरचित्तेभ्य* = अन्य चित्तों से । *योगिन* = योगी का । चित्त = चित्त । विलक्षण = विलक्षण, विशेष अर्थात् । क्लेशादिरहित = क्लेश इत्यादि से रहित, विनिर्मुक्त होता है । तथा = वैसे ही । कर्म = योगी के कर्म । अपि = भी । विलक्षणं = विलक्षण होते हैं । इति आह = इसी को कहते हैं ।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—योगिन. = योगी के । कर्म = कर्म । अशुक्लाकृष्णं = कर्मसंस्कारों के अभाव में, फलाभाव के कारण अशुक्ल, पुण्य रहित तथा अकृष्ण पाप रहित होते हैं । किन्तु । इतरेषा = सामान्य मनुष्यों के । त्रिविध = शुक्ल, पुण्य, कृष्ण, पाप तथा शुक्लकृष्ण, पुण्यपापमिश्रित कर्म होते हैं ।

वृत्ति—शुभफलद कर्म यागादि शुक्लम्, अशुभफलद ब्रह्महत्यादि कृष्णम्, उभयसङ्कीर्णं शुक्लकृष्णम् । तत्र शुक्ल कर्म विचक्षणाना दानतप स्वाध्याया-दिमता पुरुषाणाम् । कृष्ण कर्म दानवानाम्[1] । शुक्लकृष्ण मनुष्याणाम् । योगिनान्तु सन्यासवता त्रिविधकर्मविपरीत यत् फलत्यागानुसन्धानेनैवानुष्ठानाद् न किञ्चित् फलमारभते ॥ ७ ॥

शुभफलद = शुभ कल्याणकारी फल को प्रदान करने वाले । यागादि = यज्ञ इत्यादि । कर्म = कर्म । शुक्ल = शुक्ल पुण्य रूप हैं । अशुभफलद = अशुभ फल को प्रदान करने वाले । ब्रह्महत्यादि = ब्राह्मण हत्या इत्यादि कर्म । कृष्ण =

१ नारकिणाम् (पा०) ।

कृष्ण, पाप रूप है। उभयसकीर्णं = शुभ-अशुभ, पुण्य-पापमिश्रित कर्म। शुक्ल-कृष्ण = शुक्ल-कृष्ण, पुण्य-पाप रूप है। तत्र = उन त्रिविध कर्मों में। दानतप-स्वाध्यायादिमता = दान देना, तप की साधना, वेद-शास्त्रो के अध्ययन इत्यादि कर्मों में निरत, लगे हुये। विचक्षणाना = बुद्धिमान्। पुरुषाणा = पुरुषो के। कर्म = कर्म। शुक्ल = शुक्ल, पुण्य रूप होते है। दानवाना = दानवो का। कर्म = कर्म। कृष्ण = कृष्ण, पाप रूप होते है। मनुष्याणा = मनुष्यो के कर्म शुक्लकृष्ण = शुक्ल-कृष्ण, पुण्य-पाप मिश्रित होते हैं। सन्यासवता = सन्यास-युक्त। योगिना = योगियो का कर्म। त्रिविधकर्मविपरीत = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण रूप त्रिविध कर्मों से विपरीत, भिन्न होता है अर्थात् अशुक्ल एव अकृष्ण कर्म योगियो के होते है। यत् = जो कर्म। फलत्यागानुसन्धानेन = विचारपूर्वक फल प्राप्ति की इच्छा का परित्याग करके। एव = ही। अनुष्ठा-नाद् = अनुष्ठान, सपादन करने से। किंचित् = कुछ भी। फल = फल को। न = नही। आरभते = आरम्भ करते है, प्रदान करते हैं अर्थात् कामना से रहित होकर किये गये योगी के कर्म शुभ-अशुभ कुछ भी फल प्रदान नहीं करते ॥ ७ ॥

अस्यैव कर्मण फलमाह—

अस्य = इस। एव = ही। कर्मण = कर्म के। फल = फल का। आह = वर्णन करते है।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तत = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण रूप त्रिविध कर्मों से। तद्विपा-कानुगुणाना = उन कर्म फलो के अनुसार, कर्मों के विपाक, भोग के अनुकूल। एव = ही। वासनाना = वासनाओं, सस्कारों की। अभिव्यक्ति = अभिव्यक्ति, उद्भूति, प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् त्रिविध कर्मों के अनुसार पुरुष को जिस विशेष शरीर, आयु, भोग इत्यादि फलो की प्राप्ति होती हैं, उसी जाति, आयु, भोग रूप विपाक के अनुसार ही चित्त में सस्कारो की अभिव्यक्ति होती है। यथा मानव जाति की प्राप्ति पर उसके अनुकूल सस्कार तथा पशु इत्यादि जाति की प्राप्ति से उनके अनुसार ही सस्कारो का उद्भव होता है, शेष सस्कार अनभिव्यक्त रहते हैं।

वृत्तिः—इह हि द्विविधा कर्मवासना, स्मृतिमात्रफला जात्यायुर्भोगफलाश्च। तत्र जात्यायुर्भोगफला अनेकजन्मभवा[1] इत्यनेन पूर्वमेव (2।12-13) कृतनिर्णया। यास्तु स्मृतिमात्रफला ता, तत्र कर्मण, येन कर्मणा यादृक् शरीरमारब्धंदेव-मनुष्य-तिर्य्यगादिभेद, तस्य विपाकस्य, अनुगुणा अनुरूपा, या वासना, तामामेवाभिव्यक्तिर्भवति[2]। अयमर्थ —येन कर्मणा पूर्व देवतादिशरीरमारब्ध, जात्यन्तरशतव्यवधानेन पुनस्तथाविधस्यैव शरीरस्य आरम्भे तदनुरूपा एव स्मृतिफला वासना प्रकटी भवन्ति, लोकान्तरेष्वेवार्थेषु तस्य स्मृत्यादयो जायन्ते। इतरास्तु[3] सत्योऽपि अव्यक्तसज्ञा तिष्ठन्ति, न तस्या दशाया नारकादिशरीरोद्भवा[4] वासना व्यक्तिमायान्ति ॥ 8 ॥

इह हि = इस शरीर में। द्विविधा = दो प्रकार की। कर्मवासना = कर्म वासनायें होती हैं। स्मृतिमात्रफला = प्रथम केवल स्मृतिरूप फल प्रदान करने वाली। च = और। जात्यायुर्भोगफला = द्वितीय प्रकार की जाति आयु, सुख-दुःख इत्यादि भोग रूप फल प्रदान करने वाली कर्म वासनायें हैं। तत्र = उन दो प्रकार की कर्म वासनाओं में। जात्यायुर्भोगफला = जाति-आयु-भोग रूप त्रिविध फल को प्रदान करने वाली। एका = एक प्रकार की कर्म वासना। अनेकजन्मभवा = अनेक जन्मों में किये गये कर्मों के अनुसार होने वाली हैं। इति = इस रूप से। अनेन = इसलिये। पूर्व = पहले 2।12-13 सूत्रों में। एव = ही। कृतनिर्णया = निर्णय, वर्णन किया जा चुका है। या तु = और जो कर्म वासनायें। स्मृतिमात्रफला = केवल स्मृतिरूप फल प्रदान करने वाली हैं। ता = वे कर्म वासनायें। तत = शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण रूप उन त्रिविध। कर्मण = कर्म से। येन = जिस। कर्मणा = कर्म के द्वारा। देवमनुष्यतिर्य्यगादिभेद = देव, मनुष्य, तिर्यक् इत्यादि भेद, रूप वाला। यादृक् = जिस प्रकार का। शरीर = शरीर। आरब्ध = आरम्भ किया गया है, कर्म के विपा-

1 एकानेक जन्मभवा (पा०)।

2 तामामेव तस्मादभिव्यक्तिर्वासनाना (पा०)।

3 इतरास्तु ताम्यो न्यूभूतास्तिष्ठन्ति (पा०)।

4 नारकादिशरीरस्योपभोगभवा (पा०)।

वानुसार प्रदान किया गया है। तस्य = उसके। विपाकस्य = विपाक कर्मफल के। अनुगुणा = अनुगुण अर्थात्। अनुरूपा = अनुरूप, अनुसार। या = जो। वासना = कर्म वासनायें हैं। तासा = उन्ही कर्म वासनाओं की। एव = ही। अभिव्यक्ति = उद्भूति, उत्पत्ति। भवति = होती है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। येन = जिस शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल कृष्ण। कर्मणा = कर्म के द्वारा। पूर्व = पहले। देवतादिशरीर = देव इत्यादि शरीर की, जाति की। आरब्ध = प्राप्ति हुई थी। जात्यन्तरशतव्यवधानेन = बीच में मनुष्य, पशु इत्यादि सैकड़ों, अनेक जातियों के व्यवधान पड़ने पर भी। पुन = फिर। तथाविधस्य एव = उसी प्रकार के ही देव इत्यादि। शरीरस्य = शरीर, जाति के। आरम्भे = प्राप्त होने पर। तद् अनुरूपा = उस देव इत्यादि जाति के अनुकूल। एव = ही। स्मृतिफला = स्मृति रूप फल प्रदान करने वाली। वासना = वासनायें। प्रकटीभवन्ति = प्रकट, उद्भूत होती है। लोकान्तरेषु = लोकान्तर, पूर्व काल की उसी जाति में अनुभव किये गये। अर्थेषु एव = पदार्थों में ही। तस्य = उस पुरुष की। स्मृत्यादय = स्मृति इत्यादि। जायन्ते = उत्पन्न होती हैं। इतरा तु = और पूर्व जन्म की अन्य जातियों में अनुभूत पदार्थों की वासनायें। सत्य = विद्यमान रहते पर। अपि = भी। अव्यक्ततमशा = अव्यक्त, अनभिव्यक्त रूप से। तिष्ठन्ति = स्थित रहती है। तस्या = उस देव इत्यादि। दशाया = दशा, जाति में। नरकादिशरीरोद्भवा = नारकीय इत्यादि शरीर जाति में उत्पन्न हुई। वासना = वासनायें। व्यक्ति = अभिव्यक्ति को। न = नही। आयान्ति = प्राप्त होती हैं॥ ८॥

आसामेव वासनाना कार्य्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह—

आसाम् एव = इन्ही। वासनाना = वासनाओं के। कार्य्यकारणभावानुपपत्ति = कार्य-कारण भाव की अनुपपत्ति, असिद्धि की। आशङ्क्य = आशङ्का करके। समर्थयितु = उसी का समर्थन करने के लिये। आह = कहते हैं।

जाति-देश-कालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं,
स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

अर्थ —स्मृतिसंस्कारयोः स्मृति तथा संस्कारों, कर्मवासनाओं के। एक-रूपत्वात् = एक ही रूप, समान स्वरूप, विषयक होने के कारण। जातिदेश-कालव्यवहितानां = देव मनुष्य-पशु इत्यादि जाति कृत, देश-स्थान कृत तथा काल-समय कृत व्यवधान, विच्छिन्नता होने पर। अपि = भी। आनन्तर्य्यं = संस्कारों, कर्म वासनाओं की निरन्तरता, अविच्छिन्नता, अव्यवधान होता ही है अर्थात् किसी देश में, किसी काल में प्राप्त हुई देव इत्यादि जाति में जिन विषयों का अनुभव किया गया है, उनके संस्कार अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं और स्थान, काल रूप बहुत से व्यवधान होने पर भी पुनः जब देव इत्यादि की जाति प्राप्त होती है तब पूर्व अनुभूत संस्कारों की अभिव्यक्ति पुनः उसी प्रकार से होती है ॥ ९ ॥

वृत्ति —इह नानायोनिषु भ्रमता संसारिणा काञ्चिद् योनिमनुभूय यदा योन्यन्तरमहस्रव्यवधानेन पुनस्तामेव योनिं प्रतिपद्यते, तदा तस्यां पूर्वानुभूतायां योनौ तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया वासना याः प्रकटीभूता आसन्, तास्त-थाविधव्यञ्जकाभावात्तिरोहिताः पुनस्तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे प्रकटीभवन्ति, जाति-देश-कालव्यवधानेऽपि तासां स्वा[1]नुरूपस्मृत्यादिफलसाधने आनन्तर्य्यं नैरन्तर्य्यम्। कुतः? स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात्। तथा हि—

अनुष्ठीयमानात् कर्मणश्चित्तसत्त्वे वासनारूप[2] संस्कारः समुत्पद्यते, स च स्वर्गनरकादीनां फलानामङ्कुरीभावः, कर्मणां वा यागादीनां शक्तिरूपतया अवस्थानं, कर्तुर्वा तथाविधभोग्य[3]भोक्तृत्वरूपं सामर्थ्यम्। संस्कारात् स्मृतिः, स्मृतेश्च सुख-दुःखोपभोगः, तदनुभवाच्च पुनरपि संस्कार-स्मृत्यादयः। एवं च यस्य स्मृति-संस्कारादयो भिन्नाः, तस्यानन्तर्य्याभावे दुर्लभः कार्य्यकारणभावः; अस्माकं तु यदानुभव एव संस्कारीभवति, संस्कारश्च स्मृतिरूपतया परिणमते, तदैक्यैव चित्तस्यानुसन्धातृत्वेन स्थितत्वात् न कार्य्यकारणभावो दुर्घटः ॥ ९ ॥

इह = इस संसार में। नानायोनिषु = देव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि

१ स्वानुभूत (पा०)।

२ वासनानुरूप (पा०)।

३ भोगभोक्तृत्व (पा०)।

प्रकार की योनियों, शरीरो में। भ्रमता = भ्रमण करते हुए, जन्म-मृत्यु को प्राप्त करते हुये। संसारिणा = संसारी जीवों का, जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर भ्रमण करने वाले जीवो का। कान्चिद् = किसी एक विशिष्ट। योनि = देव इत्यादि योनि का। अनुभूय = अनुभव करके। यदा = जब। योन्यन्तरसहस्र-व्यवधानेन = सहस्रों अनेकों मनुष्य, पशु इत्यादि दूसरी योनियों का व्यवधान, अन्तर पड़ने पर भी। पुन = फिर। ता = उस। एव = ही। योनि = देव इत्यादि योनि को। प्रतिपद्यते = प्राप्त करता है। तदा = तब। तस्या = उन। पूर्वानुभूतायां = पूर्व जन्म में अनुभव की गई। योनौ = देव इत्यादि योनि में। तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया = उस प्रकार के, तदनुकूल व्यञ्जक, प्रकट करने वाले, अनुभव करने वाले देव इत्यादि शरीर के विचार से। या = जो। वासना = वासनायें, संस्कार। प्रकटीभूता = प्रकट, अभिव्यक्त। आसन् = हुये थे। ता = वही वासनायें। तथाविधव्यञ्जकाभावात् = उसी प्रकार के, अपने ही अनुकूल प्रकट, व्यक्त करने वाले देव इत्यादि शरीर का अभाव होने से, देव योनि न प्राप्त होने से। तिरोहिता = छिप गई थी, अनभिव्यक्त, लुप्त हो गई थी। पुन = फिर वही वासनायें। तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे = उसी प्रकार के, अपने ही अनुकूल व्यञ्जक प्रकट करने वाले देव इत्यादि शरीर की प्राप्ति हो जाने पर, अनेकों शरीरों के व्यवधान के पश्चात् पुन देव शरीर मिलने पर। प्रकटीभवन्ति = प्रकट, अभिव्यक्त होती हैं, तिरोहित हुई वासनायें पुन प्रकट होती हैं। जातिदेशकालव्यवधाने = मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि जाति, देश भारत, जापान, चीन इत्यादि स्थान तथा काल-समय का व्यवधान, अन्तर होने पर। अपि = भी। तासां = उन वासनाओं का। स्वानुभूतस्मृत्यादिफलसाधने=अपनी अनुभव की गई स्मृति इत्यादि फल को प्रदान करने का साधन, देव इत्यादि शरीर के प्राप्त होने पर। आनन्तर्य्य = आनन्तर्य अर्थात् ? नैरन्तर्य्य = निरन्तरता, अविच्छिन्नता होती है, वासनाओं में एकरूपता होती है। कुत ? = किस कारण से, क्योंकि। स्मृतिसंस्कारयो = स्मृति तथा संस्कार वासनाओं का। एकरूपत्वात् = एक रूप, समान रूपता होने के कारण पूर्व की वासनाओं का जाति-देश-काल का व्यवधान होने पर भी व्यवधान नहीं होता। तथा हि = जैसे

कि। कर्मण = कर्म का। अनुष्ठीयमानात् = अनुष्ठान करने से चित्तसत्त्वे = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त में। वासनारूप = वासना रूपी। सस्कार =सस्कार। समुत्पद्यते = उत्पन्न होता है। न = और। स = वही सस्कार। स्वर्गनरकादीना = स्वर्ग, नरक इत्यादि उत्तम एव अधम। फलाना = फलों का। अङ्कुरीभाव = अङ्कुर रूप है। वा = अथवा। यागादीना = याग इत्यादि। कर्मणा= कर्मों का। शक्तिरूपतया = शक्ति रूप से। अवस्थान = विद्यमान होता है। वा = अथवा। कर्तु = कर्ता, जीव, पुरुष की। तथाविधभोग्यभोक्तृत्वरूप = उस प्रकार भोग्य एव भोक्ता रूप से। सामर्थ्य=सामर्थ्य योग्यता है। सस्कारात्= सस्कार से। स्मृति = स्मृति उत्पन्न होती है। च = और। स्मृते = स्मृति से। सुखदु खोपभोग = सुख तथा दु ख के उपभोग की प्राप्ति होती है। च = और। तद् = उन सुख एव दु खों के। अनुभवात् = अनुभव, उपभोग से। पुन = फिर। अपि = भी। सस्कारस्मृत्यादय = सस्कार तथा स्मृतियाँ इत्यादि उत्पन्न होती हैं अर्थात् सस्कार से स्मृति, स्मृति से सुख-दु ख का उपभोग, सुख-दु ख के उपभोग से पुन सस्कार तथा संस्कार से स्मृति उत्पन्न होती है। सस्कार-स्मृति-भोग की यह अविच्छिन्न परम्परा सदैव चलती रहती है। एव च = और इस प्रकार से, किन्तु। यस्य = जिस पुरुष के। स्मृतिसस्कारादय: = स्मृति, सस्कार, भोग इत्यादि। भिन्ना = भिन्न, असबद्ध हैं अर्थात् जिन पुरुषों के सस्कार से स्मृति तथा स्मृति से भोग एव पुन भोग से सस्कारों की उत्पत्ति नही होती। अत । तस्य = उस पुरुष के। आनन्तर्याभावे = सस्कारो, कर्मवासनाओं की निरन्तरता, अविच्छिन्नता का अभाव होने से अर्थात् कर्म वासनाओं में निरन्तरता न होने से। कार्यकारणभाव = कार्यकारणभाव। दुर्लभ = दुर्लभ, असभव है अर्थात् सस्कारो के कारण स्मृति से सुखदु ख उपभोग की प्राप्ति नही होती। तु = किन्तु। अस्माकं = हम लोगों का, सामान्य पुरुषों का। यदा = जब। अनुभव = अनुभव। एव = ही। संस्कार भवति = सस्कार रूप हो, जाता है। च = और। सस्कार = सस्कार हो। स्मृतिरूपतया = स्मृति रूप से। परिणमते = परिणाम को प्राप्त करता है, सस्कार ही स्मृति रूप में परिवर्तित हो जाता है। तदा = तब ऐसी स्थिति में। एकस्य = एक। एव = ही। चित्तस्य =

चित्त के। अनुसन्धातृत्वेन = अनुसन्धाता रूप में। स्थितत्वात् = विद्यमान होनेके कारण। कार्यकारणभाव = कार्यकारणभाव। दुर्घट = दुर्घट, असम्भव। न = नहीं है। अर्थात् सामान्य पुरुषों को कर्मों में संस्कार, संस्कारों से स्मृति तथा स्मृति से सुख-दुःख भोग की पुनः भोग से संस्कारों की प्राप्ति होती ही रहती है॥ ९॥

भवत्वानन्तर्य्यं कार्य्यकारणभावश्च वासनानां, यदा तु प्रथममेवानुभवः प्रवर्त्तते, तदा किं वासनानिमित्त उत निर्निमित्त इति शङ्कां व्यपनेतुमाह—

वासनानां = कर्मवासनाओं, संस्कारों की। आनन्तर्य्यं = निरन्तरता अविच्छिन्नता, अव्यवधान, अनेकों दूसरी जातियों के व्यवधान के बाद पुनः उसी रूप का होना। च = तथा। कार्य्यकारणभाव = कार्य-कारण भाव। भवतु = होवे। तु = किन्तु। यदा = जब। प्रथम = पहला। एव = ही अनुभव = अनुभव। प्रवर्त्तते = होता है। तदा = तब वह प्रथम अनुभव। किं = क्या। वासना-निमित्त = वासनाओं के कारण उत्पन्न होता है। उत = अथवा। निर्निमित्त = बिना किसी निमित्त कारण के ही, वासनाओं के बिना ही उत्पन्न होता है। इति = इस। शङ्कां = आशङ्का, सन्देह को। व्यपनेतु = दूर करने के लिये। आह = कहते हैं।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्॥ १०॥

अर्थ—च = और। आशिषः = आशा, महामोह रूपी अभिलाषा के। नित्यत्वात् = नित्य होने के कारण, सदैव विद्यमान होने के कारण तासां = उन वासनाओं की। अनादित्वं = अनादिता है अर्थात् सुख के साधन सदैव मेरे लिये विद्यमान रहें—मनुष्य में इस अभिलाषा के सदैव बने रहने के कारण कर्म वासनाओं की अनादि, अविच्छिन्न परम्परा सिद्ध होती है।

वृत्ति—तासां वासनानाम्, अनादित्वं न विद्यते आदिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वं, तासामादिर्नास्तीत्यर्थः; कुत इति? आशिषो नित्यत्वात्—येयमाशीर्महामोहरूपा, सदैव सुखसाधनानि मे भूयासु, मा कदाचन तै मे वियोगो भूदिति यः सङ्कल्पविशेषो वासनानां कारण, तस्य नित्यत्वाद् अनादित्वमित्यर्थः। एतदुक्त

भवति—कारणस्य सन्निहितत्वाद् अनुभवसंस्कारादीनां कार्य्याणां प्रवृत्तिः केन वार्य्यते ? अनुभव-संस्कारानुविद्धं सङ्कोच-विकाशधर्मि चित्तं तत्तदभिव्यञ्जक-विपाकलाभात्[1] तत्तत्फलरूपतया परिणमत इत्यर्थः ॥ १० ॥

तासां = उन । वासनानां = कर्म वासनाओं, संस्कारों की । अनादित्वं = अनादिता, अनादि परम्परा हैं अर्थात् । न = नहीं । विद्यते = विद्यमान हैं । आदिः = आदि, प्रारम्भ । यस्य = जिसका । तस्य = उसी का । भावः = भाव है । तत्त्वं = अनादित्व अर्थात् । तासां = उन वासनाओं का । आदि = आदि, प्रारम्भ । न = नहीं । अस्ति = हैं । इति अर्थः = यह अभिप्राय है । कुतः इति = किस कारण से वासनाओं की अनादिता है । आशिषः = आशा, अभिलाषा के । नित्यत्वात् = नित्य होने के कारण अर्थात् । या = जो । इयं = यह । महामोह-रूपा = महामोह, प्रबल मोहरूपी । आशी = आशा हैं कि । सदैव = सदा ही । मे = मेरे लिये । सुखसाधनानि = सुख, आनन्द को प्रदान करने वाले साधन । भूयासुः = होवें अर्थात् मैं सदा सुखी रहूँ, आनन्द का उपभोग करता रहूँ । कदा-चन = कभी भी । तैः = उन सुख प्रदान करने वाले साधनों के साथ । मे = मेरा । वियोगः = वियोग । मा = मत । भूत = होवे । इति = इस रूप में । वासनानां = वासनाओं का । कारणं = कारण, उत्पन्न करने वाला । यः = जो । सङ्कल्पविशेषः = विशेष प्रकार का सङ्कल्प, धारणा, अभिलाषा है । तस्य = उस अभिलाषा, सकल्प विशेष के । नित्यत्वाद् = नित्य, सदैव बने रहने के कारण । अनादित्वं = कर्म वासनाओं की अनादिता है । इति अर्थः = यह अर्थ है । एतद् उक्तं भवति = इसका यह अभिप्राय है । कारणस्य = सकल्प विशेष, अभिलाषा रूप कारण के । सन्निहितत्वाद् = विद्यमान रहने के कारण । अनुभवसंस्कारा-दीनां = अनुभव, सुख-दुःख उपभोग एवं संस्कार, वासना इत्यादि । कार्य्याणां = कार्यों की । प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति, व्यापार । केन = किसके द्वारा । वार्य्यते = रोका जा सकता है अर्थात् कारण के विद्यमान होने पर कार्य की प्रवृत्ति अवश्य ही होगी । अनुभवसंस्कारानुविद्धं = अनुभव तथा संस्कार से, अनुविद्ध, संपृक्त, युक्त । सङ्कोचविकाशधर्मि = संकोचशील एवं विकासशील धर्म वाला । चित्तं = चित्त

[1] तत्तदभिव्यञ्जकलाभात् (पा०) ।

होता है । तत्तदभिव्यञ्जकलाभात् = अभिव्यञ्जक, प्रेरक उन-उन कर्म वासनाओं के लाभ, प्राप्ति, संयोग से । तत्तत्फलरूपतया = उन-उन-उन फलों के रूप से । परिणमते = परिणाम को प्राप्त करता है । इति अर्थः = यह अभिप्राय है ॥ १० ॥

तासामानन्त्याद् हानं कथं भवतीत्याशङ्क्य हानोपायमाह—

तासां = उन कर्म वासनाओं के । आनन्त्याद् = अनन्त, अनादि होने के कारण । कथं = किस प्रकार, किस उपाय से । हानं = उन वासनाओं का अभाव । भवति = होता है । इति = ऐसी । आशङ्क्य = आशङ्का करके । हानोपाय = वासनाओं के परित्याग, अभाव के उपाय को । आह = कहते हैं ।

हेतु-फलाश्रयालम्बनैः सङ्गृहीतत्वाद् एषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

अर्थ—हेतुफलाश्रयालम्बनैः = हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन के द्वारा । सङ्गृहीतत्वाद् = कर्म वासनाओं का संग्रह, संचय होने के कारण । एषां = इन हेतु फल, आश्रय तथा आलम्बन का । अभावे = अभाव, निराकरण हो जाने पर । तत् = उन कर्म वासनाओं का भी । अभाव = अभाव होता है अर्थात् वासनाओं का हेतु, कारण अविद्या है । जाति-आयु-भोग इनके फल हैं । वासनाओं का आश्रय आधार चित्त है । शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध इत्यादि विषय ही इन वासनाओं के आलम्बन हैं । इन्हीं हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन के द्वारा इन वासनाओं का संग्रह होता है । अतः इनका अभाव हो जाने पर वासनाओं का स्वतः अभाव हो जाता है ।

वृत्ति—वासनानामनन्तरानुभवो हेतुः, तस्याप्यनुभवस्य रागादयः, तेषामविद्येति साक्षात् पारम्पर्येण हेतुः, फलं शरीरादि स्मृत्यादि च, आश्रयो बुद्धिः, आलम्बनं यदेवानुभवस्य तदेव वासनानाम्, अतस्तैर्हेतु-फलाश्रयालम्बनैरनन्तानामपि वासनानां सङ्गृहीतत्वात्, एषां हेत्वादीनाम् अभावे ज्ञानयोगाभ्यां दग्धबीजकल्पत्वे विहिते निर्मूलत्वाच्च वासना प्ररोहं न यान्ति न कार्यमारभन्त इति तासाम् अभावः ॥ ११ ॥

वासनाना = कर्म वासनाओं, संस्कारों का। हेतु = हेतु, कारण। अनन्तरानुभव = अनन्तर, अन्तर, व्यवधानरहित अर्थात् पूर्व जन्म का अनुभव ही हैं। तस्य = उस पूर्व जन्म के। अनुभवस्य = अनुभव का। अपि = भी। रागादय = राग, द्वेष इत्यादि हेतु हैं। तेषा = उन राग, द्वेष इत्यादि का भी। अविद्या = अविद्या ही हेतु है। इति = इस प्रकार। साक्षात् = साक्षात्, प्रत्यक्ष रूप से। पारम्पर्य्येण = परम्परा से। हेतु = वासनाओं का हेतु, मूल कारण अविद्या ही हैं। शरीरादि = शरीर इत्यादि, विशेष प्रकार की जाति तथा आयु की प्राप्ति। च = और। स्मृत्यादि = स्मृति इत्यादि, सुख-दुःख इत्यादि का उपभोग ही। फल = वासनाओं का फल हैं अर्थात् वासनाओं के कारण जाति-आयु भोग रूप त्रिविध फल की प्राप्ति होती हैं। आश्रय = समस्त वासनाओं संस्कारों का आश्रय, आधार। बुद्धि = बुद्धि, चित्त ही हैं। अनुभवस्य=अनुभव का। यद्=जो। एव = ही। आलम्बन=शब्द-स्पर्श रूप-रस-गन्ध आलम्बन हैं। तद् = वह। एव = ही। वासनाना = वासनाओं का भी आलम्बन हैं। अत = इसलिये। तैं = उन। हेतुफलाश्रयालम्बनैं = अविद्या रूप हेतु, जाति-आयु-भोग रूप आश्रय तथा शब्द-स्पर्श इत्यादि आलम्बन के द्वारा। अनन्तानाम् अपि= अनन्त, समस्त, सभी। वासनाओं का। सङ्गृहीतत्वात् = संग्रह, संचय होने के कारण। ऐषा = इन। हेतूना = हेतु, फल, आश्रय, आलम्बनों का। अभावे= अभाव, निराकरण हो जाने पर अर्थात्। ज्ञानयोगाभ्या = ज्ञान तथा योग के द्वारा। दग्धबीजकल्पत्वे = भस्म हुए बीज के सदृश। विहिते = हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन के बनाये जाने पर। च = और। इस प्रकार। निर्मूलत्वात् = मूल रहित होने के कारण। वासना =वासनायें। प्ररोह=प्ररोह, अङ्कुर भाव को। न = नहीं। यान्ति = प्राप्त होती हैं। कार्य्यं = कार्य को। न = नहीं। आरभन्ते = आरम्भ, उत्पन्न करती हैं। इति = यही। तासा = उन कर्म वासनाओं संस्कारों का। अभाव = अभाव, निराकरण हैं ॥ ११ ॥

ननु प्रतिक्षण चित्तस्य [1]नश्वरत्वोपलब्धेर्वासनाना तत्फलानाञ्च कार्य्यकारणभावेन युगपदुभावित्वाद् भेदे कथमेकत्वमित्याशङ्क्य एकत्वसमर्थनायाह—

1. नश्वरत्वात् तरतमत्वोपलब्धे (पा०),
नश्वरत्वाद् भेदोपलब्धे (पा०)।

ननु = सदेह उत्पन्न होता है कि । प्रतिक्षण = प्रत्येक क्षण । चित्तस्य = चित्त के । नश्वरत्वोपलब्धे = विनाशशील, परिवर्तनशील होने के कारण । वासनाना = वासनाओं का । च = और । तत् = उन वासनाओं के । फलाना= फलो का । कार्यकारणभावेन = कारण एव कार्य रूप से । युगपद् = एक साथ । भावित्वात् = होने के कारण । भेदे = उनमें भेद होने से । कथ = किस प्रकार । एकत्व = उनमें एकता है । इति = ऐसी । आशङ्क्य = आशका करके । एकत्वसमर्थनाय = उनमें एकता ही है, यह समर्थन करने के लिये । आह = कहते हैं ।

अतीतानागत स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्माणां = धर्मो का । अध्वभेदाद् = भूत-वर्तमान-भविष्य रूपकाल का भेद होने पर भी । अतीतानागत = अतीत अवस्था वाला तथा अनागत अवस्था वाला पदार्थ । स्वरूपत =स्वरूप से, अपने रूप में । अस्ति = विद्यमान रहता ही है, पदार्थ का कभी भी अभाव नहीं होता । योगदर्शन सत्कार्यवाद का समर्थक है । इसके अनुसार "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत " गीता २।१६ *तथा "असत्त्वे नास्ति सम्बध कारणै सत्त्वसङ्गिभि" "असदकरणात्"* अर्थात् असत् की कभी उत्पत्ति नही हो सकती और साथ ही सत् का कभी अभाव नही हो सकता । सत्कारक के साथ असत्कार्य का सम्बन्ध नही हो सकता । अत सत् पदार्थ का कभी भी अभाव नही होता । धर्मी में भूत-वर्तमान-भविष्य धर्मो का भेद होने पर भी उसकी स्थिति सदैव बनी रहती है । वर्तमान स्वरूप का परित्याग कर अतीत स्वरूप को ग्रहण करना ही उसका अभाव है, धर्मी का अत्यन्ताभाव नही है । वर्तमान स्वरूप में अभिव्यक्त होने से पूर्व वह अनागत अवस्था में विद्यमान रहता ही है । अभाव पाँच प्रकार होता है । १—प्राग् अभाव—उत्पत्ति, अभिव्यक्ति से पूर्व कारण में निहित रहना, अनागत अवस्था में रहना ही पदार्थ का प्राग् अभाव है । यथा घट का मृत्तिका पिण्ड में छिपा रहना ही उसका प्राग् अभाव है । २—प्रध्वंसाभाव—वर्तमान वस्तु का पुन अपने कारण में विलीन हो जाना, अतीत स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही वस्तु का प्रध्वसाभाव है । 'सादिरनन्त प्रध्वसाभाव ' प्रध्वसाभाव सादि एव

अनन्त है। जैसे विवेकख्याति से त्रिविध दुःखों का प्रध्वंसाभाव होता है। ३—अन्योन्याभाव दो पदार्थों का परस्पर एक दूसरे में न पाया जाना ही अन्योन्याभाव है। यथा घट का पट में एवं पट का घट में अन्योन्याभाव है। ४—सामयिकाभाव—पदार्थ का एक समय में एक स्थान पर न पाया जाना ही उसका सामयिकाभाव है। यथा घट का एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाने से प्रथम स्थान में उसका सामयिकाभाव है। चैत्र का गृह से बाहर चले जाने पर गृह में उसका सामयिकाभाव है। ५—अत्यन्ताभाव—पदार्थ का सार्वकालिक अभाव ही अत्यन्ताभाव है। यथा वन्ध्यापुत्र, गगनकुसुम, शशविषाण इत्यादि की कभी भी स्थिति न होने से इनका अत्यन्ताभाव है। इसलिये सत् होने के कारण वस्तु का कभी भी अभाव नहीं होता।

वृत्ति—इह अत्यन्तमसतां भावानामुत्पत्तिर्न युक्तिमती, तेषां सत्त्वसम्बन्धायोगात्, न हि शशविषाणादीनां क्वचिदपि सत्त्वसम्बन्धो दृष्टः, निरुपाख्ये च कार्ये किमुद्दिश्य कारणानि प्रवर्त्तन्ते? न ह्यसन्तं विषयमालोच्य कश्चित् प्रवर्त्तते। सतामपि विरोधान्नाभावसम्बन्धोऽस्ति, यत् स्वरूपं लब्धसत्ताकं तत् कथं निरुपाख्यतामभावरूपतां वा भजते न विरुद्धं रूपं स्वी करोतीत्यर्थः।

तस्मात् सतामभावासम्भवात्, असतां च उत्पत्त्यसम्भवात्तैस्तैर्धर्मैर्विपरिणममानो धर्मी सदैकरूप एवावतिष्ठते, धर्मास्तु त्र्यधिकत्वेन[1] त्रैकालिकत्वेन तत्र व्यवस्थिताः स्वस्मिन्नध्वनि व्यवस्थिता न स्वरूपं त्यजन्ति, वर्त्तमानेऽध्वनि व्यवस्थिताः केवलं भोग्यतां भजन्ते तस्माद्धर्माणामेवातीतानागताद्यध्वभेदात्तेनैव[2] रूपेण कार्य्यकारणभावोऽस्मिन् दर्शने प्रतिपद्यते, तस्मादपवर्गपर्य्यन्तमेकमेव चित्तं धर्मिचयाऽनुवर्त्तमानं न निह्नोतुं पार्य्यते॥ १२॥

इह = सत्कार्यवाद के समर्थक योग सिद्धान्त में अथवा इस संसार में। अत्यन्त = बिलकुल ही, नितान्त। असतां = असत्। भावानां = भावों, कार्यों, पदार्थों की। उत्पत्ति = उत्पत्ति। युक्तिमती = युक्तियों से युक्त, उचित, तर्कसंगत। न = नहीं है अर्थात् अत्यन्त असत् पदार्थों की कभी भी उत्पत्ति हो

१ अधिकत्वेन (पा०)।

२ धर्मिणामतीतानागतादिभेदात् (पा०)।

हो नहीं सकती। क्योंकि। तेषा = उन असत् पदार्थों का। सत्त्वसम्बन्धायोगात् = *सत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध न होने से अर्थात् असत् पदार्थ का कभी भी* सत् के साथ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, असत् कार्य का सत् कारण से सम्बन्ध असभव है। हि = जैसे कि। शशविषाणादीना = शशक शृंग, गगन कुसुम, वन्ध्यापुत्र इत्यादि अत्यन्त असत् पदार्थों का। क्वचिदपि = कहीं पर, कभी भी। सत्त्वसबन्ध = सत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध। न = नहीं। दृष्टः = देखा गया है। च = और। निरुपाख्ये = अत्यन्त असत्। कार्ये = कार्य में। किं = किस। उद्दिश्य = उद्देश्य, लक्ष्य से। कारणानि = कारणों को। प्रवर्त्तन्ते = प्रवृत्ति होगी, किस प्रकार कारण व्यापार सभव है। हि = क्योंकि। असन्त = अत्यन्ताभाव रूप, असत्। विषय = विषय, पदार्थ को। आलोच्य = विचार कर। कश्चित् = कोई भी पुरुष। न = नहीं। प्रवर्त्तते = प्रवृत्त होता है अर्थात् पदार्थ के सम्बन्ध में किसी की प्रवृत्ति नहीं होती। सता = सत् पदार्थ का। अपि = भी। विरोधात् = *असत् से विरोध, प्रतिकूलता होने के कारण। अभाव*-सम्बन्ध = अभाव, असत् पदार्थ के साथ सम्बन्ध ही। न नहीं।। अस्ति = है। यत् = जो। स्वरूप = स्वरूप। लब्धसत्ताक = प्राप्त की गई सत्ता वाला अर्थात् जो सत् पदार्थ है। तत् = वह सत् पदार्थ। कथ = किस प्रकार। निरुपाख्यता = निरुपाख्य स्वरूप को, असत् रूप को। वा = अथवा। अभावरूपता = अभाव रूप को। भजते = प्राप्त कर सकता है। विरुद्ध = विरुद्ध, अपने प्रतिकूल। रूप = स्वरूप को। न = नहीं। स्वीकरोति = स्वीकार करता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है। तस्मात् = इसलिये। सता = सत् पदार्थों का। अभावासम्भवात् = अभाव सभव न होने के कारण। च = तथा। असता = असत् पदार्थों की। कभी भी। उत्पत्त्यसम्भवात् = उत्पत्ति न होने के कारण अर्थात् कभी भी सत् का अभाव तथा असत् की उत्पत्ति न होने के कारण। तैं तै = उन-उन। धर्मै = धर्मों के रूप में। विपरिणममान = परिणाम, परिवर्तन अतीत-वर्तमान-अनागत स्वरूप को प्राप्त करता हुआ। धर्मी = धर्मी। सदा = सदैव, सभी अवस्थाओं में। एकरूप = एक रूप का, धर्मी रूप में। एव = ही। अवतिष्ठते = विद्यमान, स्थित रहता है। धर्मा = धर्म। तु = तो। अधिकत्वेन

=अधिक रूप होने से, त्रिविध होने से। त्रैकालिकत्वेन = त्रैकालिक होने से भूतवर्त-मान-भविष्य-कालीन होने के कारण। तत्र=उसी एक ही धर्मी में। व्यवस्थिता = विद्यमान रहते ही हैं। स्वस्मिन्=अपने। अध्वनि=स्वरूप में। व्यवस्थिता =स्थित रहते हुए। स्वरूप = धर्म अपने स्वरूप का। न = नहीं। त्यजन्ति = परित्याग करते। केवल = केवल। वर्तमाने = वर्तमान कालीन। अध्वनि = स्वरूप में। व्यवस्थिता = विद्यमान रहने हुए धर्म। भोग्यता = उपभोग रूप को। भजन्ते = प्राप्त करते हैं, उनका उपभोग किया जाना सम्भव है। तस्मात् = इसलिए। धर्माणा = धर्मों का। अतीतानागतादिभेदात् = अतीत-वर्तमान-अनागत रूप भेद होने के कारण। तेन = उस। एव = ही। रूपेण = रूप, प्रकार से। कार्य्य-कारणभाव = कार्य-कारण भाव। अस्मिन् = इस। दर्शने = योग दर्शन में। प्रतिपाद्यते = प्रतिपादन, निरूपण किया गया है। तस्मात् = इसलिए। अपवर्गपर्य्यन्त = अपवर्ग प्राप्ति तक। धर्मितया = धर्मी रूप से। अनुवर्त्तमान = धर्मों का अनुगमन करते हुए। एक = एक। एव = ही। चित्त = चित्त का। निह्नोतु = निराकरण करना। न = नही। पार्य्यते = सम्भव है अर्थात् अतीत-वर्तमान-अनागत सभी धर्मों में एक ही धर्मी विद्यमान रहता है। धर्मी का कभी भी अभाव नही होता। धर्म के परिवर्तन पर भी वह रहता ही है ॥ १२ ॥

ते एते धर्म-धर्मिण किंरूपा इत्याह—

ते = वे। एते = ये। धर्मधर्मिण = धर्म तथा धर्मी। किं = किम। रूप = स्वरूप के हैं। इति = इसका। आह = उत्तर देते हैं।

ते व्यक्त-सूक्ष्मा गुणात्मान ॥ १३ ॥

अर्थः—ते = वे धर्म एव धर्मी। व्यक्तसूक्ष्मा = व्यक्त, वर्तमान कालीन *अभिव्यक्त अवस्था तथा अतीत एव अनागत कालीन सूक्ष्म, अनभिव्यक्त अवस्था* वाले। गुणात्मान = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के रूप के ही हैं अर्थात् कारण रूप में विद्यमान तीनो गुणों के स्वरूप के ही हैं।

वृत्ति—य एते धर्म-धर्मिण प्रोक्ता, ते व्यक्त-सूक्ष्मभेदेन व्यवस्थिता गुणा सत्त्वरजस्तमोरूपा, तदात्मानस्तत्स्वभावा, तत्परिणामरूपा इत्यर्थ, यत

सत्त्वरजस्तमोभिः सुख-दुःख-मोहरूपैः सर्वासां बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां भावव्यक्तीनाम् अन्वयानुगमा दृश्यन्ते, यद् यदन्वयि तत्तत् परिणामरूपं[1] दृष्टं, यथा घटादयो मृदन्विता मृत्परिणामरूपा ॥ १३ ॥

ये = जो। एते = ये। धर्मधर्मिणः = धर्म तथा धर्मी। प्रोक्ताः = सूत्र ४।१२ में कहे गये हैं। ते = वे। व्यक्तसूक्ष्मभेदेन = व्यक्त तथा सूक्ष्म भेद से, वर्तमान कालीन अभिव्यक्त अवस्था तथा अतीत एवं अनागत कालीन अनभिव्यक्त अवस्था में। व्यवस्थिताः = विद्यमान रहने वाले। गुणाः = गुण अर्थात्। सत्त्वरजस्तमोरूपाः = सत्त्व-रजस्-तमस् स्वरूप वाले हैं। तद् = उन त्रिविध गुणों की। आत्मानः = आत्मा वाले अर्थात्। तत् = उन गुणों में। स्वभाव = स्वभाव वाले हैं। तत् = कारण रूप में विद्यमान उन त्रिविध गुणों के। परिणामरूपाः = परिणाम वाले हैं। इति अर्थः = यह अभिप्राय है। यतः = क्योंकि। सुखदुःखमोहरूपैः = सुख-दुःख-मोह स्वरूप वाले। सत्त्वरजस्तमोभिः = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के साथ। बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां = बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से पृथक् प्रतीत होने वाले। सर्वासां = सभी। भावव्यक्तीनां = भावों, कार्यों का। अन्वयानुगमाः = अन्वय, सबद्ध, अनुगमन किया जाना। दृश्यन्ते = देखा जाता है। यद् यद् = जो जो। अन्वयि = अन्वयी अनुगमन करने वाला कार्य रूप है। तत् तत् = वह, वह। परिणामरूपं = परिणामरूप, परिणाम प्राप्त करने वाला। दृष्टं = देखा, पाया जाता है। यथा = जैसे। घटादयः = घट इत्यादि कार्य। मृदन्विताः = मृत्तिका में अन्वित होने के कारण, मृत्तिका के कार्य होने के कारण। मृत्परिणामरूपाः = मृत्तिका के परिणाम वाले हैं ॥ १३ ॥

यद्येते त्रयो गुणाः सर्वत्र मूलकारणं, कथमेको धर्मीति व्यपदेश इत्याशङ्क्याह—

यदि = यदि। एते = ये। त्रयः = सत्त्व-रजस्तमसस्त्रिविध। गुणाः = गुण ही। सर्वत्र = सभी कार्यों के। मूलकारणं = मूल कारण हैं। कथं = तो कैसे। एकः = एक ही। धर्मी = धर्मी है। इति = इस रूप से। व्यपदेशः = कहा जाता है।

१. परिणामिरूप (पा०)।

इति = ऐसा। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = अनेक धर्मों के होने पर भी धर्मी एक ही होता है, इसका उत्तर देते हैं।

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

अर्थ—परिणामैकत्वाद् = परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों का एक ही परिणाम होने से। वस्तुतत्त्व = वस्तुभूत तत्त्व धर्मी एक ही है। जैसे परस्पर विपरीत स्वभाव वाले तैल-वर्तिका-अग्नि का दीपक रूप एक ही परिणाम होता है, पृथिवी, जल, सूर्य, चन्द्र, वायु इत्यादि के संयोग से वृक्ष रूप एक परिणाम होता है। इस परिणाम की एकता के कारण वस्तुतत्त्व, धर्मी एक ही होता है।

वृत्ति—यद्यपि त्रयो गुणा, तथापि तेषामङ्गाङ्गिभावगमनलक्षणो य परिणाम क्वचित् सत्त्वमङ्गि क्वचिद्रज क्वचिच्च तम इत्येवरूप, तस्यैकत्वाद्वस्तुनस्तत्त्वमेकमुच्यते, यथा—इय पृथिवी, अय वायुरित्येवमादि ॥ १४ ॥

यद्यपि = यद्यपि। त्रय = सत्त्व-रजस्-तमस् तीन प्रकार के। गुणाः = गुण हैं। तथापि = फिर भी। तेषां = उन त्रिविध गुणों का। अङ्गाङ्गिभावगमनलक्षण = अङ्ग तथा अङ्गी भाव से, गौण तथा प्रधान रूप से कार्य करने वाला। य = जो। परिणाम = परिणाम होता है अर्थात्। क्वचित् = कहीं पर। सत्त्व = सत्त्व गुण। अङ्गि = अङ्गी, प्रधान होता है और रजस् तथा तमस् अप्रधान होते हैं। इसी प्रकार। क्वचिद् = कहीं पर। रज = रजो गुण प्रधान तथा शेष दो गुण अप्रधान होते हैं। च = और। क्वचित् = कहीं पर। तम = तमो गुण अङ्गी तथा शेष दो गुण उसके अङ्ग रूप होते हैं। इति एव रूप = इस प्रकार से सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों का अङ्ग-अङ्गी रूप, गौण-प्रधान रूप परिणाम होता है। तस्य = उस परिणाम की। एकत्वाद् = एकता होने के कारण। वस्तुन = वस्तु का। तत्त्व = तत्त्व, स्वरूप। एक = एक ही। उच्यते = कहा जाता है। यथा = जैसे। इय = यह। पृथिवी = पृथिवी है। अय = यह। वायु = वायु है। इति एवमादि = इसी प्रकार से अन्यों को भी समझना चाहिये ॥ १४ ॥

ननु ज्ञानव्यतिरिक्ते सत्यर्थे वस्त्वेकमनेकं वा वक्तुं युज्यते, यदा च विज्ञानमेव वासनावशात् कार्यकारणभावेनावस्थितं तथा तथा प्रतिभाति, तदा कथमेतच्छक्यते वक्तुम् इत्याशङ्क्याह—

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि । ज्ञानव्यतिरिक्ते = ज्ञान से व्यतिरिक्त, भिन्न । अर्थे = पदार्थ के । सति = विद्यमान रहने पर । वस्तु = वस्तु, पदार्थ को । एक = एक, ज्ञान और पदार्थ दोनों एक ही है । वा = अथवा । अनेक = अनेक, भिन्न, ज्ञान और पदार्थ दोनों भिन्न-भिन्न हैं, इस रूप में । वक्तु = कहना, समझना । युज्यते = उचित, तर्कसंगत है । च = और । यदा = जब । विज्ञानमेव = विज्ञान, ज्ञान ही । वासनावशात् = वासनाओं के कारण । कार्य्य-कारणभावेन = कार्य एवं कारण रूप से । अवस्थित=विद्यमान है । तथा तथा = उन-उन पदार्थों के रूप में । प्रतिभाति = प्रतीत होता है । तदा = तब । कथ = किस प्रकार से । एतत् = यह, ज्ञान और पदार्थ को भिन्न-भिन्न रूप में । वक्तु = कहा । शक्यते = जा सकता है । इति = ऐसी । आशङ्क्य = आशङ्का करके । आह = उत्तर देते हैं । यहाँ पर विज्ञानवादी बौद्ध के मत को प्रस्तुत किया गया है । क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध के अनुसार पदार्थ की सत्ता नहीं है—सर्वं क्षणिकं क्षणिकम् । केवल विज्ञान ही उन-उन पदार्थों के आकार का होकर प्रतीत होता है । इसी कारण स्वप्नावस्था में पदार्थ की सत्ता न रहने पर भी विविध प्रकार के पदार्थों की उपस्थिति होती है । बौद्ध के इस मत का खण्डन करने के लिये तथा विज्ञान से भिन्न पदार्थ की स्थिति है—ऐसा योगदर्शन *अग्रिम सूत्र में प्रतिपादित करता है ।*

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्त पन्था ॥ १५ ॥

अर्थ—वस्तुसाम्ये = वस्तु की समानता, पदार्थ के एक होने पर भी । चित्तभेदात् = चित्त में भेद होने कारण, चित्त, ज्ञान की अनेकता, विविधता से । तयो = उन दोनों का, पदार्थ तथा चित्त का । पन्था = मार्ग । विविक्त = पृथक् है अर्थात् एक ही पदार्थ अनेक मनुष्यों के चित्त का विषय बनता है तथा उस एक ही पदार्थ के सबन्ध में सुख-दुःख मोह रूप अनेक चित्तवृत्तियाँ

देखा जाता है। लावण्यमयी एक ही रमणी के होने पर भी अनुरागी पति को सुख, सपत्नी को दुःख, द्वेष तथा परिव्राजक को विरक्ति की प्राप्ति होती है। अतः सिद्ध है कि पदार्थ एवं चित्त, दृश्य वस्तु एवं ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं, एक रूप नहीं। क्यों कि एक वस्तु का ज्ञान अनेक प्रकार का होता है। वस्तु विज्ञान रूप नहीं है। क्योंकि विज्ञान का कार्य होने के कारण, जिस व्यक्ति के विज्ञान का वह पदार्थ कार्य है, उससे अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के चित्त का विषय उसे नहीं बनना चाहिये, उसका ज्ञान दूसरों को नहीं होना चाहिये। किंतु एक ही काल में उस पदार्थ का ग्रहण अनेक पुरुषों द्वारा होता है। साथ ही एक मनुष्य विज्ञान का कार्य होने के कारण उस वस्तु की ही प्रतीति सुखदुःखमोह रूप से होती है। एक ही पुरुष के चित्त कार्य पदार्थ को मानने पर उस पुरुष के चित्त के अन्य पदार्थ में आसक्त हो जाने पर उस पदार्थ का अभाव हो जाना चाहिये, क्योंकि जिस चित्त का वह पदार्थ कार्य है, वह अन्यत्र लगा हुआ है, पर ऐसा होने पर भी पदार्थ का भी अभाव नहीं देखा जाता। इसके विपरीत यदि अनेक मनुष्यों के विज्ञान का कार्य पदार्थ को मान लिया जाय तो पदार्थ को विविध रूप का, अनेक होना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का विज्ञान भिन्न-भिन्न होता है। अतः कारण रूप विज्ञान में भेद होने के कारण कार्य रूप पदार्थ में भी भेद होना चाहिये। पर सभी काल में वह पदार्थ एक ही रूप का अनेक व्यक्तियों द्वारा गृहीत है। वस्तु एक ही रहती है। अतः पदार्थ विज्ञान का कार्य नहीं है। पदार्थ तथा विज्ञान दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं। पदार्थ को विज्ञान रूप मानने वाले विज्ञानवादी बौद्ध का मत समीचीन नहीं है।

वृत्ति —तयोर्ज्ञानार्थ[1] योर्विविक्त पन्था विविक्तो मार्ग,[2] भेद इति यावत्, कथम् वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्। समाने वस्तुनि स्त्र्यादावुपलभ्यमाने[3] नानाप्रमातृणां चित्तस्य भेदः सुखदुःखमोहरूपतया समुपलभ्यते, तथा हि एकस्यां रूपलावण्यवत्यां योषिति उपलभ्यमानायां सरागस्य सुखमुत्पद्यते, सपत्न्यास्तद्द्वेष,

१ ज्ञानज्ञेययो (पा०)।

२ मार्गो भेद इति यावत् (पा०)।

३ उपलभ्यमाने लावण्यादौ नाना (पा०)।

परिव्राजकादेर्घृणा—इत्येकस्मिन् वस्तुनि नानाविधचित्तोदयात् कथं[1] चित्तकार्यत्वं वस्तुन एकचित्तकार्यत्वे वस्त्वेकरूपतयैवावभासेत ।

किञ्च, चित्तकार्यत्वे वस्तुनो यदीयस्य चित्तस्य तद्वस्तु कार्यं, तस्मिन्नर्थान्तरव्यासक्ते तद्वस्तु न किञ्चित् स्यात्, भवत्विति चेन्न, तदेव कथमन्यैर्बहुभिरुपलभ्येत ? उपलभ्यते च, तस्मान्न चित्तकार्यम्, अथ युगपद् बहुभिः सोऽर्थ क्रियते, तदा बहुनिर्मितस्यार्थस्यैकनिर्मिताद् वैलक्षण्यं स्यात्। यदा तु वैलक्षण्यं नेष्यते, तदा कारणभेदे सति कार्यभेदस्याभावे निर्हेतुकमेकरूपं वा जगत् स्यात् ।

एतदुक्तं भवति—सत्यपि भिन्ने कारणे यदि कार्यस्याभेदः, तदा समग्रं जगद् नानाविधकारणजन्यमेकरूपं स्यात्, कारणभेदाननुगमात् स्वातन्त्र्येण निर्हेतुकं वा स्यात्, यद्येवं कथं तेन त्रिगुणात्मना चित्तेनैकस्यैव प्रमातुः सुखदुःखमोहमयानि ज्ञानानि जन्यन्ते ? नैवम्, यथा अर्थस्त्रिगुणः, तथा चित्तमपि त्रिगुणं, तस्यार्थप्रतिभासोत्पत्तौ धर्मादयः सहकारिकारणं, तदुद्भवाभिभववशात् कदाचित् चित्तस्य तेन तेन रूपेणाभिव्यक्तिः ।

तथा च—कामुकस्य सन्निहितायां योषिति धर्मसहकृतं चित्तं सत्त्वस्याङ्गितया परिणममानं सुखमयं भवति, तदेव अधर्मसहकारि रजसोऽङ्गितया दुःखरूपं सपत्नीमात्रस्य भवति, तीव्राधर्मसहकारितया परिणममानं तमसोऽङ्गित्वेन कोपनायाः सपत्न्या मोहमयं भवति, तस्माद्विज्ञानव्यतिरेकेणास्ति ग्राह्योर्थः ।[3]

तदेव विज्ञानार्थयोस्तादात्म्यविरोधान्न कार्यकारणभावः, कारणाभेदे सत्यपि [4]*कार्यभेदप्रसङ्गादिति ज्ञानाद्व्यतिरिक्तत्वमर्थस्य व्यवस्थितम्*[5] ॥ १५ ॥

ज्ञानार्थयोः = ज्ञान और पदार्थ। तयोः = उन दोनों का। विविक्त =

---

१ कथंचित्त न कार्यत्वम् (पा०)।

२ त्रिगुणात्मनार्थेनैकस्य (पा०)।

३ ग्राह्योऽर्थः (पा०)।

४ कार्यस्य भेदेऽतिप्रसङ्गात् (पा०)।

५ अत्र 'नचैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्' इत्येवरूपेण किमपि सूत्रं पठ्यते। व्याख्यातमिदं सूत्रं भिक्षुभावागणेशादिभिः ।

पृथक्। पन्था = पथ है। विविक्त मार्ग देश = ज्ञान तथा पदार्थ दोनो का मार्ग, देश भिन्न-भिन्न है, दोनो ही पृथक्-पृथक् है, एक रूप, कारण-कार्य रूप नहीं। इति यावत् = यही अभिप्राय है। कथ = किस प्रकार ज्ञान तथा पदार्थ भिन्न-भिन्न है। वस्तुसाम्ये = वस्तु की समानता, पदार्थ की एकता होने पर भी। चित्तभेदात् = चित्त में भेद, अनेकता होने के कारण, अर्थात् पदार्थ विषय के एक तथा चित्त, ज्ञान, विज्ञान के अनेक होने के कारण दोनो ही भिन्न-भिन्न है, कार्यकारण रूप नही है, यह सिद्ध होता है। स्त्र्यादौ = स्त्री इत्यादि। लावण्यादौ = लावण्य इत्यादि, सौन्दर्यमय। समाने = समान, एक ही। वस्तुनि = वस्तु, पदार्थ, विषय के। उपलभ्यमाने = प्राप्त होने पर। नानाप्रमातृणा = अनेक प्रमाता पुरुषो के। चित्तस्य = चित्त का। सुखदुःखमोहरूपतया = सुख, दुःख तथा मोह रूप मे। भेदः = भेद। समुपलभ्यते = प्राप्त होता है, देखा जाता है। तथा हि = जैसे कि। एकस्या = एक ही। रूपलावण्यवत्या = स्वरूप एव सौन्दर्य युक्त। योषिति = रमणी के। उपलभ्यमानाया = प्राप्त होने पर, देखने पर। सरागस्य = अनुरागी पति को। सुख = सुख। उत्पद्यते = उत्पन्न होता है। सपत्न्या = सपत्नी को। तद् = उस सुन्दरी युवती से। द्वेष = द्वेष, ईर्ष्या। परिव्राजकादे. = परिव्राजक सन्यासी इत्यादि को। घृणा = घृणा वैराग्य, विरक्ति उत्पन्न होती है। इति = इस रूप से। एकस्मिन् = एक ही। वस्तुनि = स्त्री रूप वस्तु, विषय के सम्बन्ध में। नानाविधचित्तोदयात् = सुख, दुःख, वैराग्य इत्यादि अनेक प्रकार की चित्तवृत्तियों के उत्पन्न होने के कारण। कथ = किस प्रकार। चित्तकार्यत्वं = चित्त का कार्य। वस्तुन = वस्तु का होना सिद्ध होता है अर्थात् पदार्थ, वस्तु चित्त, विज्ञान का ही कार्य है, यह कैसे सिद्ध होता है। क्योंकि वस्तु एक है और चित्त अनेक। चित्त के विविध होने पर वस्तु भी विविध प्रकार की होनी चाहिये। पर वस्तु एक ही रहती है। एकचित्तकार्यत्वे = वस्तु को एक ही चित्त का कार्य स्वीकार कर लेने पर। वस्तु = वह वस्तु पदार्थ। एकरूपतया एव = एक ही रूप से अर्थात् सुख-दुःखमोह विविध रूप में नहीं, अपितु केवल एक ही रूप में। अवभासेत् = प्रतीत होना चाहिये, पदार्थ का अनुभव एकरूप में ही होना चाहिये, सुखरूप में या दुःख रूप में क्योंकि वह पदार्थ एक ही चित्त का कार्य है। किन्तु कभी भी उस पदार्थ की

एक रूप में प्रतीति न होकर अनेक रूपो में होती है। अत पदार्थ किसी एक चित्त का कार्य नही है। किञ्च=और भी। वस्तुन = वस्तु, पदार्थ को। चित्त-कार्य्यत्वे = किसी एक चित्त का कार्य स्वीकार कर लेने पर। यदीयस्य = जिस मनुष्य के। चित्तस्य = चित्त का। तद् = वह। वस्तु = वस्तु। कार्यं = कार्य है। तस्मिन् = उस चित्त के। अर्थान्तरव्यासक्ते = दूसरे पदार्थ में आसक्त, ससक्त, लग जाने पर। तद् = वह। वस्तु = वस्तु। किञ्चित् = कुछ भी। न = नही। स्यात् = होनी चाहिये अर्थात् यदि वस्तु किसी एक मनुष्य के चित्त का कार्य है, तो उस चित्त के अन्य पदार्थ में आकृष्ट हो जाने पर प्रथम वस्तु का अभाव हो जाना चाहिये, क्योंकि उस वस्तु का कारण चित्त अब अन्यत्र लगा हुआ है और दूसरी वस्तु उसका कार्य हो गई है। चेत् = यदि कहा जाय कि। भवतु इति = कारण चित्त के अन्यत्र ससक्त हो जाने पर उसी चित्त का अभाव हो जावे। न = किंतु ऐसा नही है। तद् एव = वही वस्तु। कथ = किस प्रकार। अन्यै = अन्य, दूसरे। बहुभि = बहुत से मनुष्यो के द्वारा। उपलभ्येत ? = प्राप्त, ज्ञात होनी चाहिये। च = और। उपलभ्यते = प्राप्त, ज्ञात होती ही है अर्थात् किसी एक कारण रूप चित्त का कोई वस्तु कार्य होने पर, उस चित्त के अभाव में उस वस्तु का भी अभाव हो जाना चाहिये और दूसरे मनुष्यो के द्वारा उस वस्तु का ग्रहण नही होना चाहिये क्योंकि वस्तु किसी एक चित्त का कार्य है। किंतु उस वस्तु का ग्रहण दूसरे मनुष्यो के द्वारा होता ही है। तस्मात्= इसलिये। चित्तकार्य्यं = वह वस्तु किसी एक चित्त का कार्य। न = नही है अर्थात् वस्तु एव चित्त मे कार्य-कारण सबन्ध नही है, दोनो ही स्वतन्त्र है। अथ = और यदि। स = वह। अर्थ = पदार्थ। युगपद् = एक ही साथ। बहुभि = बहुत, अनेक चित्तो द्वारा। क्रियते = किया जाता है अर्थात् यदि वह एक वस्तु अनेक चित्तों का कार्य है। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। बहुनिर्मि-तस्य = अनेक चित्तो के द्वारा बनाई गई। अर्थस्य = वस्तु का। एकनिर्मिताद्= किसी एक चित्त के द्वारा बनाई गई वस्तु से। वैलक्षण्य अनेक चित्तनिर्मित एव एकचित्तनिर्मित वस्तुओं में भेद। न = नही। दृश्यते = प्राप्त होता, देखा जाता अर्थात् वस्तुओ में अन्तर का ग्रहण नही होता। तदा = तब, ऐसी स्थिति में।

जगत् = यह जगत्, ससार। निर्हेतुक = बिना किसी हेतु का, कारण रहित। वा = अथवा। एकरूप = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा अर्थात् इस जगत का उद्भव बिना किसी कारण के हो जायेगा अथवा यह ससार विविध रूपों का न होकर एक रूप का हो जायेगा। एतद् उक्त भवति = इसका यह अभिप्राय है कि। कारणे = कारणों के। भिन्ने = भिन्न, अनेक। सति = होने पर। अपि = भी। यदि = यदि। कार्यस्य = कार्य का। अभेद = अभेद है, कार्य की एकता है। तदा = तब। नानाविधकारणजन्य = अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न। समग्र = समस्त। जगद् = ससार। एकरूप = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा। वा = अथवा। कारणभेदाननुगमात् = कारण के भेद का अनुगमन, ग्रहण, प्राप्ति न होने से। स्वातन्त्र्येण = स्वतन्त्र रूप से। निर्हेतुक= बिना हेतु का, कारण रहित। स्यात् = हो जायेगा। यदि = यदि। एव = ऐसा ही है तो। कथ = किस प्रकार। तेन = उस। त्रिगुणात्मना = सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के स्वरूप वाले। चित्तेन = चित्त से। एकस्य एव = एक ही। प्रमातु = प्रमाता को। सुखदु खमोहमयानि = सुख-दु ख मोह तीन प्रकार का। ज्ञानानि = ज्ञान। जन्यन्ते ? = उत्पन्न होता है। (पाठभेद —कथं तेन त्रिगुणात्मनाऽनेकस्यैव प्रमातु सुखदु खमोहमयानि ज्ञानानि न जन्यन्ते = किस कारण से उस त्रिगुणात्मक पदार्थ के साथ सबन्ध होने से एक ही प्रमाता को सुख-दु ख-मोह रूप से त्रिविध ज्ञान की उत्पत्ति नही होती ?)। मा एव = ऐसा नही है अर्थात्। यथा = जैसे। अर्थ = पदार्थ। त्रिगुण = त्रिगुणात्मक, सत्त्व-रजस्-तमस् स्वरूप वाला है। तथा = उसी प्रकार। चित्त = चित्त। अपि = भी। त्रिगुण = त्रिगुणात्मक, सत्त्व-रजस्-तमस् स्वभाव वाला है। तस्यार्थप्रतिभासोत्पत्तौ = उस पदार्थ के प्रतिभास, ज्ञान की उत्पत्ति में। धर्मादय = मनुष्य के धर्म-अधर्म इत्यादि ही। सहकारिकारण = सहयोगी कारण है। तद् = सहकारी कारण उस धर्म-अधर्म के। उद्भवाभिभववशात् = उद्भूत एव अभिभूत होने से, प्रबल एव निर्बल होने से। कदाचित् = कभी-कभी। चित्तस्य = चित्त की। तेन तेन = उन-उन। रूपेण = रूप में, धर्म-अधर्म-रूप से। अभिव्यक्ति = अभिव्यक्ति होती है अर्थात् धर्म के उत्कर्ष से चित्त धर्म रूप तथा अधर्म के आधिक्य से चित्त अधर्म रूप

परिणाम को प्राप्त करता है । तथा च = जैसे कि । योषिति = युवती के । सन्निहितायां = समीप में विद्यमान होने पर । धर्मसहकृत = सहकारी कारण धर्म की प्रबलता से । कामुकस्य = कामी पुरुष का । चित्त = चित्त । सत्त्वस्य = सुख स्वरूप सत्त्वगुण के । अङ्गितया = अङ्गी, प्रधान, प्रबल होने से । परिणममान= *परिणाम को प्राप्त करता हुआ । सुखमय = सुख रूप । भवति = होता है,* चित्त में सुख की अनुभूति होती है । अधर्मसहकारि = सहकारी कारण अधर्म की अधिकता से । सपत्नीमात्रस्य = सपत्नी का । तदेव = वही चित्त । रजस = दुःख स्वभाव वाले रजोगुण को । अङ्गितया = प्रधानता में । दुःखरूप = दुःख रूप । भवति = होता है । तीव्राधर्मसहकारितया = तीव्र अतिशय, अत्यधिक *अधर्म के सहकारी कारण होने से । तमस = मोहस्वरूप, मूढ बनाने वाले* तमो गुण के । अङ्गितया = अङ्गी, प्रबल होने से । कोपनाया = क्रोध करने वाली । सपत्न्या = सपत्नी का । परिणममान = परिणाम को प्राप्त करता हुआ चित्त । मोहमय = मोहमय, विवेकशून्य मूढ । भवति = होता है । तस्माद् = इसलिये, इस प्रकार यह सिद्ध है कि । विज्ञानव्यतिरेकेण = विज्ञान, ज्ञान, चित्त से व्यतिरिक्त, पृथक् । ग्राह्यार्थ = ग्रहण क्रिया जाने वाला अर्थ, पदार्थ, वस्तु । अस्ति = है अर्थात् विज्ञान से भिन्न वस्तु है । यह वस्तु विज्ञान अथवा चित्त का कार्य नहीं है । विज्ञान तथा पदार्थ में कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं है । दोनों की स्वतन्त्र रूप से स्थिति है । इस प्रकार बौद्ध मत का निराकरण हो जाता है कि विज्ञान का ही कार्य वस्तु है । तदेवं = इस प्रकार से । विज्ञानार्थयो = विज्ञान तथा पदार्थ में । तादात्म्यविरोधात् = तादात्म्य का विरोध होने से, एकरूपता का अभाव होने से । कार्य्यकारणभाव = दोनों में कारण कार्य भाव । न = नहीं है अर्थात् विज्ञान का पदार्थ कार्य नहीं है । कारणाभेदे = कारण में अभेद, एकता । सति = विद्यमान रहने पर । अपि = भी । कार्य्यस्य = कार्य का । भेद = भेद, अनेक रूप में पाया जाना । अतिप्रसङ्गाद् = अतिप्रसङ्ग दोष होता है । इति = इसलिये । ज्ञानाद् = ज्ञान से । अर्थस्य = पदार्थ का । व्यतिरिक्तत्व = अतिरिक्त, भिन्न होना । व्यवस्थित, सिद्ध होता है ॥ १५ ॥

यद्येव, ज्ञानञ्चेत् प्रकाशकत्वाद् ग्रहणस्वभावम्, अर्थश्च प्रकाश्यत्वाद् ग्राह्य-

स्वभाव, तदा युगपत् सर्वानर्थान् कथ न गृह्णाति, न स्मरति च—इत्याशङ्का परिहर्तुमाह—

यदि एव = यदि ऐसा ही है अर्थात् ज्ञान और पदार्थ दोनों ही भिन्न है और। चेत् = यदि। प्रकाशकत्वाद् = प्रकाशक होने के कारण। ज्ञान = ज्ञान। ग्रहणस्वभाव = ग्रहण स्वभाव वाला, पदार्थों को ग्रहण करने वाला, उनको ज्ञान प्राप्त करने वाला है। च = और। प्रकाश्यत्वाद् = प्रकाश्य होने के कारण। अर्थ = पदार्थ। ग्राह्यस्वभाव = ग्राह्यस्वभाव, ग्रहण किया जाने वाला है। तदा = तब, इसलिये। युगपत् = एक ही साथ। सर्वान् = सभी। अर्थान् = पदार्थों को। कथ = क्यों, किस कारण से। न = नहीं। गृह्णाति = मनुष्य ग्रहण करता है, सभी विषयों का ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त करता। च = और सभी पदार्थों का। न = नहीं। स्मरति = एक साथ स्मरण करता। इति = इसी। आशङ्का = आशङ्का, सन्देह का। परिहर्तुं=परिहार, निराकरण करने के लिये। आह = कहते हैं।

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १६ ॥

अर्थ. – चित्तस्य = चित्त का। तद् = उस ज्ञातव्य बाह्य पदार्थ के। उपरागापेक्षित्वात्=उपराग, प्रतिबिम्ब की अपेक्षा होने के कारण। वस्तु = कोई पदार्थ। ज्ञाताज्ञात = ज्ञात अथवा अज्ञात रहता है। वस्तु का ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब इन्द्रिय प्रणालिका द्वारा चित्त उस वस्तु के प्रतिबिम्ब, उपराग को प्राप्त करता है। इस उपराग के अभाव में वस्तु सदैव अज्ञात ही रहती है। यद्यपि चित्त प्रकाशक है, वस्तु को प्रकाशित करने की सामर्थ्य उसमें विद्यमान है। परन्तु जब तक वस्तु के उपराग से वह उपरञ्जित नहीं हो जाता, तब तक उसमें प्रकाशन में असमर्थ ही रहता है। प्रारम्भ की दशा में चित्त तमो गुण से आच्छन्न रहता है। वस्तु के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष होते ही चित्तगत तमोगुण का अभाव और साथ ही सत्त्वगुण की प्रबलता होती है। इस प्रकार प्रकाशक सत्त्वगुण के उद्रेक से चित्त वस्तु के उपराग को ग्रहण कर, उसे प्रकाशित करता है। इसी कारण जिस वस्तु का उपराग वह नहीं ग्रहण कर पाता, वह वस्तु अज्ञात ही रहती है।

वृत्ति —तस्यार्थस्य, उपरागादाकारसमर्पणाद् चित्ते बाह्य वस्तु ज्ञातमज्ञातञ्च भवति। अयमर्थ —सर्व पदार्थ आत्मलाभे सामग्रीमपेक्षते, नीलादिज्ञानञ्चोपजायमानमिन्द्रियप्रणालिकया[1] समागतमर्थोपराग सहकारिकारणत्वेनापेक्षते, व्यतिरिक्तस्यार्थस्य सम्बन्धाभावात् ग्रहीतुमशक्यत्वात्।

ततश्च येनैवार्थेनास्य स्वरूपोपराग कृत, तमेवार्थं तज्ज्ञान व्यवहारयोग्यतां नयति[2], तत सोऽर्थ ज्ञात उच्यते, येन चाकारो न समर्पित, स न ज्ञातत्वेन व्यवह्रियते। यस्मिश्चानुभूतेऽर्थे सादृश्यादिरर्थ[3] संस्कारमुद्बोधयन् सहकारितां प्रतिपद्यते, तस्मिन्नेवार्थे स्मृतिरुपजायत इति न सर्वत्र ज्ञान नापि स्मृतिरिति न कश्चिद्विरोध ॥ १६ ॥

तस्य = उस। अर्थस्य = बाह्य पदार्थ का। चित्ते = चित्त में। उपरागाद्= उपराग से अर्थात्। आकारसमर्पणात् = आकारसमर्पण से। बाह्य = बाहरी। वस्तु = पदार्थ। ज्ञात = ज्ञात। च = और। अज्ञात = अज्ञात। भवति = होती है। अर्थात् चित्त में उपराग पड़ने से ही वह वस्तु ज्ञात होती है। अयम् अर्थ = यह अभिप्राय है। सर्वः = सभी। पदार्थ = पदार्थ। आत्मलाभे = आत्मलाभ के लिये अर्थात् सभी वस्तुओं के स्वरूप ज्ञान के लिए। चित्त=चित्त। सामग्रीं=सामग्री की, उपराग की। अपेक्षते = अपेक्षा रखता है। च=और। उपजायमान=उत्पन्न हुआ। नीलादिज्ञान = नील इत्यादि का ज्ञान। सहकारिकारणत्वेन = सहकारी कारण के रूप में विद्यमान। इन्द्रिय-प्रणालिकया = इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से। समागत = प्राप्त हुये। अर्थोपराग = पदार्थ के उपराग, प्रतिबिम्ब को। अपेक्षते = अपेक्षा करता है, व्यतिरिक्तस्य = इससे भिन्न, अतिरिक्त। अर्थस्य = पदार्थ का अर्थात् इन्द्रिय प्रणालिका के द्वारा जिस पदार्थ का उपराग चित्त को प्राप्त नहीं है। सम्बन्धाभावात् = चित्त के साथ सबन्ध का अभाव होने से।

---

१ ऐन्द्रियकतया (पा०)।

२ जनयति (पा०)।

३ सादृश्यादिरर्थ (पा०)।

ग्रहीतु = चित्त के द्वारा उस वस्तु का ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना। अशक्यत्वात् = असंभव होने के कारण अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। च = और। तत = इसलिये। येन एव = जिस किसी। अर्थेन = पदार्थ के द्वारा। अस्य = इस के। स्वरूपोपराग = स्वरूप का उपराग। कृत = किया गया है अर्थात् जिस पदार्थ ने चित्त में अपने आकार का समर्पण किया है। तमेव = उस ही। अर्थं = पदार्थ को। तत ज्ञानं = उस पदार्थ के ज्ञान को। व्यवहारयोग्यता = व्यवहार के योग्य। जनयति = चित्त उत्पन्न करता है, उस ज्ञान को व्यवहार के योग्य बनाता है। तत = तब। स = वह। अर्थ = पदार्थ। ज्ञात- = ज्ञात हुआ है। उच्यते = इस रूप में कहा जाता है। च = और। येन = जिस पदार्थ के द्वारा। आकार = चित्त में अपने आकार उपराग का। न = नहीं। समर्पितः = समर्पण किया गया है। स = वह पदार्थ। ज्ञातत्वेन = ज्ञात रूप से। न = नहीं। व्यवह्रियते = व्यवहृत होना। च = और इसी प्रकार। यस्मिन् = जिस किसी। अनुभूते = पूर्व में अनुभव किये गये। अर्थे = पदार्थ के सबन्ध में। सादृश्यादि = सादृश्य, समानता इत्यादि के कारण। अर्थ = दूसरे पदार्थ। संस्कार = संस्कार को। उद्बोधयन् = उद्बुद्ध करता हुआ। सहकारिता—सहकारी कारण के रूप को। प्रतिपद्यते = प्राप्त करता है। तब। तस्मिन् = उस। एव = ही। अर्थे = पदार्थ के संबन्ध में। स्मृति = स्मृति। उपजायते = उपन्न होती है। इति = इस प्रकार। सर्वत्र = सभी पदार्थों के विषय में। न = न तो। ज्ञान = ज्ञान उत्पन्न होता है। न अपि = और न तो। स्मृति = स्मृति ही उत्पन्न होती है। इति = इस प्रकार। कश्चित् = कोई। विरोध = विरोध। न = नहीं है अर्थात् इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से जिस पदार्थ का उपराग चित्त को प्राप्त होता है, वह वस्तु ज्ञात होती है, और उपराग के अभाव में शेष वस्तु अज्ञात रहती है। इसी प्रकार सादृश्य के कारण पूर्व अनुभूत पदार्थों के विषय में स्मृति भी उत्पन्न होती है। अत सभी वस्तुओं का ज्ञान और सभी के विषय में स्मृति उत्पन्न नहीं होता ॥ १६ ॥

यदि = यदि। एव = इस प्रकार। प्रमाता = प्रमाता, ज्ञान प्राप्त करने

यद्येव प्रमातापि पुरुषो यस्मिन् काले नील वेदयते, न तस्मिन् काले [1]पीलादिमतश्चित्तसत्त्वस्यापि कदाचिन् ग्रहीतृरूपत्वादाकारग्रहणे परिणामित्व प्राप्तमित्याशङ्का परिहर्तु माह—

वाला। पुरुष = पुरुष। अपि = भी। यस्मिन् = जिस। काले = समय मे। नील = नील वर्ण का। वेदयते = जानता है। तस्मिन् = उस। काले = समय। में। पीलादि = पीत इत्यादि वर्णो को। न = नही जानता। अत = इस लिये। चित्तसत्त्वस्य = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त का। अपि = भी। कदाचिन् = कभी-कभी ही। ग्रहीतृरूपत्वाद् = ग्रहीता स्वरूप होने के कारण। आकारग्रहणे = वस्तु का आकार ग्रहण करने में। परिणामित्व = पुरुष परिणाम को। प्राप्त = प्राप्त करता है अर्थात चित्त में विद्यमान पदार्थ के आकार को ग्रहण करने पर ही पुरुष को उस पदार्थ का ज्ञान होता है। अत जैसे चित्त पदार्थ के आकार का परिणाम प्राप्त करता है, वैसे ही पुरुष भी परिणाम को प्राप्त करता है। इति = इसी। आशङ्का = सन्देह का। परिहर्तु = परिहार, निराकरण करने के लिये। आह = उत्तर देते है अर्थात् पुरुष परिणामी नही है, चित्त के समान।

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तय तत्प्रभो पुरुषस्या-परिणामित्वात् ॥ १७ ॥

अर्थ —तत = उस परिणामी चित्त के। प्रभो = प्रभु, स्वामी। पुरुषस्य = पुरुष का। अपरिणामित्वात् = अपरिणामी होने के कारण, से। चित्तवृत्तय = चित्त की प्रमाण इत्यादि पञ्च वृत्तियाँ। सदा = सदा ही। ज्ञाता = ज्ञात रहती हैं। इन्द्रिय प्रणालिका से विषयो को ग्रहण करने वाला चित्त परिणामी है, पर चेतन पुरुष परिणाम रहित है। वह सदैव निर्विकार, एक ही स्वरूप में स्थित रहता है। अत चित्त की समस्त वृत्तियों का ज्ञान उसे होता रहता है।

वृत्ति —या एताश्चित्तस्य प्रमाण-विपर्ययादिरूपा वृत्तय, यास्तत्प्रभोश्चित्तस्य ग्रहीतु पुरुषस्य सदा सर्वकालमेव ज्ञाता तस्य चिद्रूपतयाऽपरिणामि[2]त्वात्

१　पीतमतस्तस्यापि (पा०)।

२　अपरिणामात् (पा०)।

परिणामित्वाभावादित्यर्थः । यद्यसौ परिणामी स्यात् तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात् तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातत्वं नोपपद्येत ।

अयमर्थः—पुरुषस्य चिद्रूपस्य सदेवाधिष्ठातृत्वेन व्यवस्थितस्य यदन्तरङ्गं निर्मलं सत्त्वं, तस्यापि सदैवावस्थितत्वाद् येनार्थेनोपरक्तं भवति तथाविधस्यार्थस्य, सदैव चिच्छायामङ्क्रान्तिमद्भाव, तस्यां सत्यां सिद्धं ज्ञातृत्वमिति न कदाचित् काचित् परिणामित्वाशङ्का[1] ॥ १७ ॥

चित्तस्य = चित्त की । याः = जो । एताः = ये । प्रमाणविपर्ययादिरूपाः = प्रमाण, विपर्यय इत्यादि रूपों वाली अर्थात् प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति नाम वाली पञ्च । वृत्तयः = वृत्तियाँ हैं । ताः = वे पञ्च वृत्तियाँ । तत् = उसके । प्रभोः = प्रभु, स्वामी अर्थात् । चित्तस्य = चित्त का । ग्रहीतुः = ग्रहण करने वाले । पुरुषस्य = पुरुष के लिये । सदा = सदा अर्थात् । सर्वकालं = सभी समयों में । एव = ही । ज्ञाता = ज्ञात रहती हैं । तस्य = उस पुरुष का । चिद्रूपतया = चेतन स्वरूप होने के कारण । अपरिणामित्वात् = अपरिणामी होने से अर्थात् । परिणामित्वाभावाद् = परिणाम, विकार का अभाव होने के कारण, सदैव एक ही स्वरूप में विद्यमान रहने के कारण । इति अर्थः = चित्त की समस्त वृत्तियाँ ज्ञात रहती हैं, यह अभिप्राय है । यदि = यदि । असौ = वह पुरुष । परिणामी = परिणामी, परिणाम, विकार को प्राप्त होने वाला । स्यात् = होवे । तदा = तब । परिणामस्य = परिणाम का । कादाचित्कत्वात् = कादाचित्क, कदाचित्, कभी-कभी होने के कारण । तासां = उन प्रमाण इत्यादि पञ्च । चित्तवृत्तीनां = चित्त की वृत्तियों का । सदा = सर्वदा । ज्ञातत्वं = पुरुष को ज्ञात होना । न = नहीं । उपपद्येत = सिद्ध होता । अयम् अर्थः = यह अभिप्राय है । चिद्रूपस्य = चिन्मात्र, चेतन स्वरूप वाले । पुरुषस्य = पुरुष के । अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता, नियन्ता रूप से । सदैव = सदा ही । अवस्थितस्य = व्यवस्थित विद्यमान रहने पर । यद् = जो । अन्तरङ्गं = अन्तरङ्ग, प्रमुख साधन । निर्मलं सत्त्वं = निर्मल, स्वच्छ, विमल सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त है । तस्य = उस चित्त के । अपि = भी । सदैव =

---

1. परिणामाशङ्का (पा०) ।

सदा ही । अवस्थितत्वाद् = विद्यमान रहने के कारण । येन = जिस । अर्थेन = पदार्थ से । उपरक्त = उपरञ्जित, उपरागयुक्त । भवति = होता है । तथाविधस्य = उसी प्रकार के । अर्थस्य = पदार्थ का । सदैव = सदा ही । चिच्छायासङ्क्रान्ति-सद्भाव = चेतन पुरुष की छाया, प्रतिबिम्ब का सङ्क्रमण होता है, पुरुष का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ता है । तस्या = पुरुष की उस छाया के । सत्या = होने पर, पड़ने पर । ज्ञातृत्व = पुरुष का चित्त की समस्त वृत्तियों का ज्ञाता होना । सिद्ध = सिद्ध होता है । इति = इस प्रकार । कदाचित् = कभी भी । काचिद् = अपरिणामी पुरुष में किसी । परिणामित्व = परिणाम विकार की । आशङ्का = आशङ्का, सन्देह । न = नहीं करना चाहिए अर्थात् विषय के आकार को ग्रहण करने के कारण चित्त परिणामी है, पर पुरुष अपरिणामी है । वह सदैव एक ही स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है ॥ १७ ॥

ननु चित्तमेव यदि सत्त्वोत्कर्षात् प्रकाशक, तदा स्व-परप्रकाशरूपत्वादात्मान-मर्थञ्च प्रकाशयतीति तावतैव व्यवहारसमाप्ति , किं ग्रहीत्रन्तरेण—इत्याशङ्का-मपनेतुमाह—

ननु = आशंका होती है कि । यदि = यदि । सत्त्वोत्कर्षात् = सत्त्व गुण की प्रबलता के कारण । चित्त = चित्त । एव = ही । प्रकाशक = प्रकाशक, समस्त विषयों को ग्रहण करने वाला है । तदा = तब, ऐसी स्थिति में । स्वपरप्रकाश-रूपत्वाद् = स्वयं अपने को, साथ ही अन्य विषयों को प्रकाशित करने का स्वरूप होने से अर्थात् अपने स्वरूप का ज्ञान तथा अन्य पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने की शक्ति होने से । आत्मान = अपने स्वरूप को । च = और । अर्थं = दूसरे पदार्थों के स्वरूप को । प्रकाशयति = प्रकाशित करता है, इति = इस रूप से । तावता एव = उतने से ही । व्यवहारसमाप्ति = व्यवहार की समाप्ति, सिद्ध हो जाती है । इसलिये । ग्रहीत्रन्तरेण = अन्य ग्रहीता, विषय का ज्ञान प्राप्त करने वाले चेतन, द्रष्टा पुरुष की सत्ता मानने का । किं = क्या प्रयोजन है ? इति = ऐसी । आशका = आशका का । अपनेतु = निराकरण करने के लिये । आह = उत्तर देते है अर्थात् जैसे दीपक स्वयं अपना तथा घट इत्यादि विषयों को प्रकाशित करने वाला है, इसी प्रकार प्रकाशक सत्त्वगुण

विशिष्ट चित्त भी स्वय अपने को प्रकाशित करने वाला तथा घट-पट इत्यादि विषयों को प्रकाशित करने वाला है। अत विषय ज्ञान के लिये पुरुष की आवश्यकता नही है। इसी का उत्तर देते हैं।

न तत् स्वाभास, दृश्यत्वात् ॥ १८ ॥

अर्थ —दृश्यत्वाद् = दृश्य होने के कारण। तत् = वह चित्त। स्वाभास = स्वयं प्रकाशक, अपने को प्रकाशित करने वाला। न = नहीं है अर्थात् चक्षु इत्यादि इन्द्रियों, शब्द इत्यादि विषयों, घट, पट इत्यादि पदार्थों के समान चित्त भी दृश्य है, वह अचेतन है। अत स्वय अपने को प्रकाशित करने में वह असमर्थ है। चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब प्राप्त कर ही वह चित्त चेतन सा हो जाता है और विषयो को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

वृत्ति —तच्चित्त स्वाभास स्वप्रकाशक न भवति, पुरुषवेद्य भवतीति यावत्, कुत ? दृश्यत्वात्, यत् किल दृश्य तत् द्रष्टृवेद्य दृष्टं, यथा घटादि। दृश्यञ्च[1] चित्त तस्मान्न स्वाभासम् ॥ १८ ॥

तत् = वह। चित्त = चित्त। स्वाभासं = स्व आभास अर्थात्। स्वप्रकाशक = अपने को प्रकाशित करने वाला, दीपक की तरह अपना ज्ञान प्रदान करने वाला। न = नही। भवति = होता है। इति यावत् = अपितु। पुरुषवेद्य = पुरुष के द्वारा जानने योग्य। भवति = होता है अर्थात् पुरुष की छाया पडने से ही चित्त का ज्ञान होता है। कुत ? = किस कारण से चित्त स्वप्रकाशक नही है। दृश्यत्वात् = दृश्य होने के कारण। किल = निश्चय ही। यत् = जो विषय, पदार्थ। दृश्य = दृश्य होता है। तत् = वह पदार्थ। द्रष्टृवेद्य = द्रष्टा चेतन पुरुष द्वारा जानने योग्य होता है। दृष्ट = देखा जाता है, ग्रहण किया जाता है। यथा = जैसे। घटादि = घट इत्यादि पदार्थ दृश्य है अत स्वय प्रकाशस्वरूप नही है। च = और। चित्त = चित्त भी। दृश्य = घट के समान दृश्य है। तस्मात् = इसलिये। स्वाभास = चित्त स्वय अपने को प्रकाशित करने वाला। न = नही है ॥ १८ ॥

---

१. वेद्य च (पा०)।

ननु साध्याविशिष्टोऽयं हेतु, दृश्यत्वमेव चित्तस्यासिद्धम्। किञ्च स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण हिताहितप्राप्ति-परिहाररूपा वृत्तयो दृश्यन्ते, तथा हि, क्रुद्धोऽहम्, भीतोऽहम्, अत्र मे राग इत्येवमाद्या संविन् बुद्धेरसंवेदने नोपपद्येत—इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

ननु = प्रश्न होता है कि। अय = यह। हेतु = हेतु। साध्याविशिष्ट = साध्य से अविशिष्ट है अर्थात् साध्य के समान ही है। चित्त साध्य तथा दृश्यत्व स्वयं सिद्ध न होने से साध्य चित्त का हेतु बनाने में असमर्थ है। अत दोनों समान ही है। चित्तस्य = चित्त का। दृश्यत्व = दृश्यत्व होना। एव = ही। असिद्ध = असिद्ध है। किञ्च = और भी। स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण = अपनी बुद्धि, चित्त के ज्ञान द्वारा। हिताहितप्राप्तिपरिहाररूपा = हित, मङ्गल की प्राप्ति तथा अहित, अमङ्गल का परिहार, निराकरण कराने वाली। वृत्तय = चित्त की वृत्तियाँ। दृश्यन्ते = देखी जाती है। तथाहि = जैसे कि। अह = मैं। क्रुद्ध = क्रुद्ध हूँ। अह = मैं। भीत = भयभीत हूँ। अत्र = इस पदार्थ में। मे = मेरा। राग = राग, आसक्ति है। इति एव = इस प्रकार। आद्या = आद्य, प्रारम्भ का। संवित् = ज्ञान। बुद्धे = बुद्धि, चित्त के। असंवेदने = अस्वीकार कर देने पर। न = नहीं। उपपद्येत = सिद्ध होगा। इति = इस प्रकार की। आशङ्का = आशङ्का का। अपनेतु = निराकरण करने के लिये। आह = कहते है।

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ १९ ॥

अर्थ—च = और। एकसमये = एक ही समय में, युगपत्। उभयानवधारणात् = दोनों की अवधारणा न होने से अर्थात् चित्त और उसके विषय का ग्रहण एक साथ न होने के कारण चित्त स्वयं प्रकाशक नहीं है। अचेतन दृश्य होने के कारण चित्त स्वयं अपने स्वरूप को तथा साथ ही विषय के स्वरूप को प्रकाशित करने में असमर्थ रहता है अत वह स्वप्रकाशक नहीं है। अपरिणामी चेतन पुरुष के संयोग से चित्त चेतन सा होकर विषयाकाराकारित हो जाता है और चित्त में प्रतिबिम्बित पुरुष उसके धर्मों को अपने में उपचरित कर लेता है। इस प्रकार अपरिणामी, नित्य, चेतन पुरुष ही स्वयं प्रकाशक है तथा विषयो का ग्रहीता है।

वृत्ति—अर्थस्य संवित्ति इदन्तया व्यवहारयोग्यतापादनम्। अयमर्थ—सुखहेतुर्दुःखहेतुर्वेति बुद्धेः संविद् अहमित्येवमाकारेण सुख-दुःखरूपतया व्यवहारक्षमतापादनम्, एवंविधञ्च व्यापारद्वयमर्थप्रत्यक्षकाले[1] न युगपत् कर्तुं शक्यं, विरोधात्, न हि विरुद्धयोर्व्यापारयोर्युगपत् सम्भवोऽस्ति।

अत एकस्मिन् काले उभयस्य स्वरूपस्य अर्थस्य चावधारयितुमशक्यत्वाद् न चित्तं स्वप्रकाशकं भवति। किन्तु एवंविधव्यापार[2]द्वयनिष्पाद्यस्य फलद्वयस्यासंवेदनाद् बहिर्मुखतयैव स्वनिष्ठत्वेन चित्तस्य स्वयं वेदनादर्थनिष्ठमेव फलं, न स्वनिष्ठमित्यर्थः ॥ १९ ॥

अर्थस्य = पदार्थ का। संवित्तिः = ज्ञान। इदन्तया = इस प्रकार का है। इदं = इस। व्यवहारयोग्यता = व्यवहार की योग्यता। आपादान = प्राप्त करना है। सुखहेतु = सुख का कारण। वा = अथवा। दुःखहेतु = दुःख का कारण। इति = इस रूप से। अयं = यह। अर्थ = अर्थ पदार्थ है अर्थात् पदार्थ, विषय ही सुख एवं दुःख का कारण है। अहम् इति = मैं हूँ 'अहं' प्रतीति रूप। एवं = इस। आकारेण = आकार में। बुद्धेः = बुद्धि, चित्त का। संविद् = ज्ञान है। अर्थात्। सुखदुःखरूपतया = सुख तथा दुःख रूप से। व्यवहारक्षमता = व्यवहार की योग्यता को। आपादन = प्राप्त करना है। अर्थात् 'अहम् सुखी, अहम् दुःखी' इस रूप से 'अहम्' वृत्ति की प्रतीति ही चित्त का ज्ञान है। च = और। विरोधात् = परस्पर विरोध होने के कारण। एवंविध = इस प्रकार का। व्यापारद्वय = द्विविध व्यापार अर्थात् सुखदुःख का हेतु तथा चित्त की 'अहम्' वृत्ति का। अर्थप्रत्यक्षकाले = पदार्थ के प्रत्यक्ष होने के समय, उपस्थित होने पर, सन्निकर्ष होने पर। युगपत् = एक साथ। कर्तुं = ग्रहण करना। न = नहीं। शक्यं = संभव है। हि = क्योंकि। विरुद्धयोः = परस्पर दो प्रतिकूल, विलोम। व्यापारयोः = व्यापारों का। युगपत् = एक ही समय में एक साथ। न = नहीं। सम्भव = ग्रहण करना संभव। अस्ति = है। अतः = इसलिये। एकस्मिन् = एक

---

1 अर्थप्रत्यक्षताकाले (पा०)।

2 द्वयनिष्पाद्य फल (पा०)।

ही। काले = समय में। उभयस्य = दोनों के। स्वरूपस्य = स्वरूप का। च = और। अर्थस्य = पदार्थ का। अवधारयितु = निश्चय करना, ग्रहण करना। अशक्यत्वाद् = असम्भव होने से। चित्त=चित्त। स्वप्रकाशक = स्वयं अपने को प्रकाशित करने वाला। न = नहीं। भवति = होता है। किन्तु = परन्तु। एवं विषयव्यापारद्वय = इस प्रकार के दो व्यापारों को। निष्पाद्य = सम्पन्न करके। फलद्वयस्य = दो प्रकार के फलों का। असंवेदनाद् = ज्ञान न होने से। बहिर्मुखतया = बहिर्मुखी रूप से। एव = ही। स्वनिष्ठत्वेन = अपने में ही निष्ठ, पदार्थ में ही विद्यमान रहने वाले। चित्तस्य = चित्त का। स्वयं = स्वयं ही। वेदनाद् = ज्ञान होने से। अर्थनिष्ठ =पदार्थ में ही रहने वाला। एव = ही। फलं = फल है। स्वनिष्ठ अपने में, रहने वाला। न = नहीं है। इति अर्थ = यही अभिप्राय है ॥ १९ ॥

ननु मा भूद् बुद्धे स्वयं ग्रहणं, बुद्ध्यन्तरेण भविष्यतीत्याशङ्कयाह--

ननु = प्रश्न होता है कि। बुद्धे = बुद्धि, चित्त का। स्वयं = अपने आप बिना चेतन पुरुष की छाया के। ग्रहणं = पदार्थों का ग्रहण। मा = मत। भूद् = होवे। किंतु। बुद्ध्यन्तरेण = दूसरे चित्त के द्वारा। भविष्यति = विषयों का ग्रहण अवश्य ही होगा। इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशङ्का करके। आह = कहते हैं। बौद्ध मत के अनुसार यदि क्षणिक चित्त स्वयं अपना प्रकाशक नहीं है तो उससे अव्यवहित द्वितीय क्षण में उत्पन्न हुये चित्त से उसका प्रकाशन हो जायेगा। अतः चित्त ही प्रकाशक है। उससे भिन्न पुरुष नामक तत्त्व को प्रकाशक रूप में मानने की आवश्यकता नहीं है।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २० ॥

अर्थ—चित्तान्तरदृश्ये = एक चित्त को उससे अव्यवहित उत्पन्न दूसरे चित्त का दृश्य स्वीकार लेने पर। बुद्धिबुद्धे = पुनः उस चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य हो जाने से। अतिप्रसङ्गः = अतिप्रसङ्ग, अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी। च = और। स्मृतिसङ्करः = स्मृतियों का परस्पर संकर, सम्मिश्रण होगा अर्थात् यदि क्षणिक होने से चित्त स्वयं अपना प्रकाशक नहीं है और उसका ग्रहण उसके उत्तर काल में उत्पन्न हुये चित्त के द्वारा होता है। इस प्रकार

अनवस्था दोष आ जायेगा। द्वितीय तृतीय, चतुर्थ इत्यादि क्षणों में उत्पन्न होने वाले सभी चित्त ग्राह्य होते जायेंगे और उत्तर कालीन सभी चित्त ग्रहीता। और इस प्रकार कोई व्यवस्था होगी ही नहीं। स्मृतियों का भी परस्पर सकर होगा, क्यों कि किस ज्ञान की कौन सी स्मृति है, यह निश्चित नहीं हो सकेगा।

वृत्तिः—यदि हि बुद्धिर्बुद्ध्यन्तरेण वेद्यते, सापि बुद्धिः [1]स्वयमबुद्धा बुद्ध्यन्तरं प्रकाशयितुमसमर्थेति तस्या ग्राहक[2] बुद्ध्यन्तरं कल्पनीयम्, तस्या अप्यन्यदित्यनवस्थानात् पुरुषान्तरेणार्थप्रतीतिर्न स्यात्, न हि प्रतीतौ अप्रतीतायामर्थ प्रतीतो भवति।

स्मृतिसङ्करश्च प्राप्नोति, रूपे रसे व समुत्पन्नाया बुद्धौ तद्ग्राहिकाणामनन्ताना बुद्धीना समुत्पत्तेर्बुद्धिजनितैः संस्कारैर्यदा युगपद् बह्वय स्मृतय क्रियन्ते, तदा बुद्धेरपर्यवसानाद् बुद्धिस्मृतीनाञ्च बह्वीना युगपदुत्पत्ते 'कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति' ज्ञातुमशक्यत्वात् स्मृतीना सङ्कर स्यात्—इय रूपे स्मृतिरिय रसे स्मृतिरिति न ज्ञायेत।' २० ॥

हि = क्योंकि। यदि = यदि। बुद्धि = प्रथम चित्त। बुद्ध्यन्तरेण = अपने से अव्यवहित द्वितीय क्षण में उत्पन्न चित्त के द्वारा। वेद्यते = जाना जाता है, ग्रहण किया जाता। और। सा = वह। बुद्धि = बुद्धि। अपि = भी। स्वय = अपने से, बिना चेतन पुरुष की छाया से। एव = ही। स्वीयभावरूप = अपने ही स्वरूप को। अज्ञात्वा = न जानकर। अबुद्धा = अज्ञात हुई। बुद्ध्यन्तर = दूसरी बुद्धि को प्रकाशयितु = प्रकाशित करने में। असमर्था = असमर्थ है। इति = इस प्रकार। तस्या = उस बुद्धि, चित्त का। ग्राहक = ग्राहक ग्रहण करने वाले। बुद्ध्यन्तर = दूसरे चित्त की। कल्पनीय = कल्पना करनी पड़ेगी। तस्या = उस बुद्धि का। अपि = भी। अन्यद् = अन्य चित्त का प्रकाशक है। इति = इस रूप से। अनवस्थानात् = अनवस्था दोष होने के कारण। पुरुषान्तरेण = प्रकाशक रूप चेतन पुरुष के बिना। अर्थप्रतीति = पदार्थ का ज्ञान। न = नहीं। स्यात् = होगा। हि=क्योंकि। प्रतीतौ = प्रतीति के। अप्रतीताया =

---

१ स्वयमेव स्वीयभावरूपम् अज्ञात्वा अबुद्धा (पा०)।

२ बोधक (पा०)।

अज्ञात रहने पर। कभी भी। अर्थ = पदार्थ, विषय। प्रतीत = ज्ञात। न = नहीं। भवति = होता है। च = और। स्मृतिसङ्कर = स्मृतियों का परस्पर समिश्रण भी। प्राप्नोति = प्राप्त होता है। रूपे = रूप के विषय में। वा = अथवा। रसे = रस के विषय में। समुत्पन्नाया = उत्पन्न हुई। बुद्धौ = बुद्धि में। तद = उसको। ग्राहिकाणा = ग्रहण कराने वाली। अनन्ताना = अनन्त, अनेक। बुद्धीना = बुद्धियों के। समुत्पत्तौ = उत्पन्न हो जाने के कारण। बुद्धिजनितै. = बुद्धि से उत्पन्न हुए। सस्कारै = सस्कारों के द्वारा। यदा = जब। युगपद् = एक साथ। बह्वय (बह्वय) = बहुत सी। स्मृतय = स्मृतिया। क्रियन्ते = उत्पन्न की जाती हैं। तदा = तब। बुद्धे = बुद्धि के। अपर्य-वसानाद् = पर्यवसान, अन्त न होने से अर्थात् अनन्त होने के कारण। बह्वीना= बहुत सी। बुद्धिस्मृतीना च = बुद्धि एव स्मृतियों की। युगपद् = एक साथ। उत्पत्तौ = उत्पन्न होने से। 'कस्मिन् = किस। अर्थे = पदार्थ के विषय में। इय = यह। स्मृति = स्मृति। उत्पन्ना = उत्पन्न हुई है'। इति = इस रूप से। ज्ञातु = जानने में। अशक्यत्वात् = सभव न होने के कारण। स्मृतीना = स्मृतियों का। सङ्कर: = परस्पर समिश्रण। स्यात् = प्राप्त हो जायेगा अर्थात्। इय = यह। स्मृति = स्मृति। रूपे = रूप विषयक है। इय = यह। स्मृति = स्मृति। रसे = रस विषयक है। इति = इस रूप से पृथक पृथक्। न = नहीं। ज्ञायेत = ज्ञान होगा ॥ २० ॥

ननु बुद्धे स्वप्रकाशत्वाभावे बुद्ध्यन्तरे चासवेदने कथम् अय विषयसवेदनरूपो व्यवहार इत्याशङ्क्य स्वसिद्धान्तमाह—

ननु = प्रश्न होता है कि। बुद्धे = चित्त का। स्वप्रकाशत्वाभावे = स्वय प्रकाशक न होने पर। च = और। बुद्धयन्तरे = द्वितीय-तृतीय इत्यादि क्षण में उत्पन्न हुये चित्त से भी। असवेदने = ज्ञान न उत्पन्न होने से। कथ = किस प्रकार। अय = यह। विषयसवेदनरूप = विषयों का ज्ञान रूपी। व्यवहार = व्यवहार होता है इति = ऐसी। आशङ्क्य = आशङ्का करके। स्वसिद्धान्त = अपने सिद्धान्त को। आह = प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् चेतनपुरुष ही ज्ञाता है, उसी की छाया से चित्त भी वस्तुओं को ग्रहण करने वाला होता है। चित्त न तो

स्वप्रकाशक है और न तो चित्तान्तर प्रकाश्य। अपितु वह चेतन पुरुष द्वारा ही प्रकाश्य है।

चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

अर्थ—चित्ते = चिति, चेतन शक्ति पुरुष के। अप्रतिसङ्क्रमाया = यथार्थत प्रतिसक्रमण रहित होने पर भी, विषयों में गमनरूप एव समिश्रण रूप क्रिया का अभाव होने पर भी। तद् = विषयों में गमन करने वाले, विषयों के आकार को ग्रहण करने वाले उस चित्त के। आकारापत्तौ = आकार की प्राप्ति होने पर। स्वबुद्धिसवेदन = अपनी बुद्धि का, विषय सहित चित्त का ज्ञान होता है। स्वभावत पुरुष निष्क्रिय, अपरिणामी, निर्विकार, असङ्ग, निर्लिप्त है। वह केवल चेतन है। विषय से सबद्ध चित्त में प्रतिबिम्बित पुरुष भी तदाकाराकारित हो जाता है। यही चित्त के आकार की प्राप्ति है और इस प्रकार विषय एव बुद्धि दोनो का ज्ञान पुरुष को होता है और वह ज्ञाता कहा जाता है। जैसे स्वच्छ जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र जल की चञ्चलता के कारण गतिशील दिखलाई पडता है, उसी प्रकार विषयाकार परिणाम को प्राप्त करने वाले चित्त में सक्रमित पुरुष भी विषयों का ग्रहीता, ज्ञाता हो जाता है।

वृत्ति.—पुरुषश्चिद्रूपत्वाच्चिति., साऽप्रतिसङ्क्रमा—न विद्यते प्रतिसङ्क्रमोऽन्यत्र गमन यस्या सा तथोक्ता, अन्येनासङ्कीर्णेति यावत्। तथा गुणा अङ्गाङ्गिभावलक्षणे परिणामे अङ्गिन गुण सङ्क्रामन्ति तद्रूपतामिवापद्यन्ते, तथा वा लोके परमाणव प्रसरन्तो विषयमारूपयन्ति[1], नैव चितिशक्ति, तस्या सर्वदैकरूपतया सुप्रतिष्ठितत्वेन व्यवस्थितत्वात्।

अतस्तत्सन्निधाने यदा बुद्धिस्तदाकारतामापद्यते चेतनेवो[2] पजायते, बुद्धिवृत्तिप्रतिसङ्क्रान्ता च यदा चिच्छक्ति बुद्धिवृत्तिविशिष्टतया[3] सवेद्यते, तदा बुद्धे

१ आरोपयन्ति (पा०)। विषयम् आरूपयन्ति = आविर्भावयन्ति।

२. चेतनोपजायते (पा०)।

३ बुद्धिवृत्त्यावेशात् तथा सपद्यते (पा०)।

स्वस्यात्मनो[1] वेदन मवेदन भवतीत्यर्थ ॥ २१ ॥

पुरुप = पुरुष। चिद्रूपत्वात् = चेतन स्वरूप होने के कारण। चिति = चिति, चेतनशक्ति है। सा = वह चिति शक्ति। अप्रतिसङ्क्रमा = सक्रमण रूप क्रिया से रहित है अर्थात्। न = नही। विद्यते = विद्यमान है। प्रतिसङ्क्रम = प्रतिसक्रम अर्थात्। अन्यत्र = अन्यत्र, विविध विषयो में। गमन = गमन। यस्या = जिस शक्ति का। सा = वह शक्ति। तथा = उस प्रकार से। उक्ता = कही गई है अर्थात् अप्रतिसक्रमा है। अन्येन = अन्य, विषयो के साथ। असङ्कीर्णा = वह चितिशक्ति मिश्रित नही है। विषयाकार परिणाम को प्राप्त करने वाली नही है। इति यावत् = यही अभिप्राय है। अर्थात् स्वभावत· चिति शक्ति अपरिणामी, क्रिया रहित है। यथा = जैसे। गुणा = सत्व-रजस्-तमस त्रिविध गुण। अङ्गाङ्गिभावलक्षणे = अङ्ग एव अङ्गी रूप, गुणप्रधानरूप। परिणामे = परिणाम में। अङ्गिन = अङ्गी, प्रधान। गुण = गुण का। सङ्क्रामन्ति = सक्रमण करते है अर्थात्। तद्रूपताम् इव = उसी अङ्गी गुण की रूपता, एक रूपता, उसी प्रधान गुण के स्वरूप को। आपद्यन्ते = प्राप्त करते है। वा = अथवा। यथा = जैसे। लोके=लोक, ससार में। परमाणव· = परमाणु, सूक्ष्म अणु। प्रसरन्त प्रसार को प्राप्त करते हुये, द्वयणुक, त्र्यणुक इत्यादि क्रम से सघात रूप को प्राप्त करते हुये। विषय = विषय, पदार्थ का। आरोपयन्ति = स्वरूप का हो जाते हैं। चितिशक्ति· = चिति शक्ति तो। एव = एम प्रकार के, गुणों तथा परमाणुओ के समान परिणाम तथा सयोग को प्राप्त करने वाली। न = नही है। तस्या = उस चिति शक्ति का। सर्वदा=सदा ही, सभी अवस्थाओं मे। एकरूपतया = एक ही स्वरूप का। सुप्रतिष्ठितत्वेन = अच्छी प्रकार से प्रतिष्ठित होने से। व्यवस्थितत्वात् = व्यवस्थित, विद्यमान रहने से। चिति· शक्ति परिणाम एव सम्मिश्रण से रहित है। अत· = इसलिये। तत् = उस अपरिणामी चेतन पुरुष के। सन्निधाने = सनिधान, समीप में रहने पर। यदा = जब। बुद्धि = चित्त। तद् = उस पुरुष के। आकारता = आकार को, तद्रूपता

---

[1] आत्मना वेदन (पा०)।

को। आपद्यते = प्राप्त करता है। तब। चेतना = अचेतन चित्त में चेतना। उपजायते = उत्पन्न होती है। च = और। यदा = जब। बुद्धिवृत्तिप्रतिसङ्क्रान्ता= चित्त की वृत्ति में प्रतिबिम्बित हुई। चिच्छक्ति = चिति शक्ति का। बुद्धि-वृत्तिविशिष्टतया = चित्तवृत्ति की विशेषता से, चित्तवृत्ति सहित। संवेद्यते = ज्ञान प्राप्त होता है। तदा = तब। बुद्धे = चित्त के। स्वस्य आत्मन = अपने ही स्वरूप को वेदन = वेदना अर्थात्। संवेदन = संवेदना, अच्छी प्रकार ज्ञान। भवति = होता है। इति अर्थ = यह अभिप्राय है॥ २१॥

इत्थं स्वसंविदितं चित्तं सर्वानुग्रहणसामर्थ्येन[1] सकलव्यवहारनिर्वाहक्षम भविष्यतीत्याह—

इत्थं = इस प्रकार से। स्वसंविदित = अपने से, चेतन पुरुष से जाना हुआ। चित्त = चित्त। सर्वानुग्रहणसामर्थ्येन = सभी के अनुग्रह में समर्थ अर्थात् चेतन पुरुष की छाया प्राप्ति से समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होने से। सकलनिर्वाहक्षम = सभी व्यवहारों के योग्य, ज्ञान में समर्थ। भविष्यति = होगा। इति = चित्त की इसी सामर्थ्य का। आह = प्रतिपादन करते हैं।

द्रष्टृ-दृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥ २२॥

अर्थ—द्रष्टृदृश्योपरक्त = द्रष्टा चेतन पुरुष तथा दृश्य शब्द-स्पर्शरूप इत्यादि, घट, पट इत्यादि से उपरक्त, उपरञ्जित हुआ, सबद्ध। चित्त = चित्त। सर्वार्थ = समस्त अर्थों को ग्रहण करने वाला, ग्रहीतृग्रहणग्राह्य, द्रष्टृदर्शनदृश्य स्वरूप वाला होता है। चित्तसत्त्वगुण विशिष्ट होने के कारण स्वच्छ स्फटिक मणि के समान है। जिस प्रकार उस मणि के सान्निध्य में जो भी वस्तु आती है, वह उसी के आकार की हो जाती है। जपा कुसुम की समीपता से वह मणि भी तद्रूप हो जाती है। इसी प्रकार इन्द्रिय प्रणालिका के माध्यम से घट, पट इत्यादि विषय को प्राप्त कर चित्त विषयाकाराकारित हो जाता है। इसी भाँति चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब को प्राप्त कर वह चित्त भी तद्रूप हो जाता है। अत द्रष्टा चेतन पुरुष तथा दृश्य विषयों से उपरञ्जित चित्त सभी अर्थों वाला होता

१ सकलनिर्वाहक्षमम् (पा०)।

है। वह ग्रहीता तथा ग्राह्य के स्वरूप का हो जाता है साथ ही अपने स्वरूप से वह ग्रहण रूप का तो रहता ही है।

वृत्तिः—*द्रष्टा पुरुष, तेनोपरक्तं तत्सन्निधानेन तद्रूपतामिव प्राप्नोति,* दृश्योपरक्तं विषयोपरक्तं गृहीतविषयाकारपरिणामं यदा भवति तदा तदेव चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थं भवति, यथा निर्मलं स्फटिकदर्पणाद्येव[२] प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थम्, एवं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्त्वं शुद्धत्वात् चिच्छायाग्रहणसमर्थं भवति, न पुनरशुद्धत्वाद्रजस्तमसी।

तद् न्यग्भूतरजस्तमोरूपमङ्गितया सत्त्वं निश्चलप्रदीपशिखाकारं सदैकरूपतया परिणममानं चिच्छायाग्रहणसामर्थ्यादा-मोक्षप्राप्तेरवतिष्ठते। यथा अयस्कान्त-सन्निधाने लोहस्य चलनमाविर्भवति, एवं चिद्रूपपुरुषसन्निधाने सत्त्वस्याभिव्य-ङ्ग्यमभिव्यज्यते चैतन्यम्।

अत एव अस्मिन् दर्शने द्वे चिच्छक्ती-नित्योदिता अभिव्यङ्ग्या च, नित्यो-दिता चिच्छक्तिः पुम्सन्निधानादभिव्यक्तमभिव्यङ्ग्यचैतन्यं सत्त्वम्, अभि-व्यङ्ग्या चिच्छक्तिः तदत्यन्तसन्निहितत्वादन्तरङ्गं पुरुषस्य भोग्यतां प्रतिपद्यते। *तदेव शान्तब्रह्मवादिभिः साङ्ख्यैः पुरुषस्य परमात्मनोऽधिष्ठेयं कर्मानुरूपं सुख-दुःखभोक्तृतया व्यपदिश्यते।*

यत्तु अनुद्रिक्तत्वादेकस्यापि गुणस्य कदाचित् कस्यचिदङ्गित्वात् त्रिगुणं प्रतिक्षणं परिणममानं सुख-दुःख-मोहात्मकमनिर्मलं, तत्तस्मिन् कर्मानुरूपे शुद्धे सत्त्वे स्वाकार-समर्पणद्वारेण संवेद्यतामापादयति, तत् शुद्धमाद्यं चित्तसत्त्वमेवेति प्रतिसङ्क्रान्त-चिच्छायमन्यतो गृहीतविषयाकारेण चित्तेन उपढौकितमाकारं चित्सङ्क्रान्ति-बलात् चेतनायमानं वास्तवचैतन्याभावेऽपि सुखदुःखस्वरूपं भोगमनुभवति, स एव भोगोऽत्यन्तसन्निधानेन विवेकाग्रहणाद् अभोक्तुरपि पुरुषस्य भोग इति व्यपदिश्यते।

अनेनैवाभिप्रायेण विन्ध्यवासिनोक्तं—"सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्" इति। अन्यत्रापि—"प्रतिबिम्बे [३]प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भवः प्रतिबिम्बशब्दे-

२ स्फटिक दर्पणाद्येव (पा०)।

३ बिम्बे प्रति" (पा०)।

नोच्यते, एवं सत्त्वेऽपि पौरुषे यच्चिच्छायासंक्रान्ति प्रतिसङ्क्रान्ति-शब्दार्थं" इति।

ननु प्रतिबिम्बं नाम निर्मलस्य नियतपरिणामस्य निर्मले दृष्टम्, यथा मुखस्य दर्पणे, अत्यन्तनिर्मलस्य व्यापकस्य अपरिणामिन पुरुषस्य तस्मादत्यन्तनिर्मलात् पुरुषादनिर्मले सत्त्वे कथं प्रतिबिम्बनमुपपद्यते ?

उच्यते—प्रतिबिम्बनस्य स्वरूपमनवगच्छता भवतेदमभ्यधायि, यैव सत्त्वगताया अभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेः, पुरुषस्य सान्निध्यादभिव्यक्ति[2] सैव प्रतिबिम्बनमुच्यते, यादृशी पुरुषगता चिच्छक्तिस्तच्छायाप्यत्राविर्भवति।

यदप्युक्तम्—अत्यन्तनिर्मल पुरुष कथमनिर्मले सत्त्वे प्रतिसङ्क्रामतीति ? तदप्यनैकान्तिकं, नैर्मल्यादपकृष्टेऽपि जलादावादित्यादय प्रतिसङ्क्रान्ता समुपलभ्यन्ते।

यदप्युक्तम्—अनवच्छिन्नस्य नास्ति प्रतिसङ्क्रान्ति, तदप्ययुक्तं व्यापकस्याप्याकाशस्य दर्पणादौ प्रतिसङ्क्रान्तिदर्शनात्, एवं सति न काचिदनुपपत्ति प्रतिबिम्बदर्शनस्य।

ननु सात्त्विकपरिणामरूपे बुद्धिसत्त्वे पुरुषसन्निधानादभिव्यङ्ग्यायाश्चिच्छक्तेर्बाह्याकारसङ्क्रान्तौ पुरुषस्य सुखदु खरूपो भोग इत्युक्त, तदनुपपन्न, तदेव चित्तसत्त्वं प्रकृताववपरिणताया कथं सम्भवति ? किमर्थश्च तस्या परिणाम ?

अथोच्येत, पुरुषस्यार्थोपभोगसम्पादनं तया कर्त्तव्यम्, अत पुरुषार्थकर्त्तव्यतयाऽस्या युक्त एव परिणाम। तच्चानुपपन्न, पुरुषार्थकर्त्तव्यताया एवानुपपत्ते., पुरुषार्थो मया कर्त्तव्य एवंविधोऽध्यवसाय पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते,[3] जडायाश्च प्रकृते कथं प्रथममेवंविधोऽध्यवसाय ? अस्ति चेदध्यवसाय, कथं जडत्वम् ?

अथोच्यते—अनुलोम-प्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वये सहज शक्तिद्वयमस्ति, तदेव पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते, सा च शक्तिरचेतनाया अपि प्रकृते सहजैव। तत्र महदादि-

---

१ सदृशस्वकीयचिच्छायान्तराभिव्यक्ति प्रतिबिम्ब शब्दार्थ (पा०)।

२ सान्निध्ये (पा०)।

३ कर्तव्यतया उच्यते (पा०)।

महाभूतपर्य्यन्तोऽस्या बहिर्मुखतयाऽनुलोम परिणाम, पुन स्वकारणानुप्रवेशन-द्वारेणास्मितान्त परिणाम प्रतिलोम ।

इत्थ पुरुषस्य भोगपरिसमाप्ते[१] सहजशक्तिद्वयक्षयात् कृतार्था प्रकृतिर्न पुन परिणाममारभते, एवविधानाञ्च पुरुषार्थकर्त्तव्यतायां जडाया अपि प्रकृतेर्न काचिदनुपपत्ति ।

ननु यदि ईदृशी शक्ति सहजैव प्रधानस्यास्ति, तत् किमर्थं मोक्षार्थिभिर्मोक्षाय यत्न क्रियते ? मोक्षस्य चानर्थनीयत्वे तदुपदेशकशास्त्रस्यानर्थकय स्यात् ? उच्यते—योऽय प्रकृतिपुरुषयोरनादिर्भोग्य-भोक्तृत्वलक्षण[२] सम्बन्ध, तस्मिन् सति व्यक्तचेतनाया प्रकृते कर्त्तृत्वाभिमानाद् दुःखानुभवे सति कथमिय दु ख-निवृत्तिरात्यन्तिकी मम स्याद् इति भवत्येवाध्यवसाय, अतो दुःखनिवृत्त्यु-पायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षा अस्त्येव प्रधानस्य, तथाभूतमेव कर्मानुरूप बुद्धिसत्त्व शास्त्रोपदेशस्य विषय, दर्शनान्तरेष्वप्येवविध एवाविद्यास्वभाव शास्त्रेऽ-धिक्रियते[३],

स च मोक्षाय प्रयतमान एवविधशास्त्रोपदेश सहकारिणमपेक्ष्य मोक्षाख्य फलमासादयति। सर्वाण्येव कार्य्याणि प्राप्तायां सामग्र्यामात्मान लभन्ते, अस्य प्रतिलोमपरिणामद्वारेणैवोत्पाद्यस्य मोक्षाख्यस्य कार्य्यस्य ईदृश्येव सामग्री प्रमाणेन निश्चिता, प्रकारान्तरेणानुपपत्ते, अतस्तां विना कथ भवितुमर्हति ?

अत स्थितमेतत्-सङ्क्रान्तक्रियोपरागमभिव्यक्तचिच्छाय बुद्धिसत्त्व विषय-निश्चयद्वारेण समग्रा लोकयात्रा निर्वाहयतीति। एवविधमेव चित्त पश्यन्तो भ्रान्ताः स्वसवेदन[४] चित्त, चित्तमात्र च जगदित्येव ब्रुवाणा प्रतिबोधिता भवन्ति ॥ २२ ॥

द्रष्टा = द्रष्टा । पुरुष = चेतन पुरुष हैं । तेन = उस द्रष्टा चेतन पुरुष से ।

---

१ आ भोगपरिसमाप्ते (पा०) ।
२ भोक्तृभावलक्षण (पा०) ।
३ अभिधीयते (पा०) ।
४ स्वसवेदनचित्तमात्र जगत् (पा०) ।

उपरक्त = उपरञ्जित, रगा हुआ, सम्बद्ध चित्त अर्थात्। तत् = उस पुरुष के। सन्निधानेन = सान्निध्य, समीपता से। वह चित्त। तद् = उस पुरुष के। रूपताम् इव = आकार के सदृश आकार को, उस पुरुष के स्वरूप को। प्राप्नोति = प्राप्त करता है। दृश्योपरक्त —दृश्य से उपरञ्जित चित्त अर्थात्। विषयोपरक्त = घट-पट इत्यादि विषयों से उपरञ्जित, उपराग को प्राप्त किया हुआ चित्त। यदा = जब। चित्त। गृहीतविषयाकारपरिणाम = ग्रहण किये गये विषय के आकार के परिणाम वाला, सबद्ध विषय के स्वरूप वाला। भवति — होता है। तदा = तब। तदेव = वही। चित्त = चित्त। सर्वार्थग्रहणसमर्थं = समस्त पदार्थों के स्वरूप को ग्रहण करने की सामर्थ्य वाला। भवति = होता है। यथा— जैसे। निर्मल = स्वच्छ। स्फटिकदर्पणादि = स्फटिक मणि, दर्पण इत्यादि। एव— ही। प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थं = समीप में प्राप्त पदार्थों के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। एव = इसी प्रकार। रजस्तमोभ्या = रजोगुण एव तमो गुण से। अनभिभूत = अभिभूत न किया गया, न दबाया गया। सत्त्व = प्रकाशक सत्त्व गुण। शुद्धत्वात् = शुद्ध विमल होने के कारण। चिच्छायाग्रहणसमर्थं = चेतन पुरुष की छाया, प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होता है। पुन = किन्तु। अशुद्धत्वात् = राग एव तमस् के कारण अशुद्ध, कलुषित होने के कारण। रजस्तमसी = रजो गुण तथा तमो गुण। न = पुरुष की छाया को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। न्यग्भूतरजस्तमोरूप = न्यून हो गये, अभिभूत हुये रजो गुण एव तमो गुण वाला। तद् = वह। सत्त्व = सत्त्व गुण। अङ्गितया = अङ्गी, प्रधान रूप से, उत्कर्ष को प्राप्त कर। निश्चलप्रदीपशिखाकार = निष्कम्प, गति रहित दीपक शिखा के आकार वाला। सदा = सदैव, सभी अवस्थाओं में। एकरूपतया = एक ही स्वरूप में। परिणममान = परिणाम को प्राप्त करता हुआ। चिच्छायाग्रहणसामर्थ्याद् = चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की सामर्थ्य होने से। आमोक्षप्राप्ते = मोक्ष, अपवर्ग प्राप्ति पर्यन्त। अवतिष्ठते = विद्यमान रहता है। यथा = जैसे। अयस्कान्तसन्निधाने = अयस्कान्त मणि, चुम्बक का सान्निध्य, सामीप्य होने पर। लोहस्य = लौह धातु का, लौह खड में। चलन = चलना, गति। आविर्भवति = उत्पन्न होती है। एव = इसी

प्रकार। चिद्रूपपुरुषसन्निधाने = चेतन स्वरूप पुरुष के सान्निध्य में। सत्त्वस्य = सत्त्व की, सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त की। चैतन्य = चेतनता। अभिव्यज्य = अभिव्यञ्जित होकर। अभिव्यज्यते = अभिव्यक्त, प्रकट होती है अर्थात् चेतन पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ने पर अचेतन चित्त में चेतना उद्भूत होती है। अतएव = इसलिए। अस्मिन् = इस, प्रस्तुत। दर्शने = योगदर्शन में। द्वे = दो प्रकार की। चिच्छक्ति = चेतन शक्तियाँ हैं। नित्योदिता = नित्य उदित, सदैव विद्यमान रहने वाली चेतन शक्ति। च = और। अभिव्यङ्ग्या = अभिव्यञ्जित, चेतन पुरुष के संयोग से व्यक्त होने वाली चेतन शक्ति। नित्योदिता = नित्य उदित चेतन शक्ति। चिच्छक्ति = चित् शक्ति, चेतन पुरुष रूप शक्ति है। पुरुषसन्निधानाद् = चेतन पुरुष की समीपता से। अभिव्यक्त = अभिव्यक्त, उद्भूत हुई। अभिव्यङ्ग्यचैतन्य = अभिव्यञ्जित, प्रकट हुई चेतनता वाला। सत्त्व = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त है। अभिव्यङ्ग्या = अभिव्यक्त होने वाली। चिच्छक्ति = चेतन की शक्ति। तद् = उस पुरुष के। अत्यन्तसन्निहितत्वाद् = अति ही समीप में स्थित होने के कारण। अन्तरङ्ग = प्रधान, मुख्य अङ्ग, साधन, कारण है। और। पुरुषस्य = मनुष्य की। भोग्यता = उपभोग को। प्रतिपद्यते = प्राप्त होता है। तदेव = वही। शान्तब्रह्मवादिभि = शान्त ब्रह्मवादियों। एव। सांख्यैः = सांख्य आचार्यों के द्वारा। परमात्मन' = परमात्मा को। अधिष्ठेय = अधिष्ठेय रूप में एव। कर्मानुरूप = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के अनुसार। सुखदुःखभोक्तृतया = सुख तथा दुःख के भोक्ता के रूप में। पुरुषस्य = पुरुष का। व्यपदिश्यते = व्यपदेश, कथन किया जाता है अर्थात् परमात्मा ही पुरुष का अधिष्ठाता है और स्वपूर्वकृतकर्मों के अनुकूल ही पुरुषों को सुखदुःख इत्यादि भोगों की प्राप्ति होती ही है। यत्तु = और जो। कदाचित् = कभी। एकस्य = एक। गुणस्य = गुण का। अपि = भी। अनुद्रिक्तत्वाद् = कम होने के कारण, अङ्ग रूप होने से। कस्यचिद् = और किसी गुण का। अङ्गित्वात् = अङ्गी प्रधान रूप होने से। त्रिगुण = सत्त्व-रजस्-तमस त्रिविध गुण। प्रतिक्षण = प्रत्येक क्षण, सदैव। परिणममान = परिणाम को प्राप्त करते हुए। सुखदुःखमोहात्मक = सुख, दुःख एवं मोह स्वरूप वाला। अनिर्मल =

अनिर्मल, अशुद्ध रूप अर्थात् सुखदु:खमोह से युक्त चित्त होता है। तीनो ही गुण सतत परिणाम को प्राप्त करते रहते हैं। अत वे अङ्गाङ्गिभाव मे परिणत होते हुए चित्त को सुखदु:खमोहमय बनाते रहते हैं। चित्त का सदैव सम्बन्ध इनसे बना ही रहता है। तत् = इसलिये। तस्मिन् = उस। कर्मानुरूपे = कर्मो के अनुसार। शुद्धे = शुद्ध, उत्कर्ष को प्राप्त, अङ्गो। सत्त्वे = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त में। स्वाकारसमर्पणद्वारेण = अपने आकार के समर्पण से। सवेदना = सवेदनशीलता, ज्ञान को। आपादयति = चित्त प्रदान कराता है। तत्=वह। शुद्ध = शुद्ध, रजस्-तमस् से अनभिभूत। आद्य = प्रकृति का प्रथम विकार। चित्तसत्त्व = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त। एव = ही है। इति = इस रूप से। प्रतिसक्रान्तचिच्छाय = प्रतिबिम्बित चेतन पुरुष की छाया वाला। अन्यत = अन्य से, इन्द्रिय प्रणालिका से। गृहीतविषयाकारेण = ग्रहण किये, प्राप्त पदार्थ के आकार वाले। चित्तेन = चित्त के द्वारा। उपढौकित = समर्पित। आकार = आकार वाला। वास्तवचैतन्याभावे = वास्तव में, यथार्थत चेतनता का अभाव होने पर। अपि = भी। अर्थात् चित्त के अचेतन होने पर भी। चित्सङ्क्रान्ति-बलात् = चेतन पुरुष के प्रतिबिम्ब के बल से। चेतनायमान = चित्त चेतन सा हो जाता है। सुखदु:खस्वरूप = सुख एव दु:ख रूप। भोग = भोग का। अनुभवति = अनुभव करता है। एव = इस प्रकार। स = वह। भोगः = भोग, चित्त में इन्द्रियो के माध्यम से उपस्थित भोग। अत्यन्तसन्निधानेन = चित्, चेतन पुरुष के अत्यन्त समीप होने के कारण, अति सामीप्य के कारण। विवेका-ग्रहणाद् = चित्त एव चित् दोनो में भेद का ग्रहण न होने से, अज्ञान के कारण दोनों में अभेद, एकता की प्रतीति होने से। अभोक्तु = अभोक्ता होने पर। अपि = भी। पुरुषस्य = पुरुष का। भोग = भोग है। इति = इस रूप से। व्यपदिश्यते = कहा जाता है अर्थात् त्रिगुणातीत होने से यद्यपि पुरुष भोक्ता नही है, पर चित्त के साथ तादात्म्य होने से यह भी भावना हो जाता है। अनेन = इस। एव = ही। अभिप्रायेण = उद्देश्य, विचार से। विन्ध्यवासिना = आचार्य विन्ध्यवासि द्वारा। उक्त = कहा गया है। "सत्त्वतप्यत्व = सत्त्व, चित्त का तप्यत्व होना, दु:ख से सतप्त बनाया जाना। एव = ही। पुरुषत-

ग्यत्व = पुरुष का दुःख से से अभिभूत होना है अर्थात् यद्यपि सुखदुःख इत्यादि भोग बुद्धि के हैं, फिर भी अविवेक के कारण असङ्ग पुरुष भी सुखदुःखों का उपभोक्ता बनता है।" इति = इस रूप से अभोक्ता पुरुष भोक्ता होता है। अन्यत्रापि = दूसरे स्थलों पर भी इसी प्रकार अभोक्ता पुरुष को भोक्ता कहा गया है। "बिम्बे = बिम्ब में, स्फटिक, दर्पण इत्यादि बिम्ब में। प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भव = प्रतिबिम्बित हुई, संक्रमित हुई, पड़ी हुई छाया के समान छाया की उत्पत्ति हो। प्रतिबिम्बशब्देन = प्रतिबिम्ब शब्द के द्वारा। उच्यते = कही जाती है। बिम्ब स्फटिक में जपाकुसुम के सदृश ही छाया की उत्पत्ति जपाकुसुम का स्फटिक में प्रतिबिम्ब है। एवं = इसी प्रकार। सत्त्वे = बिम्ब रूप चित्त में। अपि – भी। पौरुषेयचिच्छायासदृशचिदभिव्यक्ति = चेतन पुरुष की छाया के समान ही चित् पुरुष की अभिव्यक्ति, उद्भूति हो। प्रतिसङ्क्रान्तिशब्दार्थ = प्रतिसंक्रान्ति शब्द का अभिप्राय है।" इति = इस रूप से बिम्ब चित्त में पुरुष की छाया का प्रकट होना ही पुरुष का प्रतिबिम्ब है।

ननु = प्रश्न होता है कि। प्रतिबिम्ब = प्रतिबिम्ब। नाम = तो। नियतपरिणामस्य = निश्चित परिणाम वाले। निर्मलस्य = विमल पदार्थ अर्थात् स्थिर स्वच्छ वस्तु का। निर्मले = मल रहित स्वच्छ, दर्पण, इत्यादि में। दृष्टं = देखा जाता है। यथा = जैसे। मुखस्य = स्वच्छ मुख का। दर्पणे = विमल दर्पण में प्रतिबिम्ब देखा जाता है। तस्माद् = इसलिये। अत्यन्तनिर्मलस्य = समस्त कल्मषरहित नितान्त स्वच्छ। व्यापकस्य = व्यापक। अपरिणामिन = परिणाम रहित, सदैव एक ही स्वरूप में रहने वाले। पुरुषस्य = पुरुष का। अत्यन्तनिर्मलत् = अत्यन्त निर्मल होने के कारण, सकल दोषों से विमुक्त होने से। पुरुषाद् = शुद्ध पुरुष से नितान्त प्रतिकूल। अनिर्मले = अशुद्ध, रागद्वेष इत्यादि भावनाओं तथा शब्दस्पर्श इत्यादि विषयों से उपरञ्जित। सत्त्वे = चित्त में। कथं = किस प्रकार। प्रतिबिम्बिन = प्रतिबिम्बित होना, छाया का पड़ना। उपपद्यते = उपपन्न, सिद्ध हो सकता है अर्थात् उपरागयुक्त चित्त में पुरुष की छाया या दिखलाई पड़ना कैसे संभव है ?। उच्यते = इसका उत्तर देते हैं अर्थात रागयुक्त चित्त में पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता ही है। प्रतिबिम्बिनस्य =

प्रतिबिम्ब के । स्वरूप = स्वरूप को । अनवगच्छता = न समझने के कारण । भवता = आपकी । इद = इस प्रकार की । अभ्यधायि = धारणा है । या = जो । एव = ही । सत्त्वगताया = चित्त में रहने वाली । अभिव्यङ्ग्याया = अभिव्यञ्जित, अभिव्यक्त, प्रकट होने वाली । चिच्छक्ते = चेतन शक्ति की । पुरुषस्य = पुरुष के । सान्निध्याद् = सामीप्य से । अभिव्यक्ति = अभिव्यक्ति होती है, चेतनता की उत्पत्ति होती है । सा एव = वही । प्रतिबिम्बन = प्रतिबिम्ब रूप से । उच्यते = कही जाती है । यादृशी = जिस प्रकार की । पुरुषगता = पुरुष में विद्यमान । चिच्छक्ति = चेतन शक्ति होती है । तच्छाया = उस पुरुष की छाया । अपि = भी । अत्र = इस चित्र में आविर्भवति = उसी प्रकार की उद्भूत, प्रकट होती है । यद् = जो । अपि = भी । उक्त = कहा गया है कि । अत्यन्तनिर्मल = नितान्त शुद्ध । पुरुष = पुरुष । कथ = किस प्रकार से । अनिर्मले = अशुद्ध, रागयुक्त । सत्त्वे = चित्त में । प्रतिसङ्क्रामति = प्रतिबिम्बित होता है । इति = इस रूप से दोष से आवृत्त चित्त में पुरुष की छाया पडना सभव नही है । तद् = वह । अपि = भी । अनैकान्तिक = एकान्तिक नियत नही है अर्थात् उपरञ्जित चित्त में पुरुष की छाया नही पड सकती, यह कथन निश्चित रूप से समीचीन नही है । जलादौ = जल इत्यादि पदार्थों में । नैर्मल्याद् = निर्मलता, स्वच्छता के । अपकृष्टे = अपकृष्ट होने पर, न्यून, कम होने पर । अपि = भी । आदित्यादय = सूर्य इत्यादि । प्रतिसङ्क्रान्ता = प्रतिबिम्बित हुये । समुपलभ्यन्ते = प्राप्त होते हैं, देखे जाते हैं । यद् अपि उक्त = और जो यदि भी कहा गया है कि । अनवच्छिन्नस्य = अवच्छिन्न रहित, अपरिछिन्न, अपरिमित अर्थात् व्यापक पुरुष का । प्रतिसङ्क्रान्ति = प्रतिबिम्ब । न = नही । अस्ति = है अर्थात् पुरुष व्यापक है और उसकी अपेक्षा कोई अन्य तत्त्व महत् परिणाम वाला नही है । अत उसका प्रतिबिम्ब परिमित चित्त में पडना सभव नही है । इति = ऐसा मत है । तद् = वह मत । अपि = भी । अयुक्त = समीचीन, उचित नही है । व्यापकस्य = व्यापक । अस्य = इस । आकाशस्य = आकाश का । दर्पणादौ = शुद्ध दर्पण इत्यादि अति व्याप्य पदार्थों मे । प्रतिसङ्क्रान्तिदर्शनात् = प्रतिबिम्ब का दर्शन होने से यह सिद्ध होता है कि

व्यापक का प्रतिबिम्ब व्याप्य में सभव ही है। एव सति = ऐसा सिद्ध हो जाने पर। प्रतिबिम्बदर्शनस्य = चित्त में पुरुष के प्रतिबिम्ब दर्शन की। काचित = कोई भी। अनुपपत्ति असिद्धि। न = नही है। ननु = प्रश्न होता है कि। सात्त्विकपरिणामरूपे = सात्त्विक परिणाम रूप। बुद्धिसत्त्वे = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त में। पुरुषसन्निधानाद् = चेतन पुरुष की समीपता के कारण। अभिव्यङ्ग्याया = अभिव्यक्ति, प्रकट होने वाली। चिच्छक्ते = चेतन शक्ति का। बाह्याकारसङ्क्रान्तौ = बाह्य आकार के सक्रान्त होने पर। पुरुषस्य = पुरुष के लिये। सुखदु खरूप = सुख एव दु ख रूपो। भोग = उपभोग की प्राप्ति होती है। इति = इस रूप से। उक्त = जो यह कहा गया है। तद् = वह। अनुपपन्न = असिद्ध है। तदेव = वही। चित्तसत्त्व = सात्त्विक चित्त। प्रकृतौ = प्रकृति के। अपरिणताया = परिणाम न प्राप्त करने पर। कथ = किस प्रकार से। सम्भवति = सभव है अर्थात् प्रकृति के परिणाम के बिना चित्त का उद्भव सभव ही नही है। च = और। तस्या = उस प्रकृति का। परिणाम = परिणाम। कि = किम। अर्थ = अर्थ, प्रयोजन वाला है। अथ = यदि। उच्यते = यह कहा जाय कि। तया = उस प्रकृति के द्वारा। पुरुषस्य = पुरुष का। शब्दाद्युपभोगसम्पादन = शब्द स्पर्श इत्यादि विषयो के उपभोग का सपादन। कर्त्तव्य = किया जाना चाहिये। अत = इसलिये। पुरुषार्थकर्त्तव्यतया = पुरुष का उपभोग रूप प्रयोजन ही कर्त्तव्य होने के कारण। अस्या = इस प्रकृति का। परिणाम = परिणाम। युक्त = उचित, समीचीन। एव = ही है। च = और। तत् = वह। अनुपन्न = असिद्ध है। पुरुषार्थकर्त्तव्यताया = पुरुष का उपभोग रूपी प्रयोजन की कर्त्तव्यता का। एव = ही। अनुपपत्ते = असिद्ध होने के कारण अर्थात् अचेतन प्रकृति द्वारा पुरुष का उपभोग करना ही असिद्ध है। मया = मुझ प्रकृति द्वारा। पुरुषार्थ = पुरुष का उपभोग। कर्त्तव्य = सपन्न किया जाना चाहिये। एवविध = इस प्रकार का। अध्यवसाय = अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान ही। पुरुषार्थकर्त्तव्यता = पुरुषार्थकर्त्तव्यता रूप से। उच्यते = कहा जाता है। च = किंतु। कथ = किस प्रकार से। जडाया = अचेतन। प्रकृते = प्रकृति का। प्रथम = प्रथम। एवविध = इस प्रकार का। अध्य-

वसाय = अध्यवसाय सभव है। चेत् = यदि। अध्यवमाय = पुरुषार्थकर्त्तव्यता रूप प्रकृति का अध्यवसाय। अस्ति = होता ही है। कथ = तो किस प्रकार। जडत्व = प्रकृति का स्वरूप अचेतन है। अत्र = इस सबन्ध में। उच्यते = उत्तर देते हैं। अनुलोमप्रतिलोमलक्षणपरिणामद्वये = अनुलोम, एव प्रतिलोम रूप दो प्रकार के परिणाम में। सहज = सहज, स्वाभाविक। शक्तिद्वय = दो प्रकार की शक्ति। अस्ति = है। तदेव = वही सहज शक्ति। पुरुषार्थकर्त्तव्यता = पुरुषार्थ-कर्त्तव्यता रूप से। उच्यते = कही जाती है। च = और। सा = वह। शक्ति = शक्ति। अचेतनाया = अचेतन। प्रकृते = प्रकृति को। अपि = भी। सहजा = सहज, स्वाभाविक। एव = ही है। तत्र = उन द्विविध परिणामों में से। महदादिमहाभूतपर्य्यन्त = महत्तत्व से लेकर आकाश इत्यादि पञ्च महाभूतो तक। बहिर्मुखतया = बहिर्मुखी रूप से। अस्या = इस प्रकृति का। अनुलोम = अनुलोम नाम वाला। परिणाम = परिणाम है। पुन = पुन। स्वकारणानु-प्रवेशनद्वारेण = आकाश इत्यादि पञ्च महाभूत रूप कार्यों का शब्द इत्यादि तन्मात्रा रूप अपने कारण में तिरोहित, विलीन होने के क्रम से। अस्मिताऽन्त = अस्मिता तक अन्त होने वाला। परिणाम = अन्तर्मुखी परिणाम। प्रतिलोम = प्रकृति का प्रतिलोम परिणाम है। इत्थ = इस प्रकार से। पुरुषस्य = पुरुष के। भोगपरिसमाप्ते = उपभोग के सपन्न होने तक। सहजशक्तिद्वयक्षयात् = अनुलोम एव प्रतिलोम रूप दोनों प्रकार की सहज शक्तियों का क्षय, अभाव हो जाने से। कृतार्था = पुरुष के उपभोग को सपन्न कर देने वाली। प्रकृति = प्रकृति। पुन = पुन। परिणाम = किसी अन्य परिणाम को। न = नही। आरभते = प्रारम्भ करती है। च = और। एव विधाया = इस प्रकार के। पुरुषार्थकर्त्तव्यतायाः = पुरुष के उपभोग रूप प्रयोजन की कर्त्तव्यता सपन्न हो जाने से। जडाया = अचेतन। प्रकृते = प्रकृति की। अपि = भी। काचित् = कोई। अनुपपत्ति = असिद्धि। न = नहीं है अर्थात् अचेतन होने पर भी प्रकृति पुरुष के उपभोग को सपन्न करती ही है। अत पुरुषार्थ सिद्धि प्रकृति का प्रयोजन ही है।

ननु = प्रश्न उपस्थित होता है कि । यदि = यदि । ईदृशी = इस प्रकार की । शक्तिः = शक्ति । प्रधानस्य = प्रधान प्रकृति की । सहजा = सहज, स्वाभाविक । एव = ही । अस्ति = है । तत् = तो । किं = किस । अर्थं = लिये, उद्देश्य से । मोक्षार्थिभिः = मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले व्यक्तियों, ऋषियों के द्वारा । यत्नः = प्रयास । क्रियते = किया जाता है अर्थात् पुरुष के अपवर्ग की सिद्धि यदि प्रकृति का स्वभाव, प्रयोजन ही है, तो फिर इसकी प्राप्ति के लिये ऋषियों की प्रवृत्ति क्यों होती है । च = और । मोक्षस्य = मोक्ष का । अप्रार्थनीयत्वे=प्रार्थनीय न होने से, स्वयं सिद्ध, प्रकृतिप्रदत्त होने से । तद् = उस मोक्ष का । उपदेशक-शास्त्रस्य=उपदेश देने वाले, सिद्धि के लिये उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र की । आनर्थक्य=अनर्थता, निष्प्रयोजनता । स्यात्=हो जायेगी ? उच्यते=इसी के उत्तर में कहते हैं । यः = जो । अयं = यह । प्रकृति-पुरुषयोः = प्रकृति तथा पुरुष में । अनादिः = अनादि काल से । भोग्यभोक्तृत्वलक्षणः = भोग्य तथा भोक्ता रूप । सम्बन्धः = सबन्ध है । तस्मिन् सति = उस भोग्यभोक्ता रूप सबन्ध के विद्यमान रहने पर । व्यक्तचेतनायाः = अभिव्यक्त, प्रकट हुई चेतनता वाली । प्रकृतेः = प्रकृति के कारण । कर्तृत्वाभिमानाद् = अकर्ता पुरुष में कर्तृत्व का अभिमान होने से । दुःखानुभवे सति = प्रकृतिगत धर्मों का अज्ञान वश अपने में उपचार कर लेने से दुःख का अनुभव होने पर । कथं = किस प्रकार से । आत्यन्तिकी = आत्यन्तिक, सार्वकालिक रूप से । मम = मेरी । इयं = यह । दुःख-निवृत्तिः = त्रिविध दुःखों की निवृत्ति, निराकरण, अभाव । स्यात् = होवे । इति = इस रूप से । अध्यवसायः = अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान । भवति एव = होता ही है । अतः = इसलिये । दुःखनिवृत्त्युपायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षा = दुःख परिहार के उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र के उपदेश की अपेक्षा, उपयोगिता । प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति के लिये । अस्ति = है । एव = ही । अर्थात् प्रकृतिपुरुष-विवेकख्याति ही अपवर्ग में हेतु है । अतः प्रकृति के स्वरूप ज्ञान के लिये शास्त्र की उपयोगिता है ही । तथाभूत = उसी प्रकार के । एव = ही । कर्मानुरूप = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के अनुसार । बुद्धिसत्त्व = सात्त्विक बुद्धि, चित्त, महत्तत्त्व । शास्त्रोपदेशस्य = वेदशास्त्रों के उपदेश का ।

विषय = विषय है अर्थात् प्रकृति के समान महत्तत्त्व भी शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय है। दर्शनान्तरेषु = साख्य, वेदान्त इत्यादि अन्य दर्शनों में। अपि = भी। एवंविध = सम्मत, इस प्रकार का। एव = ही। अविद्यास्वभाव = अविद्या का स्वभाव, स्वरूप। शास्त्रे = प्रस्तुत योगशास्त्र में। अधिक्रियते = स्वीकार किया जाता है। च = और। सहकारिण = सहकारी, सहायक रूप। एवंविध शास्त्रोपदेश = इस प्रकार के शास्त्र के उपदेश को। अपेक्ष्य = अपेक्षा करके, उपदेश अनुसार। प्रयतमान = प्रयत्न, प्रयास करता हुआ। स = वह। मोक्षाख्य = मोक्ष नाम वाले, अपवर्ग रूप। फल = मानव जीवन के उत्कृष्टतम फल को। आसादयति = प्राप्त करता है। सामग्र्या = सामग्री के। प्राप्तायां = प्राप्त हो जाने पर। सर्वाणि एव = सभी। कार्य्याणि = कार्य। आत्मान = अपने स्वरूप को। लभन्ते = प्राप्त करते हैं। प्रतिलोमपरिणामद्वारेण = प्रकृति के प्रतिलोम परिणाम के द्वारा। एव = ही। उत्पाद्यस्य = उत्पाद्य, उत्पन्न किये जाने वाले। मोक्षाख्यस्य = मोक्ष नाम वाले। अस्य = इस। कार्यस्य = कार्य का। ईदृशी = इस प्रकार की। एव = ही। सामग्री = सामग्री। प्रमाणेन = प्रमाण के द्वारा। निश्चिता = निश्चित, सिद्ध की गई। प्रकारान्तरेण = दूसरे प्रकार, हेतु द्वारा। अनुपपत्ते = असिद्धि होने के कारण। अत = इसलिये। ता = उसके। विना = बिना। कथ = किस प्रकार। भवितु = उसकी सिद्धि होने के लिये। अर्हति = योग्य, समर्थ है। अत = इस प्रकार। एतत् = यह। स्थित = स्थित, सिद्ध ही है। सङ्क्रान्तविषयोपराग = शब्द-स्पर्श, घट-पट इत्यादि विषयों के उपराग से उपरञ्जित, युक्त, प्रतिबिम्बित हुये विषयों के उपराग वाला। अभिव्यक्तचिच्छाय = अभिव्यक्त, प्रकट होने वाली चेतन पुरुष की छाया वाला, चित् की छाया से युक्त। बुद्धि सत्त्व = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त ही। विषयनिश्चयद्वारेण = विषयों के निश्चय, अध्यवसाय के द्वारा। समग्रा = समस्त, सकल। लोकयात्रा = लोक की यात्रा, लौकिक व्यवहार को। निर्वाहयति = निर्वाह, सम्पन्न करता है। इति = इस रूप से, इन्द्रिय प्रणालिका से प्राप्त विषयों का ज्ञान अचेतन चित्त, चेतन चित् की छाया ग्रहण करके प्रदान करता है। एवंविध = इस प्रकार के। एव = ही। चित्त = चित्त को। पश्यन्त = देखते हुए, चित्त के

विद्यमान । परस्य = पर । स्वामिन =स्वामी, चेतन पुरुष के । भोगापवर्गलक्षण= भोग एव अपवर्ग रूप । अर्थं = द्विविध प्रयोजन को । साधयति = सिद्ध करता है । बुद्धि ही पुरुष के दोनो उद्देश्यों को सम्पन्न करता है (सर्वं प्रत्युपभोग यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धि । सैव च विशिनष्टि पुन प्रधान-पुरुषान्तर सूक्ष्मम् ॥ साख्यकारिका ३७) । इति = इस रूप से । कुत = किस कारण से चित्त परार्थ का हो सपादक है, स्वार्थ का नही । सहत्यकारित्वात् = सहत्यकारी होने के कारण अर्थात् । सहत्य = सहृत्य शब्द का अर्थ है । सम्भूय = एक साथ होकर अर्थात् । मिलित्वा = मिलकर । अर्थक्रियाकारित्वात् = अर्थ की क्रिया को करने के कारण अर्थात् विषय, इन्द्रिय इत्यादि से मिल करके ही, सघात हो करके ही प्रयोजन को सिद्ध करता है । च = और । यत् = जो कोई । सहत्य = सघात रूप होकर, मिल करके । अर्थक्रियाकारि = उद्देश्य सिद्धि की क्रिया को करने वाला होता है । तत् = वह । परार्थं = दूसरे के प्रयोजन के लिये । दृष्ट = देखा जाता है, अपने से भिन्न दूसरे के अर्थ को पूर्ण करता है । यथा = जैसे । शयनासनादि = शयन, आसन इत्यादि सघात होने से पर, असहृत के लिये देखे जाते हैं । चित्त से भिन्न पुरुष की सिद्धि के लिये इसी प्रकार साख्य में "सघात-परार्थत्वात् साख्यकारिका १७" हेतु प्रस्तुत किया गया है । च = और । सत्त्वर-जस्तमासि = सत्त्व, रजस्, तमस् त्रिविध गुण । चित्तलक्षणपरिणामभाञ्जि = चित्त रूपी परिणाम को प्राप्त करने वाले । च = और । सहत्यकारिणी = एक साथ मिलकर कार्य करने वाले हैं । अत = इसलिये । परार्थानि = तीनों ही गुण अपने से भिन्न दूसरे के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं । य = जो । पर = पर है । स = वही । पुरुष = चित्त से भिन्न पुरुष है । ननु = इस सम्बन्ध में आशका होती है कि । शयनासनादीना = सघात रूप शयन, आसन इत्यादि का । यादृशेन = जिस प्रकार के । परेण = पर । शरीरवता = शरीरी के द्वारा । पारार्थ्यं = परार्थ को । उपलब्ध = उपलब्धि, सिद्धि होती है । तद् = उस । दृष्टान्तबलेन = उदाहरण के आधार पर । तादृश = उस प्रकार का, सहृत्य-कारी । एव = ही । पर = पर, पुरुष । सिध्यति = सिद्ध होता है । च=और । भवता = आपको । यादृश = जिस प्रकार का । असहतरूप = असहृत स्वरूप,

संघातविहीन । पर =पर, पुरुष । अभिप्रेत = अभिमत, सम्मत है । तत् = उसने । विपरीतस्य = विपरीत, प्रतिकूल संघात रूप । सिद्धे = पुरुष की सिद्धि होने में । अयं = यह, सहत्यकारित्व । इष्टविघातकृद् = अभीष्ट का विघात करने वाला, साध्य से विपरीत को सिद्ध करने वाला । हेतु = हेतु है । उच्यते= इसका उत्तर देते हैं अर्थात् 'संहत्यकारित्व' हेतु अनुकूल साध्य को ही सिद्ध करता है, विलोम को नहीं । यद्यपि = यद्यपि । सामान्येन = सामान्य रूप से । परार्थमात्रे = केवल परार्थ, अपने से भिन्न की सिद्धि में । व्याप्ति = व्याप्ति का । गृहीता = ग्रहण किया गया है । अर्थात् परार्थमात्र होने से एक संघात अपने से पर, दूसरे संघात के लिए भी हो सकता है, न कि संघातविहीन के लिये । तथापि = फिर भी । सत्त्वादिविलक्षण-धर्मिपर्यालोचनया = सत्त्व-रजस्-तमस् विलक्षण गुणों, धर्मों के धर्मी चित्त के ऊपर विचार करने से । तद्विलक्षण = त्रिविधगुण समन्वित चित्त से विलक्षण, भिन्न अर्थात् त्रिगुणातीत । एव = ही । भोक्ता = भोक्ता रूप । परः = पर, चेतन, निर्गुण पुरुष । सिध्यति = सिद्ध होता है । च = और । यथा = जैसे । इन्धनावृते = इन्धन से आवृत, ढके हुये । शिखरिणी = पर्वत पर । विलक्षणाद् = विलक्षण । धूमाद् = धूम, हेतु के दर्शन से । अनुमान की जाती हुई । वह्नि = साध्य अग्नि । इतरवह्निविलक्षण = अन्य अग्नि से विलक्षण होने पर भी । च इन्धनप्रभव = इन्धन से उद्भूत हुई । एव= ही । प्रतीयते = प्रतीत होती है, बिना इन्धन के नहीं । एव = इसी प्रकार । इह = इस प्रस्तुत उदाहरण में अपि = भी । भोग्यस्य = भोग रूप में स्थित । विलक्षणस्य=विलक्षण । सत्त्वाख्यस्य=सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त का । परार्थत्वे = दूसरे के प्रयोजन के लिये । अनुमीयमाने=अनुमान किये जाने पर । तथाविध=उस प्रकार । एव = ही । भोक्ता = भोक्ता । अधिष्ठाता=अधिष्ठाता । परः =पर । चिन्मात्ररूप = चेतन स्वरूप वाला । असंहत = असंहत, संघात रहित पुरुष । सिध्यति=सिद्ध होता है । च = और । यदि = यदि । तस्य = उसका । परत्व = परत्व, अपने से भिन्न पर, अन्य । सर्वोत्कृष्टत्व = सबसे उत्कृष्ट रूप में, उससे श्रेष्ठ रूप में । एव=इस प्रकार । प्रतीयते=प्रतीत होता है अर्थात् शयन, आसन इत्यादि संघातों से उनका पर उनकी अपेक्षा उत्कृष्ट होगा । तथापि = फिर भी,

ऐसा स्वीकार कर लेने पर भी। तामसेभ्य = तमो गुण प्रधान। विषयेभ्य = शयन, आसन इत्यादि विषयों की अपेक्षा प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात् = प्रकाश स्वरूप इन्द्रियों का आश्रय होने के कारण। शरीर = शरीर। प्रकृष्यते = उत्कृष्ट सिद्ध होता है। तस्मात् = उस शरीर से। अपि = भी। इन्द्रियाणि = प्रकाश करने वाली इन्द्रियाँ। प्रकृष्यन्ते = प्रकृष्ट सिद्ध होती हैं। तत = उन इन्द्रियों की अपेक्षा से। अपि = भी। प्रकाशरूप = समस्त विषयों को प्रकाशित करने वाला। सत्त्व = सत्त्वगुण विशिष्ट चित्त। प्रकृष्ट = उत्कृष्ट सिद्ध होता है। तस्य = उस चित्त का। अपि = भी। य जो। प्रकाश्यविलक्षण = प्रकाश से भिन्न। प्रकाशक = प्रकाशक है। स = वह। एव = ही। चिद्रूप = चेतन स्वरूप वाला पुरुष। भवति = सिद्ध होता है। इति = चित्त का परत्व के रूप में होने से पुरुष इस प्रकार सिद्ध होता है। कुत = किस प्रकार। तस्य = उस पुरुष का। सहतत्व = सघात रूप है? अर्थात् वह पुरुष सघातरूप में नहीं असहत है और सघात रूप चित्त द्वारा इसी पुरुष के भोग एव अपवर्ग दोनों प्रयोजन सपन्न किये जाते हैं॥ २३॥

इदानी शास्त्रफल कैवल्य निर्णेतु दशभि सूत्रैरुपक्रमते—

इदानी = अब। शास्त्रफल = प्रस्तुत योगशास्त्र के फल। कैवल्य = कैवल्य, अपवर्ग का। निर्णेतु = निर्णय करने के लिये। दशभि = दस। सूत्रै = सूत्रों के द्वारा। उपक्रमते = प्रारम्भ करते हैं।

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्ति. ॥२४॥

अर्थ—*विशेषदर्शिन = समाधि द्वारा विशेष का दर्शन* करने वाले, चित्त एव चित् के स्वरूप का साक्षात्कार करने वाले, साधक योगी को। आत्मभावभावनानिवृत्ति = आत्मभाव सबन्धी समस्त भावनाओ की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् विवेकख्याति से बुद्धि एव पुरुष में भेद का ग्रहण कर लेने वाले योगी की कर्तृत्व, ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि सभी भावनायें दूर हो जाती हैं।

वृत्ति—एव सत्त्व-पुरुषयोरन्यत्वे साधिते यस्तयोर्विशेष पश्यति अयमस्मादन्य इत्येवरूप, तस्य *विज्ञातचित्तस्वरूपसत्त्वस्य चित्ते या आत्मभावभावना सा* निवर्तते, चित्तमेव कर्तृ, ज्ञातृ, भोक्तृ इत्यभिमानो निवर्तते ॥२४॥

एव = इसी प्रकार समाधिजनित विवेकख्याति के द्वारा। सत्त्वपुरुषयो = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त तथा पुरुष में। अन्यत्वे = पर्यवय भेद के। साधिते = सिद्ध हो जाने पर, प्रत्यक्ष हो जाने पर। य = जो साधक योगी। तयो =चित्त एवं चित् उन दोनों में। विशेष = विशेषता, भेद को। पश्यति = देखता है अर्थात् अय = यह चेतन द्रष्टा पुरुष। अस्माद् = इस अचेतन दृश्य चित्त से। अन्य = भिन्न है। इति = इस रूप से। एवरूप = इस प्रकार। विज्ञातचित्तस्वरूपसत्त्वस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जानने वाले। तस्य = उस साधक योगी के। चित्ते = चित्त में। या = जो। आत्मभावना = आत्मभाव के सम्बन्ध में भावना है। सा = वह भावना। निवर्त्तते = निवृत्त, दूर हो जाती है अर्थात्। चित्तं = चित्त। एव = ही। कर्तृज्ञातृभोक्तृ इति = कर्ता, ज्ञाता एवं भोक्ता रूप में स्थित। अभिमान = अभिमान, अहभाव की। निवर्त्तते = निवृत्ति, निराकरण हो जाता है॥ २४॥

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

तस्मिन् सति = आत्मभाव विषयक भावनाओं की निवृत्ति हो जाने पर। किं = क्या। भवति = होता है, किस फल की प्राप्ति होती है। इति आह = इसी का उत्तर देते हैं।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥२५॥

अर्थः—तदा = तब, विशेष का दर्शन हो जाने पर, चित्त एवं पुरुष में विवेक, भेद का ग्रहण हो जाने पर। विवेकनिम्न = विवेक ज्ञान की ओर सरक्षण करने वाला, लगा हुआ। चित्त = चित्त। कैवल्यप्राग्भार = कैवल्य को प्रारम्भ करने वाला, अपवर्ग की ओर अभिमुख हो जाता है। विवेकख्याति से पूर्व चित्त अज्ञानयुक्त, विषयों की ओर गमन करने वाला होता है, पर चित्त एवं पुरुष के स्वरूप का दर्शन हो जाने पर चित्त ज्ञानाभिमुख होकर कैवल्य प्रदान करने वाला हो जाता है।

वृत्ति.—यदस्य अज्ञाननिम्नपथ बहिर्मुख विषयोपभोगफल चित्तमासीत्, तदिदानीं विवेकमार्गमन्तर्मुखं कैवल्यप्राग्भारं कैवल्यप्रारम्भ[1] सम्पद्यते इति ॥२५॥

---

१. कैवल्य प्रारम्भ वा (पा०)।

अस्य = इस साधक योगी का। अज्ञाननिम्नगम् = अज्ञान, अविवेक पथ में प्रवृत्त, प्रवहणशील, लगा हुआ। बहिर्मुखो = वहिर्मुखी। विषयोपभोगफल = शब्दस्पर्श इत्यादि विषयों के उपभोग रूपी फल वाला, बाहरी विषयों का उपभोग करने वाला। यत् = जो। चित्त = चित्त। आसीत् = था। तद् = वही चित्त। इदानी = अब। विवेकमार्ग = विवेक मार्ग की ओर, सत्वपुरुष के विवेक ज्ञान की ओर। अन्तर्मुख = अन्तर्मुखी, उन्मुख, प्रवृत्त। कैवल्यप्राग्भार = कैवल्य प्राक्, अपवर्ग की सिद्धि होने तक विश्रान्ति वाला अर्थात्। कैवल्यप्रारभ = अपवर्ग का प्रारभ। सम्पद्यते = करने वाला होता है, मोक्ष सम्पन्न करने वाला हो जाता है। इति = यही अभिप्राय है॥ २५॥

अस्मिश्च विवेकवाहिनि चित्ते येऽन्तरायाः प्रादुर्भवन्ति, तेषां हेतुप्रतिपादनद्वारेण त्यागोपायमाह—

च = और। अस्मिन् = इस। विवेकवाहिनी = विवेक पथ में वहने वाले, सचरण करने वाले। चित्ते = चित्त में। ये = जो। अन्तरायाः = विघ्न बाधाएँ। प्रादुर्भवन्ति = उत्पन्न, उपस्थित हो जाती हैं। तेषां = उन विघ्नों के। हेतुप्रतिपादनद्वारेण = कारण का प्रतिपादन, निरूपण करते हुए। त्यागोपाय = उनके परित्याग के उपाय को। आह = बतलाते हैं।

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२६॥

अर्थ—तत् = विवेक ज्ञान में सचरण करने वाले, विवेकज्ञाननिष्ठचित्त के। छिद्रेषु = छिद्रों, अन्तरायों में। संस्कारेभ्य = पूर्व के संस्कारों द्वारा, व्युत्थान कालीन संस्कारों के कारण। प्रत्ययान्तराणि = दूसरे विषयों की प्रतीति होती रहती है अर्थात् समाहित चित्त में पूर्व में अनुभूत व्युत्थान संस्कारों के प्रभाव से चित्त में ध्येय से भिन्न अन्य पदार्थों की प्रतीति होती है।

वृत्तिः—तस्मिन् समाधौ स्थितस्य, छिद्रेष्वन्तरायेषु, यानि प्रत्ययान्तराणि व्युत्थानरूपाणि ज्ञानानि, प्राग्भूतेभ्य[1], व्युत्थानानुभवजेभ्यः संस्कारेभ्योऽहं ममेत्येवरूपाणि क्षीयमाणेभ्योऽपि प्रभवन्ति, अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण तेषां हानं कर्तव्यमित्युक्तं भवति॥२६॥

१ प्राक्तनेभ्य (पा०)।

तस्मिन् = उस । *समाधौ* = समाधि में । *स्थितस्य* = विद्यमान चित्त के अर्थात् । अन्तरायेषु = अन्तरायो में । यानि = जो । प्रत्ययान्तराणि = ध्येय से भिन्न अन्य विषयो का प्रत्यय, विषयान्तर की प्रतीति अर्थात् । व्युत्थानरूपाणि = व्युत्थान स्वरूप । ज्ञानानि = ज्ञान हैं । प्राग्भूतेभ्य = पूर्व उत्पन्न । व्युत्थानानुभवजन्येभ्य = व्युत्थान के अनुभव से उत्पन्न । सस्कारेभ्य = सस्कारों के द्वारा । अह् = अह् भाव रूप । मम = ममत्व भाव रूप । इति एवरूपाणि = इस प्रकार को दूसरे प्रत्ययों की प्रतीति । क्षीणमाणेभ्य = पूर्व के व्युत्थान सस्कारो के क्षीण होने पर । अपि = भी । प्रभवन्ति = उत्पन्न होती हैं । अर्थात् चित्त के विवेक ज्ञान अभिमुखी होने पर भी बीच बीच में पूर्व अनुभूत व्युत्थान सस्कारो के कारण अन्य विषयों की प्रतीति होती ही रहती हैं । क्योंकि सस्कार अनादि काल से प्रवृत्त होने के कारण अत्यन्त प्रबल हैं और तात्कालिक समाधि से प्राप्त विवेकज्ञान उनकी अपेक्षा दुर्बल है । अत व्युत्थान संस्कारो के प्रभाव से चित्त में ध्येयभिन्न विषयान्तर की प्रतीति होती ही है । अन्त करणोच्छित्तिद्वारेण = अन्त करण, अह्, मम भावना के उच्छेद के द्वारा । तेषा = उन विषयान्तर प्रत्ययो का । हान = अभाव, हानि । कर्त्तव्य = करना चाहिये । इति उक्त भवति = यह अभिप्राय हैं ॥ २६ ॥

हानोपायश्च पूर्वमेवोक्त इत्याह—

च=और । *हानोपाय* =इनके निराकरण, अभाव का उपाय । पूर्वं = पहले । एव = ही । उक्त = वर्णन किया गया है । इति = इसी को । आह = कहते हैं ।

हानमेषा क्लेशवदुक्तम् ॥२७॥

अर्थ —एषा = इन व्युत्थान सस्कारो का । हान = हानि, अभाव निराकरण का उपाय । क्लेशवद् = अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्च क्लेशो के निराकरण के उपाय के समान ('ते प्रतिप्रसवहेया सूक्ष्मा' एव 'ध्यानहेयास्तद्वृत्तय' २।१०-११) ही । उक्त = कहा गया ।

वृत्ति —यथा क्लेशानामविद्यादीना हान पूर्वमुक्त (२।१०-११), तथा

संस्काराणामपि कर्त्तव्य, यथा ते ज्ञानाग्निना प्लुष्टा दग्धबीजकल्पा न पुनश्चित्तभूमौ प्ररोह लभन्ते, तथा संस्कारा अपि ॥२७॥

यथा = जिस प्रकार। अविद्यादीना = अविद्या-अस्मिता इत्यादि। क्लेशाना = पञ्चविध क्लेशों का। हान = हानि, अभाव का उपाय। पूर्व २।१०-११ = पूर्व के साधन पाद के सूत्र १० एव ११ में। उक्त = कहा गया है, क्लेशों के निराकरण के लिये उपायों का वर्णन किया गया है। तथा = उसी प्रकार। संस्काराणा = व्युत्थान के संस्कारों का। अपि = भी। कर्त्तव्य = अभाव करना चाहिये। यथा = जैसे। ते = वे पञ्च क्लेश। ज्ञानाग्निना = विवेक ख्याति रूपी अग्नि से। प्लुष्टा = आप्लुष्ट, भस्म हुये। दग्धबीजकल्पा = जले हुये बीज के समान। चित्तभूमौ = चित्त की भूमि में। पुन = फिर दग्ध होने के बाद। प्ररोह = प्ररोह, अङ्कुर को। न = नहीं। लभन्ते = प्राप्त करते, अङ्कुरित नहीं होते। तथा = उसी प्रकार। संस्कारा = व्युत्थान के संस्कार। अपि = भी। विवेक ज्ञान से निवृत्त होकर पुन उद्भूत नहीं होते ॥ २७ ॥

एवञ्च प्रत्ययान्तरानुदये - स्थिरीभूते समाधौ यादृशस्य योगिन समाधे प्रकर्षप्राप्तिर्भवति तथाविधमुपायमाह—

च = और। एव = इस प्रकार। प्रत्ययान्तरान्तरा = दूसरे-दूसरे प्रत्ययों, विषयान्तरों की प्रतीति का। अनुदये = उदय न होने पर, समाहित चित्त में विषयान्तर प्रतीति का सर्वथा अभाव हो जाने पर। समाधौ = समाधि के। स्थिरीभूते = सुदृढ़, विक्षेप रहित हो जाने पर। योगिन = योगी को। समाधे = समाधि की। यादृशस्य = जिस प्रकार के। प्रकर्षप्राप्ति = उत्कर्ष की सिद्धि। भवति = होती है। तथाविध = उस प्रकार के। उपाय = उपाय को। आह = कहते है।

प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते-र्धर्ममेघ समाधि ॥२८॥

अर्थ—प्रसङ्ख्याने = प्रसंख्यान में, समस्त तत्त्वों के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होने पर, तत्त्वों की विवेकख्याति की प्राप्ति हो जाने पर। अपि = भी।

अकुसीदस्य = विवेक ज्ञान के प्रभाव से प्राप्त होने वाले समस्त ऐश्वर्यों, फलों में लिप्सा, प्राप्ति की अभिलाषा न रखने वाले साधक योगी की। समाधि = समाधि। सर्वथा = सभी प्रकार से, निर्बाध रूप से निरन्तर। विवेकख्याते = तत्त्वों के सम्बन्ध में विवेकख्याति, भेद ज्ञान, स्वरूप ज्ञान होने से। धर्ममेघ = धर्ममेघ होती है। प्रसंख्यान के फलस्वरूप सभी ऐश्वर्यों, सर्वज्ञत्व इत्यादि की सिद्धि होती है। किन्तु इन फलों में जिसकी लिप्सा, तृष्णा नहीं है। उसमें विवेकख्याति की सदैव स्थिति बनी रहती है। अतः विक्षेप का पूर्णतः अभाव होने से तथा विषयान्तर प्रतीति की उपस्थिति न होने से उस योगी की समाधि धर्ममेघ होती है। जल का सिञ्चन करने वाले मेघ के सदृश ही यह समाधि क्लेश, विक्षेप इत्यादि का निराकरण करने वाली विवेकख्याति को प्रदान करती है तथा दुःख का एकान्तिक तथा आत्यन्तिक अभाव करने के कारण सुख रूप, धर्म रूप होने से यह समाधि धर्ममेघ है।

वृत्ति—प्रसङ्ख्यान यावता तत्त्वाना यथाक्रम व्यवस्थिताना परस्परविलक्षण-स्वरूपविभावन, तस्मिन् सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सो, प्रत्ययान्तराराणामनुदये[1] सर्वप्रकारविवेकख्याते परिशेषाद् धर्ममेघ समाधिर्भवति। प्रकृष्टमशुक्लकृष्ण धर्म परमपुरुषार्थसाधक मेहति सिञ्चतीति धर्ममेघ, अनेक प्रकृष्टधर्मस्यैव ज्ञानहेतुत्व-मित्युपपादित भवति ॥२८॥

यथाक्रम = क्रम के अनुसार। व्यवस्थिताना = स्थित, विद्यमान। यावता तत्त्वाना = *जितने प्रकार के तत्त्व है, उन सभी तत्त्वों का*। परस्परविलक्षणस्व-रूपविभावन = परस्पर विलक्षण स्वरूप, लक्षण वालों का, एक दूसरे का विवेक भेद के साथ ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना हो। प्रसङ्ख्यान = प्रसंख्यान शब्द का अभिप्राय है। तस्मिन् सति = तत्त्वों के सबन्ध में विवेकख्याति हो जाने पर। अकुसीदस्य = अकुसीद का, मूल धन का ब्याज न लेने वाले का अर्थात्। फल = फल की, सर्वज्ञत्व, ऐश्वर्य इत्यादि फल की। अलिप्सो = लिप्सा कामना, तृष्णा न रखने वाले योगी की। प्रत्ययान्तराणा = विषयान्तर का

१. अनुदयान् (पा०)।

प्रतीति का, ध्येय से भिन्न अन्य विषयों की प्रतीति का। अनुदये = उदय न होने पर, उपस्थित न होने पर। सर्वप्रकारविवेकख्याते = सभी प्रकार से विवेकख्याति का। परिशेषाद् = शेष रहने के कारण अर्थात् अनवरत, निरन्तर रूप से विवेकज्ञान की स्थिति बनी रहने से। धर्ममेघ = धर्ममेघ नाम वाली। समाधि = योगी की समाधि। भवति = होती है। प्रकृष्ट = अत्यन्त उत्कृष्ट, श्रेष्ठ। अशुक्लकृष्ण = शुक्लकृष्णरहित, पुण्यपापविवर्जित। परमपुरुषार्थ-साधक = मानव जीवन के चरम, परम प्रयोजन अपवर्ग का सिद्ध, प्रदान करने वाले। धर्मं = धर्म की। मेहति = वर्षा करती है अर्थात्। सिञ्चति = सिञ्चन करती है। इति = इसलिये धर्म की वर्षा करने के कारण। धर्ममेघ = यह समाधि धर्ममेघ कही जाती है। अनेन = इस धर्ममेघ के द्वारा। प्रकृष्टधर्मस्य = अत्यन्त उत्कृष्ट, उत्तम धर्म का। एक = ही। ज्ञानहेतुत्व = ज्ञान में हेतु, कारण बनना अर्थात् इस समाधि से उत्कृष्टतम धर्म की प्राप्ति होती है जो ज्ञान में हेतु है और यही ज्ञान अपवर्ग का सपादक है। इति उपपादितं भवति = ऐसा प्रतिपादन, निरूपण किया जाता है। धर्ममेघ समाधि धर्म एवं ज्ञान को प्रदान करके अपवर्ग की सिद्धि करने वाली है॥ २८॥

तस्माद्धर्ममेघात् किं भवतीत्याह—

तस्माद् = उस। धर्ममेघात् = धर्ममेघ समाधि की सिद्धि से। किं = किस फल की। भवति = प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = वर्णन करते हैं।

ततः क्लेश-कर्मनिवृत्तिः ॥२९॥

अर्थ—ततः = उस धर्ममेघ समाधि से। क्लेशकर्मनिवृत्ति = अविद्या अस्मिता-रागद्वेष-अभिनिवेश पाँच प्रकार के क्लेशों तथा शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण तीन प्रकार के कर्मों का निराकरण होता है। इस धर्ममेघ समाधि से शुद्ध ज्ञान, विवेकख्याति की निरन्तर स्थिति बने रहने से पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों का अभाव हो जाता है और इस प्रकार योगी जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

वृत्तिः—क्लेशानामविद्यादीनामभिनिवेशान्तानां, कर्मणाञ्च शुक्लादिभेदेन त्रिविधानां, ज्ञानोदयात् पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवति ॥२९॥

अविद्यादीनां = अविद्या इत्यादि का, अविद्या से प्रारम्भ होने वाले। अभिनिवेशान्तानां = अभिनिवेश तक अन्त होने वाले। क्लेशानां = क्लेशों का अर्थात् अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश रूप पञ्चविध क्लेशों का। च = और। शुक्लादिभेदेन = शुक्ल इत्यादि के भेद से, शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण अर्थात् पुण्य, पाप एवं पुण्यपापमिश्रित। त्रिविधानां = तीन प्रकार के। कर्मणां = कर्मों का। ज्ञानोदयाद् = धर्ममेघ समाधि से ज्ञान का उदय होने से, क्रमशः ज्ञान के उत्कर्ष की प्राप्ति होने से। पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या = पहले-पहले के कारणों का परिहार, निराकरण होने से। निवृत्ति = पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों की निवृत्ति, अभाव। भवति = होता है॥ २९ ॥

तेषु निवृत्तेषु किं भवतीत्याह—

तेषु = उन पञ्चविध क्लेशों एवं त्रिविध कर्मों का। निवृत्तेषु = अभाव हो जाने पर। किं = किस फल की। भवति = प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = वर्णन करते हैं।

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥३०॥

अर्थ—तदा = तब, उस समय, धर्ममेघ समाधि के प्रभाव से सभी क्लेशों एवं कर्मों का अभाव हो जाने पर। सर्वावरणमलापेतस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त का आवरण करने वाले क्लेश-कर्म रूप मल कलुष के दूर हुए योगी के। ज्ञानस्य = ज्ञान का। आनन्त्यात् = अनन्त, निस्सीम, व्यापक होने से। ज्ञेयं = ज्ञातव्य विषय। अल्प = अति ही अल्प, न्यून हो जाते हैं। अर्थात् चित्त का आवरण करने वाले दोष, मलिनता रूप समस्त क्लेशों एवं कर्मों का सर्वथा परिहार हो जाता है। इस प्रकार सत्त्व गुण के परम प्रकर्ष से चित्त का ज्ञान असीम हो जाता है और सभी विषयों का ज्ञान उसे हो जाता है।

वृत्तिः—आव्रियते चित्तमेभिरित्यावरणानि क्लेशाः, त एव मलास्तेभ्योऽपेतस्य तद्विरहितस्य, ज्ञानस्य गगनविभस्य, आनन्त्यादनवच्छेदात्, ज्ञेयमल्पं गणना-

स्पद भवति,[1] अक्लेशेनैव सर्वं ज्ञेयं जानातीत्यर्थ ॥३०॥

एभि = इनके द्वारा। चित्त = चित्त। आव्रियते = आवृत, ढका जाता है। इति = इसलिये। आवरणानि = इनको आवरण कहते हैं। क्लेशा = इन्हीं को क्लेश कहते हैं। ते एव = वही। मला = मल, कलुष, दोष, मलिनतायें हैं। तेभ्य = उन्हीं दोष रूप क्लेशों से। अपेतस्य = विनिर्मुक्त, दूर हुये अर्थात्। तद् = उन क्लेशों से। विरहितस्य = रहित, निर्मुक्त योगी के। गगनविभस्य = व्यापक गगन, आकाश के सदृश। ज्ञानस्य = ज्ञान का। आनन्त्याद् = अनन्त होने से अर्थात्। अनवच्छेदात् = अवच्छेद, सीमा रहित, अपरिमित होने से। ज्ञेय = ज्ञातव्य विषय, जानने योग्य पदार्थ। अल्प = अति ही कम होने हैं अर्थात्। गणनास्पद = गणना के योग्य। भवति = होता है अर्थात्। अक्लेशेन = बिना क्लेश के, प्रयत्न के। एव = ही, सुगमता, सरलतापूर्वक। सर्वं = सभी। ज्ञेय = जानने योग्य विषय को। जानाति = वह योगी जानता है। इति अर्थ = यही अभिप्राय है ॥ ३० ॥

तत किमित्याह—

तत = उनके पश्चात्, समस्त ज्ञातव्य विषयों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाने पर। किं = किस फल की प्राप्ति होती है। इति = इसी का। आह = निरूपण करते हैं।

तत कृतार्थाना परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥३१॥

अर्थ—तत = उसके पश्चात्, धर्ममेघ समाधि से समस्त ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, सम्यक् विवेकख्याति की स्थिति हो जाने पर। कृतार्थाना = पुरुष के भोग एवं अपवर्ग द्विविध प्रयोजन को सपन्न कर देने वाले, पुरुषार्थ की सिद्धि को पूर्ण कर देने वाले। गुणाना=सत्त्व-रजस्-तमस् त्रिविध गुणों के। परिणामक्रमसमाप्ति =परिणाम क्रम की समाप्ति होती है, अनुलोम परिणाम, सृष्टि परिणाम, कार्य उत्पादन रूप परिणाम के क्रम की समाप्ति हो जाती है अर्थात् पुरुषार्थ की सिद्धि हो जाने से कृतकृत्य, कृतार्थ हुये गुण पुरुष के प्रति

[1] न भवति (पा०)।

लक्षण = लक्षण, स्वरूप। आह = बतलाते हैं।

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥३२॥

अर्थ—क्षणप्रतियोगी = अनेक क्षणों का प्रतियोगी, क्षणों से सम्बन्ध रखने वाला, क्षणसंबद्ध एवं। परिणामापरान्तनिर्ग्राह्य = परिणाम के अनन्तर, पश्चात् ग्रहण किया जाने वाला, प्रतीति होने वाला। क्रमः = क्रम होता है अर्थात् क्रम का सम्बन्ध अनेक क्षणों से होता है तथा इसका ग्रहण, ज्ञान परिणाम की समाप्ति, अवसान पर होता है। यद्यपि पदार्थों में सदैव परिणाम होते रहते हैं पर क्रम का ग्रहण सदा न होकर परिणाम की समाप्ति पर ही होता है।

वृत्ति—क्षणोऽल्पीयान् काल तस्य योऽसौ प्रतियोगी क्षणविलक्षण, परिणाम अपरान्तनिर्ग्राह्य अनुभूतेषु क्षणेषु पश्चात् सङ्कलनबुद्ध्यैव यो गृह्यते, स क्षणानां क्रम उच्यते, न ह्यननुभूतेषु क्रमः परिज्ञातुं शक्य ॥३२॥

अल्पीयान् = अत्यन्त अल्प, न्यून। काल. = काल, समय ही। क्षण = क्षण है। तस्य = उस स्वल्प काल का। य = जो। असौ = वह। प्रतियोगी= प्रतियोगी, सम्बन्ध रखने वाला है। क्षणविलक्षण = वही विलक्षण क्षण है। परिणाम = परिणाम। अपरान्तनिर्ग्राह्य = उपरान्त, पश्चात् ग्रहण किया जाने वाला, विदित होने वाला। अनुभूतेषु = अनुभव किये जाते हुये। क्षणेषु = क्षणों के। पश्चात् = बाद में उत्तर काल में, अनन्तर। य = जो। सङ्कलनबुद्ध्या = सङ्कलन करने वाली बुद्धि के द्वारा। गृह्यते = ग्रहण किया जाता है। स = वही। क्षणानां = क्षणों का, समय का। क्रम = क्रम। उच्यते = कहा जाता है। हि = क्योंकि। अननुभूतेषु = अनुभव न किये गये क्षणों में। क्रमः = परिणाम के क्रम का। परिज्ञातुं = ज्ञान प्राप्त करना। न = नहीं सम्भव है॥ ३२॥

इदानीं फलभूतस्य कैवल्यस्यासाधारणस्वरूपमाह—

इदानीं = अब। फलभूतस्य = समाधि इत्यादि योगाङ्गों के फल के रूप में विद्यमान। कैवल्यस्य = कैवल्य, अपवर्ग के। असाधारणस्वरूप = असाधारण स्वरूप को। आह = बतलाते हैं।

पुरुषार्थशून्याना गुणाना प्रतिप्रसव कैवल्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति[1] ॥३३॥

अर्थः—पुरुषार्थशून्याना = पुरुषार्थ रहित, पुरुष के भोग एव अपवर्ग रूप द्विविध प्रयोजन को सम्पन्न कर देने वाले, अतएव अन्य कोई प्रयोजन न होने से, पुरुष के अर्थ को सिद्ध कर देने से कृतकृत्य हुए। गुणाना = गुणों का। प्रतिप्रसव = प्रतिप्रसव होना, प्रतिलोम परिणाम के द्वारा क्रमश अपने मूल कारण अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाना, लय को प्राप्त कर लेना ही। कैवल्य = कैवल्य, अपवर्ग, मोक्ष है। वा = अथवा। चितिशक्ते = चितिशक्ति, चेतन पुरुष का। स्वरूप प्रतिष्ठा = अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही कैवल्य है। समस्त वृत्तियों का अभाव हो जाने से, अत वृत्तियों के रूप का न होने से, प्रकृति में गुणों का विलय हो जाने से, उनके साथ सम्बन्ध समाप्त हो जाने से पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में स्थित हो जाता है। पुरुष का यही स्वरूप-प्रतिष्ठा ही कैवल्य है तथा प्रतिलोम परिणाम द्वारा इन्द्रिय, अहकार, बुद्धि का मूलप्रकृति में प्रवेश कर जाना कैवल्य है। प्रकृति एव उसके विकारों के साथ पुरुष का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और वह केवल, चिन्मात्र रह जाता है। यही अपवर्ग है। इति = इस प्रकार मानव जीवन का परम पुरुषार्थ अपवर्ग का प्रतिपादन करके प्रस्तुत योगशास्त्र समाप्त होता है।

वृत्ति—समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थाना गुणाना य प्रतिप्रसव प्रतिलोमस्य परिणामस्य समाप्तौ विकारानुद्भव[2] यदि वा—चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्य-निवृत्तौ स्वरूपमात्रेऽवस्थान तत् कैवल्यमुच्यते[3]

---

१ चितिशक्तिरिति बहुमत पाठ।

२ विकारानुभव क्षणेषु इति क्वचित् पठ्यते।

३ द्र० "कैवल्यशब्देन योगशास्त्रान्तिक सूत्रेण कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा चितिशक्तेरिति अनेन प्रतिपादितस्वरूपो मोक्ष उच्यते। चितिशक्तेवृत्तिसारूप्य-निवृत्तौ स्वरूपमात्रेणावस्थान कैवल्यमुक्त भोजराजवृत्तौ" (भास्कररकृत-ललिताहस्रनाम टीका, पृ० १३२)।

न केवलमस्मद्दर्शने क्षेत्रज्ञः कैवल्यावस्थायामेवंविधश्चिद्रूपः यावद्संसारा-वस्थायामपि विमृश्यमाण एवंरूपोऽवतिष्ठते, तथा हि—संसारदशायामात्मा कर्तृत्व-भोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमयः प्रतीयते, अन्यथा यद्यमेकः क्षेत्रज्ञस्तथाविधो न स्यात्, तदा ज्ञानक्षणानामेव पूर्वापरानुसन्धानशून्यानामात्मभावे नियतः कर्मफलसम्बन्धो न स्यात् कृतहानिः[४] कृताभ्यागमप्रसङ्गश्च ।

यदि येनैव शास्त्रोपदिष्टमनुष्ठितं कर्म तस्यैव भोक्तृत्वं भवेत्, तदा हिताहित-प्राप्तिपरिहाराय सर्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत, सर्वस्यैव व्यवहारस्य हानोपादानलक्षणस्य अनुसन्धानेनैव प्राप्तत्वात्, ज्ञानक्षणानां परस्परभेदेनानुसन्धानशून्यत्वात् तदनुसन्धानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारानुपपत्तेः कर्ता भोक्ता अनुसन्धाता यः स आत्मेति व्यवस्थाप्यते ।

मोक्षदशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावाच्चैतन्यमात्रमेव तस्य अवशिष्यते, तच्चैतन्यं चितिमात्रत्वेनैवोपपद्यते, न पुनरात्मसंवेदनेन, यस्माद् विषयग्रहणसमर्थत्वमेव[१] चितेः रूपं, नात्मग्राहकत्वम्, तथा हि—अर्थाभिमुख्या गृह्यमाणोऽयमिति गृह्यते, स्वरूपं गृह्यमाणमहमिति, न पुनर्युगपद्, बहिर्मुखताऽन्तर्मुखतालक्षणव्यापारद्वयं परस्परविरुद्धं कर्तुं शक्यम्, अत एकस्मिन् समये व्यापारद्वयस्य कर्तुमशक्यत्वात् चिद्रूपतयैव[२] चावशिष्यते, अतो मोक्षावस्थायां निवृत्ताधिकारेषु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवात्माऽवतिष्ठते इत्येव युक्तम् ।

संसारदशायान्तु एवम्भूतस्यैव कर्तृत्वं भोक्तृत्वमनुसन्धातृत्वञ्च सर्वमुपपद्यते, तथा हि—योऽयं प्रकृत्या सहानादिर्नैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसम्बन्धोऽविवेकख्यातिमूलः, तस्मिन् सति पुरुषार्थकर्तव्यतारूपशक्तिद्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिः, तस्यां सत्यां रजि यदात्मनोऽधिष्ठातृत्वं, चिच्छायासमर्पण-सामर्थ्यं, बुद्धिसत्त्वस्य च संक्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं, चिदवष्टम्भायाश्च बुद्धेर्योऽयं कर्तृत्व-भोक्तृत्वाध्यवसायः, तत एव सर्वस्यानुसन्धानपूर्वकस्य व्यव-

---

४ कृतनाशाकृता (पा०) ।

१ समर्थत्वम् (पा०) ।

२ चिद्रूपतैव (पा०) ।

नाम यैवंहि विचारेण दिनकरस्पष्टनीहारवद् विमलमुपयाति साऽविद्येत्युच्यते, मैवं, यद्वस्तु किञ्चन् कार्य्यं करोति तदवश्य कुतश्चिद्भिन्नमभिन्नवा वक्तव्यम्, अविद्यायाश्च ससारलक्षणकार्य्यकर्तृत्वमवश्यमङ्गीकर्त्तव्य, तस्मिन् सत्यपि यदि अनिर्वाच्यत्वमुच्यते, तदा कस्यचिदपि वाच्यत्व न स्यात्, ब्रह्मणोऽप्यवाच्यत्व-प्रसक्ति ।

तस्मादधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते, अधिष्ठातृत्व च चिद्रूपत्वमेव, तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य कस्यचित् प्रमाणानुपपत्ते ।

यैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन इत्युच्यते, चेतनापि तस्य मन सयोगजा, तथा हि—इच्छा-ज्ञान-प्रयत्नादयो ये गुणास्तस्य व्यवहारदशायाम् आत्म-मन सयोगादुत्पद्यन्ते, तैरेव च गुणै स्वय ज्ञाता कर्त्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते, मोक्षदशाया तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलाना दोषाणामपि निवृत्ति, तेषा बुद्ध्या-दीना विशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्ति, स्वरूपमात्रप्रतिष्ठत्वमात्मनोऽङ्गीकृत, तेषाम-युक्त पक्ष ।

यतस्तस्या दशाया नित्यत्व-व्यापकत्वादयो गुणा आकाशादीनामपि सन्ति, अतस्तद्वैलक्षण्येनात्मनश्चिद्रूपत्वमवश्यमङ्गीकार्य्यम् । आत्मत्वविलक्षणजातियोग इति चेत्, न, सर्वस्यैव तज्जातियोग सम्भवति, अतो जातिभ्यो वैलक्षण्यमात्म-नोऽवश्यमङ्गीकर्त्तव्य, तस्याधिष्ठातृत्व चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ।

यैरपि मीमासकै कर्मकर्तृरूप आत्मा अङ्गीक्रियते, तेषामपि न युक्त पक्ष, तथाहि—अह-प्रत्ययग्राह्य आत्मेति तेषा प्रतिज्ञा, अह-प्रत्यये च कर्तृत्व कर्मत्व-ञ्चात्मन एव, न च एतद् विरुद्धत्वादुपपद्यते, कर्तृत्व प्रमातृत्व, कर्मत्वञ्च प्रमेयत्व, न चैतद्विरुद्धधर्माध्यासो युगपदेकस्य घटते, यत् विरुद्धधर्माध्यस्त न तदेक, यथा भावाभावौ, विरुद्धे च कर्तृत्वकर्मत्वे ?

अथोच्यते—न कर्तृत्व-कर्मत्वयोर्विरोध, किन्तु कर्तृत्व-करणत्वयो । येन एतदुक्त, विरुद्धधर्माध्यासस्य तुल्यत्वात् कर्तृत्वकरणत्वयोरेव विरोध, न कर्तृत्व-कर्मत्वयो, तस्मादह-प्रत्ययग्राह्यत्व परिहृत्य आत्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्न, तच्च चेतनत्वमेव ।

यैरपि[1] 'द्रव्यत्रोधपर्य्यायभेदेन आत्मतोऽव्यापकस्य शरीरपरिमाणस्य परिणामित्वमिष्यते,' तेषाम् उत्थानपराहत एव पक्ष, परिणामित्वे चिद्रूपताहाने; चिद्रूपताऽभावे किमात्मन आत्मत्वम् ? तस्मादात्मन आत्मत्वमिच्छता चिद्रूपत्वमेवाङ्गीकर्त्तव्य, तच्चाधिष्ठातृत्वमेव ।

केचित्[2] 'कर्त्तृरूपमेवात्मानमिच्छन्ति, तथा हि—विषयसान्निध्ये या ज्ञानलक्षणा क्रिया समुत्पन्ना, तस्या विषयसवित्ति फल, तस्याश्च फलरूपाया सवित्तौ स्वरूप प्रकाशरूपतया प्रतिभासते, विषयश्च ग्राह्यतया, आत्मा च ग्राहकतया, 'घटमह जानामी' त्याकारेण तस्या समुत्पत्त । क्रियायाश्च कारण कर्त्तैव भवति, इत्यत कर्त्तृत्व भोक्तृत्वञ्चात्मनो रूपमिति ।

तदनुपपन्न, यस्मात्तासा सवित्तीना स कि कर्त्तृत्व युगपत् प्रतिपद्यते ? क्रमेण वा ? युगपत् कर्त्तृत्वे क्षणान्तरे तस्य कर्त्तृत्व न स्यात् । अथ क्रमेण कर्त्तृत्वम् ? तदैकरूपस्य न घटते । एकेन रूपेण चेत् तस्य कर्त्तृत्व, तदैकस्य सदैव सन्निहितत्वात् सर्वफलमेकरूप स्यात् ।

अथ नानारूपतया तस्य कर्त्तृत्वम् ? तदा परिणामित्वम्, परिणामित्वाच्च न चिद्रूपत्वम्, अतश्चिद्रूपत्वमात्मन इच्छद्भिर्न साक्षात्कर्त्तृत्वमङ्गीकर्त्तव्यं, यादृगस्माभि कर्तृत्वमात्मन प्रतिपादित कूटस्थस्य नित्यस्य चिद्रूपस्य, तदेवोपपन्नम् ।

एतेन 'स्वप्रकाशस्य आत्मनो विषयसवित्तिद्वारेण ग्राहकत्वमभिव्यज्यते' इति ये[3] वदन्ति, तेऽपि अनेनैव निराकृता ।

केचित्[4] 'विमर्शात्मकत्वेन आत्मनश्चिन्मयत्वमि'च्छन्ति, त आहु, न विमर्शव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वमात्मनो निरूपयितु शक्य, जगद्विलक्षणमेव चिद्रूपत्वमुच्यते, तच्च विमर्शव्यतिरेकेण निरूप्यमाण नान्यथा अवतिष्ठते ।

तदनुपपन्नम्, इदमित्थमेव रूपमिति यो विचार स विमर्श इत्युच्यते, स

---

१ जैन मत प्रदर्शन पर मिद वाक्यम् ।

२ दैन मत विशेष प्रतिपादन-परमिद वाक्यम् ।

३ औपनिषदैक देशिमतप्रतिपादन परमिदम् ।

४ शैवसंप्रदाय विशेष मतप्रदर्शन पर मिदम् ।

वास्मितान्वयव्यतिरेकेण नोत्थानमेव लभते, तथा हि—आत्मन्युपजायमानो विमर्श 'अहमेवम्भूत' इत्यनेन आकारेण संवेद्यते, तत्रश्चाहंशब्दभिन्नस्य आत्मलक्षणस्य अर्थस्य तत्र स्फुरणान्न तत्र विकल्पस्वरूप[1]ताऽतिक्रम, विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्म, न चिद्धर्म, कूटस्थनित्यत्वेन चिते सदैकरूपत्वाद् नित्यत्वान्नाहङ्कारानुप्रवेश ।

तदनेन सविमर्शमात्मन प्रतिपादयता बुद्धिरेवात्मत्वेन भ्रान्त्या प्रतिपादिता, न प्रकाशात्मन परस्य पुरुषस्य स्वरूपमवगतमिति ।

इत्थं सर्वेष्वेव दर्शनेष्वधिष्ठातृत्वं विहाय नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते । अधिष्ठातृत्वञ्च चिद्रूपत्वं, तच्च जडाद्वैलक्षण्यमेव, चिद्रूपतया यदधितिष्ठति तदेव भोग्यतां नयति, यच्च चेतनाधिष्ठितं तदेव सकलव्यापारयोग्य[2] भवति ।

एवञ्च सति नित्यत्वात् प्रधानस्य व्यापारनिवृत्तौ यदात्मन कैवल्यमस्माभिरुक्तं, तद्विहाय दर्शनान्तराणां नान्या गति, तस्मादिदमेव युक्तमुक्तं, वृत्तिसारूप्यपरिहारेण स्वरूपे प्रतिष्ठा चितिशक्ते कैवल्यम् ।

तदेवं सिद्ध्यन्तरेभ्यो विलक्षणां सर्वसिद्धिमूलभूतां समाधिसिद्धिमभिधाय, जात्यन्तरपरिणामलक्षणस्य च सिद्धिविशेषस्य प्रकृत्यापूरणमेव कारणमित्युपपाद्य, धर्मादीनां प्रतिबन्धकनिवृत्तमात्र एव सामर्थ्यमिति प्रदर्श्य निर्माणचित्तानामस्मितामात्रादुद्भव इत्युक्त्वा, तेषाञ्च योगिचित्तमेवाधिष्ठापकमिति प्रदर्श्य, योगिचित्तस्य चित्तान्तरवैलक्षण्यमभिधाय, तत्कर्मणामलौकिकत्वञ्चोपपाद्य, विपाकानुगुणानां वासनानामभिव्यक्तिसामर्थ्यं कार्यकारणयोरैक्यप्रतिपादनेन व्यवहितानामपि वासनानामानन्तर्यमुपपाद्य, तासामानन्त्येऽपि हेतु-फलादिद्वारेण हानमुपदर्श्य, अतीतादिष्वध्वसु धर्माणां सद्भावमुपपाद्य, विज्ञानवादं निराकृत्य, साकारवादञ्च प्रतिष्ठाप्य, पुरुषस्य ज्ञातृत्वमुक्त्वा, चित्तद्वारेण सकलव्यवहारनिष्पत्तिमुपपाद्य, पुरुषसत्त्वे प्रमाणमुपदर्श्य कैवल्यनिर्णयाय दशभि सूत्रै क्रमेणोपयोगिनोऽर्थानभिधाय, शास्त्रान्तरेऽप्येतदेव कैवल्यमित्युपपाद्य कैवल्यस्वरूपं निर्णीतमिति व्याकृत कैवल्यपाद ।

---

१ विकल्परूपतातिक्रम (पा०)।

२. सकलव्यवहार योग्य (पा०)।

सर्वे यस्य वशा प्रतापवसते. पादान्तसेवानति-
प्रभ्रश्यन्मकुटेषु मूर्द्धसु दधत्याज्ञा धरित्रीभृत ।
यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसम वाग्देवता मथिता
स श्रीभोजपति फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्ति व्यधात ।

इति श्रीधारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां
पातञ्जलवृत्तौ कैवल्यपादश्चतुर्थं ।
समाप्तश्चाय ग्रन्थ ।

समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थाना = भोग एव अपवर्ग रूप पुरुष के द्विविध प्रयोजनो को सिद्ध, सपन्न कर देन वाले। गुणाना = गुणो का। य = जो। प्रतिप्रसव = प्रतिप्रसव है अर्थात्। क्षणेषु = क्षणों में। प्रतिलोमस्य = प्रतिलोम, विलोम सहार रूप। परिणामस्य = गुणो के परिणाम की। समाप्तौ= समाप्ति हो जाने पर। विकारानुद्भव = विकारो, कार्यो का आविर्भाव न होना ही। कैवल्य है। अर्थात् पुरुष के भोग एव अपवर्ग दोनो ही प्रयोजन सिद्ध कर देने के पश्चात् कृतार्थ होकर गुण प्रतिलोम परिणाम से अपने मूल कारण प्रकृति में तिरोहित हो जाते हैं। कृतार्थ गुणो का यही प्रतिप्रसव, कारण में विलीन होना ही कैवल्य है। वा = अथवा। यदि = यदि। चितिशक्ते: = चितिशक्ति चेतन पुरुष का। वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रास्मृति रूप वृत्तियों की सरूपता, सादृश्य का निराकरण हो जाने पर, वृत्तियों के रूप का न होने से। स्वरूपमात्रे = केवल अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में। अवस्थान = स्थित होना ही। तत् = वह। कैवल्य = कैवल्य, मोक्ष। उच्यते = कहा जाता है अर्थात् अविद्या के कारण चित्त के साथ सबन्ध को प्राप्त कर विक्षेप काल में पुरुष भी उन्ही चित्तवृत्तियों के अनुरूप हो जाता है। किंतु विवेक ख्याति से समस्त वृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाता है। अत पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही स्वरूप-प्रतिष्ठा ही कैवल्य है।

न = न। केवल = केवल। अस्मद्दर्शने = हमारे इस योग दर्शन में ही। क्षेत्रज्ञ = क्षेत्र शरीर को जानने वाला, आत्मा पुरुष कैवल्यावस्थाया = कैवल्य मोक्ष की दशा में। एवविध = इस प्रकार का। चिद्रूप = चेतन रूप है अर्थात्

केवल इस योगदर्शन में ही अपवर्ग की अवस्था में पुरुष चेतन स्वरूप वाला नहीं है, अपितु अन्यत्र भी वह आत्मा मोक्ष की दशा में चित् रूप ही रहता है। यावद् दर्शनान्तरेषु = जितने अन्य दर्शन हैं, उनमें। अपि = भी। विमृष्यमाण = विमर्श, विचार करने पर। वह आत्मा। एवरूप = इसी रूप का चेतन स्वरूप ही। अवतिष्ठते = सिद्ध होता है। तथा हि = जैसे कि। संसारदशाया = संसार की दशा में। आत्मा=यह आत्मा। कर्तृत्वभोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमय = कर्ता, भोक्ता एवं अनुसधाता रूप से। प्रतीयते = प्रतीत होता है, उपलब्ध होता है। अन्यथा = अन्यथा, इससे विपरीत दशा में। यदि = यदि। अय = यह। एक = एक ही। क्षेत्रज्ञ = क्षेत्रज्ञ आत्मा। तथाविध = उस प्रकार का अर्थात् कर्ता-भोक्ता-अनुसधाता। न = नहीं। स्यात् = होगा अर्थात् कर्ता-भोक्ता-अनुसधाता रूप से तीन प्रकार से प्राप्त होने वाला यदि यह एक ही आत्मा नहीं होगा। तदा = तब। पूर्वापरानुसन्धातृशून्याना = पूर्व एवं अपर अनुसधाता से शून्य, रहित, प्रतीत न होने वाले। ज्ञानक्षणाना = ज्ञान के क्षणों का। एव = ही। आत्मभावे = आत्मभाव में स्थिति में आत्मा के साथ। नियत = नियत, निश्चित रूप से। कर्मफलसम्बन्ध = किये गये कर्म के फल का सबन्ध। न = नहीं। स्यात् = होगा। च = और। कृतहानाकृताभ्यागम प्रसङ्ग = कृत कर्म की हानि तथा अकृत कर्म की प्राप्ति का दोष उपस्थित हो जाता है। क्षणिक विज्ञान को बौद्ध आत्मा मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जो विज्ञान आत्मा प्रथम क्षण में कर्ता है, वह द्वितीय क्षण में भोक्ता और तृतीय क्षण में अनुसधाता नहीं बन सकता, क्योंकि आत्मा एक न होकर अनेक हो जाता है। इस प्रकार स्वकृत कर्म फल का सबन्ध उस आत्मा से नहीं हो पाता। अपने किये हुए कर्मों का फल उस आत्मा को प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि कार्य करने वाला आत्मा प्रतिक्षण परिवर्तनशील होने से फलभोग के समय विद्यमान नहीं है। इसी प्रकार किये हुये कर्म का अभाव और बिना किये हुये, दूसरे के द्वारा किये गये कर्मफल की प्राप्ति होगी। उन दोषों के कारण क्षणिक विज्ञान आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिद्रूप है। अनादि अविद्या के कारण प्रकृति एवं उसके विकार चित्त इत्यादि के साथ सबन्ध प्राप्त कर वह एक ही आत्मा कर्ता-

भोक्ता-अनुसधाता रूप से समारी दशा में त्रिविध रूपों में उपलब्ध होता है। वह चिन्मात्र ही है। यदि = यदि। येन = जिस आत्मा के द्वारा। एव = ही। शास्त्रोपदिष्ट = शास्त्र के द्वारा बतलाये गये, शास्त्रविहित, सम्मत। कर्म = कर्म का। अनुष्ठान=अनुष्ठान, सपादन किया गया है। तस्य=उस आत्मा का। एव= ही। भोक्तृत्व=भोक्तृत्व। भवेत्=होना चाहिये, उसी आत्मा को फलों का भोक्ता होना चाहिये। तदा = ऐसी स्थिति में। हिताहितप्राप्तिपरिहाराय = हित की प्राप्ति तथा अहित का परिहार, परित्याग करने के लिये। सर्वस्य = सभी की। प्रवृत्ति = प्रवृत्ति। घटेत् = घटित होनी चाहिये अर्थात सभी पुरुषों का समस्त प्रयास सदैव हित की प्राप्ति एवं अहित के परिहार के लिये होना चाहिये। अनुसन्धानेन = अनुसधान रूप से। एव = ही। हानोपादानलक्षणस्य = हान एव उपादेय, त्याज्य एव ग्राह्य रूप से। सर्वस्य एव = सभी पुरुषों के। व्यवहार की। प्राप्तत्वात् = प्राप्ति होने के कारण। ज्ञानक्षणाना = ज्ञान के क्षणों का। परस्परभेदेन = परस्परभेद रूप से। अनुसन्धान शून्यत्वात् = अनुसधान से रहित होने के कारण। तद् = उस। अनुसन्धानाभावे = अनुसधान का अभाव हो जाने पर। कस्यचिद् अपि = किसी भी पुरुष के। व्यवहारानुपपत्तेः = व्यवहार की सिद्धि न होने के कारण। य = जो। कर्ता = कर्ता। भोक्ता = भोक्ता। अनुसन्धाता = अनुसधाता। स = वही। आत्मा = एक चेतन रूप आत्मा है अर्थात्। कर्ता, भोक्ता, अनुसधाता रूप से तीन रूपों में प्रतीत होने वाला वह एक ही चेतन आत्मा है। इति = इस रूप से। व्यवस्थाप्यते = व्यवस्था, व्यवहार की सिद्धि होती है। यही त्रिविध रूप में उपलब्ध होने वाला आत्मा। मोक्षदशायां = मोक्ष की दशा में। तु = तो। सकलग्राह्यग्राहकलक्षण-व्यवहाराभावात् = ग्राह्य एव ग्राहक रूप से स्थित समस्त व्यवहारों का अभाव हो जाने से। तस्य = उस आत्मा, पुरुष का। चैतन्यमात्रम् एव = केवल चेतन, चिन्मात्र स्वरूप ही। अवशिष्यते = शेष रह जाता है अर्थात् कर्ता-भोक्ता अनुसधाता रूप सभी अभिमान का सर्वथा अभाव हो जाने से वह पुरुष अपने नैसर्गिक, स्वाभाविक, यथार्थ चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। तत् = आत्मा, पुरुष की वह। चैतन्य = चेतनता। चितिमात्रत्वेन = चिन्मात्र होने से,

स्वभावत चेतन स्वरूप होने से, स्वभावत चेतन स्वरूप होने से। एव = ही उपपद्यते = सिद्ध होती है। पुन = पुन, किन्तु। आत्मसवेदनेन = आत्मा के सवेदन के द्वारा। न = नही। यस्माद् = जिस कारण से विषयग्रहणसमर्थन = घट-पट, शब्द स्पर्श इत्यादि विषयो के ग्रहण करने की सामर्थ्य वाला। एव = ही। चिते = चिति शक्ति का। रूप = स्वरूप है। आत्मग्राहकत्व = आत्मा को ग्रहण कराना, आत्मा के स्वरूप का ज्ञान प्रदान कराना। न = नही। तथाहि = जैसे कि। चित्या = चिति शक्ति के द्वारा। गृह्यमाण = ग्रहण किया जाता हुआ, ज्ञान प्राप्त किया जाता हुआ। अर्थ = पदार्थ। अय = अय। इति= इस रूप से। गृह्यते = ग्रहण किया जाता है, बाह्य पदार्थों, विषयो का ज्ञान 'अय' रूप से होता है। किन्तु। गृह्यमाण = ग्रहणकिया जाता हुआ। स्वरूप = अह = अह। इति = इस रूप से ग्रहण किया जाता है। पुन = किंतु। परस्पर-विरुद्ध = परस्पर विरोधी, प्रतिकूल। बहिर्मुखतालक्षणव्यापारद्वय = बहिर्मुखी एव अन्तर्मुखी रूप दो व्यापार, बाह्य विषयो तथा आत्मा के स्वरूप का। कर्तु = ग्रहण करना, ज्ञान प्राप्त करना। युगपद् = एक ही साथ एक ही काल में। शक्य = समर्थ। न = नहीं है अर्थात् चिति शक्ति के द्वारा परस्पर विरुद्ध दो व्यापारों का सपादन नही हो सकता। अत = इसलिये। एकस्मिन् = एक ही समान। समये = काल में। व्यापारद्वयस्य = दो विरुद्ध व्यापारो का, बाह्य एव अन्त का। कर्त्तु = ग्रहण करना। अशक्यत्वात् = असभव होने के कारण। चिद्रूपतया = चिन्मात्र स्वरूप मे। एव = ही। अवशिष्यते = शेष बचता है, सिद्ध होता है अर्थात् आत्मा पुरुष स्वभावत, स्वरूपत चेतन है। इसीलिये अपने स्वरूप के साथ-साथ बाह्य विषयो का प्रकाशन यह करता है। अत = इस प्रकार सिद्ध है कि। मोक्षावस्थाया = मोक्ष की दशा में। गुणेषु = गुणो के। निवृत्ताधिकारेषु = अधिकार समाप्त हो जाने पर, कृतार्थ गुणो का पुरुष के प्रति अपने व्यापार को समाप्त कर देने पर। चिन्मात्ररूप = केवल चेतन स्वरूप से। एव = ही। आत्मा = आत्मा, पुरुष। अवतिष्ठते = विद्यमान हो जाता है, चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इति एव = यही। युक्त = उचित, समीचीन है अर्थात् मोक्ष की दशा में भी आत्मा चेतन स्वरूप वाला रहता है।

तु = किंतु। ममारदशायां = ममार की दशा में। एवमूतस्य = इस प्रकार के, चिन्मात्र स्वरूप वाले आत्मा का। एव = ही। कर्तृत्व = कर्ता रूप। भोक्तृत्व = भोक्ता रूप। च = एव। अनुसधातृत्व = अनुसधाता रूप। सर्वं = एक ही आत्मा का कर्ता-भोक्ता-अनुसधाता रूप सभी व्यवहार। उपपद्यते = घटित होता है। तथा हि = जैसे कि। अविवेकख्यातिमूल = अविद्या जन्य। भोग्यभोक्तृत्वलक्षणसम्बन्ध = भोग्य एव भोक्ता रूप सबन्ध। य = जो। अय = यह। प्रकृत्या = प्रकृति के। सह = साथ। अस्य = इस चेतन आत्मा, पुरुष का। अनादि = अनादि। एव। नैसर्गिक = नैसर्गिक, स्वाभाविक सबन्ध है अर्थात् अविद्या के कारण पुरुष का प्रकृति के साथ भोक्ता-भोग्य रूप जो अनादि सबन्ध है। तस्मिन् सति = उस सबन्ध के बने रहने पर। पुरुषार्थकर्त्तव्यतारूप-शक्तिद्वयसद्भावे = भोग एव अपवर्ग रूप पुरुष के प्रयोजन की कर्त्तव्य के रूप मे दो प्रकार की शक्तियो की स्थिति होने से। या = जो। महदादिभावेन = महत्तत्त्व, अहकार, इन्द्रिय, शब्द इत्यादि तन्मात्रा, आकाश इत्यादि पञ्च महाभूत इत्यादि भावो के रूप मे। परिणति = प्रकृति का परिणाम होता है। तस्या = उसमें। सयोगे सति = सयोग के विद्यमान रहने पर। यत् = जो। आत्मन = आत्मा, पुरुष का। अधिष्ठातृत्व = अधिष्ठाता रूप है। चिच्छायासमर्पणसामर्थ्यं=चेतन छाया को समर्पण, प्रदान करने की सामर्थ्य है, आत्मा अपनी चेतन छाया को प्रदान करता है। च = और। बुद्धिसत्त्वस्य = सत्त्व गुण विशिष्ट चित्त की। सङ्क्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं = अपने में प्रतिबिम्बित चेतन पुरुष की। छाया को स्वीकार करने की शक्ति है, अचेतन चित्त चेतन पुरुष की छाया प्राप्त कर स्वय भी शक्ति है, अचेतन सा हो जाता है। च = और। चिदवष्टब्धाया = चेतन आत्मा, पुरुष से अधिष्ठित, चेतन के प्रतिबिम्ब से युक्त हुई। बुद्धे = बुद्धि, चित्त का। य = जो। अय = यह। कर्तृत्वभोक्तृत्वाध्यवसाय = कर्ता एव भोक्ता रूप मे अध्यवसाय, निश्चयात्मक ज्ञान है। तत = उससे। एव = ही। अनुसन्धानपूर्वकस्य = अनुसधान पूर्वक, विचार विमर्श करने से। सर्वस्य = सभी प्रकार के। व्यवहारस्य = व्यवहारों की। निष्पत्ते = सिद्धि हो जाने के कारण। अन्यै = अन्य। फल्गुभि = फल्गु, तत्त्वहीन। कल्पनाजल्पै =

काल्पनिक प्रलापों, वचनों का। किं = क्या प्रयोजन है अर्थात् वे निस्सार है। यदि = यदि। पुन = पुन। एवंभूतमार्गव्यतिरेकेण = इस प्रकार के सिद्धान्त से प्रतिकूल रूप से। आत्मन = आत्मा का। पारमार्थिक=पारमार्थिक स्वरूप। कर्तृत्वाद्यङ्गीक्रियेत = कर्ता, भोक्ता, अनुसधाता इत्यादि रूप में स्वीकार किया किया जाये। यदा = तब, ऐसी स्थिति में। अस्य = इस आत्मा का। परिणामित्वप्रसङ्ग = परिणामी रूप दोष हो जायेगा अर्थात् एक रूप का न होकर आत्मा परिणाम को प्राप्त करने वाला हो जायेगा। च = और। परिणामित्वात् = परिणामी होने के कारण। तस्य = उस आत्मा का। अनित्यत्वे = अनित्य, परिवर्तन प्राप्त करने वाला हो जाने से, परिणामी कभी भी नित्य नही होता। आत्मत्व = आत्मत्व स्वरूप। एव = ही। न = नही। स्यात् = होगा। अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप से च्युत, विहीन हो जायेगा। हि = क्योंकि। यथा= जैसे। एकस्मिन्=एक। एव = ही। समये = समय में। एकेन=परिणामी एक ही आत्मा के द्वारा। एकरूपेण=अपने एक स्वरूप से। परस्परविरुद्धावस्थानुभवः = परस्पर विपरीत, प्रतिकूल, भिन्न अवस्थाओ का अनुभव, ज्ञान, प्रतीति। न=नही। सम्भवति=सभव है। तथाहि=जैसे कि। यस्या=जिस एक। अवस्थाया=अवस्था में। दु खानुभवितृत्व=आत्मा का दु ख अनुभवितृत्व रूप है अर्थात् आत्मा दु ख का अनुभव करने वाला है। उस काल में उसे सुख इत्यादि अन्य धर्मो की प्रतीति नही होती। अत = इसलिये। अवस्थानानात्वात् = अवस्थाओं के विविध, अनेक प्रकार का होने के कारण। तद् = उनमें। अभिन्नस्य = अभिन्न, सदृश, समान। अवस्थावत = अवस्थाओ वाले आत्मा की भी। नानात्व = विविधता, अनेकता है। च = और। नानात्वात् = अनेक रूपों का होने के कारण। तद् = उनमे। अभिन्नस्य = अभिन्न, सदृश, समान। अवस्थावत = अवस्थाओं वाले आत्मा की भी। नानात्व = विविधता, अनेकता है। च = और। नानात्वात् = अनेक रूपों का होने के कारण। परिणामित्वात् = परिणामी, परिवर्तनशील होने के कारण। आत्मा का। आत्मत्व = आत्मत्व रूप, आत्मा होना ही। न = नही है। नित्यत्व = आत्मा का नित्य होना। अपि = भी। न = नही है। अर्थात् आत्मा तो अपरिणामी, नित्य है, किंतु इस प्रकार से आत्मा के

स्वरूप की ही सिद्धि नहीं होती। अत = इस कारण से। एव = ही। शान्त-ब्रह्मवादिभिः = शान्तब्रह्मवादी आचार्यों के द्वारा। तथा। साख्यै = साख्य सिद्धान्त के आचार्यों के द्वारा। ससारदशाया = ससार की दशा में। च = तथा। मोक्षदशायां = मोक्ष की दशा में। सदैव = सदा ही। आत्मा को। एक = एक ही। रूप = रूप का, चिन्मात्र स्वरूप का ही। अङ्गीक्रियते = स्वीकार किया जाता है, आत्मा सदैव चिन्मात्र ही है।

ये तु = और जो। वेदान्तवादिन = वेदान्त, अद्वैत सिद्धान्त के समर्थक आचार्य लोग। चिदानन्दमयत्व = चित् एव आनन्द रूप। आत्मन = आत्मा का। मोक्ष = मोक्ष। मन्यन्ते = मानते हैं, स्वीकार करते है, चेतन एव आनन्द रूप ही मोक्ष का स्वरूप है। तेषा = उन वेदान्तियों का। पक्ष = सिद्धान्त। युक्त = उचित, समीचीन। न = नहीं है। तथा हि = जैसे कि। आनन्दस्य= आनन्द का। सुखस्वरूपत्वात् = सुख स्वरूप होने के कारण। च = और। सुखस्य = सुख की। सदैव = सदा ही। सवेद्यमानतया = सवेद्य रूप मे अनुभूति रूप से। प्रतिभासात् = प्रतिभासित, प्रतीत होने के कारण। अर्थात् सुख के अनुभव की सदैव प्रतीति होने से। च = और। सवेद्यमानत्व = अनुभूति का। सवेदनव्यतिरेकेण = सवेदन, अनुभव के साधन के बिना। अनुपपन्न = उपपत्ति, सिद्धि नहीं होती, साधन में चित्त इत्यादि के अभाव में अनुभूति असभव है। इति = इस रूप से सवेद्यसवेदनयो = सवेद्य एव सवेदन, अनुभूति एव अनुभव के साधन। द्वयो = दोनों की। अभ्युपगमाद् = पृथक् रूप से प्राप्ति होने के कारण। अद्वैतहानि = अद्वैत की हानि अर्थात् द्वैत की सिद्धि होगी। अर्थात् अद्वैत वेदान्त के अनुसार मोक्ष की दशा में आत्मा आनन्द रूप रहता है। किन्तु इस आनन्द का अनुभव करने वाला साधन दो रूप होने से द्वैत की सिद्धि होती है और आत्मा अपने अद्वैत रूप से च्युत हो जाता है। अत मोक्ष की दशा में आत्मा आनन्दरूप नहीं रहता। अथ = और यदि। तस्य = उस आत्मा का। सुखात्मकत्व = मोक्ष की दशा में सुख स्वरूप। एव = ही। उच्येत = कहा जाय, मान लिया जाय। तब। विरुद्धधर्माध्यासाद् = दो विपरीत धर्मों के एक ही में अध्यास हो जाने से। तद् = वह मत। अनुपपन्न = सिद्ध नहीं होता। हि =

क्योंकि। संवेदन = संवेदन, अनुभव का साधन। च = और। संवेद्य = अनुभूति। द्वयोः = दोनों ही। एक = एक ही रूप में। भवितुं = होने में। न = नहीं। अर्हति = योग्य है। इति = इस रूप से, संवेद्य एवं संवेदन दोनों में एक रूपता नहीं हो सकती। किञ्च = और भी। अद्वैतवादिभिः = अद्वैतवादियों के द्वारा। कर्मात्मपरमात्मभेदेन = कर्मात्मा एवं परमात्मा के भेद से। द्विविध = दो प्रकार का। आत्मा = आत्मा। स्वीकृत = माना गया है। च = और। इत्थं = इस प्रकार। तत्र = उनमें। येन = जिस। एव = ही। रूपेण = स्वरूप से। कर्मात्मन = कर्मात्मा का। सुखदुःखभोक्तृत्व=सुख तथा दुःख भोगने वाला स्वरूप सिद्ध होता है। तेन = उस। एव = ही। रूपेण = स्वरूप से, सुख तथा दुःख के भोक्ता के रूप से। यदि = यदि। परमात्मन = परमात्मा का। स्यात्= हो जायेगा। तदा = तब। कर्मात्मवत् = कर्मात्मा के समान। परमात्मन = परमात्मा का भी। परिणामित्व = परिणामी स्वरूप। च = तथा। अविद्या-स्वभावत्व = अविद्या स्वभाव वाला। स्यात् = हो जायेगा। अथ = और यदि। तस्य = उसका। साक्षाद् = प्रत्यक्ष रूप से। भोक्तृत्व = सुख-दुःखों का भोक्ता रूप। न = नहीं है। किन्तु = किन्तु। उदासीनतया = उदासीन, असङ्ग रूप। अधिष्ठातृत्वेन = अधिष्ठाता रूप से। तद् = उसने। उपढौकित = प्रदत्त, प्रस्तुत किये गये सुख दुःख इत्यादि भोगों को। स्वीकरोति = स्वीकार करता है, भोक्ता बनता है। तदा = ऐसी स्थिति में। अस्मद्दर्शनानुप्रवेश = अद्वैतदर्शन का हमारे ही योगदर्शन में प्रवेश हो जाता है, अद्वैत को योग के साथ एकता हो जाती है। च = और। आनन्दरूपता = मोक्ष काल में आत्मा के आनन्द स्वरूप का। पूर्वं = पहले। एव = ही। निराकृता = निराकरण, खंडन किया जा चुका है।

किञ्च = और भी। अविद्यास्वभावत्वे = आत्मा को अविद्या स्वभाव वाला मान लेने पर, अविद्या से युक्त होने से। निःस्वभावत्वात् = निकृष्ट, ज्ञान रहित स्वभाव होने के कारण। क = कौन आत्मा। शास्त्राधिकारी = शास्त्रीय ज्ञान का अधिकारी होगा? परमात्मा = परमात्मा। तावत् = तो। नित्यनिर्मुक्तत्वात् = नित्य, सदैव मुक्त, बन्धन से रहित होने के कारण।

न = शास्त्र का अधिकारी नहीं है। शास्त्रीय ज्ञान की उसे उपयोगिता नहीं है। अविद्यास्वभावत्वात् = अविद्या रूप स्वभाव होने के कारण। कर्मात्मा = कर्मात्मा। अपि = भी। न = शास्त्र का अधिकारी नहीं है क्योंकि अज्ञान के कारण उसकी प्रवृत्ति शास्त्र में होगी ही नही। च = और। तत = उस प्रकार से। सकलशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्ग = समस्त शास्त्रों की व्यर्थता, निष्प्रयोजनता का दोष उत्पन्न हो जायेगा, सभी शास्त्र प्रयोजन विहीन हो जायेंगे। च = और। जगत = जगत्, संसार का। अविद्यामयत्वे = अविद्या स्वरूप वाला। अङ्गीक्रियमाणे = स्वीकार करने पर। अविद्या = यह अविद्या। कस्य = किसकी है, किसका स्वरूप है। इति = इस रूप से। विचार्य्यते = विचार किया जाता है। नित्यमुक्तत्वाद् = नित्य, सदैव बन्धन से मुक्त होने के कारण। च = और। विद्यारूपत्वात् = विद्या, ज्ञानमय स्वरूप होने के कारण। परमात्मन = परमात्मा का। तावत = तो। न = अविद्या के साथ सम्बन्ध नही है। कर्मात्मनः = कर्मात्मा का। अपि = भी। परमार्थत = पारमार्थिक दृष्टि से। निःस्वभावतया= निःस्वभाव होने से, अविद्या रूप होने से। शशविषाणप्रख्यत्वे = शशक की शृङ्ग के सदृश। कथ = किस प्रकार। अविद्यासम्बन्ध = अविद्या के साथ सम्बन्ध है। अथ = और यदि इस विषय में। उच्यते = उत्तर दिया जाता है कि। अविद्याया = अविद्या का। एतद् = यह। एव = ही। अविद्यात्व = अविद्यात्व स्वरूप है। यत् = जो कि। अविचारणीयत्व = अविचारणीय, अनिर्वचनीय, अनिरूपणीय स्वरूप है। अविचारणीयत्व नाम = अविद्या का अविचारणीय स्वरूप। या एव हि = जो इस प्रकार का है कि। विचारेण = विचार, विमर्श, ज्ञान के द्वारा। दिनकरस्पृष्टनीहारवद् = सूर्य की रश्मियों से स्पर्श किये गये नीहार, तुहिन कण के समान। विलय = विलय, अभाव को। उपयाति = प्राप्त हो जाता है। सा = वही। अविद्या = अविद्या। इति = इस रूप से। उच्यते = कही जाती है अर्थात् अविद्या का स्वभाव अविचारणीय है, जिसका नितान्त, पूर्ण अभाव विद्या द्वारा हो जाता है, जैसे कि निहार का अभाव सूर्य की किरणों से हो जाता है। मा एवं = इस प्रकार का नहीं है अर्थात् अविद्या का इस प्रकार का स्वरूप नहीं है। यत् = जो। वस्तु = वस्तु। किञ्चित् =

कुछ। कार्य्यं = कार्य को। करोति = करती है। तत् = वह वस्तु। अवश्य = अवश्य ही, निश्चयपूर्वक। कुतश्चित् = किसी भी प्रकार से। भिन्न = भिन्न। वा = अथवा। अभिन्न = अभिन्न रूप से। वक्तव्य = कही जानी चाहिये अर्थात् कार्य को अभिव्यक्ति करने वाला कारण अवश्य ही किसी न किसी रूप का होगा। च = और। अविद्या = अविद्या को। संसारलक्षणकार्य्यकर्तृत्व = संसार रूपी कार्य के कर्ता के रूप में। अवश्य = अवश्य ही, निश्चित रूप से। अङ्गीकर्तव्य = स्वीकार करना ही पड़ता है। तस्मिन्सति = अविद्या के कार्यभूत उस संसार के विद्यमान रहने पर। अपि = भी। यदि = यदि। अनिर्वाच्यत्व= कारण रूपा अविद्या को अनिर्वाच्य, अविचारणीय रूप से। उच्यते = कहा जाता है। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। कस्यचिद् = किसी का। अपि = भी। वाच्यत्व=स्थिति रूप में कथन। न = नहीं। स्यात् = संभव होगा। ब्रह्मण = समस्त जगत् का कारण ब्रह्म की। अपि = भी। अवाच्यत्वप्रसक्ति = अवाच्यत्व, अविचारणीय रूप से प्रसक्ति होगी, ब्रह्म के अभाव की सिद्धि होगी। तस्माद् = इसलिये। अधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण = अधिष्ठाता रूप से भिन्न प्रकार से। आत्मन = आत्मा का। अन्यद् = अन्य, विपरीत। रूप = स्वरूप। न = नहीं। उपपद्यते = उपपन्न, सिद्ध होता है। च = और। अधिष्ठातृत्व = आत्मा का अधिष्ठाता रूप। चिद्रूपत्व = चेतन स्वरूप। एव = ही है। तद् = उस चेतन से। व्यतिरिक्तस्य = अतिरिक्त, भिन्न। कस्यचित् = किसी अन्य। धर्मस्य = धर्म की। प्रमाणानुपपत्ते = किसी भी प्रमाण से सिद्ध न होने के कारण। अधिष्ठाता आत्मा चिन्मात्र ही है, मोक्ष की दशा में भी वह चिन्मात्र ही रहता है, यह सिद्ध होता है।

यै = जिन। नैयायिकादिभि = न्याय-वैशेषिक आचार्यों के द्वारा। अपि भी। *आत्मा = आत्मा।* चेतनायोगात् = चेतनायोगात् = चेतना के संयोग के कारण। चेतन = उद्भूत चेतना वाला। इति = इस रूप से। उच्यते = कहा जाता है। चेतना = वह चेतना। अपि = भी। तस्य = उस आत्मा का। मन संयोगजा = मन के साथ सम्बन्ध होने पर उत्पन्न होने वाली है अर्थात् न्यायवैशेषिक सिद्धान्त में आत्मा स्वभावत अचेतन है। मन के साथ संयोग

होने पर उसमें चेतनता उद्भूत होती है। अत यहां पर चैतन्य आत्मा का स्वरूप नही अपितु आगन्तुक धर्म है। तथाहि = जैसे कि। व्यवहारदशाया = व्यवहार दशा में। तस्य = उस आत्मा के। इच्छाज्ञानप्रयत्नादय = इच्छा, ज्ञान, प्रत्यक्ष इत्यादि। ये = जो। गुणा = गुण है। आत्ममन सयोगाद् = आत्मा का मन के साथ सम्बन्ध होने पर। उत्पद्यन्ते = उत्पन्न होते है। च = और। तै एव = उन्ही। गुणै = इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न इत्यादि गुणों के कारण ही। स्वय = वह आत्मा स्वय ही। ज्ञाता = ज्ञाता। कर्ता=कर्ता। भोक्ता = भोक्ता। इति = इस रूप मे। व्यपदिश्यते = कहा जाता है। तु = किन्तु। मोक्षदशाया= मोक्ष की दशा में। मिथ्या ज्ञान का अभाव हो जाने पर। तन्मूलाना = उस मिथ्या ज्ञान के मूल भूत, कार्य रूप, अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले। दोषाणा = दोषों का। अपि = भी। निवृत्ति = निराकरण हो जाता है। कारण मिथ्या ज्ञान के दूर होते ही तज्जन्य समस्त दोषों का परिहार स्वत' हो इस प्रकार। तेषा = उन। बुद्धयादीना = बुद्धि इत्यादि के। विशेषगुणाना = इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न इत्यादि विशेष गुणों का। अत्यन्तोच्छित्ति = अत्यन्त उच्छेद, सर्वथा अभाव हो जाना है। और इस प्रकार। आत्मन = आत्मा का। स्वरूपमात्र-प्रतिष्ठत्व = अपने स्वरूप में ही स्थित होना। अङ्गीकृत = स्वीकार किया गया है। तेषा = उन न्याय वैशेषिक आचार्यों का। पक्ष = पक्ष, आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में सिद्धान्त। अयुक्त = समीचीन, उचित नही है। यत = क्योंकि। तस्या = उस। दशाया = मोक्ष की दशा में। आत्मा में। आकाशा-दीना = आकाश इत्यादि द्रव्यों के। अपि = भी। नित्यत्वव्यापकत्वादय = नित्यत्व, व्यापकत्व इत्यादि। गुणा = गुण। सन्ति = रहते ही हैं। अत = इसलिये। तद् = उनसे। वैलक्षण्येन = विलक्षण, भिन्न। आत्मन = आत्मा का। चिद्रूपत्व = चेतन स्वरूप। अवश्य = अवश्य ही। अङ्गीकार्यं = स्वीकार करना चाहिये। चेत् = यदि। आत्मत्वलक्षणजातियोग = आत्मत्व रूप जाति का योग, सबन्ध। इति = इस रूप से मान लिया जाय। न = किन्तु ऐसा नही है। क्योंकि। सर्वस्य एव = सभी का। तज्जातियोग = उस आत्मत्व जाति के साथ सम्बन्ध। सम्भवति = सभव है। अत = इसलिये। जातिम्य' = आत्मत्व

रूप जाति से। वैलक्षण्य = विलक्षण, भिन्न, व्यतिरिक्त। आत्मन = आत्मा को। अवश्य = निश्चय रूप से। अङ्गीकर्त्तव्य = स्वीकार करना ही पड़ेगा। तस्य = उस आत्मा का। अधिष्ठातृत्व = अधिष्ठाता रूप। चिद्रूपतया = चेतन स्वरूप स्वीकार करने पर। एव = ही। घटते = घटित होता है। अन्यथा = अन्य किसी स्वरूप को मानने पर। न = आत्मा का अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं होता।

यै = जिन। मीमांसकै = मीमांसकों के द्वारा। अपि = भी। कर्मकर्तृरूप = कर्मों के कर्ता के रूप में। आत्मा = आत्मा। अङ्गीक्रियते = स्वीकार किया जाता है। तेषां = उन मीमांसकों का। अपि = भी। पक्ष = सिद्धान्त। युक्त = उचित। न = नहीं है। तथा हि = जैसे कि। 'अहं प्रत्ययग्राह्य' = अहं प्रत्यय द्वारा ग्रहण किया जाने वाला। आत्मा = आत्मा है। इति = इस रूप में। तेषां = उन मीमांसकों की। प्रतिज्ञा = प्रतिज्ञा है। च = और। अहं के प्रत्यय में। आत्मन = आत्मा का। कर्तृत्व = कर्ता। च = एव। कर्मत्व = कर्म रूप। एव = ही सिद्ध होता है। च = किन्तु। विरुद्धत्वात् = कर्ता एवं कर्मरूप परस्पर विपरीत होने के कारण। एतद् = आत्मा का यह कर्मकर्तृत्व रूप। न = नहीं। उपपद्यते = समीचीन प्रतीत होता है। कर्तृत्व = कर्ता रूप। प्रमातृत्व = प्रमाता है। च = और। कर्मत्व = कर्म रूप। प्रमेयत्व = प्रमेय होता है अर्थात् कर्ता तो ज्ञाता और कर्म ज्ञेय, विषय रूप होता है। च = और। एतद् विरुद्धधर्माध्यास = कर्ता-कर्म ज्ञाता-ज्ञेय रूप परस्पर भिन्न धर्मों का यह अध्यास, आरोपण। युगपद् = एक ही साथ, एक ही काल में। एकस्य = एक ही धर्मी का। न = नहीं। घटते = घटित होता। एक ही समय में एक ही धर्मी में परस्पर विरुद्ध धर्मों की स्थिति नहीं हो सकती क्योंकि। यत् = जो। विरुद्धधर्माध्यस्त = परस्पर विरुद्ध धर्मों से अध्यस्त हैं, जिसमें विपरीत धर्मों का समारोप है। तद् = वह वस्तु। एक = एक। न = नहीं हो सकती। यथा = जिस प्रकार। भावाभावौ = परस्पर विरुद्ध भाव एवं अभाव कभी भी एक रूप नहीं हो सकते। च = और, उसीप्रकार। कर्तृकर्मत्वे = कर्ता एवं कर्म रूप धर्म। विरुद्धे = परस्पर विपरीत, प्रतिकूल हैं। अथ = अब इस सम्बन्ध में। उच्यते =

कहा जाता है कि। कर्त्तृत्वकर्मत्वयो = कर्तृत्व एवं कर्मत्व इन दोनों में परस्पर। विरोध = विरोध, भेद। न = नहीं है। किन्तु = अपितु। कर्त्तृत्वकरणत्वयो = कर्तृत्व एवं करणत्व में ही विरोध है। केन = किसके द्वारा, किस हेतु से। एतद् = यह। उक्त = कहा जाता है। विरुद्धधर्माध्यासस्य = विरुद्ध धर्मों के अध्यास का। तुल्यत्वात् = समान होने के कारण। कर्त्तृत्वकरणत्वयो = कर्ता तथा करण इन दोनों में। एव = ही। विरोध = विरोध है। कर्त्तृत्वकर्मत्वयो = कर्तृत्व एवं कर्मत्व इन दोनों में। न = विरोध नहीं है। तस्माद् = इस प्रकार। अहं प्रत्ययग्राह्यत्व = आत्मा के अहं प्रत्यय ग्राह्यत्व का, अहं प्रत्यय द्वारा ही आत्मा है इसका। परिहृत्य = परिहार, परित्याग करके। आत्मान = आत्मा का। अधिष्ठातृत्व = अधिष्ठाता स्वरूप। एव = ही। उपपन्न = सिद्ध होता है। च = और। तत् = आत्मा का वह अधिष्ठातृरूप। चेतनत्व = चेतन स्वरूप, चिन्मात्र। एव = ही है।

यै = जिन अन्य दार्शनिकों अर्थात् जैन आचार्यों के द्वारा। अपि = भी। द्रव्यबोधपर्यायभेदेन = द्रव्य बोध के पर्याय भेद से। अव्यापकस्य = अव्यापक, परिच्छिन्न। शरीरपरिणामस्य = ग्रहण किये गये शरीर-परिमाण वाले। आत्मन = आत्मा का परिणामित्व = परिणामी रूप। दृश्यते = स्वीकार किया जाता है। तेषा = उन जैनियों का। पक्ष = आत्मविषयक सिद्धान्त। उत्थानपराहत = प्रस्तुत किये हुये हेतु के आधार पर निरस्त, असिद्ध हो जाता है। जैन सिद्धान्त के अनुसार पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश काल के सदृश आत्मा द्रव्य है। वह ज्ञान-दर्शन युक्त, अमूर्त, कर्ता, भोक्ता, स्वदेहपरिमाण, ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला है। परिणामित्वे = आत्मा के परिणामी, परिवर्तनशील होने से। चिद्रूपताहाने = चेतन स्वरूप की हानि, असिद्धि होने से। जैन दर्शन का आत्मा सबन्धी सिद्धान्त समीचीन नहीं है। चिद्रूपताऽभावे = आत्मा में चेतन स्वरूप का अभाव हो जाने से। किं = क्या। आत्मन = आत्मा का। आत्मत्व = आत्मा रूप होना सिद्ध हो सकेगा? तस्माद् = इसलिये। आत्मन = आत्मा का। आत्मत्व = आत्मत्व, आत्मस्वरूपता की। इच्छता = इच्छा, अभिलाषा रखने वाले के द्वारा, अर्थात् आत्मा के यथार्थ स्वरूप के लिये। चिद्रूपत्व =

चेतन रूप चिन्मात्र। एव = ही। अङ्गीकर्त्तव्य = स्वीकार करना पड़ेगा। च = और। तत् = आत्मा का वही चिन्मात्र स्वरूप। अधिष्ठातृत्व = अधिष्ठाता रूप। एव = ही है।

केचित् = कुछ दार्शनिक। आत्मान = आत्मा को। कर्तृरूप = कर्ता के रूप में। एव = ही। इच्छति = स्वीकार करते हैं। तथा हि = जैसे कि। विषयसान्निध्ये = विषय के सान्निध्य, सामीप्य, सन्निकर्ष में। या = जो। ज्ञानलक्षणा = ज्ञान लक्षण वाली, ज्ञान रूप। क्रिया = क्रिया। समुत्पन्ना = उत्पन्न हुई है। तस्या = उसमें। विषयसंवित्ति = विषय का ज्ञान ही। फल = फल है। च = और। तस्या = उस। फलरूपाया = फलरूप। संवित्तौ = संवित्ति, ज्ञान में। स्वरूप = स्वरूप। प्रकाशरूपतया = प्रकाश रूप से। प्रतिभासते = प्रतिभासित, प्रकाशित होता है। च = और। विषय = विषय, पदार्थ। ग्राह्यतया = ग्राह्य, ज्ञेय रूप से। च = और। आत्मा = आत्मा। ग्राहकतया = ग्राहक ज्ञाता रूप से प्रकाशित होता है अर्थात्। 'घटमहं जानामि' = 'मैं ज्ञाता घट विषय ज्ञेय को जानता हूँ'। इति = इस। आकारेण = आकार, रूप से। तस्या = उस संवित्ति, ज्ञान की। समुत्पत्ति = उत्पत्ति होने से। च = और। क्रियाया = क्रिया का। कारण = कारण, करने वाला, संपादक। कर्त्ता = कर्त्ता। एव = ही। भवति = होता है। इति = इस रूप से। अत = इसलिये, इस प्रकार। कर्त्तृत्व = कर्ता। च = एवं। भोक्तृत्व = भोक्ता। आत्मन = आत्मा का। रूप = स्वरूप है। इति = ऐसा सिद्ध होता। तद् = वह आत्मा का कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व स्वरूप। अनुपपन्न = असिद्ध है। यस्मात् = क्योंकि। तासां = उन। संवित्तीनां = ज्ञानों का। स = वह आत्मा। किं = क्या। कर्तृत्व = कर्ता। युगपत् = एक ही साथ। प्रतिपद्यते = सिद्ध होता है ? वा = अथवा। क्रमेण = क्रमशः उन ज्ञानों का कर्ता बनता है। युगपत् = एक ही साथ। कर्त्तृत्वे = उन सभी संवित्तियों का कर्ता आत्मा को मान लेने पर। क्षणान्तरे = दूसरे क्षण में। तस्य = उस आत्मा का सतत परिणामी होने के कारण। कर्त्तृत्व = कर्ता होना। न = नहीं। स्यात् = सिद्ध होगा। अथ = और यदि। क्रमेण = क्रमशः। कर्त्तृत्व = उस आत्मा का कर्तृत्व स्वीकार किया जाय।

तदा = ऐसी स्थिति में। एकरूपस्य = एकरूप की। न = नहीं। घटते = सिद्ध होती। चेत् = यदि। एकेन = एक ही। रूपेण = स्वरूप से। तस्य = उस आत्मा का। कर्तृत्वं = कर्तृत्व स्वीकार किया जाय। तदा = तब। एकस्य = आत्मा के एक ही स्वरूप के। सर्वदा = सदा ही। सन्निहितत्वात् = विद्यमान रहने के कारण। सर्वफल = कर्ता द्वारा किये सभी फल। एकरूप = एक ही रूप का। स्यात् = हो जायेगा। अथ = और यदि। नानारूपतया = अनेक प्रकार के रूपों के द्वारा। तस्य = उस आत्मा। का। कर्तृत्व = कर्तृत्व स्वीकार का लिया जाय। तदा = तब, ऐसी स्थिति में। परिणामित्व = वह आत्मा परिणामी सिद्ध हो जायेगा। च = और। परिणामित्वात् = परिणामि होने के कारण। चिद्रूपत्व = आत्मा का चेतन स्वभाव होना। न = नहीं सिद्ध होगा। अत = इस इसलिये। आत्मन आत्मा का। चिद्रूपत्व = चेतन स्वरूप को। इच्छद्भिः = इच्छा करने वाले के द्वारा। साक्षात् = साक्षात्, प्रत्यक्ष रूप से। कर्तृत्व = कर्ता रूप। न = नहीं। अङ्गीकर्त्तव्य = स्वीकार करना चाहिये। इसलिये। कूटस्थस्य = कूटस्थ, समस्त विकारों, परिणामों से रहित। नित्यस्य = नित्य। नित्य। चिद्रूपस्य = चेतन स्वरूप वाले। आत्मन = आत्मा का। यादृश = जिस प्रकार का। कर्तृत्व = स्वरूप। अस्माभि = हम लोगों के द्वारा, योगशास्त्र द्वारा। प्रतिपादित = प्रतिपादन, निरूपण किया गया है, अभिमत है। तद् = वह। एव = ही। आत्मा का स्वरूप। उपपन्न = सिद्ध है समीचीन है।

एतेन = इस सिद्धान्त के अनुसार। 'स्वप्रकाशस्य = स्वय प्रकाश स्वरूप। आत्मन = आत्मा का। विषयसवित्तिद्वारेण = विषय के ज्ञान के द्वारा। ग्राहकत्व = ग्राहकत्व, ग्रहण करने वाला स्वरूप। अभिव्यज्यते = अभिव्यक्त होता है'। इति = इस रूप से। ये = जो। वदन्ति = कहते हैं। ते अपि = वे भी। अनेन = इस निरूपण के द्वारा। एव = ही। निराकृता = निराकृत, निरस्त हो जाते हैं। अर्थात् उनके मत का प्रत्याख्यान, खण्डन हो जाता है।

केचिद् = कुछ दार्शनिक। विमर्शात्मकत्वेन = विमर्शात्मक रूप से। आत्मन = आत्मा का। चिन्मयत्वं = चेतनस्वरूप। इच्छन्ति = स्वीकार करते

है । ते = वे । आहु = कहते है । विमर्शव्यतिरेकेण = विमर्श के बिना, विमर्श के अभाव में । आत्मनः = आत्मा का । चिद्रूपत्वं = चेतन स्वरूप । निरूपयितु = निरूपित करना, प्रस्तुत करना । न = नहीं । शक्य = संभव है । जगद्वैलक्षण्य= जगत् की विलक्षणता, विविधता, विरूपता । (जडाद्वैलक्षण = जड अचेतन से भिन्न, पाठभेद) । एव = ही । चिद्रूपत्व = चेतन रूप से । उच्यते = कही जाती है । च = और । तत् = वह । विमर्शव्यतिरेकेण = विमर्श के बिना । निरूप्य-माण = निरूपित, वर्णन, अभिव्यक्त किया जाना । अन्यथा = किसी दूसरे प्रकार । से । न = नहीं । अवतिष्ठते = स्थित, सिद्ध होता है । तद् = वह, विमर्शात्मक ही आत्मा का चिद्रूप है । अनुपपन्न = असिद्ध है । इद = यह वस्तु । इत्थ = इस प्रकार की है । एवरूप = इस रूप का । इति = इस प्रकार । य = जो । विचार = विचार होता है । स = वही विचार । विमर्श = विमर्श । इति = इस रूप से । उच्यते = कहा जाता है । च = और । स* = विचार रूप विमर्श । अस्मिता व्यतिरेकेण = अस्मिता के बिना । उत्थान= उत्थान, उपस्थिति, अभिव्यक्ति को । एव = ही । न नहीं । लभते = प्राप्त करता । तथा हि = जैसे कि । आत्मनि = आत्मा में । उपजायमान = उत्पन्न, उपस्थित होने वाला । विमर्श = विमर्श । 'अह = मैं । एव = इस प्रकार का । भूत = हो गया हूँ ।' इति = इस रूप से । अनेन = इस । आकारेण = आकार के द्वारा । सवेद्यते = ज्ञात होता है, 'अहमेवम्भूत' रूप से प्रतीति होती है । न = और । तत = उससे । अहशब्दभिन्नस्य = अह शब्द से भिन्न (अहशब्द-मिश्रभिन्नस्य = अह शब्द मिश्रित, अह रूप अह के साथ एकरूपता वाले, पाठभेद) आत्मलक्षणस्य = आत्मा रूप । अर्थस्य = अर्थ की । तत्र = उस ज्ञान में । स्फुरणात् = स्फुरण, अभिव्यक्ति होने से । तत्र = उसमें । विकल्पस्वता = विकल्प के स्वरूप का । अतिक्रम = अतिक्रमण । न = नहीं है अर्थात् विकल्प रूप ही है । च = और । विकल्प = यह विकल्प । अध्यवसायात्मा = अध्यव-सायात्मक, निश्चयात्मकज्ञान रूप । बुद्धिधर्म = बुद्धि, चित्त का ही धर्म है । चिद्धर्म = चित्, चेतन रूप पुरुष का धर्म । न = नहीं है अर्थात् विकल्प, अध्य-वसाय बुद्धि का ही धर्म है 'अध्यवसायो बुद्धि' । पुरुष तो समस्त धर्मों से रहित,

निर्गुण, चिन्मात्र है। चित्ते = चिति,का, पुरुष का। कूटस्थनित्यत्वेन = कूटस्थ नित्य होने से। सदा = सभी अवस्थाओं में। एकरूपत्वाद् = एक ही स्वरूप का, परिणाम, विकार रहित होने के कारण। नित्यत्वात् = नित्य, विनाश रहित होने के कारण। अहकारानुप्रवेशः = अहकार में प्रवेश, अन्तर्भाव। न = नही है अर्थात् आत्मा और अहकार दोनों एक रूप नहीं है। तद् = इस प्रकार। अनेन = इस सिद्धान्त निरूपण के द्वारा। नविमर्शत्व = विमर्शात्मक भी हो। आत्मन = आत्मा का स्वरूप। प्रतिपादयता = प्रतिपादन करने वाले के द्वारा। भ्रान्त्या = भ्रान्ति, मिथ्याज्ञान के कारण। बुद्धि = बुद्धि। एव = ही। आत्मत्वेन = आत्मा के रूप में। प्रतिपादिता = प्रतिपादित की गई है अर्थात् भ्रान्ति के कारण चित्त को ही आत्मा स्वीकार कर लिया गया है। इति = इस प्रकार। प्रकाशात्मन = प्रकाश रूप। परस्य = पर। पुरुषस्य = पुरुष का। स्वरूपं = स्वरूप। न = नही। अवगत = प्रतीत, सिद्ध होता है अर्थात् वह आत्मा, पुरुष चिद्रूप ही है।

इत्थ = इस प्रकार। सर्वेषु एव = सभी। दर्शनेषु = दर्शनों में। अधिष्ठातृत्व = अधिष्ठाता स्वरूप को। विहाय = छोडकर। आत्मन = आत्मा का। अन्यद् = अन्य, भिन्न। रूप = स्वरूप, अधिष्ठाता से भिन्न स्वरूप। न = नहीं। उपपद्यते = उपपन्न, सिद्ध होता है। च = और। चिद्रूपत्व = चिद्रूपता, चेतनता ही। अधिष्ठातृत्व = आत्मा का अधिष्ठाता स्वरूप है। च = और। तद् एव = वही चेतन स्वरूप। जडाद् = जड, अचेतन पदार्थों में। वैलक्षण्यं = विलक्षण, विपरीत होता है। यद् = जो। चिद्रूपतया = चेतन रूप से। अधितिष्ठति = नियमित करता है, अधिष्ठाता, नियन्ता बनता है। तद् एव = वही। भोग्यता = भोग्यता को। नयति = ले जाता है, प्राप्त करता है। च = और। यत् = जो वस्तु। चेतनाधिष्ठित = चेतन से अधिष्ठित, नियंत्रित होती है। तद् एव = वही। सकलव्यापारयोग्य = सभी व्यापार के योग्य, समस्त व्यवहार के अनुकूल। भवति = होती है। च = और। एव सति = ऐसा होने पर, आत्मा के चिद्रूप होने से। नित्यत्वात् = नित्य होने से। प्रधानस्य = प्रधान, प्रकृति के। व्यापारनिवृत्तौ = व्यापार से विपरीत हो जाने पर, पुरुष

के भोग एव अपवर्ग द्विविध प्रयोजन को सपन्न कर देने के बाद, अपने व्यापार से प्रकृति के उपरत हो जाने पर। यद् = जो चिन्मात्र प्रतिष्ठा। आत्मन' = आत्मा, पुरुष का। कैवल्य = कैवल्य, मोक्ष। अस्माभि = हम लोगों के द्वारा, योगशास्त्र के द्वारा। उक्त = कहा गया है, मोक्ष के जिस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। तद् = उस चिन्मात्र स्वरूप को। विहाय = छोड़कर। दर्शनान्तराणा = दूसरे दर्शनों की। अन्या = भिन्न। गतिः = गति, उपाय। न = नहीं है अर्थात् चेतन स्वरूप की प्राप्ति ही सभी दर्शनों को मोक्ष की अवस्था माननी पड़ेगी। तस्माद् = इसलिये। इद = यह मोक्ष का स्वरूप। युक्त = उचित, समीचीन। एव = ही। उक्त = कहा गया है। चितिशक्ते = चिति शक्ति चेतन पुरुष का। वृत्तिसारूप्यपरिहारेण = प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप वृत्तियों की समान रूपता का परिहार करके, वृत्तियों के सदृश रूप का न हो करके। स्वरूपे = अपने ही चिन्मात्र केवल चेतन स्वरूप में। प्रतिष्ठा= प्रतिष्ठित, हो जाना ही। कैवल्य = कैवल्य है। समस्त वृत्तियों का सर्वथा अभाव हो जाने से अपने ही चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही पुरुष का अपवर्ग है॥ ३४॥

तदेव = इस प्रकार से। सिद्ध्यन्तरेभ्य = अन्य सिद्धियों, जन्म-औषधि-मन्त्र-तप से प्राप्त होने सिद्धियों से। विलक्षणा = विलक्षण, भिन्न। सर्वसिद्धि-मूलभूता = समस्त सिद्धियों के मूल रूप में स्थित। समाधिसिद्धि = समाधि की साधना से प्राप्त होने वाली सिद्धि का। अभिधाय = वर्णन करके। च = और। जात्यन्तरपरिणामलक्षणस्य = एक जाति से दूसरी जाति में प्राप्त होने वाले परिणाम रूप। सिद्धिविशेषस्य = विशेष प्रकार की सिद्धि का। प्रकृत्यापूरण = प्रकृति के आपूर, अवयव प्रवेश को। एव = ही। कारण = कारण। इति = इस रूप में। उपपाद्य = प्रतिपादन करके अर्थात् प्रकृति आपूर को जात्यन्तरपरिणाम में कारण रूप से वर्णन करके। धर्मादीना = धर्म इत्यादि की। प्रतिबन्धकनिवृत्तमात्रे = प्रकृति के परिणाम में प्रतिबन्धक, आवरणस्वरूप अधर्म इत्यादि के केवल निवारण, दूर करने में। एव = ही। सामर्थ्य = शक्ति है, प्रकृति को प्रेरित करने की नहीं। इति = इस रूप से। प्रदर्श्य =

प्रदर्शित करके। निर्माणचित्तानां = योगी द्वारा बनाये गये चित्तों की। अस्मि-तामात्रात् = केवल अस्मिता से। उद्भवं उत्पत्ति होती है। इति = ऐसा। उक्त्वा = कह करके। च = और। तेषां = अस्मिता से उद्भूत उन चित्तों की। योगिचित्तं = योगी का अपना एक चित्त। एव = ही। अधिष्ठा-पकं = अधिष्ठाता, प्रयोजक होता है। इति = इस रूप से। प्रदर्श्य = निरूपण करके। योगिचित्तस्य = योगी के चित्त की। चित्तान्तरवैलक्षण्यं = दूसरे चित्तों से विलक्षणता, भेद को। अभिधाय = कह करके। च = और। तत्कर्मणां = योगी के कर्मों की। अलौकिकत्वं = अलौकिक लोक, सामान्य लोगों से भिन्न रूप को अर्थात् केवल अशुक्ल एवं अकृष्ण द्विविध रूप का ही। उपपाद्य = प्रतिपादन करके। विपाकानुगुणानां = शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण कर्मों के विपाक के अनुसार ही। वासनानां = वासनाओं के। अभिव्यक्तिसामर्थ्यं = अभिव्यक्ति की सामर्थ्य को। च = और। कार्यकारणयोः = कार्य तथा कारण दोनों की। ऐक्यप्रतिपादनेन = एकता के प्रतिपादन द्वारा। व्यहितानां = जाति, देश, काल से व्यवहित होने वाली, बीच में जाति, देश, काल का व्यवधान होने पर भी। वासनानां = वासनाओं की। अपि = भी। आनन्तर्यं = नैरन्तर्य, अविच्छिन्नता का। उपपाद्य = प्रतिपादन करके। तासां = उन वासनाओं के। आनन्त्ये = अनन्त, असख्य, अपरिमित होने पर। अपि = भी। हेतुफलादिद्वारेण = हेतु, फल इत्यादि के द्वारा अर्थात् हेतु-फल-आश्रय-आलम्बन के द्वारा ही वासनाओं का सग्रह होता है, अतः इनके अभाव के निरूपण द्वारा ही। हानं = वासनाओं के अभाव, हानि का। उपदर्श्य = वर्णन करके। अतीतादिषु = अतीत-वर्तमान-अनागत इत्यादि। अध्वसु = कालों अवस्थाओं में। धर्मों में। धर्मिणः = धर्मी की। सद्भावं = स्थिति, सत्ता की। उपपाद्य = सिद्धि करके। विज्ञानवाद = बौद्ध अभिमत विज्ञानवाद का। निराकृत्य = निराकरण करके। च = और। सत्कारवाद = सत्कारवाद की, अभिव्यक्ति से पूर्व कार्य अपने कारण में सद्रूप से ही विद्यमान रहता है। प्रतिष्ठाप्य = स्थापना, प्रतिष्ठा करके। पुरुषस्य = पुरुष के। ज्ञातृत्व = ज्ञाता स्वरूप को। उक्त्वा = कह करके। चित्तद्वारेण = चित्त के द्वारा, चित्त के माध्यम से। सकलव्यवहारनिष्पत्ति = समस्त व्यवहारों

की सिद्धि का। उपपाद्य = प्रतिपादन करके अर्थात् बुद्धि के द्वारा ही द्रष्टृत्व वक्तृत्व, भोक्तृत्व इत्यादि सभी व्यवहारों की सिद्धि होती है। पुरुषसत्त्वे = पुरुषसत्त्व में, पुरुष की सत्ता की सिद्धि में। प्रमाणं = प्रमाण को। उपदर्श्य = दिखला कर, प्रस्तुत कर। कैवल्यनिर्णयाय = कैवल्य के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिये। दशभिः = दश। सूत्रैः = विशेषदर्शिन ४।२४ से पुरुषार्थशून्याना ४।३३ तक सूत्रों के द्वारा। क्रमेण = क्रमशः। उपयोगिन = उपयोगी। अर्थान् = अर्थों, तत्त्वों का। अभिधाय = निरूपण करके। शास्त्रान्तरे = दूसरे शास्त्रों में, बौद्ध-जैन-न्याय-मीमांसा-वेदान्त इत्यादि दर्शनों में। अपि = भी। एतद् = यह। एव = ही। कैवल्यं = कैवल्य का स्वरूप है। इति = इस रूप से। उपपाद्य = प्रतिपादित करके। कैवल्यस्वरूपं = चिन्मात्र स्वरूप-प्रतिष्ठा ही अपवर्ग है, इस कैवल्य के स्वरूप का। निर्णीत = निर्णय, स्थापना की गई। इति = इस प्रकार। कैवल्यपादः = प्रस्तुत योगशास्त्र के कैवल्यपाद नामक चतुर्थ एवं अन्तिम पाद का। व्याहृत = व्याख्यान, विवेचन प्रस्तुत किया गया।

॥ इति चतुर्थः कैवल्यपादः ॥

भोजवृत्तिसमन्वितो हिन्दीव्याख्यासंवलितश्च समाप्तोऽयं ग्रन्थः

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥